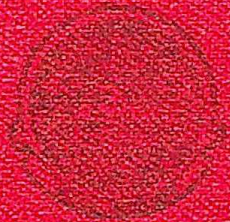


अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि

डॉ० लक्ष्मणदास शर्मा



कलकत्ता विश्वविद्यालय

सेठ भोलाराम सेवसरिया स्मारक ग्रन्थमाला—२

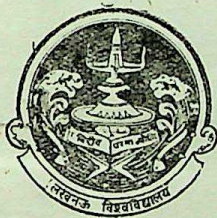
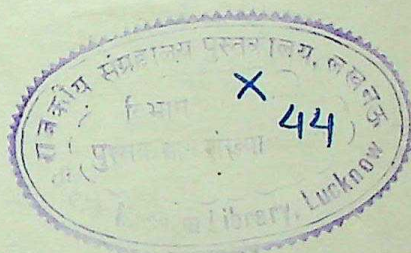
अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि

लेखक

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल

एम्० ए० (लखनऊ, कलकत्ता), पी-एच्० डी० (लखनऊ)

लेक्चरर, हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय



प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

सम्बत् २००७ नि००

Rs. 9.00

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रथम संस्करण २०००

मूल्य नौ रुपए

मुद्रक—रामप्रताप त्रिपाठी, सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग



स्वर्गीय सेठ भोलाराम सेकसरिया

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्व-विद्यालय की रजत्-जयन्ती के अवसर पर विसवाँ-शुगर-फ़ैक्ट्री की ओर से बीस सहस्र रुपये का दान देकर हिन्दी विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी-अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी में उच्चकोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए किया जा रहा है। जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थमाला' में संग्रहित होंगे, हमें आशा है कि यह ग्रन्थमाला हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध करके ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

नरहरि सुषसंगी (सोइ) परे जो दुष में चीन्हि
सोनो सज्जन कसन को विपत्ति कसौटी कीन्हि ॥

—नरहरि

नाद उदधि के पार को केतिक करी उपाय
मंजन के भय सरस्वती तूँबी उर गहि लाय ॥

—तानसेन

पावक कूँ जल विदु निवारक सूरज ताप कूँ छत्र लियो है
व्याधि कूँ वैद तुरंग कूँ चावुक चौपग कूँ ब्रख दंड दियो है
हस्ति महामद कूँ किय अंकुस भूत पिसाच कूँ मंत्र कियो है
ओखद है सब को सुखकारि स्वभाव को ओखद नाहिं कियो है ॥

—गंग

धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पिअत अघाय
उदधि बड़ाई कौन है जगत पिआसो जाय ॥
मन से कहाँ रहीम प्रभु दृग सो कहाँ दीवान
देखि दृगन जो आदरै मन तेहि हाथ विकान ॥

—रहीम

वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने बड़ा परिश्रम किया है। इसी प्रबन्ध के लिए उनको विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि दी है। उन्होंने अनेक दुष्प्राप्य ग्रन्थों का अध्ययन कर अकबर के दरबार से सम्बन्ध रखने वाले कतिपय कवियों का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया है। डा० अग्रवाल के इस ग्रन्थ द्वारा हिन्दी इतिहास की बहुत सी अज्ञात सामग्री प्रकाश में आ रही है।

यह हर्ष का विषय है कि हमारे विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यापक साहित्य-सेवा के कार्य में योग देते हैं और उनके अनुसंधान एवं गवेषणाएं ग्रन्थ के रूप में विश्वविद्यालय की ओर से अथवा अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित हो रही हैं।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक का हिन्दी-संसार स्वागत करेगा और डा० अग्रवाल का श्रम सफल होगा।

श्री आचार्य नरेन्द्र देव
एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्०
कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय

नरेन्द्रदेव

उपोद्घात

ईसा की चौदहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य-भाग तक हिन्दी साहित्य में धार्मिक भावों की धारा विशेष प्रबलता के साथ प्रवाहित होती मिलती है, जिसका प्रसार मुख्यतः चार रूपों में हुआ। (१) ज्ञान और योग की आध्यात्मिक अनुभूति का सन्तकाव्य, (२) सूफ़ी फकीरों का प्रेम-काव्य, (३) रामभक्ति-काव्य, (४) कृष्णभक्ति-काव्य। इन चार उपधाराओं के प्रमुख प्रतिनिधि कवि क्रमशः संत कबीर, सूफ़ी जायसी, लोक हितकारी महात्मा तुलसीदास और भक्त-शिरोमणि सूरदास थे। ज्ञान और प्रेम-भक्ति का हिन्दी साहित्य में जो निवृत्ति-परक धार्मिक प्रवाह प्रबल हुआ था वह देश की तत्कालीन परिस्थितियों से उद्दीप्त हुआ था। हिन्दी के चारण-काल की राजाश्रय प्रवृत्ति उक्त युग में विदेशी शासन की कठोरता से ईश्वरोन्मुख हो गई थी। यह आन्दोलन राजाश्रय से मुक्त एक स्वतंत्र आन्दोलन था। अकबर के राजत्वकाल में (१५५६ से १६०५ ई०) देश ने बहुत समय के बाद सुख-शान्ति का समय देखा। अकबर ने हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त करने के लिए उनकी संस्कृति, उनकी भाषा, उनके साहित्य और उनकी कला को अपनाया। अकबरी दरबार के संरक्षण ने भारतीय विद्या और कला को भारी प्रोत्साहन दिया। उस दरबार में जहाँ फ़ारसी और अरबी का मान होता था, वहाँ संस्कृत और हिन्दी का भी आदर हुआ। अकबर ने प्रख्यात गवैये, बड़े-बड़े विद्वान् और कवियों का अपने दरबार में स्वागत किया। उसका हिन्दी से इतना प्रेम बढ़ा कि वह स्वयं हिन्दी में काव्य-रचना करने लगा। केन्द्रित राजशक्ति के कला और साहित्य-प्रेम ने देशी राजाओं के साहित्य-प्रेम को भी फिर से जागृत कर दिया और वे पूर्ववत् अपने आश्रय में कविता और कलाविदों को सम्मान देने लगे।

जिस समय भक्ति के स्वतंत्र क्षेत्र में तुलसी, परमानन्द और मीरा जैसी महान् विभूतियाँ उत्पन्न हुईं उसी समय अकबर की संरक्षा में नरहरि, गंग, रहीम आदि प्रतिभाशाली कवि-पुंगव हुए जिन्होंने लौकिक काव्य की रसधारा को पुनर्जीवित किया। इनमें रहीम, ब्रह्म, तानसेन शाही दरबार के नवरत्नों में थे। ये कवि संत अथवा भक्त नहीं थे। उन्होंने अपनी कविता के विषय लोक की अनुभूतियों से चुने थे। श्रृंगार-भाव के अन्तर्गत नायक-नायिकाओं को विविध प्रेम-अवस्थाएँ, व्यावहारिक जीवन के अनुभवों से पूर्ण नीति तथा वीर-प्रशस्ति आदि लोक-भावनाएँ उनके काव्य में चित्रित हुईं। भाषा की दृष्टि से इन सभी कवियों ने बहुधा ब्रजभाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और मुक्तक शैली में रचनाएँ कीं। दोहा, सवैया, कवित्त और छप्पय छन्दों का इन्होंने विशेष प्रयोग किया। नरहरि की रचनाओं की भाषा पुरानी अवधी है। अब्दुरहीम खानखाना ने ब्रजभाषा के साथ-साथ अवधी का भी प्रयोग अपने बरवा छन्दों में किया है। मुक्त शैली में सवैया, कवित्त और बरवा छन्दों के

(५)

प्रयोगकर्ताओं में अकबरी दरबार के कवि अग्रगामी कहे जा सकते हैं। हिन्दी के धार्मिक युग में अध्यात्म की परमानन्दमयी मन्दाकिनी के साथ लौकिक अनुभूति की रसधारा बहाने वाले ये कवि साहित्य-जगत में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन कवियों में रहीम का तो कुछ विद्वानों ने अध्ययन किया था परन्तु अन्य कवियों के सम्बन्ध के केवल प्रकीर्णक विचार ही प्रकट हुए। अकबरी दरबार के इस कवि-वर्ग के सर्वांगीण अध्ययन की मुझे आवश्यकता प्रतीत हुई और डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल को मैंने पी-एच० डी० प्रबन्ध प्रस्तुत करने के लिए यह विषय दिया। डॉ० अग्रवाल ने बड़े परिश्रम और खोज के साथ इस विषय पर प्रबन्ध लिखा जिसको स्वीकृत करके लखनऊ विश्वविद्यालय ने डॉ० अग्रवाल को पी-एच० डी० की उपाधि दी।

यह ग्रन्थ पाँच अध्यायों में लिखा गया है। प्रथम में हिन्दी-साहित्य के मध्य-युग की विशिष्ट प्रवृत्तियों का विवेचन है तथा अकबर की कला और साहित्य-प्रियता का विवरण देने के बाद अकबरी दरबार में रहने वाले तथा उस दरबार से सम्बन्धित कवियों का परिचय है। दरबार में रहने वाले कवि नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग, रहीम, सूरदास मदनमोहन, राजा टोडरमल, राजा पृथ्वीराज, राजा आसकरणा, चतुर्भुज ब्राह्मण और मनोहर कवि थे और उस दरबार के सम्पर्क में आने वाले तथा वहाँ से सम्मान पाने वाले कवि होलराय, कुंभनदास, सूरदास, चन्द्रभान, केशवदास, करनेस तथा दुरसा आदि थे। प्रस्तुत ग्रन्थ में उक्त कवियों में से लेखक ने दरबार में रहनेवाले नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम का आलोचनात्मक अध्ययन किया है। इन कवियों की रचनाओं की तथा उनके जीवन-चरित सम्बन्धी तथ्यों की खोज डॉ० अग्रवाल ने बहुत परिश्रम से की है और हिन्दी-जगत के समक्ष नवीन और बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत की है। द्वितीय अध्याय में जीवन-चरित और तीसरे में रचनाओं का विवेचन है। इस विवेचन में डॉ० अग्रवाल ने वैज्ञानिक तर्क-प्रणाली से अपने निष्कर्ष निकाले हैं। चतुर्थ अध्याय काव्य-विवेचन का है। इसमें भाव-व्यंजना, प्रकृति-प्रयोग, उक्ति-वैचित्र्य, अलंकार, छन्द, भाषा, आदि शीर्षकों के अन्तर्गत विषय-तत्त्व की रुचिकारी आलोचना की गई है। इस अध्याय में भाषा-विवेचन वाला प्रसंग विशेष महत्व का है। पाँचवें अध्याय में उक्त, कवियों की रचनाओं के आधार से उत्तर भारत के सामाजिक जीवन, लोक-विश्वास और ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। यह प्रसंग भी बहुत रोचक और महत्त्वशाली है। परिशिष्ट भाग में उक्त कवियों की प्रकाशित तथा अप्रकाशित रचनाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए गये हैं। उससे ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ़ गई है। पाठकों के सामने इस ग्रन्थ को रखते हुए मुझे भी हर्ष है। डॉ० अग्रवाल के अध्यापन का विशिष्ट विषय भाषा-विज्ञान है परन्तु काव्य-समीक्षा क्षेत्र में भी उनका प्रवेश है यह बात इस ग्रन्थ से विदित हो जाती है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे अपने भाषा-विज्ञान और साहित्यानुशीलन के कार्य को इसी प्रकार आगे बढ़ाते रहेंगे। उनके लिए मेरी मंगल कामनाएँ हैं।

डॉ० दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

दीनदयालु गुप्त

प्राक्कथन

भारतीय इतिहास के मध्य-युग में मुगल-सम्राट् अकबर का राज्यकाल विशेष महत्व का है। इस युग में न केवल राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से ही देश की उन्नति हुई वरन् हिन्दी-काव्य का भी विलक्षण उत्कर्ष हुआ। अकबरी-दरबार के भीतर और बाहर महान् कलाकार और कवि उस युग को गौरवशाली बना रहे थे। महात्मा सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास उस युग के महान् भक्त-कवि थे तथा स्वामी हरिदास उच्च कोटि के भक्त-गायक। उस युग की महत्ता में अकबर का बड़ा ही प्रमुख योग था। उसने श्रेष्ठ कलाकारों और कवियों को अपने दरबार में आश्रय दिया था। दरबार के 'नवरत्न' गुणी और प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति थे तथा इनमें से अधिकांश हिन्दी-काव्य के प्रेमी ही नहीं वरन् प्रतिभा-संपन्न कवि और लेखक भी थे। विविध सूत्रों से पता चलता है कि नवरत्नों में राजा वीरबल, तानसेन, अब्दुरहीम खानखाना, राजा टोडरमल आदि की हिन्दी में सुन्दर काव्य-रचनाएँ उपलब्ध हैं। नवरत्नों के अतिरिक्त दरबार के कई प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा राज-कर्मचारी भी हिन्दी में कविता करते थे, इस संबंध में राजा आसकरण, राजा पृथ्वीराज और सूरदास मदनमोहन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। साथ ही दरबार में आश्रय पाने वाले नरहरि और गंग सरीखे हिन्दी के कुछ अन्य उच्चकोटि के कवि भी विद्यमान थे। अकबरी-दरबार के उपर्युक्त कवियों में नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम हिन्दी-जगत में विशेष प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्हीं हिन्दी-कवियों के जीवन-चरित, रचनाओं, काव्यालोचना तथा उनके काव्य में उपलब्ध सामग्री का सामाजिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है।

अभी तक इन समस्त कवियों में से प्रत्येक का पूर्ण रूप से अध्ययन नहीं किया गया। कुछ लेखों, भूमिकाओं अथवा कुछ छोटे-छोटे ग्रंथों में जो सामग्री मिलती है उसका परिचय संक्षेप में इस प्रकार है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में नरहरि का जीवन और काव्य संबंधी परिचय बहुत कम मात्रा में मिलता है। असनी के कवि और नरहरि के वंशज लालजी द्वारा प्रकाशित 'अश्वनी-चरित्र' नामक पुस्तिका में नरहरि के घराने और वंश के व्यक्तियों का नामोल्लेख-मात्र मिलता है। जीवन सम्बन्धी घटनाओं का कोई वर्णन नहीं मिलता। श्री रामकृष्ण शर्मा द्वारा प्रकाशित 'नरहरि महापात्र और उनका घराना' तथा श्री मानसिंह गौड़ के 'महाकवि नरहरि का निवास' नामक लेखों में कवि का जीवनी का संक्षेप में वृत्तान्त तो मिलता है परन्तु अधिकांश घटनाओं का इनसे भी कोई परिचय नहीं मिलता। केवल कुछ अंशों पर ही प्रकाश डालने का प्रयत्न किया

गया है। श्री विपिन बिहारी त्रिवेदी ने भी नरहरि की जीवनी पर कुछ लेख लिखे हैं, जिनमें उल्लिखित कुछ घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं। परन्तु उनके द्वारा कवि की रचनाओं पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। इस प्रकार ऊपर लिखे किसी भी लेख में न तो उनकी सम्पूर्ण जीवनी और न उनकी साहित्यिक वृत्तियों का ही परिचय और विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए नरहरि के सम्यक् अध्ययन की आवश्यकता लेखक को प्रतीत हुई।

लेखक ने नरहरि संबंधी एक प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ का पता लगाया जिसका विवरण हिन्दी के इतिहास या खोज-रिपोर्टों में नहीं है। नरहरि कृत 'रुक्मिणी-मंगल' नामक ग्रंथ को भी जिसका उल्लेख मात्र खोज-रिपोर्टों में है, लेखक ने काशी के राज-पुस्तकालय में जा कर प्राप्त किया। प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों तथा उपर्युक्त हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर कवि के जीवन तथा काव्य-रचना पर एक मौलिक दृष्टिकोण के साथ नवीन सामग्री प्रस्तुत की गई है।

राजा वीरबल (ब्रह्म) ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी हिन्दी-काव्य-जगत के लिए नये ही हैं। इन्होंने 'ब्रह्म' उपनाम से अपनी अधिकांश रचनाएँ की हैं। तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों में वीरबल के राजकीय जीवन का परिचय तो मिलता है किन्तु उनमें कवि के बाल्य-काल, शिक्षादि विषय पर कोई सामग्री नहीं मिलती। मुंशी देवीप्रसाद तथा पं० वल्लभ भट्ट ने 'राजा वीरबल' नामक पुस्तकों में कवि की जीवन-चरित सम्बन्धी घटनाएँ ही अधिकतर दी हैं। उनमें कवि के काव्य पर विवेचनात्मक विचार नहीं मिलते। इतिहास-विशेषज्ञ डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी का जनवरी, सन् १९३१ की हिंदुस्तानी पत्रिका में 'राजा वीरवर' नामक लेख दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें कवि के जीवन की अनेक घटनाएँ स्पष्ट कर दी गई हैं और कवि के कुछ उत्तम छंदों के भावसहित उदाहरण भी दिये गये हैं। लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों तथा संग्रहालयों से प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर उसकी जीवनी और रचनाओं का पूरा विवरण एवं विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

तानसेन एक उत्कृष्ट गायक के रूप में सुविख्यात हैं, किन्तु वे हिन्दी के कवि भी हैं इस तथ्य की जानकारी हिन्दी-संसार को नहीं है। इसीलिए हिन्दी-साहित्य के ग्रंथों में प्राप्त तानसेन सम्बन्धी सामग्री अत्यल्प है। भाषा-तत्त्व-विशेषज्ञ डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने 'तानसेन' नामक एक अंगरेजी-लेख में कवि के जीवन की कुछ घटनाओं का विवरण तथा पदों का भावसहित परिचय दिया है। किन्तु फिर भी तानसेन के जीवन की कई महत्वपूर्ण घटनाएँ अछूती ही रह गयी हैं। उनके पदों का भी विवेचनात्मक अध्ययन नहीं हुआ है। तानसेन की राग और ताल विषयक रचना 'संगीत-सार' रीवां के राज-पुस्तकालय में सुरक्षित है जिसका अध्ययन लेखक ने वहाँ जाकर किया। बंगीय साहित्य-परिषद द्वारा प्रकाशित रागसागरोद्भव संगीत-राग-कल्पद्रुम के भाग १, २ में तानसेन के पद बिखरे हुए मिलते हैं। लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों, वार्ता-

साहित्य तथा कवि की उपर्युक्त रचनाओं के आधार पर उसकी जीवनी का अध्ययन करने का प्रयास किया है परन्तु फिर भी अनिवार्य घटनाओं के लिए किंवदन्तियों को छोड़ कर कोई दूसरा सहारा नहीं मिल सका। संगीत-राग-कल्पद्रुम के विखरे पदों के आधार पर ही उनकी काव्य-प्रतिभा का समझने का प्रयत्न किया गया है।

गंग अकबरी-दरबार के कवियों में अधिक लब्ध-प्रतिष्ठ हैं किन्तु जितने ही अधिक वे ज्ञात हैं उतनी ही उनकी जीवनी विवादग्रस्त और अज्ञात है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में कवि की जाति और मृत्यु संबंधी घटनाओं के ही संकेत मिलते हैं। इनमें तथा कुछ अन्य प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में कवि के कुछ छंद भी प्राप्त होते हैं। लेखक ने विविध संग्रहालयों की हस्तलिखित प्रतियों में उपलब्ध छंदों में प्राप्त अंतर्साक्ष्य के आधार पर कवि की जीवनी का अध्ययन किया है। समकालीन तथा परवर्ती कवियों की कुछ रचनाओं तथा प्रकाशित इतिहास-ग्रंथों से भी कहीं-कहीं कवि के जीवन-चरित पर प्रकाश डाला गया है। कवि की रचनाओं का विवेचन और उनके आधार पर काव्य-प्रतिभा का भी अध्ययन प्रस्तुत ग्रंथ में किया गया है।

रहीम के जीवन की घटनाओं का विवरण मुंशी देवीप्रसाद ने 'खानखानानामा' में दिया है। लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों—अकबरनामा, तुजुक-जहाँगीरी, अब्दुलवाकी कृत मआसिरे-रहीमी आदि के अध्ययन से रहीम के जीवन की कुछ अन्य बातों पर नम्र प्रकाश डाला है। रहीम की हिन्दी-रचनाओं का संग्रह स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने 'रहीम-रत्नावली' के नाम से किया है। पाठ की दृष्टि से रहीम के और भी कई प्रकाशित संग्रह-ग्रंथ मिलते हैं परन्तु लेखक ने याज्ञिक जी के उक्त संग्रह-ग्रंथ को ही रहीम की रचनाओं के अध्ययन का मुख्य आधार माना है क्योंकि समस्त प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में याज्ञिक जी का ही संग्रह अधिक पूर्ण है। रहीम हिन्दी-जगत के ख्यातिप्राप्त कवि हैं किन्तु अभी तक उनकी काव्यगत विचारधारा का मूल्यांकन नहीं हो पाया था। विविध शैलियों, भाव-धाराओं एवं काव्य तथा जीवन के आदर्शों पर विचार करना आवश्यक था, यही प्रयत्न इस ग्रंथ में किया गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ में अकबर के दरबार के नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग, रहीम हिन्दी-कवियों का विशेष रूप से सविस्तार अध्ययन है तथा करनesh, दुरसा, होलराय ब्रह्मभट्ट, कुंभनदास, सूरदास, व्यास, चन्द्रभान, चतुर्भुजदास ब्राह्मण, राजा आसकरण, राजा पृथ्वीराज, सूरदास मदनमोहन, राय मनोहर तथा राजा टोडरमल हिन्दी-कवियों का जो अकबरी दरबार से किसी न किसी रूप में सम्बंधित थे, संक्षेप में परिचयात्मक उल्लेख है।

प्रस्तुत ग्रंथ पाँच अध्यायों में विभाजित है। पहले अध्याय की सामग्री पाँच प्रसंगों में दी गई है। पहले प्रसंग में मध्य-युग की कुछ सामान्य विशेषताओं, दूसरे में तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों, तीसरे में अकबर के व्यक्तित्व और दरबार में कला के संरक्षण, चौथे में भारतवर्ष के मुसलमान राजाओं द्वारा राज्याश्रय की परंपरा एवं

अकबर के पूर्व-काल में हिन्दी का मान तथा पाँचवें में अकबरी-दरबार के हिन्दी-कवियों के संक्षिप्त परिचय को दिया गया है। अकबरी दरबार के उक्त कवियों को दो श्रेणियों में रखा गया है एक तो दरबार में स्थायी रूप से रहने वाले कवि और दूसरे केवल अकबर के संपर्क में आये हुए कवि। इस ग्रंथ की प्रारंभिक सामग्री इतिहास-ग्रंथों के आधार पर है। इसी अध्याय के अंतिम प्रसंग में चन्द्रभान, व्यास, राय मनोहर, सूरदास मनमोहन, राजा पृथ्वीराज, राजा आसकरण आदि कवियों से सम्बन्धित निष्कर्ष लेखक के अपने हैं।

दूसरे अध्याय में अकबरी-दरबार के प्रमुख और प्रसिद्धि-प्राप्त पाँच कवियों—नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम का जीवन-चरित दिया गया है। नरहरि इन समस्त कवियों में वयोवृद्ध थे, इसलिए सर्वप्रथम उन्हीं की जीवनी दी गई है और बाद में अवस्था के क्रमानुसार दूसरे कवियों की। नरहरि, ब्रह्म, तानसेन और रहीम की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं की उनके तत्कालीन इतिहास-ग्रंथों के आधार पर गवेषणात्मक, निष्पक्ष, मौलिक समीक्षा है। गंग की जीवनी का अधिकांश भाग कवि की उपलब्ध रचनाओं के आधार पर दिया गया है क्योंकि तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों में कहीं भी कवि का उल्लेख नहीं मिलता। समकालीन और परवर्ती कवियों की रचनाओं द्वारा भी इन कवियों की जीवनी पर थोड़ा प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। फिर भी विश्वस्त प्रामाणिक सूत्रों के अभाव में लेखक को कुछ घटनाओं के सम्बन्ध में प्रचलित किंवदन्तियों का आधार लेना पड़ा है। इन सब कवियों की धार्मिक विचारधारा पर भी थोड़ा प्रकाश डाला गया है क्योंकि सभी कवि भक्त-हृदय न होते हुए भी उस युग में प्रवाहित भक्तिधारा से अछूते नहीं थे।

तीसरे अध्याय में उपर्युक्त कवियों की रचनाओं तथा उनके वर्ण्य-विषय का परिचय दिया गया है। नरहरि, ब्रह्म और गंग की फुटकर रचनाएँ विविध संग्रहालयों से प्राप्त हुई हैं जिन्हें प्रस्तुत ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में दे दिया गया है। नरहरि कृत 'रुक्मिणी-मंगल' खण्ड-प्रबन्ध तथा तानसेन कृत 'संगीत-सार' लक्षण-ग्रंथ हैं। इनको भी परिशिष्ट भाग में दे दिया गया है। तानसेन के पद संगीत-राग-कल्पद्रुम के प्रथम एवं द्वितीय भागों में तथा उनकी रचना 'संगीत-सार' का कुछ अंश 'संगीत-राग-कल्पद्रुम' के सूरसागर-संस्करण में मिलते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है कि रहीम के ग्रंथों के कई प्रकाशित संग्रह मिलते हैं परन्तु स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक द्वारा प्रकाशित 'रहीम-रत्नावली' संग्रह ही पूर्ण है। लेखक ने रहीम की रचनाओं के लिए उसी ग्रंथ का आधार लिया है। इन कवियों के रचनाकाल का भी उल्लेख साथ ही कर दिया गया है।

चौथे अध्याय में उक्त कवियों के काव्य का विवेचन किया गया है। उनकी रचनाओं के अंतरंग और बाह्य दोनों पक्षों की समीक्षा की गई है। अंतरंग पक्ष के अन्तर्गत शृंगार, भक्ति, वीर आदि भावों तथा रूप-सौंदर्य, प्रकृति-वर्णन, नीति-उपदेशादि का विश्लेषण है। बाह्य-पक्ष के अंतर्गत उक्ति-वैचित्र्य, भाषा, छंद, अलंकार का विवेचन है। कवियों की भाषा में विदेशी

शब्दों के प्रयोग के कारण, उनके रूप-परिवर्तन आदि पर भी लेखक ने स्वतन्त्र रूप से अपने विचार प्रकट किये हैं।

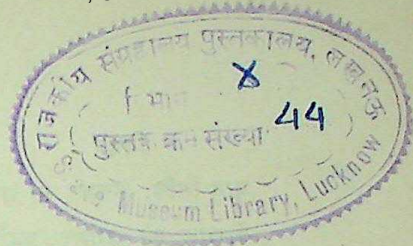
पाँचवें अध्याय में उक्त कवियों की रचनाओं के आधार पर अकबरकालीन सामाजिक जीवन, विश्वास तथा कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के परिचय दिये गये हैं। नरहरि, तानसेन, गंग का काव्य इस दृष्टि से विशेष महत्व का है। इसी अध्याय के आरंभ में राज-दरबार में कवियों की उपयोगिता पर भी स्वतंत्र विचार प्रकट किए गए हैं। जीवन के अन्तर्गत मनुष्यों के तत्कालीन धार्मिक विश्वास, जनोत्सव, वेशभूषा, रहन-सहन आदि पर विचार किया गया है। कवियों द्वारा दी गई कई ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता पर भी पूर्ण रीति से प्रकाश डाला गया है। कुछ नई घटनाओं के भी विवरण हैं जो इतिहास-ग्रंथों में नहीं मिलते।

ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में कवियों की उन्हीं रचनाओं को दिया गया है जो अधिकांश रूप में अप्रकाशित हैं और प्रकाशित रचनाओं में से केवल उन्हीं को दिया गया है जो सामान्य रूप में दुष्प्राप्य हैं और लेखक को प्रयत्न के उपरान्त ही उपलब्ध हो सकी हैं।

इस सम्बन्ध में यह निवेदन कर देना आवश्यक है कि प्रस्तुत ग्रंथ के अन्तर्गत उदाहरण रूप में दी गई रचनाएँ प्रायः अपने मूल हस्तलेख में प्राप्त अपरिष्कृत रूप में ही हैं जिनमें गति, यति-भंग आदि दोष कहीं-कहीं पर स्पष्ट रूप से प्रकट हैं। हाँ, किन्तु परिशिष्ट भाग में अवश्य कुछ साधारण संशोधन कर के रचनाएँ उद्धृत की गई हैं। इनके संशोधन में रायबहादुर डॉ० शुक्देव विहारी मिश्र के सुझावों से बड़ी सहायता मिली है।

प्रस्तुत ग्रंथ का प्रणयन हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष डॉ० दीनदयालु गुप्त की देखरेख तथा निरीक्षण में हुआ है जिनके सौहार्द्र और पथ-प्रदर्शन के अभाव में इसका इस रूप में होना संभव नहीं था। डॉ० भवानी शंकर याज्ञिक ने अपने संग्रहालय के हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रंथों एवं स्वयं अपने सुझावों द्वारा लेखक को अनुगृहीत किया है। उनके उदार सौजन्य के अभाव में ग्रंथ का भली प्रकार से संपन्न हो सकना कठिन ही था। सागर-विश्वविद्यालय के कुलपति तथा इतिहास-विशेषज्ञ डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी एवं रा० व० डॉ० शुक्देवविहारी मिश्र के अमूल्य सुझाव प्रस्तुत ग्रंथ के परिष्कार में बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं। लेखक उनका हृदय से आभारी है। फारसी-ग्रंथों के अर्थ समझने में फारसी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के अध्यक्ष श्री सय्यद मसूद हसन रिजवी से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। लेखक इसके लिये उनका कृतज्ञ है। श्री डॉ० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच्० डी० और श्री कलिनद शास्त्री एम० ए० से समय-समय पर लेखक को जो सुझाव मिले हैं उनके लिये लेखक उनका आभार मानता है। इसके साथ ही लेखक विश्वविद्यालय के कुलपति श्री आचार्य नरेन्द्र देव जी के वक्तव्य के लिये उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है। इनके अतिरिक्त लेखक उन सभी सज्जनों का आभारी है जिन्होंने उस इस कार्य-संपादन में यथाशक्ति सहायता प्रदान की है।

लेखक



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
पहला अध्याय—भूमिका	१-५३
मध्ययुग की कुछ सामान्य विशेषताएँ	१
तत्कालीन परिस्थितियाँ—	
राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक	२-९
अकबरी दरबार और उसका वैभव	
१. अकबर का व्यक्तित्व	९-१९
उसकी विद्वत्ता, उदारता, धार्मिक विचार और समन्वय की प्रवृत्ति	
२. अकबरी दरबार में कला का आश्रय	१९-२२
३. भारतवर्ष में यवन-राजाश्रय	२२-२५
४. अकबरी दरबार में हिन्दी का सम्मान	२५-३२
केवल दरबार में आने जाने वाले और अकबर के संपर्क में आये हुए कवि—	
करनश, दुरसा, होलराय, कुंभनदास, सूरदास, व्यास, चन्द्रभान	३२-३८
स्थायी वृत्ति पाने वाले कवि—	
चतुर्भुजदास ब्राह्मण, राजा पृथ्वीराज, राजा आसकरण, सूरदास मदन-	३८-५३
मोहन, मनोहर कवि, राजा टोडरमल	
अकबरी-दरबार के लब्ध-प्रतिष्ठ हिन्दी-कवि—नरहरि, ब्रह्म,	५३
तानसेन, गंग, रहीम	

दूसरा अध्याय—जीवन-चरित

५४-१४९

नरहरि

जन्मस्थान, जन्मतिथि, जाति, शिक्षा-दीक्षा, संतान, नरहरि और उसका सम्मान, नरहरि और हुमायूँ, नरहरि और शेरशाह, सलेमशाह, नरहरि और रीवांनरेश रामचन्द्र, नरहरि और अकबर, अन्य कवियों की रचनाओं में नरहरि के प्रशंसात्मक उल्लेख, मृत्यु-घटना ।

५४-७६

ब्रह्म

नाम, जाति, जन्मस्थान-निर्धारण, बाल्य-काल, शिक्षा, अकबरी-दरबार में प्रवेश, पद-प्राप्ति, वीरबल और पठानों का युद्ध, वीरबल की मृत्यु,

विषय

पृष्ठ

मृत्यु-तिथि, अकबर का शोक, तत्सम्बन्धी कविता, पारिवारिक जीवन, वीरबल की धार्मिक प्रवृत्ति, समकालीन तथा परवर्ती कवियों की रचनाओं में वीरबल के प्रशंसात्मक उल्लेख, वीरबल का चरित्र, वीरबल के चुटकुले तथा उनका विवेचन ।

७६-९८

• तानसेन

इतिहास-ग्रंथों में तानसेन की कीर्ति का गान, जन्म-स्थान, जन्म-काल, जाति, जाति-परिवर्तन, गौसमुहम्मद का प्रभाव, शिक्षा-दीक्षा, स्वामी हरिदास, तानसेन की संगीत विषयक विशेषता, तानसेन और दौलतखां, तानसेन और रीवांनरेश रामचन्द्र, तानसेन और अकबर, तानसेन और मानसिंह, तानसेन की धार्मिक भावना, तानसेन की मृत्यु-तिथि ।

९८-११४

गंग

जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, जाति, बाल्यकाल, शिक्षा, अकबरी दरबार में प्रवेश, गंग की प्रतिष्ठा, गंग और अकबर, गंग और रहीम, गंग और वीरबल, गंग और मानसिंह तथा दरबार के कुछ अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति, कवि की दयनीय स्थिति, वृद्धावस्था, मृत्यु-घटना, कवि गंग की धार्मिक भावना ।

११४-१३३

• अब्दुरहीम खानखाना

जाति, वंश, जन्म-स्थान, जन्म-तिथि, शिक्षा, विवाह, भाग्योदय और पद-प्राप्ति, अपमान और वैभवहीनता, पुनर्सन्मान, पारिवारिक जीवन तथा स्वभाव, प्रतिष्ठा, समकालीन तथा परवर्ती कवियों की रचनाओं में रहीम के प्रशंसात्मक उल्लेख, रहीम और राणा अमरसिंह, रहीम और रीवांनरेश रामचन्द्र, रहीम और गोस्वामी तुलसीदास ।

१३३-१४८

तीसरा अध्याय—रचनाएँ

१४९-१७३

नरहरि

कवि के ग्रंथ, काशीराज पुस्तकालय से उपलब्ध कवि कृत रुक्मिणी-मंगल ग्रंथ, उसकी प्रामाणिकता, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की प्राचीन हस्तलिखित प्रति, विवरण और प्रामाणिकता, कवि की फुटकर रचनाएँ, खोज रिपोर्ट में दिये हुए ग्रंथों का विवेचन, कवि की रचनाओं का वर्ण्य-विषय ।

१४९-१५२

(१३)

विषय

पृष्ठ

ब्रह्म

याज्ञिक-संग्रहालय से उपलब्ध कवि के छंद, कांकरीली विद्या-विभाग की हस्तलिखित प्रतियों में उपलब्ध सामग्री, प्रतियों का विवरण और उनकी प्रामाणिकता, याज्ञिक-संग्रहालय की हस्तलिखित प्रतियों के विवरण तथा उनकी प्रामाणिकता, कवि के काव्य का वर्ण्य-विषय।

१५२-१५५

तानसेन

मिश्रबंधु-विनोद में उल्लिखित कवि के ग्रंथ, रीवां राज-पुस्तकालय से उपलब्ध तानसेन कृत संगीतसार-रचना तथा उसकी प्रामाणिकता, संगीतराग-कल्पद्रुम के नित्यकीर्तन तथा सूरसागर संस्करण में उद्धृत कवि का 'संगीतसार' नामक ग्रंथ का विवरण, संगीतराग-कल्पद्रुम ग्रंथ में उपलब्ध तानसेन के पद, जगत-शांति-औषधालय, नागपुर की तानसेन के पदों की सूची, रचना का वर्ण्य-विषय।

१५५-१५८

गंग

खोज-रिपोर्ट तथा अन्य इतिहास-ग्रंथों में कवि की रचनाओं के उल्लेख, उनका विवेचन, याज्ञिक-संग्रहालय की हस्तलिखित प्रतियों में उपलब्ध सामग्री, उनका विवरण, कांकरीली विद्या-विभाग की हस्तलिखित प्रतियां और उनका विवरण, 'महाकवि श्री गंग के कवित्त' नामक प्रकाशित ग्रंथ, उसका विवरण, कवि कृत 'चंद-छंद-वरनन की महिमा' नामक ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति तथा उसकी प्रामाणिकता, कवि का रचना-काल तथा वर्ण्य-विषय।

१५८-१६४

रहीम

रहीम के प्रकाशित विविध संग्रह-ग्रंथ, उनका विवेचन, पं० मयाशंकर याज्ञिक द्वारा संपादित रहीम-रत्नावली नामक संग्रह-ग्रंथ, दोहावली, नगर-शोभा, बरवै-नायिका-भेद, फुटकर बरवै, मदनाष्टक, खेटकौतुक-जातकम् तथा कुछ फुटकर रचनाओं का विवेचन, कवि की रचनाओं का वर्ण्य-विषय।

१६४-१७३

चौथा अध्याय—काव्य-विवेचन

१७४-२७५

काव्य के अंतरंग और बहिरंग पक्ष

रूप-वर्णन (१७५-८३), संयोग तथा उसके सहकारी भाव (१८४-१८८) विप्रलम्भ-शृंगार (१८८-२४९), नायिका-भेद (१७४-१७५), भक्ति-काव्य (२१५-२४), वीर-काव्य (२२५-३०), प्रकृति-वर्णन (२३०-२३६), नीति-उपदेश (२३६-४३), उक्ति-वैचित्र्य (२४३-४८)

विषय

पृष्ठ

भाषा

विदेशी शब्दों का प्रभाव, हिंदी में उनके प्रवेश के कारण, प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में विदेशी शब्दावली के प्रयोग और उनके रूप, कनौजी, बुन्देली, खड़ी-बोली, अवधी-शब्दों के प्रयोग, वृत्तियों का आश्रय, लाक्षणिक प्रयोग, मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग।

२८-५८

छंद-योजना

२५८-६३

अलंकार-प्रयोग

२३६-२७५

पांचवाँ अध्याय—सामाजिक जीवन एवं ऐतिहासिक तथ्य

२७६-३०७

१. सामाजिक जीवन, विश्वास

अकबरकालीन भारतीय रहन-सहन आदि का स्वरूप, प्रस्तुत कवियों द्वारा उन रूपों के चित्रण, गोरक्षा, सरिता-पूजन, तीर्थाटन, एकात्मवाद तथा अवतारवाद, साकार तथा निराकार ईश्वरोपासना, प्रतिमा-पूजन, त्योहार और जनोत्सव, दशहरा, मदनोत्सव, तीज, होली, ईद, शुभ-अशुभ शकुन, पहनावा, रहन-सहन आदि।

२७६-२९६

२. ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख

२९६-३०७

नरहरि

नरहरि और हुमायूँ, राणा सांगा का बाबर से युद्ध, गुजरात तथा मालवा के शासक बहादुरशाह का युद्ध-वर्णन, हुमायूँ और शेरशाह के युद्ध का परिचय, अकबर का शेखमुईनुद्दीन चिश्ती से पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना, चित्तौर-विजय, जगन्नाथपुरी के राजा मुकुंददेव का जन्म-वर्णन, शेरशाह के पुत्रों का वर्णन, कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों का परिचय-वीरसिंह, रीवां-नरेश रामचन्द्र, गौसमोहम्मद, वीरबल, सैयद मुबारक आदि।

२९८-३०४

तानसेन

कवि का रीवां-नरेश रामचन्द्र से सम्बंध, अकबर का तानसेन के गृह पर आगमन, अकबर के राज्य-विस्तार का वर्णन।

३०४-३०५

गंग

कवि की रचनाओं में रहीम के विविध युद्धों के वर्णन, दानशाह, राणा प्रताप की स्थिति का परिचय, ऐतिहासिक व्यक्तियों के उल्लेख-मानसिंह, रामदास कछवाहा, कीरत सिंह, राजा जगन्नाथ आमेर आदि।

३०५-३०७

(१५)

विषय

परिशिष्ट

पृष्ठ

३०८-४५६

अकबरी-दरबार के कवियों की अप्रकाशित अथवा दुष्प्राप्य रचनाएँ—

१. नरहरि की रचनाएँ	३०९-३३३
२. नरहरि कृत रुक्मिणी-मंगल	३३४-३४४
३. ब्रह्म की रचनाएँ	३४५-३५९
४. तानसेन कृत संगीत-सार	३६०-३७८
५. तानसेन के पद	३८८-४१८
६. गंग की रचनाएँ	४१९-४४७
७. सूरदास मदनमोहन के पद	४४७-४५०
८. राजा आसकरण के पद	४५०-४५२
९. राजा टोडरमल के छंद	४५२-४५३
१०. सहायक ग्रंथ-सूची—	४५४-४५६

प्रकाशित—

हिन्दी	४५४-४५५
अंग्रेजी	४५५-४५६
संस्कृत	४५६
गुजराती,	"
फारसी,	"
उर्दू	"
पत्र-पत्रिकाएँ	"

हस्तलिखित—

हिन्दी

"

पहला अध्याय

भूमिका

ईसा की सोलहवीं शताब्दी में प्रत्येक सभ्य देश जीवन की एक नवीन धड़कन का अनुभव कर रहा था। भौतिक जगत में नई-नई व्यवस्थाएँ बन रही थीं। इसके परिणामस्वरूप शक्तिशाली राष्ट्रों और वंशों का प्रादुर्भाव हुआ। इङ्गलैंड में ट्यूडर, फ्रांस में बूरबों, स्पेन और आस्ट्रिया में हैप्सबर्ग, प्रशा में हाब्सबर्ग, तुर्किस्तान में ओरमानलीस्, मिस्र में ममलूकस्, फारस में सफाविड्स, चीन में मिन्स्, भारत में मुगलों के उत्थान एक ही काल में हुए।^१ इस युग में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नये-नये परिवर्तन हुए। धर्म, कलाकौशल, साहित्य आदि के क्षेत्रों में विशेष उन्नति हुई। धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध धर्म-सम्बन्धी उदार और व्यापक भावना को जन्म दिया गया। इङ्गलैंड में 'रोमन-कैथोलिक' धर्म के स्थान पर नये धर्म 'प्रोटेस्टेंट' का प्रचार हुआ। भारतवर्ष में सन्तमत, सूफीमत तत्पश्चात् वैष्णव-धर्म का विशेष प्रचार और प्रसार किया गया। इन नये धर्मों के प्रचार से सैकड़ों वर्षों की चली आती हुई अन्ध-परम्परा का विरोध हुआ और लोगों में जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण देखने को मिला। अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के प्रति लोग उदार हुए और उनकी मानसिक संकीर्णता कुछ दूर हो चली। दलितों को समाज से अलग प्राणी समझने की भावना में परिवर्तन हुआ और सर्वसाधारण लोगों की भाँति उनको भी मानवता की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया।

यह शिल्प, वास्तु, चित्र, काव्य आदि अन्य कलाओं के पुनरुद्धार तथा अभ्युदय का युग था। यूरोप, भारतवर्ष तथा अन्य पूर्वी देशों में इन कलाओं को प्रश्रय मिला। इन देशों के शासकों के दरबारों में उच्चकोटि के कवि, लेखक और विद्वानों को सम्मान तथा प्रतिष्ठा का स्थान मिला। इङ्गलैंड में शेक्सपियर, भारत में सूरदास और

तुलसीदास, ईरान में मुहम्मदशाह आदि महाकवि हुए। इन कवियों ने उस सुख और समृद्धि के समय में अपनी काव्य-प्रतिभा का विशेष परिचय दिया जो आज भी कवि-वर्ग के लिये अनुकरणीय है। मानसिक शक्तियों एवं भव्य-भावों की अभिव्यक्ति का विशद रूप उन महाकवियों की रचनाओं में प्राप्त हुआ। यूनान और रोम की संस्कृति की नींव पर मध्ययुगीन यूरोप की कला, साहित्य, दर्शन, न्याय-शास्त्र की भीति खड़ी की गई। भारतवर्ष की संस्कृति सहस्रों वर्ष पुरानी होते हुए भी विदेशियों के प्रवेश पर उनकी संस्कृति, सभ्यता और विचार-प्रणाली का यहाँ की जनता पर प्रभाव पड़ा और इस प्रकार इन दो संस्कृतियों के मेल से एक नवीन संस्कृति तथा विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ। इस्लाम के प्रवेश ने भारतवर्ष की ललित-कलाओं तथा वाङ्मय के क्षेत्रों पर अपना विशेष प्रभाव डाला। साथ ही मुसलमान शासक और साधारण मुसलमान भी भारतीय विचार-पद्धति से प्रभावित हुए बिना न रह सके जिसका विवरण विस्तार से इस अध्याय में आगे दिया जायगा।

भारतवर्ष की समुन्नत राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का अकवरकालीन साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। अतः उनका संक्षिप्त विवरण देना यहाँ आवश्यक है।

राजनीतिक परिस्थिति

भारतवर्ष में बाबर और हुमायूँ के संक्षिप्त शासन-काल में राजकीय संगठन तथा व्यवस्था का अभाव था। इस दशा में कोई राजनीतिक तथा आर्थिक विकास और उन्नति संभव नहीं थी। अकबर को भी अपने राज्य के आरम्भ में ही विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा।^१ जिस समय अकबर सिंहासनारूढ़ हुआ तब केवल पञ्जाब उसके हाथ में था। उसके सरदार सरहिंद, दिल्ली और आगरा की रक्षा कर रहे थे। राज्य-विद्रोह को उसे दबाना था। सूरवंश के उत्तराधिकारियों का विरोध एक ओर था, हिन्दू-सामन्त हेमू भी जिसने राजा विक्रमाजीत की उपाधि ले ली थी, दिल्ली की ओर बढ़ रहा था। बङ्गाल अफगान-शासकों के आधिपत्य में लगभग दो शताब्दी से स्वतन्त्र था। राजस्थान के राजपूत अपने प्रदेश के विधाता स्वयं थे। मेवाड़ और गुजरात ने बहुत काल पहले ही दिल्ली से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। गोंडवाना और मध्यप्रान्त स्थानीय सरदारों के आधिपत्य में थे। उड़ीसा की स्वतन्त्र

१ दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया, भाग ४, पृष्ठ ७०

सत्ता थी। दक्षिण में खानदेश, बरार, बीदर, अहमदनगर, गलकुंडा सुलतानों-द्वारा शासित थे जिनका प्रायः दिल्ली-दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था। उत्तर में काश्मीर, सिन्ध और विलोचिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र थे और किसी सर्वोपरि सत्ता को जानते ही न थे। किन्तु अकबर के बुद्धि-चातुर्य, कुशलता और तीव्र प्रतिभा के बल पर ही एक-एक कर सभी प्रदेश उसके अधीन होते गये। उसकी दूरदर्शिता ने स्थानीय राजाओं और सामंतों को शत्रु के बदले मित्र बना लिया था। चित्तौड़गढ़ के विजय के पश्चात् सभी राजपूत सामंतों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, केवल राणा प्रतापसिंह सरीखे वीर ही जीवनपर्यंत अकबर का विरोध करते रहे। सुल्तान बादशाहों, कुछ पठान-शासकों तथा बाबर और हुमायूँ के अव्यवस्थित शासन के फलस्वरूप किसी प्रकार का सामाजिक अथवा आर्थिक उत्थान नहीं हो पाया था और ललित कलाओं, काव्यादि को भी कोई प्रोत्साहन नहीं मिला था। अकबर के समय में राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हो जाने के अनन्तर न केवल आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों में ही सुधार दिखाई दिया वरन् साहित्य की मधुर, गंभीर एवं व्यापक धाराएँ भी उमड़ती हुई दृष्टिगत होने लगीं।

धार्मिक परिस्थिति

मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व भारतवर्ष की धार्मिक स्थिति अस्त-व्यस्त थी। बौद्ध-धर्म हास पर था। उसकी दो मुख्य शाखाएँ हीनयान और महायान हो गई थीं और उसकी उपासना की विधि में भी अन्तर हो गया था। विहारों में विलासिता, मतभेद, अन्धविश्वास आदि दुर्गुण प्रधान हो रहे थे। इस कारण बौद्ध-धर्म जनता का धर्म न रह कर केवल एक समुदाय का ही सीमित धर्म हो गया था। शङ्कराचार्य ने अपने तर्कों तथा उपदेशों द्वारा बौद्ध-धर्म की शेष शक्ति को भी देश-निकाला कर दिया। शङ्कर की धार्मिक विचारधारा ईश्वर की अद्वैत-भावना से उद्भूत थी और उसमें सगुण-भक्ति को स्थान न था। इस प्रकार उनका सिद्धांत व्यावहारिक न होने के कारण जनता में प्रचलित नहीं हो पाया। पश्चात् रामानुजाचार्य ने ब्रह्म-सूत्रों पर अपना भाष्य लिखा और सगुण-भक्ति का एक नवीन मार्ग लोगों को सुझाया। इस भक्ति के परिणामस्वरूप लोगों में मूर्ति-पूजा तथा उपासना के अनेक रूपों का प्रचलन हुआ। अवतारवाद में आस्था जाग्रत हुई। किन्तु, अकबर के पूर्व मुसलमानों के जो आक्रमण हुए थे उनमें मूर्तियों के खंडन, अनेक अनाचार तथा अत्याचार, धर्म-विपर्यय आदि के दृश्यों ने जनता में अवतारवाद के विरुद्ध भावना भर दी थी। निर्गुण ईश्वर में उनकी अधिक

आस्था हो चली थी। इधर यवन भी 'एकेश्वरवाद' के समर्थक और मूर्ति-पूजा के विरोधी थे। अतएव ऐसे ही समय में कबीर, नानक, नामदेव, दादू आदि महात्मा इस नवीन ईश्वरोपासना-पथ के प्रदर्शक हुए। हिंदू और मुसलमान दोनों की सद्भावनाओं का इन संतों द्वारा पूर्ण विश्लेषण किया गया। हिंदू धर्म में प्रचलित अन्ध-विश्वास, छुआ-छूत के भेद, मन्दिर-मस्जिद के झगड़े, जातिगत संकीर्णता का विरोध कर सन्त-मत के अनुयायियों ने जनता के समुख ज्ञान और प्रेम से उद्भूत निर्गुणोपासना का एक नया दृष्टिकोण सामने रखा। यह निर्गुण-धारा अपने क्षेत्र में प्रवाहित होती रही और आगे वह भी समय आया जब सगुण और निर्गुण का संघर्ष प्रारंभ हुआ और जिसके परिणाम में दोनों का समन्वय बहुत कुछ अंशों में दिखाई पड़ता है। अकबर के समय में निर्गुण-धारा का प्रवाह काफी प्रबल था और इस धारा के प्रसिद्ध प्रचारक और सन्त दादू ने अकबर से चालीस दिन तक बातें कर उस पर काफी प्रभाव डाला था।^१

इसके कुछ काल बाद ही सूफी-महात्माओं का आविर्भाव हुआ। हिन्दू तथा मुसलमानों में स्नेह-भाव का जागरण इन सूफियों द्वारा किया गया। हिन्दू-घरों की कहानियाँ लेकर सूफी-संतों ने अपने भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की। किन्तु इन महात्माओं और संतों के उपदेशों का प्रभाव अधिकारी तथा उच्च वर्ग के लोगों पर नहीं पड़ा। यह अपने सीमित क्षेत्र में बहुत से साधकों को प्रभावित करती रही। इसने निर्गुण और सगुण दो धाराओं को भी बहुत कुछ प्रभावित किया। निर्गुण उपासकों में आत्मा को स्त्री रूप में और परमात्मा को पति रूप में मान कर उसके प्रेम और विरह में तल्लीन रहना सूफी साधना-पद्धति का प्रभाव था और सगुण-भक्ति के अन्तर्गत प्रेमाभक्ति का बहुत अधिक महत्व भी सूफी-

१ दीने-इलाही, पृष्ठ १४१

His (Dadu's) fame as a man of deep spirituality reached the ears of the Emperor Akabar, who was his contemporary, and Birbal, it is said prevailed upon the saint to have an interview with the Emperor in response to an invitation from him.

Rajjabdas refers to the event in one of his couplets-

अकबरसाहि बुलाइआ, गुरु दादू को आप।

साच झूठ व्योरो हुआ, तब रह्यो नाम परताप॥

Nirguna School of Hindi Poetry, Page 259.

साधना-पद्धति के कारण ही जान पड़ता है। दीने-इलाही के सिद्धांतों के अन्तर्गत आत्मा का ईश्वर-प्रेम में अभिभूत होना और उससे एकता स्थापित करने का सिद्धांत भी इसी से प्रभावित जान पड़ता है।

सगुण-भक्ति की धारा भी क्षीण नहीं हुई थी। चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में स्वामी रामानंद ने रामानुजाचार्य के 'श्री सम्प्रदाय' को व्यापक और लोकप्रिय बना दिया और उत्तर भारत में इसका प्रचार कर सगुण-भक्ति का द्वार सब के लिए खोल दिया। इस भक्ति में राम को ईश्वर के सगुण रूप में प्रतिष्ठित करने वाले गोस्वामी तुलसीदास के प्रभाव से आगे चल कर राम-भक्ति का विशेष प्रचार हुआ। उसको लेकर चलने वालों में अग्रदास, नाभादास, हृदयराम आदि प्रसिद्ध कवि हुए। जिस प्रकार स्वामी रामानंद द्वारा राम-भक्ति का प्रचार हुआ उसी प्रकार निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी तथा उनके अनुयायी चैतन्य महाप्रभु एवं वल्लभाचार्य द्वारा कृष्ण-भक्ति को प्रश्रय मिला। वल्लभाचार्य ने 'पुष्टि-मार्ग' द्वारा कृष्ण की अनुग्रह-प्राप्ति का उपदेश दिया।^१ सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में ही इस संप्रदाय की व्यापकता सारे उत्तर-भारत में हो गई। वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र विठ्ठलनाथ ने 'वल्लभ-मत' के आठ प्रधान भक्त-कवियों को लेकर 'अष्टछाप' की स्थापना की। वल्लभाचार्य ने अपने प्रचार का केन्द्र-स्थल कृष्ण की जन्म-भूमि व्रज-प्रदेश ही रखा। व्रज-प्रदेश की व्रज भाषा में ही कृष्ण-भक्ति का प्रचार हुआ और कृष्ण-भक्ति द्वारा व्रज-भाषा का भी यथेष्ट प्रचार और प्रसार हो गया। इस प्रकार कृष्ण-भक्ति और व्रज-भाषा ने पारस्परिक रूप से एक दूसरे को सहत्वपूर्ण बनाया।

अकबर ने तत्कालीन सभी प्रकार की धार्मिक भावनाओं का एकीकरण करना चाहा। उसकी धार्मिक उदारता का परिणाम था कि उसने जब बौद्धिक आधार पर अपनी प्रजा में धार्मिक एकता का प्रचार किया और दीने-इलाही की स्थापना की तो कुछ कट्टर मुसलमानों द्वारा उसका घोर विरोध किया गया।^२ धर्म की तत्सम्बन्धी भावनाओं का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। अकबरी-दरबार के हिन्दी कवियों में गंग, ब्रह्म, रहीम आदि कृष्ण और राम-भक्ति की धाराओं से प्रभावित हुए थे जैसा कि उनकी रचनाओं से प्रकट होता है। इस युग का साहित्य इन धार्मिक भावनाओं के द्वारा ही वेगवान हुआ।

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, पृष्ठ ७०

२ अकबर दि ग्रेट मुगल, पृष्ठ १८२

सामाजिक परिस्थिति

अकबर के पूर्व सुल्तान बादशाहों के शासन-काल में हिंदुओं पर कई प्रतिबन्ध थे। उनको मुसलमानों की अपेक्षा कम सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। उन्हें अपने सामाजिक रीति-नीति आदि के व्यवहार की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं थी। उनकी स्थिति अनिश्चित और अस्थायी थी। अपने इन-संकुचित अधिकारों के रहते हुए भी हिन्दुओं में आत्माभिमान का लोप नहीं हो गया था। साथ ही उनमें विलासिता का भी अभाव न था। उच्च घराने की स्त्रियों में आभूषण और बनाव-शृङ्गार का खूब प्रचलन था। मुखों पर केशर-मिश्रित अङ्गराग और शरीर पर ठंडक के लिए केशर मिले हुए उबटन का प्रयोग होता था। हाथों में कङ्कन, गले में बड़े-बड़े मोतियों के हार और कानों में जवाहिरात पिरोई हुई बालियाँ, बालों और कानों की शोभा के लिए चम्पा की सुनहरी सुगंधित कलियाँ पहनी जाती थीं।^१ वर्ण-व्यवस्था विशृङ्खल रूप में थी। ब्राह्मण-समाज मानसिक योग्यता, नैतिक तथा धार्मिक गुणों से भली प्रकार विभूषित नहीं था। उनमें स्वार्थपरता, लोभ आदि दुर्गुण प्रवेश कर गये थे। राजपूतों में भी वंश-विभाजन हो गया था और वे केवल अपने वंश की प्रतिष्ठा और मान की रक्षा में संकुचित विचार-धारा के अनुगामी हो गये थे। समाज में अछूतों की संख्या अधिक थी, जो चारों प्रामाणिक वर्णों से भी नीचे थे। वे आठ भागों में विभक्त थे—धोबी, मोची, जुलाहे, बाजीगर, टोकरे और ढाल बनाने वाले, धीवर, मछिरे और व्याध। इन आठों जातियों को नगर और गाँव के भीतर रहने की आज्ञा न थी। गाँव, नगर के पास झोपड़े बना कर ये रह सकते थे। इन पेशेवाली जातियों से भी नीचे हाड़ी, डोम, चारडाल और विधातू थे। इन्हें अत्यंत घृणित जाति का अछूत समझा जाता था।^२ इस काल के हिन्दुओं में सावन-तीज पर भूले, रक्षाबन्धन, दशहरा दिवाली, होली आदि के त्यौहार प्रचलित थे; यद्यपि शासक की रूम्मान इस और न रहने के कारण उनका यह आनन्द निरापद नहीं था।

अमीर खुसरो ने तत्कालीन सामाजिक जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है। जहाँ वह एक ओर उदारतापूर्ण अतिथि-सेवा, सजावट और सौंदर्य, ललितकलाओं की ओर अभिरुचि, विद्वानों और कलाविदों के आदर-मान का वर्णन करता है वहीं दूसरी ओर उसने पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, अत्यंत कठोर दंड-विधान, सिंहासन के उत्तराधिकार के

१ मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, पृष्ठ ४३

२ " " " पृष्ठ ४७, ४८

सम्बन्ध में विश्वास का अभाव, विषय-विलासिता, मद्य-पान, भोग-विलास आदि के भी वर्णन किये हैं। किन्तु अकबर के शासन-काल में हिन्दू-मुसलमानों के अधिकारों की विषमता को दूर करने का प्रयत्न हुआ। उसने हिन्दू और मुसलमान सभी के लिए एक नियम का पालन किया और हिन्दुओं पर लगे हुए सभी अनुचित करों को हटा दिया जिसके फलस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो गई थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रायः समान स्तर पर हो गये थे। उन्हें अपने सामाजिक उत्सवों, रीति-नीति, रिवाजों आदि के मनाने की पूरी स्वच्छन्दता थी, किन्तु हिन्दू सामाजिक जीवन में जो शिथिलता आ गई थी वह एक दम दूर न हो सकी। परस्पर-कलह, भेद-भाव भोग-विलास, मदिरा - सेवन आदि दुर्गुण हिन्दू-समाज के उच्च स्तर के लोगों में ज्यों के त्यों बने रहे। साधारण जनता में संयम अवश्य था। अकबर के काल में सौन्दर्य-प्रेम की भावना प्रधान थी। सुरापान और अफीम का सेवन बराबर होता था। स्वयं अकबर इनका आदी था। अकबर के दो बड़े बेटे मदिरा-सेवन की अति के कारण ही मृत्यु को प्राप्त हुए थे। विदेशों से विलासिता तथा भोगविलास की अनेक सामग्रियाँ आती थीं जिसके कारण उन वस्तुओं का व्यवहार लोगों के जीवन में प्रचुर मात्रा में विद्यमान था। अतएव इस प्रकार की सामाजिक दशा का प्रभाव साहित्य पर पड़े बिना न रहा। जहाँ एक ओर अकबर के राज्य में सुखमय स्थिति होने के कारण लोगों का ध्यान काव्य तथा अन्य ललित कलाओं के समुत्थान की ओर गया वहाँ दरबार के विलासी जीवन के अनुरूप शृङ्गारिक रचनाएँ भी प्रस्तुत की गईं और इस रूप में कवियों की रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक जीवन का थोड़ा संकेत मिलता है।

साहित्यिक परिस्थिति

अकबर-काल के पूर्व हिन्दी-साहित्य के मध्य-काल के संत-कवि कबीर, नानक भोजपुरी, पंजाबी, राजस्थानी आदि मिश्रित देशी-भाषाओं में, प्रेममार्गी सूफ़ी-कवि कुतुबन, मंझन, जायसी आदि अवधी बोली में तथा सगुण-भक्ति के रसखान, आलम, मीराबाई आदि ब्रज-भाषा में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर चुके थे। इन कवियों ने अपने परवर्ती अकबरकालीन कवियों के लिए काव्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। तत्कालीन परिस्थिति-विशेष के कारण साहित्य में काव्य के अतिरिक्त किसी अन्य अंग की ओर लोगों का ध्यान न था। हिन्दी-साहित्य के नाटक, उपन्यास, कहानी आदि अंगों पर किसी रचना-विशेष का उल्लेख नहीं मिलता। इसका संभवतः एक कारण यह भी था कि उस प्रकार की रचनाओं के उपयुक्त हिन्दी-गद्य का विकास पूर्णतया नहीं हुआ था। दूसरे शासक और

जनता की अभिरुचि जितनी अधिक काव्य की ओर थी उतनी साहित्य के किसी अन्य अंग की ओर नहीं। व्रज-भाषा-गद्य में वैष्णव-भक्तों की संक्षिप्त जीवनी के दो संग्रह 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता,' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के नाम से किये गये।

विदेशी आक्रमणकारियों से मुठभेड़ करने वाले वीरों की प्रशंसा का गान जैसा वीरकालीन कवियों के लिये सम्भव और स्वाभाविक था वैसा हिन्दी-साहित्य के भक्ति-कालीन कवियों के लिये न रह सका। विदेशियों की राजसत्ता देश में दृढ़ हो चुकी थी और विदेशीयता भी उनमें से कुछ दूर हो चली थी। वे भी भारत-भूमि प्रसूत नायकों की भाँति यत्र-तत्र काव्य के नायक बनने लगे थे। सुखमय स्थिति के होने पर जनता पुनः अवतारवाद तथा ईश्वर की साकारोपासना की ओर झुकी। ईश्वर में शील, शक्ति और सौंदर्य का उचित सामंजस्य स्थापित किया गया। भक्ति-भावना के निरूपण में कवि-गण अधिक लीन हुए। सगुणोपासना के दो रूप प्रधान थे। एक कृष्ण-भक्ति का और दूसरा राम-भक्ति का। पहले में जिस प्रकार कृष्ण की भाव-पूर्ण रस-मूर्ति सामने आई उसी प्रकार दूसरे में मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की ऐश्वर्य-सुपमा विराजमान थी। साहित्य की इन प्रबल लोक-अनुरंजन और लोक-उपकार करने वाली दो भावनाओं को बाद में चलकर दो अप्रतिम आश्रय प्राप्त हुए—सूर और तुलसी। कृष्ण-विषयक रचना सूर के पहले जयदेव की प्रसिद्ध संस्कृत-कृति 'गीत-गोविन्द' के आधार पर विद्यापति प्रस्तुत कर चुके थे। विद्यापति के कृष्ण-सम्बन्धी पदों में भक्ति के साथ शृङ्गारिक भावों की भी अभिव्यक्ति हुई थी। सूर के पदों में नखशिख, रासक्रीड़ा-वर्णन में शृङ्गारिक भावनाएँ आई हैं किन्तु वे भक्तों के हृदय के लिये सर्वस्व हैं।

भावों के समान ही काव्य की शैली में भी विशेषता दृष्टिगोचर हुई। निर्गुण कवियों की गीत-पद्धति का प्रभाव जनता के हृदय पर अधिक पड़ा था और जब सूर तथा अन्य मुक्तककारों ने इस पद्धति को भाव के सुनहले रत्नों द्वारा मंडित किया तो उसका चमत्कार कई गुना बढ़ गया। सूरदास के अतिरिक्त वल्लभ-संप्रदाय के अन्य 'अष्टछापी' भक्त-कवियों ने भी गीत-पद्धति को ही अपनाया। मुक्तक रचनाओं में कवित्त, सवैया, छप्पय, सोरठा, बरवै आदि छन्द विशेष रूप से प्रयुक्त हुए। संस्कृत छन्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया गया। शान्त रस के साथ रौद्र, वीर तथा वीभत्स रसों की भी अभिव्यक्ति कुछ स्थलों पर हुई। नीति-सम्बन्धी रचनाओं के लिए दोहे, सवैये और छप्पय तथा इति-वृत्तात्मक प्रकार की कविता के लिये चौपाई, सोरठा और शृङ्गार आदि की रचना के लिये कवित्त-सवैया का आश्रय विशेष रूप से लिया गया।

भाषा-क्षेत्र में भी क्रांति हुई। वीर-गाथाएँ अधिकतर राजस्थानी में ही लिखी गई थीं किन्तु भक्ति-पम्बन्धी रचनाओं में ब्रज और अवधी का स्रोत प्रवाहित हुआ। इन भाषाओं को उस काल के कवियों-द्वारा जिनके नाम पहले दिये जा चुके हैं, उचित सम्मान मिला और बाद को ब्रज उत्तर-भारत में सैकड़ों वर्षों तक काव्य की प्रधान भाषा बनी रही। काव्य की भाषा उस काल में मान्य रूप से ब्रज ही थी, अवधी का उतना विस्तार नहीं था।

हिन्दी-साहित्य की उपर्युक्त धाराओं का प्रभाव अकबरी-दरबार के हिन्दी-कवियों पर भी पड़ा। दरबार के कवियों ने तत्कालीन प्रचलित काव्य-पद्धति, भाव तथा भाषा का अनुसरण किया जिससे हिन्दी-साहित्य को और भी प्रोत्साहन मिला।

अकबरी-दरबार और उसका वैभव

१. अकबर का व्यक्तित्व

विश्व में कभी-कभी ऐसी महान् विभूतियाँ अवतरित होती हैं जो अपने युग को पूर्ण रूप से प्रभावित कर उसकी विभिन्न दिशाओं को बदल देती हैं। वे उस युग-विशेष की धारा में स्वयं प्रवाहित नहीं होतीं वरन् अपने प्रवाह में युग को बहा देती हैं। इन महान् विभूतियों की कार्य-प्रणाली आलोक-स्तम्भ की भाँति आगामी युगों का मार्ग प्रकाशित करती रहती है और जनता उसे आदर्शस्वरूप मान कर उस पर चलने का प्रयास करती है। मध्य-युग के महान् व्यक्तियों में अकबर का नाम भी है। उसका व्यक्तित्व सफल कार्यों से गौरवान्वित है। धार्मिक अन्धविश्वास, कलह, विद्रोह, जातिगत संकीर्णता से ऊपर विश्व ने उसका दर्शन युग-निर्माता के रूप में किया था। जब कि समकालीन अन्य राष्ट्रों में विद्रोह और वैमनस्य की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, भारत में अकबर धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक और राष्ट्रीय क्षेत्रों में एकता की सफल योजनाएँ कार्य-रूप में परिणत कर रहा था। पिछले मुसलमान शासकों द्वारा किये गये अनुचित कार्यों को मेटने का उसने बीड़ा उठाया था।

अकबर को दिल्ली का राजसिंहासन डौवाडोल स्थिति में प्राप्त हुआ था, यह पहले बताया जा चुका है। छोटी अवस्था में ऐसे संकटमय कार्यभार को संभालना उसके बुद्धि-चातुर्य, नीति-निपुणता और कार्य-कौशल का परिचायक है। अकबर विद्या-प्रेमी था और विद्वानों का बड़ा आदर करता था। उसके पूर्व के अनेक शासक अपनी विद्वत्ता,

विद्या-व्यसन, साहित्य-सेवा के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। यहाँ तक कि क्रूर और निर्दयी शासक महमूद गज़नवी भी साहित्यिक उदारता के लिये प्रसिद्ध है। उसके दरबार में उच्चकोटि के विद्वान थे। फिरिश्ता ने तो यहाँ तक लिखा है कि किसी भी बादशाह के दरबार में इतने विद्वान न थे जितने महमूद के दरबार में। सुलतान नसीरुद्दीन बादशाह होते हुए भी विद्यार्थी और साधु-जीवन व्यतीत करता था और अपनी लेखन-कला से ही जीविका चलाता था। शाहजादा मुहम्मद अपने महल में अमीर खुसरो की प्रधानता में साहित्यिक गोष्ठी करता था। सुलतान जलालुद्दीन खिल्जी के दरबार का वातावरण भी पूर्ण साहित्यिक था। मुहम्मद तुगलक अपने पूर्व के शासकों से बढ़कर विद्वान था। कुशल लेखक होने के अतिरिक्त वह एक सफल कवि भी था। बहमनी-वंश का शासक फ़ीरोज़ भी अपनी विद्वत्ता के लिये अधिक प्रसिद्ध है। बाबर अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं का उद्भूट विद्वान था। अनेक विद्वानों से उसका संपर्क था और अपने 'बाबरनामा' के संस्मरणात्मक लेखों में उसने अपनी साहित्यिक गोष्ठी का भी परिचय दिया है, जो नाव पर बैठ कर आनन्द-निमग्न होकर उसके साथ कविताएँ रचती थी।

अकबर इन सभी विद्वान शासकों से साहित्यिक अभिरुचि और विद्या-व्यसन में बढ़ कर था। उसमें महमूद गज़नवी का जोश, दानशीलता और उदारता, सुलतान नसीरुद्दीन का त्याग, मुहम्मद तुगलक की साहित्यिकता, सुलतान फ़ीरोज़ की विद्वत्ता, हुसेन शाह की राजाश्रयता का एकीकरण ही नहीं वरन् धर्म की नई व्याख्या और हिन्दी-भाषा के अनेक कवियों को आश्रय देने की विशेषता भी दृष्टिगत होती है जो सम्राट् अकबर को दिल्ली के सर्वश्रेष्ठ विद्वान शासकों के आसन पर ला बिठाती है। सम और विषम दोन प्रकार की राजनीतिक परिस्थितियों में उसकी छत्र-छाया के नीचे साहित्य फलता-फूलता रहा फ़ारस में अकबर ने स्वयं सर्वश्रेष्ठ चित्रकार अब्दुस्समद से चित्र-विद्या सीखने का प्रयत्न किया था। अपने शासक-जीवन में अकबर विविध ज्ञान-विषयक ग्रन्थों का पाठ स्वयं न कर अनेक विद्वानों से पढ़वा कर सुनता था। अन्तिम पठित पृष्ठ पर वह स्वयं पेन्सिल का निशान लगाता। इस आधार पर कुछ इतिहासकारों ने उसे निरक्षर सिद्ध करने का यत्न किया है। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है कि अकबर की निरक्षरता उसके लिये बाधक न थी। भारतीय शासक सदैव अपने अधिकारी वर्ग द्वारा राज्य-कार्य कराते रहें हैं, जिसने अकबर को विद्वानों से बहस और वार्तालाप करते सुना होगा वह उसकी निरक्षरता का पता भी नहीं लगा सका होगा। इतिहासकार स्मिथ लिखता है कि अकबर अपनी निरक्षरता से लज्जित नहीं

था क्योंकि उसके पूर्व और उत्तरकालीन अनेक भारतीय शासक निरक्षर थे।^१ इति-हासकार वेवरिज ने निरक्षरता में अकबर के समकक्ष हैदरअली, रणजीत सिंह तथा फिलिप द्वितीय को भी रखा है। लिखने-पढ़ने का काम राजकर्मचारियों के लिए ही उपयुक्त समझा जाता था और वही पढ़-लिख कर वस्तुओं का बोध शासक को कराते थे। फ़ारस में शासकों की इस प्रकार की निरक्षरता का ही विशेष महत्व था। वह हीनता की द्योतक नहीं थी। अकबर की निरक्षरता को भी इसी दृष्टिकोण से देखना चाहिये। 'तुजुक-जहाँगीरी' में जहाँगीर ने लिखा है—'मेरे पिता सदैव प्रत्येक धर्म और विश्वास के विद्वानों विशेषकर भारत के प्रसिद्ध पण्डितों का साथ करते थे। वह निरक्षर थे किन्तु विद्वानों के संपर्क में आने पर उनकी उस निरक्षरता का बोध नहीं हो पाता था और वे कविता के प्रधान गुणों से इतने परिचित हो गये थे कि कोई व्यक्ति उनकी निरक्षरता का अनुमान भी नहीं कर सकता था।'^२

अकबर को निरक्षर इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि वह स्वयं लिखता-पढ़ता नहीं था किन्तु वह बहुश्रुत था और उसका ज्ञान-भंडार विस्तृत था। पुस्तकों का ज्ञानार्जन स्वयं पढ़कर प्राप्त न करने से किसी को निरक्षर नहीं कहा जा सकता। जीवन के बहुमुखी प्रयास में लगे रहने के कारण समयाभाव से वह ऐसा करता हो तो असम्भव नहीं। अकबर को इस अर्थ में बिल्कुल निरक्षर समझना ठीक नहीं। अकबर अनेक वर्ष अध्यापकों से पढ़ा था और उसने हिन्दी और फ़ारसी भाषाओं में अपने हृदयोद्गारों का प्रकाशन भी किया था फिर उसे अक्षर ज्ञान न हो यह नहीं कहा जा सकता। 'अकबरनामा' में अबुलफज़ल ने अकबर की कवित्व-शक्ति का निर्देश किया है। अकबर भावुक-हृदय था और काव्य-ग्रंथों में विशेषतया मसनवी और फ़ारसी-दीवानों का पाठ कराता था।^३ एन्० एन्० लॉ ने भी अकबर की निरक्षरता का विरोध करते हुए उसको सान्तर सिद्ध किया है।^४ अकबर ने कई कलाओं में दक्षता प्राप्त की थी। चित्र-कला, संगीत-कला, काव्य-कला, घोड़े की सवारी, शिकार, युद्ध, तैरने आदि की विद्याओं में भी वह कुशल था। अपने बचपन में उसने लिखने-पढ़ने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया था फिर भी विद्वानों की सत्संगति, अपनी प्रतिभा और जिज्ञासा-द्वारा अनेक विद्याओं में कुशल

१ अकबर दि ग्रेट मुगल, पृष्ठ ३३०, ३३१

२ तुजुक-जहाँगीरी, भाग १, पृष्ठ ३३

३ अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ ४८४, ४८५

४ प्रोमोशन आव् लर्निंग एट् मुगल कोर्ट, पृष्ठ १३९, १४२

हो गया था। उसकी स्मरण-शक्ति विलक्षण थी। वह जिस पुस्तक को अपने सम्मुख पढ़वाता था वह उसको सम्पूर्ण कंठाग्र हो जाती थी। अतएव केवल अक्षरों के लिखने-पढ़ने की अज्ञानता उसके लिये किसी प्रकार बाधक नहीं थी। वह एक विद्वान् व्यक्ति था इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। उसकी इस प्रतिभा का प्रभाव दरबार के विभिन्न पक्षों पर भी पड़ा था।

अकबर ने तत्कालीन परिस्थितियों का भली प्रकार से पर्यावलोकन कर लिया था। राजकीय बागडोर ग्रहण करने के समय से ही उसने हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान दृष्टि से देखा और अपनी सदाशयता का परिचय दिया। जजिया-कर हिंदुओं की पराधीनता और हीनता का द्योतक था। अन्य कर भी थे जिन्हें हिंदुओं को ही देना पड़ता था। तीर्थ-कर हिंदुओं की धार्मिक परतन्त्रता का बोधक था। सरकारी उच्च-पदों से हिंदू वंचित थे। उनके सामाजिक कार्यों पर पाबन्दियाँ थीं। इस प्रकार हिंदुओं पर अनेक प्रतिबंध लगे हुए थे। बाबर के शासन-काल में इनमें किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। हुमायूँ ने मध्यम-मार्ग का अनुसरण किया। फ़ारस से लौटने पर वह हिंदुओं के प्रति कुछ दयार्द्र अवश्य हो गया था। यह उसने नीतिवश ही किया था। अकबर के पूर्व शेरशाह एक महान् शासक हो गया था। यद्यपि हिंदुओं को दवा रखने की भूल उठाने नहीं की किन्तु उसके शासन में भी हिंदुओं को पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता नहीं थी। अकबर को ऐसे ही अविश्वास और संदेहपूर्ण वातावरण में अपनी अनेक नीतियों का पालन करना पड़ा। हिन्दू-वातावरण में लालित-पालित होने तथा हिन्दू-राजकुमारियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध होने के कारण उसके दृष्टिकोण में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। स्वाभाविक जिज्ञासा-शक्ति ने भी यहाँ उसकी सहायता की। अकबर ने जजिया-कर और धार्मिक प्रतिबंधों को हटाकर हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान नागरिकता का अधिकार प्रदान किया। राजकीय पदों पर नियुक्ति के लिये उसने प्रत्येक जाति और वर्ग के व्यक्तियों को चुना। व्यक्ति-विशेष को उसके गुणानुसार पूरा अधिकार दिया गया। मानवता की रक्षा और राज्य-प्रबन्ध की सुचारुता के लिये वह हर तरह का काम करने को प्रस्तुत था। उसने बाल-विवाह, सती-प्रथा का विरोध और विधवा-विवाह का समर्थन किया। एक बार तो वह स्वयं कई मील दूर एक राजपूत-विधवा की रक्षा के लिये गया था। उसने ममेरे, चचेरे और निकट के वैवाहिक सम्बंधों की मनाही कर दी थी। मदिरा-सेवन तथा अन्य दुर्व्यसनों के लिये उसने राज-दंड निर्धारित किया था। अकबर के ये कार्य एक उत्तम शासन-प्रणाली के परिचायक हैं।

भिखारियों के लिये उसने अलग बस्तियाँ बनवा दी थीं। उनकी देख-भाज राजदरबार की तरफ से होती थी। मुसलमानों के लिये खैरपुरा, हिन्दुओं के लिये धर्मपुरा और हिन्दू-योगियों के लिये योगीपुरा बसाये थे।^१ अकबर की धार्मिक वृत्ति भी बढ़ी-चढ़ी थी। सर्व-धर्म-समन्वय के लिये उसने अनेक साधन जुटाये थे। वह स्वभाव से ही चिन्तनशील था। उसने सब को धार्मिक विश्वास की स्वतन्त्रता दे रखी थी। प्रत्येक व्यक्ति को स्वेच्छानुसार मत को स्वीकार करने की स्वतन्त्रता थी। जो हिन्दू पहले बरबस मुसलमान बना लिये गये थे उन्हें पुनः अपने धर्म में लौट जाने की आज्ञा उसने दे दी थी। वह साम्प्रदायिक न था। राजनीतिक उदारता ने सम्राट् के हृदय को विशाल बनाने के साथ ही धार्मिक उदारता के लिये भी प्रेरित किया था। हिन्दू-वातावरण में जन्म लेने, हरम में हिन्दू-गीतों की मधुरता तथा हिन्दू-अफसरों की स्वामिभक्ति और वांस्ल की राजपूत रानी का हुमायूँ को राखी-भाई बनाने के दृश्य ने अकबर के मस्तिष्क पर एक अमिट प्रभाव डाल दिया था।^२ उसे विश्वास हो गया था कि जिन्हें काफिर समझा जाता है उनके अन्दर भी मानवता की उच्च भावनाएँ हैं।^३

अकबर हिन्दुओं के समस्त त्यौहारों को आदर की दृष्टि से देखता था। राखी (रक्षाबन्धन), दशहरा, दीपावली, शिवरात्रि में वह स्वयं भाग लेता था। दरबार में ये उत्सव मनाये जाते थे। इनके सामाजिक और धार्मिक दोनों पक्षों की ओर उसकी दृष्टि रहती थी। अकबर धर्मजिज्ञासु था यह पहले कहा जा चुका है। कभी-कभी तो वह घंटों विचार-सागर में निमग्न हो भौतिकता से ऊपर उठने का प्रयास करता था। सूफ़ी-सिद्धान्त, तर्क-संगत-वादविवाद, विविध दर्शन और सिद्धान्तों का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ा था। उसने अपनी धार्मिक जिज्ञासा-वृत्ति के लिये इबादतखाने का संस्थापन

१ रेलीजस पॉलिसी आव् मुगल इम्परर्स, पृष्ठ ३०, ३२

अकबरी-दरबार, पहला भाग, पृष्ठ २१४, २१५

अकबरी-दरबार, पहला भाग, पृष्ठ २१४, २१५

२ गुजरात के बहादुरशाह ने जब चित्तौर को घेर लिया था तब रानी कर्णवती ने हुमायूँ को अपना राखीबन्द भाई बना कर सहायता मांगी थी। हुमायूँ उस समय बंगाल का कार्य सँभाल रहा था। वहाँ का काम अधूरा छोड़कर हुमायूँ चित्तौर पहुँचा और बहादुर को भगा दिया।

अकबर की धार्मिक नीति, पृष्ठ ३४३

३ दीने-इलाही, पृष्ठ ५२

कराया था। यह धर्म और ईश्वर में उसकी श्रद्धा और विश्वास का द्योतक था। अकबर यद्यपि उलमा और शेखों के साथ धार्मिक बातचीत में संलग्न रहता, पंडितों और साधुओं के प्रवचन सुनता परन्तु उसकी धार्मिक तुष्टि न हुई। उसने फिर एक नवीन मार्ग का अवलंबन लिया। शेख और उलमा की असहिष्णुता और कट्टरता का अकबर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस तथ्य ने प्रार्थना-गृह का द्वार सभी मत-मतान्तरों के विद्वानों के लिये खोल दिया था। हिन्दू, सिक्ख, जैन, पारसी, बौद्ध, यहूदी, ईसाई सब उसमें प्रवेश पा सकते थे।^१

भारत-इतिहास-संशोधक-मंडल, पूना ने इबादतखाने के तीन चित्र प्रकाशित किये हैं। ये चित्र मराठों-द्वारा मुगल-दरबार से प्राप्त लूट की सामग्रियों में से हैं और पूना में पेशवा-शासकों के प्राचीन लेखों के संरक्षण स्थान से उपलब्ध हुए हैं। चित्र बहुत ही सजीव हैं और तात्कालिक जीवन का यथार्थ भाव-प्रदर्शन करते हैं। इन सभी चित्रों पर सन् १५७२ ई० के बाद की तिथि पड़ी हुई है।^२ ये उन बहसों के चित्र हैं जिनका अकबर के जीवन और राजनीति पर विशद प्रभाव पड़ा था। चित्रों की तिथि से स्पष्ट होता है कि उस समय तक इबादतखाने को सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया जा चुका था। एक चित्र में अकबर और सलीम हिन्दू-ढंग पर दाढ़ी रखे हुए हैं और दूसरे दोनों सज्जन जो उनके समीप बैठे हैं संभवतः अबुलफज़ल और फैज़ी हैं। सफेद दाढ़ी का एक वृद्ध व्यक्ति और बिना दाढ़ी तथा दक्षिणी पहनावे का एक युवक भी चित्र में दिखाये गये हैं। दूसरे चित्र में अकबर के सम्मुख कुछ विशिष्ट व्यक्ति बैठे हैं। एक तो बिखरे लम्बे बालों वाला कोई हिन्दू-सन्यासी है। इनमें एक भी मुसलमान ज्ञात नहीं होता। चित्र का अंतिम व्यक्ति सारे शरीर को ढके हुए कोई हिन्दू-योगी जान पड़ता है। तीसरे चित्र में एक छोटी सी झोपड़ी है जो संभवतः किसी हिन्दू-योगी के रहने के लिये बनवाई

१ दीने-इलाही, पृष्ठ ७४, ८२

2 The Paintings were published in the Bharat Itihas Sanshodhak Mandal of Poona. They were amongst the loots of the Maratha hordes, from the Mughal court of Agra and have been found in the archives and very faithful in portraiture. They look like real photographs of the personages whom they represent as do the paintings of the Mughal Period generally. The colour, touch, lines and scenery breathe an atmosphere of life into the pictures. The pictures are all dated after 1578 A. D.

गई होगी। इससे प्रकट होता है कि अकबर हिन्दू-धर्म की ओर अग्रसर हो रहा था और धर्म की व्यापक भावना ग्रहण किये हुए था।

वह धर्म-जिज्ञासु था और जैसा पहले कहा जा चुका है उसने चालीस दिन तक निर्गुण-पंथ के संत दादूदयाल से वार्तालाप और वहसें की थीं तथा उनकी भक्ति एवं ज्ञान से प्रभावित हुआ था। वार्ता-साहित्य से भी सिद्ध होता है कि अकबर महात्मा सूरदास से फ़तेहपुर सीकरी में मिला था और ईश्वर के प्रति उनकी अटल भक्ति तथा वैराग्य का उस पर समुचित प्रभाव पड़ा था। इसके अतिरिक्त अकबर ने अनेक हिन्दू योगियों और सन्यासियों से जिनका परिचय ऊपर इबादतखाने के चित्रों के प्रसंग में किया गया है, मिलकर हिन्दू-धर्म के प्रमुख सिद्धांतों, आत्मा-ईश्वर की व्यापकता आदि से सम्बन्धित बातों को जानने का पूर्ण प्रयास किया था।^१ इससे भी हिन्दू-धर्म के प्रति उसके विशेष आकर्षण का परिचय मिलता है।

प्रार्थना-गृह में शियाओं के प्रवेश पर तो सुन्नी विगड़े ही थे, हिन्दुओं के प्रवेश पर तो वह अकबर के विरुद्ध ही हो गये किन्तु अकबर को उनके इस विरोध ने किञ्चित्मात्र भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं किया। अकबर को विश्वास हो गया था कि बुद्धिसम्मत नातें केवल इस्लाम-धर्म में ही सीमित नहीं हैं। गुण जहाँ कहीं भी दिखाई पड़े उसे परखना चाहिये। प्रत्येक धर्म के व्यक्ति को गुणों के अनुसार यथायोग्य स्थान मिल सकता है, यह उसका विश्वास था। बीरबल, तानसेन, अबुलफज़ल, फ़ैज़ी आदि विद्वान् साधारण स्थिति से ही ऊपर उठकर दरबार में प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य को प्राप्त कर सके थे।

बीरबल ने ही अकबर को सूर्य तथा अन्य ग्रहों की उपासना के लिये प्रेरित किया था। अकबर की हिन्दू-रानी जोधाबाई के लिये फ़तेहपुर-सीकरी में दीवाने-खास के पास अब भी एक विशाल महल मन्दिर के साथ द्रष्टव्य है। जोधाबाई के महल के समीप ही किसी हिन्दू-योगी के लिये बना हुआ पूजा-गृह है। पास ही मन्दिर के ढंग पर बना हुआ राजा बीरबल का महल भी अपनी भव्यता दिखा रहा है। इससे प्रकट होता है कि अकबर हिन्दू-संस्कृति के प्रति विशेष उदार था।

पारसी-मत का प्रभाव भी अकबर पर पड़ा था। जैन-धर्म में भी उसने रुचि प्रकट की। उसने हीराविजय, भानुचन्द्र उपाध्याय, विजयसेन सूरि आदि जैन-धर्म के आचार्यों से उनके धार्मिक सिद्धांतों, विशेषकर अहिंसा, पर वार्तालाप किया था। इसी के प्रभाव-स्वरूप उसने सन् १५८२ ई० में कारागार से कैदियों और पिंजड़ों से पत्थरों की मुक्ति

तथा कुछ निश्चित दिवसों पर पशु-हत्या के निषेध की घोषणा कर दी थी। हीराविजय को उसने 'जगतगुरु' की उपाधि से विभूषित किया था। भानुचन्द्र उपाध्याय से अकबर ने 'सूर्य-सहस्रनाम' पढ़ा था।^१ सम्भव है कि इस के फलस्वरूप सूर्योपासना में उसका वश्वास और भी दृढ़ हो गया हो।

बदाउनी ने लिखा है कि अकबर पर बौद्ध-धर्म का भी प्रभाव पड़ा क्योंकि उस धर्म के अनुसार वह विशेष अवसरों पर अपना सिर मुँड़वाता था। इबादतखाने के तीसरे चित्र से भी जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, स्पष्ट होता है कि बौद्धों के सम्पर्क में अकबर आया था। इन सब का समुचित रूप से अकबर पर प्रभाव पड़ा और धर्म सम्बन्ध बातों में उसका दृष्टिकोण विशाल और व्यापक हो गया था। अकबर ने पुर्तगाली पुरोहितों तथा ईसाई-धर्म को आदर की दृष्टि से देखा और अपने एक शाहजादे सुल्तान मुराद को तो ईसाई-वातावरण में शिक्षित और दीक्षित होने की आज्ञा ही दे दी थी।^२

अकबर ने अपने उपर्युक्त दृष्टिकोण से अभिभूत होकर ही राजनीतिक एकता के आधार पर धार्मिक एकता स्थापित करने के लिये एक नये प्रयोग का प्रयास किया। इसी आशय का एक लम्बा फरमान उसकी ओर से निकाला गया था। इस नवीन धर्म का नाम उसने 'दीने-इलाही' रखा। इसका संस्थापन सन् १५८२ ई० के आरंभ में हुआ। किन्तु उसके सिद्धान्तों की पूर्ण व्याख्या सन् १५८७ ई० के अंत तक संभव हो सकी। वह सब प्राचीन धर्मों के एकीकरण का स्वरूप था। इतिहासकार बदाउनी ने इस नवीन धर्म के सिद्धान्तों की पूर्ण व्याख्या को हृदयंगम किये बिना, केवल उसकी विधियों को ही इस धर्म का सच्चा स्वरूप मान कर उसकी निन्दा की है। 'मोहसिन फ़ानी' ने अपने 'दविस्ताने-मज़हब' में इस धर्म के सिद्धान्तों का सुन्दर विवेचन किया है। उसने इस धर्म के मुख्य दस अंग दिये हैं—उदारता और धार्मिक वृत्ति, क्षमा और क्रोध-शान्ति, सांसारिक वासनाओं से निवृत्ति, इस लोक की स्थिति से ऊपर उठने और परलोक प्राप्त करने की

१ इति श्री पादशाह श्री अकबर जलालदीन सूर्य सहस्रनामाध्यापक श्रीशत्रुंजयतीर्थकर मोचनायनेकसुकृत विधापक महोपाध्याय श्री भानुचंद्र गणितच्छिष्याष्टोत्तरशतावधान साधन प्रमुदित पादशाह श्री अकबर प्रदत्तपुस्त्यहमापराभिधान महोपाध्याय श्री सिद्धिचन्द्र गणि विरचितायां कादम्बरी टीकायामुत्तरखंडेटीका समाप्ता ।

दीने-इलाही, पृष्ठ १६०, १६१

२ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ १७५

आकांक्षा, बुद्धिसम्मत और भक्ति-पूर्वक चिन्तन-शक्ति का परिवर्धन तथा विकास, शुभ कार्यों के करने की दृढ़ शक्ति, विनम्र भावाभिव्यक्ति, सम और सुन्दर व्यवहार, संसार के मायामोह से विलगाव और ईश्वर से लगाव, आत्मा का ईश्वर-प्रेम में अभिभूत होना और उससे एकता स्थापित करना ये मुख्य बातें थीं जिनपर उस धर्म के अनुयायियों को चलना पड़ता था।

‘दीने-इलाही’ धर्म के सिद्धान्त व्यापक होने पर भी बहुत कम लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। लोक-धर्म की झूठी मर्यादा तथा धार्मिक संकीर्णता ने लोगों को यह धर्म स्वीकार करने के लिये प्रोत्साहित और प्रेरित नहीं किया। केवल कुछ ही व्यक्तियों ने इसमें प्रवेश लिया था। अबुलफ़ज़ल, फ़ैज़ी, वीरबल तथा फ़ारसी के कुछ कवि इसके विशिष्ट सदस्य थे।^१ इस धर्म के साधारण सदस्यों की संख्या कई हजार थी किन्तु उनकी सदस्यता का कोई विशेष महत्व नहीं था।^२ अतएव अकबर की मृत्यु के साथ ही इस नवीन धर्म की भी इतिश्री हो गई। किन्तु, अपनी इस विचारधारा के साथ अकबर ने राज्य के सभी विभागों को समदृष्टि से देखा और उन्नति के साधन जुटाये। उसका राज-दरबार उस युग के भारत का प्रतिनिधिस्वरूप था। उसने अपने पूर्व के शासकों से किसी भी किसी प्रकार प्रत्येक बात में विशिष्टता प्रदर्शित की थी जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। यही कारण है कि उसे भारत का एक महान् शासक कहा जाता है।

हिन्दू सामन्तों और राजाओं का समुचित सहयोग अकबर के शासन की विशेषता है। उसकी युद्ध-प्रणाली भी अपनी विशेषता रखती है। अकबर की आज्ञा थी कि जो राज्य की अधीनता स्वीकार कर ले उसे किसी प्रकार की भी हानि नहीं पहुंचनी चाहिये। साथ ही फौज के व्यक्तियों द्वारा किसानों और उनकी खेती-बारी को कोई हानि न हो। उसी के सौहार्द्र का प्रभाव था कि राज्य कन्धार से बंगाल की खाड़ी और नर्मदा तक फैल गया था। केन्द्रीय सरकार ने कर मिलते रहने पर कभी भी प्रान्तों के स्वायत्त शासन में हस्तक्षेप नहीं किया।^३

अकबर को सरकारी प्रबन्ध की पूरी सूझ-बूझ थी। इसका पता उसके फौज़ी और दीवानी-संगठन से लग जाता है। उसकी ये व्यवस्थाएँ आज पौने-चार सौ वर्ष बीत जाने पर भी अपना महत्व रखती हैं। अकबर के सम्बंध में डा० ताराचन्द के ये

१ मेडिवियल इन्डिया, पृष्ठ २८२

२ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ २२१

३ मेडिवियल इन्डिया, पृष्ठ २५९

शब्द सारगर्भित हैं—“अंगरेजों को इस बात का घमंड है कि उनकी क्रौम ने रियासती इन्तज़ाम में दुनिया को राह दिखाई है पर उन्होंने भी हिन्दुस्तान में अकबरी बुनियादों पर ही अपनी हुकूमत की इमारत खड़ी की... एक बात में अकबर की हुकूमत को आज कल की हुकूमत पर तरजीह थी। अकबर और उसके वज़ीर हिन्दुस्तानी थे। अकबर ने कई बार हिन्दुओं को सब से ऊँचे ओहदे पर नियत किया। आजकल अंग्रेजी राज के १५० वर्ष बीतने पर भी बागडोर अंग्रेजों के हाथ में है, अंग्रेज न खुद हिन्दुस्तानी बने, न उन्होंने हिन्दुस्तानियों को अपनाया और अपने बराबर माना।”^१ भारतवर्ष अंगरेजों के हाथ में नहीं बरन् अब एक स्वतंत्र देश है किन्तु अंग्रेजों की सत्ता के सम्बन्ध में डा० ताराचन्द का उपयुक्त कथन पूर्णतया ठीक है।

अकबर महान् और गौरवशाली व्यक्ति था। एक यथार्थ नीतिज्ञ के समान उसमें समन्वय की स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। उसने निश्चय किया था कि उसका साम्राज्य किसी एक जाति अथवा सम्प्रदाय का न होकर एक सच्चा भारतीय साम्राज्य होगा। एक इतिहासकार ने तो यहाँ तक कह दिया है कि अकबर एक सेनापति के रूप में महान् था, राजनीतिज्ञ के रूप में वह एक नये समाज का निर्माणकर्ता था और सच्चे मानवधर्म के एक क्रियात्मक व्याख्याता के रूप में आज तक कोई उससे बढ़कर नहीं हुआ।^२

अकबर के सम्बन्ध में ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह इतिहासकारों की खोज के आधार पर वास्तविक तथ्य के रूप में है। कवि की कल्पना और भावुकता के भीतर भी अकबर को पूर्ण सम्मान और आदर मिला है और वह एक महान् व्यक्ति के रूप में स्वीकृत हुआ है।

अकबर की राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में हिंदी के सुप्रसिद्ध राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त के निम्नलिखित हृदयोद्गार उल्लेखनीय हैं :—

प्रकट त्रिवेणी तट के मन में एक और संगम की चाह
हिन्दू मुसलमान का मानस मिलन तीर्थ वह महाप्रवाह
राम रहीम धाम होगा तब वही दुर्ग संहत सन्नाह
उस मन्दिर का आदि पुजारी स्वयं सिद्ध तू अकबरशाह ॥^३

^१ अकबरी राज के उसूल, पृष्ठ ३७१

^२ दि इम्परर अकबर, पृष्ठ २९६

^३ 'अकबर'—कविता, पृष्ठ ३१६

अतएव भारत की धार्मिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय एकता के इतिहास में अकबर का महत्वपूर्ण स्थान रहेगा ।

२—अकबरी दरबार में कला का आश्रय

अकबर की उदारनीति का ही प्रभाव था कि अनेक व्यक्ति राज्य-श्री को सुन्दरतम बनाने में संलग्न थे । उसकी राजनीतिक उदारता, धार्मिक सार्वभौमिकता एवं सदाशयता और सहिष्णुता द्वारा कला के सभी अंगों को एक नवीन प्रोत्साहन और स्फूर्ति मिली और बहुत ही शीघ्र उसका प्रभाव देश के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त हो गया । अकबर ही नहीं वरन् उसके दरबार के 'नवरत्न' तथा प्रायः सभी धनी-मानी एवं गुणी व्यक्तियों में साहित्यिक अभिरुचि जाग्रत थी । यदि अब्दुरहीम प्रेम और करुण भावों की प्रतिमूर्ति थे और उत्साह के संपूर्ण अंग उनमें प्रस्फुटित थे, तो मानसिंह की कुशाग्र बुद्धि राजनीतिक कौशल से ओत-प्रोत थी और वीरबल की हास्योद्दीपक उक्तियां नीरस हृदय को भी प्रफुल्लित कर देने में समर्थ थीं । जिस प्रकार टोडरमल शांत, शीलसंपन्न और अत्यन्त उदारशय थे, फौज़ी उतना ही गंभीर और बुद्धिमान था । कुछ विद्वानों के अनुसार उसने हिंदी-भाषा में भी कविता लिखी थी ।^१ अकबरी-दरबार के अधिकांश कवियों में जो काव्यगत संगीतात्मकता मिलती है वह संगीत-प्रवर तानसेन का ही प्रभाव हो सकता है । दरबार के नवरत्नों में मानसिंह, वीरबल, खानखाना की अपनी-अपनी सभाओं में अलग-अलग कवि थे । इन्हीं के द्वारा कुछ प्रमुख और प्रतिभाशाली कवि राजदरबार में भी स्थान पा जाते थे । अकबरी दरबार के बाहर इसी काल में भक्तप्रवर सूरदास, महामना तुलसीदास आदि महाकवि अपनी रचनाओं द्वारा हिंदी-कविता का मार्ग-प्रदर्शन कर रहे थे । भारतीय तथा ईरानी ललित-कलाओं के सम्मिश्रण का यही काल था, साथ ही साथ इस काल में विद्या, संगीत, काव्य, चित्र, वास्तु आदि कलाओं का एक निखरा रूप भी देखने में आया ।

अकबरी-दरबार फ़ारसी के अनेक विद्वानों, कवियों तथा लेखकों से सुशोभित था । हुमायूँ अपने साथ फ़ारस से कई कलाकारों को भारतवर्ष में लाया था । 'आइने-अकबरी' से पता चलता है कि दरबार में अनेक चित्रकार थे । इनमें 'दसवन्त' को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था । 'दसवन्त' जैसे कई और कलाकार भी साधारण स्थिति से अपनी ज्ञान-साधना द्वारा उच्चतर और उच्चतम स्थिति तक पहुँच गये थे । साथ ही संगीतज्ञों ने विविध राग-

रागिनियों-द्वारा अपनी कला को चरमसीमा पर पहुँचा दिया था। वास्तु-कला उन्नति के शिखर पर थी। आज भी फ़तेहपुर-सीकरी के अनेक महल और विशाल भवन अपनी कला-कुशलता के परिचायक हैं। उच्चकोटि के इतिहासज्ञ, दार्शनिक तथा हिंदी-भाषा के अनेक कवि भी अकबर के दरबार को सुशोभित करते थे। यह बातें अकबरकालीन इतिहास-ग्रंथों द्वारा प्रमाणित हैं।

अकबरी-दरबार की संरक्षा में अनेक ग्रंथों का फ़ारसी से संस्कृत और संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद हुआ। भारतीय महाकाव्यों में सर्वप्रथम महाभारत और रामायण का अनुवाद फ़ारसी में कराया गया। फ़ारसी में महाभारत का अनुवाद करने का भार नकीबखाँ पर था। स्वयं अकबर ने उसके गूढ़ अर्थ को कई रात जगकर नकीबखाँ को स्पष्ट किया था। अकबर ने विभिन्न भाषाओं के ग्रंथों के भाषान्तर कराने में प्रचुर धनराशि व्यय की थी जिससे उसका विद्यानुराग स्पष्ट होता है। वह केवल गुणग्राहक और कला-प्रेमी ही नहीं था वरन् विद्या के प्रचार के लिये भी उसने अपनी विशेष नीति का पालन किया था। उन दिनों फ़ारस के बादशाहों का मत था कि केवल कुरान, हदीस अथवा अन्य इस्लामी धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करना ही विहित है। पर अकबर का मत इसके विरुद्ध था। वह सब प्रकार की विद्याओं और साहित्य के प्रचार का पक्षपाती था। सदाचार, गणित, कृषि, माप-विद्या, रेखागणित, ज्योतिष, वैद्यक, दर्शन, तर्क-शास्त्र, इतिहास, शरीर-विज्ञानादि की शिक्षा देना वह आवश्यक समझता था। अल्पकाल में ही विद्यार्थी इनका ज्ञान कैसे प्राप्त करें, इसके लिये नवीन उपाय भी निकाले गये थे।

अकबर के इसी सराहनीय प्रयत्न को देखकर कहा जाता है कि एक फ़ारसी-शायर ने लिखा था कि फ़ारस के अनुदार मार्गानुगामी बादशाहों की नीति के कारण एक व्यक्ति विभिन्न विद्याओं को नहीं सीख पाता था। परन्तु जब वह हिन्दुस्तान में आता था तब वह विभिन्न विषयों में योग्यता प्राप्त करता था।^१ रामायण, नलदमन, चंगेज़नामा, ज़फ़रनामा, रज़मनामा, तैमूरनामा आदि ग्रंथों के सुन्दर चित्र, जो आज उपलब्ध हैं मन और मस्तिष्क दोनों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। चित्रकार मानों उनमें मूर्तमान हो उठा है। एक चित्रकार खाका तैयार करता, दूसरा उसमें अपनी तूलिका द्वारा रंग भर देता तो तीसरा अपनी कला द्वारा भावमय चित्र प्रस्तुत करता और फिर अन्तिम उसे अपनी कला से संभालता था। इतनी स्थितियों को पार करने के उपरान्त कहीं कोई चित्र

१ अकबर की धार्मिक नीति, पृष्ठ ३५१

समुज्ज्वल रूप में सामने आ पाता था। कभी-कभी तो सब चित्रकार एक कक्ष में एकत्र होते और फिर प्रमुख चित्रकार की देख-रेख में चित्र विशेष के विविध अंग उनके विशेषज्ञों को दिये जाते थे जिसको चित्रित करने में वह अपनी सानी नहीं रखता था और फिर अन्तिम तूलिका उस प्रमुख चित्रकार की चलती थी।^१

पीछे कहा जा चुका है कि अकबरकालीन वास्तुकला भी बढ़ी-चढ़ी थी। दिल्ली, आगरा, सीकरी की ऊँची-ऊँची मीनारें, गुम्बद और मस्जिदें उस काल की गौरव-गरिमा और सुन्दर कला के ज्वलंत उदाहरण हैं। ये उस काल की आदर्श भावनाओं और कल्पनाओं के प्रतीक हैं। इस कला के विशेषज्ञ दूर-दूर से बुलवाये गये थे। प्रसिद्ध वास्तुकला विशेषज्ञ हैबेल का कथन है कि सरकोनिक वास्तुकला का विकास इस काल में जैसा भारतवर्ष में हुआ उसके सामने तुर्किस्तान, अरब, मिस्र आदि की कला पीछे रह गई। केरो और कुस्तुनतुनिया की मस्जिदें बीजापुर, दिल्ली, सीकरी और अहमदाबाद के सम्मुख भावों के प्रकाशन और निर्माण-कल में घट कर हैं।^२ इन कलाकारों को राजकीय सुविधाएँ प्राप्त थीं। कलाकार अपनी पूर्वकालीन कृतियों का भलीभाँति अवलोकन कर सकता था क्योंकि अरब, बगदाद आदि प्रदेशों से ये चित्र पहले से ही मँगवा कर रख लिये थे। उनकी सुविधा के लिये सजकीय पुस्तकालय (Imperial Library) भी था।^३ इन कलाओं का बीजारोपण हुमायूँ द्वारा हुआ था किन्तु सम्राट् अकबर के समय में ये विशेष रूप से अंकुरित और पल्लवित हुईं। अकबर ने अपने पूर्व और समकालीन कलाकारों की ऐतिहासिक कृतियों को एकत्र करने में अपनी सावधानी और कला-अभिरुचि का परिचय दिया था।

इन कलाकारों का दरबारी कवियों तथा बाहर के अन्य कवियों पर क्या प्रभाव पड़ा और श्रेष्ठ कवियों की वाग्धारा कहाँ तक इन कलाकारों को प्रभावित कर सकी यह एक मनोरंजक विषय है जिसके लिये साधारण मनुष्य भी कौतूहल से अभिभूत हो जाता है। काव्य, चित्र और संगीत-कला का एक दूसरे पर परस्पर प्रभाव पड़ा। चित्र कला का विकास भावपूर्ण ढंग से हुआ। चित्रों द्वारा वाह्य-दृश्यों की छटा, नायक-नायिकाओं के रूप सौंदर्य तथा उत्कृष्ट भावों को भली प्रकार से प्रदर्शित किया गया। कविता में संगीतात्मकता का पुट सुन्दर रूप में मिलता है। पदों को विविध रागों तथा सुर और लय के साथ कवियों ने व्यक्त किया।

१ आइने-अकबरी, प्रथम भाग, पृष्ठ १०५

इन्डियन पेंटिंग अंडर मुगल्स, पृष्ठ ११०

२ इस्लामिक आर्किटेक्चर

३ इन्डियन पेंटिंग अंडर मुगल्स, पृष्ठ ६७

साथ ही काव्य में चित्रमय वर्णन की प्रधानता भी। दृष्टिगत होती है। इन सब कलाओं के परस्पर सम्मिश्रण से इस समय जो साहित्य-सृजन हुआ वह इतना समृद्ध, प्रभावशाली, गंभीर, मधुर और व्यापक है कि आज भी उसके समकक्ष साहित्य दुर्लभ ही देख पड़ता है।

३—भारतवर्ष में यवन-राजाश्रय

भारतवर्ष में ईसा की बारहवीं शताब्दी में यवनों के आक्रमण से सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में ही महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुए किन्तु विद्या के क्षेत्र में भी परिवर्तन दृष्टिगत हुआ। विदेशी जाति के संपर्क में आने पर स्थानीय संस्कृति और आदर्शों में काफी परिवर्तन हुआ। यवन अपनी धार्मिक कट्टरता को लेकर यहाँ आये थे किन्तु परिस्थिति को अपने अनुकूल पाकर वे यहाँ के शासक बन बैठे। कुछ मुसल्मान शासक ऐसे भी हुए जिन्होंने भारतीय वाङ्मय की महत्ता स्वीकार करते हुए उसके विविध अंगों के विकास का भी प्रयत्न किया। यह प्रवृत्ति बहुत कुछ शासक की मनोवृत्ति पर निर्भर थी। यदि वह गुणग्राही होता तो उसके दरबार में साहित्यिकों, कवियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों का जमाव हो जाता और कला की उन्नति में उसका बहुमुखी प्रयास रहता और यदि शासक इसके विपरीत होता तो उसकी उन्नति रुक जाती थी। भारतवर्ष में मुसल्मान बादशाहों ने राजाश्रय देने की प्रथा को अपनाया जिसका कारण भारतीय शासन में राजाश्रय देने की परंपरा तो बहुत अंशों में है ही, यवन-राजाश्रय भी इसके मूल में माना जा सकता है क्योंकि गजनी के शासक महमूद के राज्य में कवियों और कलाकारों को राजाश्रय प्राप्त था।

भारतवर्ष में गुलाम-वंश का अलतमश बादशाह विद्वानों का आदर करता था। सुल्ताना रज़िया बेगम स्वयं शिक्षित थी और विद्वानों की संरक्षिका थी। सुल्तान नसीरुद्दीन बादशाह होते हुए भी विद्यार्थी और साधु-जीवन व्यतीत करता था और अपनी लेखन-कला के अर्जित-धन से जीविका चलाता था। उसने बहुत से फारसी विद्वानों का समादर किया। बलबन और उसका शाहजादा मुहम्मद भी साहित्यिक व्यक्ति थे। छोटे शहजादे कुराखा की साहित्यिक गोष्ठी के सदस्य नृत्य, संगीत कलाविद्, अभिनेता और कहानीकार होते थे। अमीरों पर भी इसका प्रभाव पड़ा और दिल्ली के प्रत्येक केन्द्रस्थल में साहित्यिक गोष्ठियों की स्थापना हो गई थी। मुहम्मद दूर-दूर से कवियों और विद्वानों को बुलाने के लिये राजदूत भेजता था। इस प्रकार मुहम्मद के समय में कवियों को विशेष प्रोत्साहन मिला।

सुल्तान जलालुद्दीन खिल्जी के दरबार का वातावरण साहित्यिक था। उसके साथी अपनी हास्योद्दीपक उक्तियों और प्रत्युत्पन्न-मति के लिये प्रसिद्ध थे। मुहम्मद तुगलक ने जो स्वयं सफल लेखक और कवि था, एक विद्वन्मंडली का आयोजन किया था। सुल्तान फ़ीरोज़ ने तीन प्रसिद्ध महल बनवाये थे—अंगूर-महल, लकड़ी का महल और साधारण जनता के लिये अलग-अलग महल थे। पहले में वह विद्वान और गुणी व्यक्तियों का समादर करता था। हिन्दू-स्मारकों के लिये उसक हृदय में श्रद्धा थी। सम्राट अशोक के दो स्तम्भों को वह बहुत धन व्यय करके अपनी राजधानी में खिज्रवाद से जो फ़िरोज़ाबाद से १८० मील दूरी पर है, लाया था और अनेक ब्राह्मणों को उस स्मारक की लिपि को स्पष्ट करने के लिये बुलवाया था। इसके स्पष्ट होता है कि प्राचीन साहित्य, धार्मिक विषयों तथा प्रसिद्ध वस्तुओं के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा थी। सुल्तान सिकंदर स्वयं कवि था और विद्या-प्रचारार्थ उसने कई विद्यालय खोले थे।

दिल्ली-दरबार के अतिरिक्त अनेक स्वतन्त्र राज्यों द्वारा भी कला का विकास समुचित रीति से किया गया था। बहमनी-वंश के कुछ शासक विद्वानों के संरक्षक थे। महमूद शाह बहमनी स्वयं कवि था और फ़ारसी-अरबी का अच्छा वक्ता था। फ़ीरोज़ बहुभाषी था। फ़िरिश्ता ने लिखा है कि उसके हरम में अनेक जातियों की महिलाएँ थीं—अरबी, काकेशी, जार्जियन, तुर्की, यूरोपीय, चीनी, अफ़ग़ानी, बंगाली, राजपूतानी, गुजराती, मराठी आदि जिनसे वह उन्हीं की भाषाओं में वार्तालाप करता था। वह अपनी इस कला का प्रयोग विदेशियों के साथ बातचीत करने में भी करता था। फ़ीरोज़ प्रतिवर्ष देश-विदेश के विद्वानों को बुलाने के लिये अपने जहाज भेजता था।^१ आदिलशाह का उत्तराधिकारी इस्माइल आदिलशाह ने विद्वानों, कवियों तथा लेखकों को अपने दरबार में आश्रय दे रखा था। उसने राजकीय हिसाब को फ़ारसी में रखने की अपेक्षा हिन्दी में रखने की आज्ञा दी थी। इस कार्य के लिये ब्राह्मण नियुक्त किये गये थे जिन्होंने शासन में अपना प्रभुत्व जमा लिया था। यूसुफ़ आदिलशाह के शासन-काल में भी माल-विभाग में अनेक हिन्दू अधिकारी रखे गये थे।

बंगाल के शासकों का ध्यान सर्वप्रथम रामायण और महाभारत महाकाव्यों पर गया, उनका अनुवाद उन्होंने बंगला में ही करवाया। महाभारत का बंगला में अनुवाद सर्वप्रथम नसीरशाह ने जो प्रांतीय भाषा का संरक्षक था, करवाया। मैथिल-कोकिल विद्या-

१ प्रोमोशन आव् लर्निंग इन् इंडिया ड्यूरिंग मुहम्मडेन रूल, पृष्ठ २५.

पति ने अपने एक पद में उसका कीर्तिगान भी किया है। गियासुद्दीन का भी उल्लेख उनके पद में हुआ है। संभवतः ये बंगाल के शासक गियासुद्दीन द्वितीय हैं। हुसेनशाह भी बंगला का संरक्षक था। उसने मालाधर वसु को 'भागवत-पुराण' का अनुवाद करने के लिये नियुक्त किया था। परागलखाँ अपने दरबारियों को, महल में प्रत्येक सन्ध्या को बंगला की कविताओं को सुनने के लिये बुलाता था। हिन्दू-राजाओं ने भी बंगला के लेखकों और कवियों को राजाश्रय दिया।^२

बाबर अरबी, फ़ारसी और तुर्की का विद्वान और समालोचक था। बचपन से ही उसे कविता करने का अभ्यास था और फ़ारसी तथा तुर्की भाषाओं में उसने कुछ कविताएँ भी लिखी थीं। उसका अनेक साथियों और साहित्यिकों के साथ नाव पर बैठकर काव्य-रचना के आनन्द का उल्लेख पहले किया जा चुका है। हुमायूँ विद्वन्मंडली, कवियों और दार्शनिकों की संगति में रहता था। वह स्वयं कवि था और कविता की ओर उसकी रुचि थी। उसने प्रत्येक स्थिति के व्यक्तियों के सत्कार के लिये अपने महल में कई कक्ष बनवाये थे। ग्रहों के प्रभावानुसार निश्चित दिवसों पर उनमें वह लोगों से मिलता था फ़िरिशता ने लिखा है कि हुमायूँ ने श्रोताओं के लिये सात कक्ष-अलग बनवाये थे और ग्रहों के अनुसार इनके नाम रखे थे। निश्चित दिन पर एक निश्चित कक्ष में वह राज्य के स्थिर कार्य करता था। उसके दरबार में विद्वानों, कवियों के अतिरिक्त ज्योतिषियों को भी राजाश्रय प्राप्त था। अफ़ग़ान-शासक शेरशाह विद्वानों की संगति करता था। उसके दरबार में कई विद्वानों को आश्रय मिला हुआ था और वह स्वयं विद्यालय और मठों में जाकर अपनी आत्मिक उन्नति के लिए विद्वानों और श्रेष्ठों से विचार-विनिमय करता था। उसके वंशजों में विद्या के प्रति अभिरुचि थी। इससे अफ़ग़ान-शासकों की साहित्यिक अभिरुचि का पता चलता है।

अकबर की संरक्षा में फ़ारसी तथा हिन्दी के अनेक कवि तथा विद्वानों को राजाश्रय प्राप्त हुआ था। अबुलफ़ज़ल के 'आइने-अकबरी' में विस्तार से इनकी सूची मिलती है। इनमें से मुख्य-मुख्य नाम ये हैं :—मधुसरस्वती, मधु /सूदन, नारायण मिश्र, हरिजी सूर, यदरूप नारायण, मधु भट्ट, श्री भट्ट, विष्णु नाथ, रामकृष्ण, बलभद्र मिश्र, वासुदेव मिश्र, रमण भट्ट, गोपी नाथ, भगीरथ भट्टाचार्य आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।^३ अकबरी

१ प्रोमोशन आव् लर्निंग इन् इंडिया ड्यूरिंग मुहम्मदेन रूल , पृष्ठ १०७, १०८

२ " " " " " .पृष्ठ ११०, १११

३ आइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ५३७, ५४७

दरबार के नवरत्न टोडरमल, हकीम हमाम, मानसिंह, तानसेन, बीरबल, रहीम, फैज़ी, अबुदुलफ़ज़ल, मुल्लादुप्याज़ा गुणी व्यक्ति थे। इन गुणियों और विद्वानों-द्वारा हिन्दी को भी विशेष प्रोत्साहन और सम्मान प्राप्त हुआ था।

४ अकबरी-दरबार में हिन्दी का सम्मान

मुसल्मानों के धार्मिक आक्रमणों के कारण उत्तरी भारत में धार्मिक भावना तीव्र रूप से फैली। राजकीय सत्ता के चले जाने पर अशिक्षित और व्रत जनता ने धर्म के जीर्ण-शीर्ण दुर्ग को बचाने का प्रयास किया। यातायात की असुविधाओं के कारण स्थान-स्थान पर वर्गों ने अपने धार्मिक विश्वासों को साम्प्रदायिक टोली-रूप में बचाया। इन धार्मिक आन्दोलनों की लहर मध्यकालीन सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को आप्लावित करती दिखाई देती है। जनता की ईश्वरोन्मुख प्रवृत्ति और वैष्णव-आचार्यों के भक्ति-प्रचार व्यापकता के कारण हिन्दी को विशेष उत्थान मिला। उस काल के अनेक श्रेष्ठ भक्त-कवियों ने हिन्दी-भाषा में ही अपने भाव व्यक्त किये। अकबर की उदार नीति-द्वारा हिन्दुओं को पुनः अपनी विशेषताओं के पर्यावलोकन का अवसर मिला। भक्ति-तरंगिनी की अजस्र धारा ने हिन्दी-उद्यान को सींच कर उसे अंकुरित और पल्लवित किया।

अकबर के पूर्व भी कई मुसल्मान बादशाहों ने हिन्दी के विकास में सहयोग दिया था। बीजापुर-शासक आदिलशाह का पुत्र इब्राहीम आदिलशाह जब सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसने राज्य के सारे हिसाब-किताब को फ़ारसी के स्थान पर हिन्दी में रखने के लिये आज्ञा निकाली। हिन्दी-जानकारों का उसके दरबार में विशेष आदर-सत्कार हुआ। बीजापुर-शासक ने हिन्दी को केवल प्रोत्साहन ही नहीं दिया, वरन् उसने स्वयं हिन्दी के ग्रंथों का अध्ययन किया था। मिश्र-बन्धुओं ने इनके एक ग्रंथ 'नौरस' का उल्लेख किया है।^१ इससे इब्राहीम आदिलशाह का हिन्दी-प्रेम स्पष्ट होता है।

मुग़ल-शासकों के राज्यकाल के पूर्व कई ऐसे मुसल्मान कवि हो चुके थे जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं-द्वारा हिन्दी-साहित्य के भंडार को भरा था। इनमें मुल्लादाऊद, अमीर खुसरो के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के सूफ़ी-कवि जायसी, कुतबन, मंझन आदि मुसल्मान थे। इनमें से तो अनेक मुसल्मान शासकों के आश्रय में हिन्दी का

१ इन शाह बीजापुर नरेश ने रस और रागों पर 'नौरस' नामक ग्रन्थ लिखा जिसकी सारीफ जहूरी ने की है। इनका रचनाकाल १६०८ संवत् माना जा सकता है।

प्रमुख बोली 'अवधी' में ही अपनी रचनाएँ की थीं। खुसरो वस्तुतः फ़ारसी का कवि था किन्तु हिन्दी में उसकी विशेष रुचि थी।^१ खुसरो ने फ़ारसी, अरबी, तुर्की भाषाओं के वर्णन के साथ भारत की सर्वप्रचलित भाषा हिन्दी (हिन्दुइ) का भी उल्लेख किया है, जिससे उसका आशय दिल्ली के आस-पास प्रचलित खड़ी बोली से है। उसने हिन्दी को अरबी से घट कर और फ़ारसी के समकक्ष माना है।^२ खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ हिन्दी की निधि है खड़ी बोली हिन्दी के विकास की झलक भी उसकी रचनाओं में मिलती है। परन्तु खुसरो की खड़ी-बोली रचना पर कुछ विद्वान पूरा विश्वास नहीं करते क्योंकि उस काल तक हिन्दी की खड़ी-बोली के विकास का कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता। संभव है, इन रचनाओं में कुछ अंश प्रक्षिप्त हो और उनकी मूल भाषा समय के प्रभाव से कुछ बदल भी गई हो। किन्तु वे खुसरो रचित हैं ही नहीं, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। खड़ी बोली अपने मिश्रित रूप में उस समय प्रचलित थी और यदि खुसरो के जैसे विद्या-व्यसनी व्यक्ति ने जिसने हिन्दी का मान-वर्णन किया हो और कई भाषाएँ जानता हो, हिन्दी में रचनाएँ लिखे तो आश्चर्य नहीं करना चाहिये। खुसरो ने उनकी सुरक्षा का प्रबंध स्वयं ही नहीं किया इसीलिये यह भ्रम उत्पन्न हो गया है।^३ उपर्युक्त कथनों से इतना तो स्पष्ट होता ही है कि मुग़लों के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व हिन्दी एक व्यापक भाषा थी और देशी यवन-रियासतों तथा जन-साधारण के कवियों द्वारा यह व्यवहृत होती थी। हिन्दू-रियासतों की तो यह भाषा थी ही। अनेक उत्कृष्ट कवि उनकी संरक्षा में हुए जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

जैसा पीछे कहा जा चुका है कि मुग़ल-शासन की उदारता और कला-प्रेम ने दरबार में कवियों, विद्वानों तथा कलाकारों को आकर्षित किया। बाबर मुग़ल-शासन का संस्थापक था। भारत की कोई भी वस्तु उसे आकृष्ट न कर सकी किन्तु वह सहृदय साहित्यिक व्यक्ति था इसे सभी इतिहासज्ञ मानते हैं। वह कवि था और तुर्की-भाषा में कविता लिखता था। उसके दरबार में हिन्दी-कवियों की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है। उसके द्वारा इब्राहिम लोदी के मारे जाने पर किसी अज्ञात हिन्दी-कवि ने

१ दि लाइफ एंड वर्क्स आव् अभीर खुसरो, पृष्ठ २२९

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ १४७, १४८,

२ दि लाइफ एंड वर्क्स आव् अमीर खुसरो, पृष्ठ १८४, १८५

३ " " " " पृष्ठ २८७, २८८

अपनी वाणी प्रस्फुटित की थी ।^१ बाबर ने अपने थोड़े वर्षों के राज्य-काल में आवश्यकता से प्रेरित हो कर हिंदी सीखने का प्रयत्न किया था परन्तु उसमें उसे पूरी सफलता नहीं मिली थी ।^२ उसके दरबार में हिन्दी के एक अज्ञात कवि का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है । संभव है हिन्दी के एक दो कवियों को उसका राजाश्रय प्राप्त हो ।

हुमायूँ के दरबारी कवियों में कुछ ऐसे फ़ारसी के मुसलमान कवि भी थे जो हिन्दी में रचना करते थे और हिन्दी-गीतों को बड़े प्रेम से अपने स्वामी के सामने गाते थे । इनमें शेख अब्दुल विलग्रामी और शेख गदाई देहलवी मुख्य थे । किन्तु खेद है कि उनकी हिन्दी-रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी हैं ।^३ उसके दरबार में हिन्दू-कवियों को भी राजाश्रय मिला हुआ था । इनमें नरहरि मुख्य थे । उनकी रचनाओं को देखने से जान पड़ता है कि हुमायूँ के दरबार में उन का सत्कार था और बादशाह की दृष्टि उनकी ओर थी । किंवदन्तियों और नरहरि के वंशजों में प्रचलित विश्वास से ज्ञात होता है कि वे हुमायूँ के दरबार में रहे ।^४ नरहरि की रचनाओं में हुमायूँ की वीरता तथा उसकी विषम परिस्थिति सम्बंधी कई छन्द उपलब्ध होते हैं जिनसे कवि का हुमायूँ की राजकालीन परिस्थितियों का आँखों देखी घटनाओं का भान होता है । निम्नांकित छन्द में नरहरि ने हुमायूँ की वीरता तथा विषम परिस्थिति का वर्णन किया है :—

में अपुबल गंजि विगहि भुइत सांगादल दिध अगाऊं
बहुरि गंजि गुजरात बहादुर इति काबिल उत गोर लोयाऊं
नरहरि जुरत पठान दल जहाँ लगु जो निज सोर सुनो ए कहाऊं
इमि धाऊं जिमि सिंघन गनि पर अस जंपत मन मांरु हुमाऊं ॥^५

१ नौ से ऊपर था बत्तीसा, पानीपत में भारत दीसा ।

अठई रज्जव सुक्करवारा, बाबर जीता बराहीम हारा ॥

हिस्ट्री आव् पशियन लॅग्युएज एंड लिटरेचर एट दी मुगल कोर्ट, पृष्ठ १६

२ मुगल बादशाहों की हिंदी, पृष्ठ २, ३

३ " " " " पृष्ठ ६, ७

४ कवि लिखि वंशी सुकवि भये नरहरि सुभाय्य धर ।

शाह हिमाऊं निकट रहे सुदरसु सुनीति धर ॥

अश्वनी-चरित्र, लाल जी, पृष्ठ २, ३ ।

५ देखिए, नरहरि के विविध विषयक फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५

संभव है कि हुमायूँ की स्थिति के सुदृढ़ होने पर उसके साहित्यिक प्रेम से रीझ कर और भी हिन्दी के कवि दरबार में एकत्र हुए हों। हुमायूँ के दरबार के एक हिन्दी कवि छेम का उल्लेख मिलता है जिसने अपने एक छप्पय में अली की वीरता का वर्णन किया है ^१ :—

धरनि थरनि थरथरत डरनि रथ तरनि पलट्टेहु
धूम धाम ध्रुव लोक सोक सुरपति अति पट्टेहु
हिमगिरि सुमेरु कैलास डिंग तब हहरि हहरि संकर हस्यो
छेम कोपि हजरत अली तब जुल्फकार करम कस्यो ॥ ^२

शेरशाह ने भी हिन्दी-कवियों का उचित मान किया था। वह एक साहित्य मर्मज्ञ और सहृदय शासक था। नरहरि उसके दरबार में भी उपस्थित थे। शेरशाह की वीरता तथा ऐश्वर्य का दृश्य नरहरि के निम्नलिखित छन्द में अंकित है :—

सेर साहि भुज जोरि षग्ग वर में गलघटा मारि मुह मोरी
नरहरि सुकवि जोगिनि गुन गावत नाचत भूत सार मन होरी
फूल्यो फल्यो अकास नपत तहं इंदु किसान करे मति चोरी
एक आंत छे गीध उड़े ले भापत मनहु पर.....॥^३

शेरशाह की सहृदयता के फलस्वरूप ही कवि को उनसे अलग होने पर अत्यंत दुःख हुआ था :—

नरहरि जप तप नेम ब्रत सब सबही ते होइ।
प्रीति निवाहन एक रस नहि समरथ कलि कोइ ॥
त्राहि करत नहि प्रान गेइ हथ चितु जबउ आहि।
तब सो सत्त अब अट्ठ भे बिछुरत सेरन साहि ॥^४

१ मिश्रबंधु विनोद, भाग १, पृष्ठ २९७, कवि संख्या १८५

मुगल बादशाहों की हिन्दी, पृष्ठ ७।

२ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ १०२

३ देखिए, नरहरि के विविध विषयक फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८५

४ देखिए, नरहरि के विविध विषयक फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९२, ९३

शेरशाह का पुत्र सलेमशाह भी अपने पिता की भाँति केवल साहित्य-मर्मज्ञ ही नहीं बल्कि एक कवि भी था। उसकी कविता का एक उदाहरण निम्नांकित है :—

ए जेते दिन मन मिल गए तिय पिय विन मोको तेते दिन मेरे आन लेखे
और जो तपत वाके तन के तिनके सुख को अंक भुज भर चाहत नैन कहै कव देखे
न पीय पाती पठाई न आवन कीनो मेरी एक न भई होहिहै रखे मेखे
असलेमशाह पिय जी की ना समस्त जोवन जात परेखे ॥^१

उक्त छंद के 'असलेमशाह' शेरशाह के पुत्र सलीमशाह ही हैं।

कवि नरहरि को सलीमशाह की राजाश्रयता प्राप्त थी। यह एक दोहे से प्रमाणित होता है जिसमें कवि ने सलीम के लिये मंगलकामना प्रकट की है :—

प्रथम जंपि जगदीश कंह करउं कवित रच नेमु
जस निर्मल थिर चिर जिवे छत्रपति साहि सलेमु॥^२

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि अकबर के पूर्व दिल्ली-दरबार के कुछ शासकों ने भी हिंदी कवियों को अपना कर अपनी साहित्यिक उदारता का परिचय दिया था। साथ ही उस काल के अनेक कवि, उपदेशक और भक्त हिंदी की व्रज, अवधी तथा मिश्रित प्रांतीय बोलियों में अपने भाव प्रकट कर रहे थे।

अकबर की एक तो जन्मभूमि ही भारतवर्ष थी दूसरे उसके प्रारंभिक जीवन का वातावरण भी हिन्दुत्व से प्रभावित था जैसा कि पहले कहा जा चुका है। इसी कारण उस पर भारतीयता का पूर्ण प्रभाव पड़ा था। वह अपने पूर्वजों की साहित्यिक अभिरुचि से परिचित था। उस काल की जन-भाषा हिन्दी का अकबर पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। फ़ारसी दरबार की राजभाषा अवश्य थी किन्तु नित्य के कार्य-व्यवहार और विचारों के आदान-प्रदान के लिये दरबारी तथा अन्य लोगों को जन-भाषा हिन्दी का ही आश्रय लेना पड़ता था।^३ अकबर हिन्दी-भाषा में केवल रुचि ही नहीं रखता था

१ संगीत राग-कल्पद्रुम, भाग १, पृष्ठ ३०३

२ देखिए, नरहरि के छंद, वादु, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १, ४

३. Akbar composed distichs in Brijbhakha and if any Indo Aryan language could be labled as a Badshahi Boli in North India, it was certainly Brijbhakha. Urdu was not yet in existence-except perhaps orally, and even then it was quite-Indian in character.

Indo-Aryan and Hindi,—Dr. Suniti Kumar Chatterji, p 180-181

वरन् उसने अपने भावों का प्रकाशन भी छन्दोबद्ध रूप में किया था । अबुलफ़ज़ल ने 'अकबरनामा' में इसका उल्लेख किया है । वह लिखता है—बादशाह अकबर का समुन्नत हृदय हिंदी और फ़ारसी काव्य-रचना की ओर आकृष्ट हुआ था और वह कविता की विशेषताओं को समझने में एक आलोचक की दृष्टि रखता था.....उसने हिंदी कविता में उच्च भावनाएँ व्यक्त की हैं जो अपने ढंग की अनूठी हैं।^१

अकबर द्वारा रचित कविताएँ 'अकबरसाह' और 'साह अकबर' के नाम से हस्तलिखित तथा प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में उपलब्ध होती हैं । उसकी यह कविताएँ साधारण कोटि की ही हैं जिनमें नायिका के रूप-सौन्दर्य-वर्णन की प्रधानता है । यहाँ पर एक दो छंद उदाहरण के लिये दिये जाते हैं ।

मनुष्य-जीवन की सफलता तभी है जब उसका यश जगत में फैला हो और संसार भर के लोग उसकी प्रशंसा करें :—

जाको जस है जगत में जगत सराहै जाहि

ताको जीवन सफल है कहत अकबर साहि ॥^२

नये उपमानों के प्रयोग अकबर के उपलब्ध छंदों की विशेषता है । एक उदाहरण देखिए :—

साहि अकबर एक समे चले कान्ह विनोद विलोकन बालहि
आहट तें अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहि
त्यों बलि वेनी सुधारि धरी सुभई छवि यों ललना अरु लालहि
चंपक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिये अहि बालहि ॥^३

नायिका ने आहट से ही कृष्ण को पहिचान लिया और चौंक कर आतुरता के साथ चलने लगी किन्तु कृष्ण ने उसकी बेणी पकड़ ही ली । उस समय की छवि ऐसी ज्ञात हुई मानो कामदेव चंपक के कमान पर सर्प रूपी बाणों को चढ़ा रहा हो । नायिका के सुन्दर

- 1 The inspired nature of H. M. is strongly drawn to the composing of Hindi and Persian poetry and is critical and hair-splitting in the niceties of poetic diction. He has also strong glorious thoughts in the Hindi language which may be regarded as master-pieces in the kind.

Akbarnama. Vol. 1, page 520

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३८

३ " " " " " "

चंपकवर्ण शरीर की उपमा धनुष और बेणी की उपमा सर्प से दिखा कर कवि ने उपर्युक्त छंद में अपनी अनूठी सूझ का परिचय दिया है।

एक दूसरे छंद में अकबर ने अलंकार प्रयोग द्वारा नायिका के रूप-सौंदर्य का बोध कराया है :—

साह अकबर वाल की बाँह अचित गही चलि भीतर भौने
सुन्दरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिवे कों भ्रम पावत गौने
चौकत सी सब ओर विलोकत संक सकोच रही मुख मौने
यों छवि नैन छबीली की छाजत मानो बिछोह परे मृग छौने ॥^१

नायक द्वारा अपनी बांह के पकड़ लिये जाने पर नायिका भागने का उपाय न देख कर मौन-ग्रहण किये हुए इस प्रकार चकित नेत्रों से देखती है मानों हरिण के दो शिशु बिछोह में पड़ गये हों। चकित नेत्रों को हरिण के शिशुओं से उपमा देकर कवि ने अलंकार-प्रयोग सम्बंधी गुण का प्रदर्शन किया है। उपर्युक्त छंदों से अकबर के भाव और भाषा का सुन्दर समन्वय भी स्पष्ट है। इनसे अकबर की हिन्दी काव्य-प्रतिभा का थोड़ा सा परिचय मिल जाता है। अकबर की हिन्दी-कविता के कुछ उदाहरण हस्तलिखित प्रतियों और संग्रह-ग्रंथों में भी मिलते हैं।^२ अतः जब शासक ही स्वयं हिन्दी-कविता में इतनी रुचि रखता हो तो फिर दरबार के सामंतों तथा साधारण व्यक्तियों की रुझान का उस ओर होना स्वाभाविक ही था।

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ १

मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २३६

२ सुंदर रूप अनूप तीय भंजन अंग सबै सुचिताई
कंचन षंभ नगन षरी सब जोवन संग लिये रुसनाई
सीस को अंभ करै मोतीयन जु लटी कुच से लपटाई
देखि रह्यो बिब साह अकबर सिंभु कुं पूजण नागणि आई ॥

हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संख्या ६२, छंद संख्या १

वदन ढांप पोढी लीला पट पहेरे सीस रहो है प्यारी।

जब ही धुंघट पर न्यारो करत पिय मानो जीत लजारी ॥

आ रस प्यारी पहेरे पीतम परम विचित्र महारी।

साह अकबर निहोर कस्त तिय है उठ चल हंस बोल हों बारी ॥

संगीत-राग-कल्पद्रुम, भाग १, पृष्ठ ३७५

अकबरी-दरबार के वैभव की प्रशंसा सुनकर देश के प्रत्येक कोने से कलाविद् अपनी-अपनी कला के समुचित सम्मानार्थ दरबार में उपस्थित हुए थे। कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ, वास्तुकार सभी को उचित सम्मान मिला था। हिन्दी के कवियों को भी दरबार में स्थान दिया गया था जिसका उल्लेख संग्रह-ग्रंथों, वार्ता-साहित्य, समकालीन कवियों की रचनाओं, ऐतिहासिक ग्रंथों तथा हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है। नित्य दरबार-वृत्ति पाने वाले हिन्दी-कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी अकबरी दरबार-द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत हुए थे। इन सब हिन्दी-कवियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो दरबार में स्थायी रूप से रहने वाले कवि थे, इनमें राजकीय वृत्ति में लगे हुए स्वातः सुखाय रूप में कविता करने वाले कई साधारण और उच्च पदाधिकारी भी थे। इनमें से चतुर्भुजदास ब्राह्मण, राजा आसकरण, राजा पृथ्वीराज, सूरदास मदनमोहन, मनोहर कवि, राजा टोडरमल, नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कवियों में कुछ तो अधिक प्रसिद्धि-प्राप्त-कवि थे और कुछ कम प्रसिद्धि-प्राप्त। दूसरी श्रेणी के कवियों का दरबार में आना-जाना तो था किन्तु उससे सीधा सम्बन्ध नहीं था। इनमें चन्द्रभान, व्यास, करनेश, कुंभनदास, सूरदास, दुरसा जी, होलराय मुख्य हैं। यहाँ पर सर्वप्रथम इन का संक्षिप्त विवरण दे देना अवाञ्छनीय न होगा।

करनेश

करनेश बंदाजन अकबरी-दरबार के संपर्क में आये थे। इनके लिखे हुए तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—करणाभरण, श्रुति-भूषण और भूप-भूषण। इनका जन्म-काल संवत् १६११ और रचना-काल संवत् १६३७ माना गया है। विनोदकार का कथन है कि ये अकबर के दरबार में नरहरि के साथ जाते थे और इन्होंने खड़ी-बोली में भी कविता की थी। इनका काव्य साधारण श्रेणी का है।^१ परन्तु इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। यह कहा जाता है कि एक बार बादशाह अकबर ने इनकी कविता पर प्रसन्न होकर अपने कोषाध्यक्ष से इन्हें उचित पुरस्कार देने को कहा। खजांची बहुत दिनों तक कवि के साथ टाल-मटोल करते रहे पर कुछ भी हाथ से नहीं दिया। कवि को एक दिन कोध आ गया और खजांची को निम्नांकित छन्द द्वारा फटकारा :—

खात हैं हराम दाम करत हराम काम घट घट तिनहीं के अपयश छावेंगे।
दोजखूँ जेहैं तब काटि काटि खैहैं खोपरी को गूदो काग टोटनि उड़ावेंगे॥

कहैं करनेस अब घूस खात लाज नहीं रोजा औ निमाज अंत काम नहि आवेंगे ।

कविन के मामले में करै जौन खामी तौन निमकहरामी मरे कफन न पावेंगे ॥ ^१

कवियों को ऐसे अवसरों पर क्रोध आ जाना स्वाभाविक ही है ।

दुरसा जी—

अकबरी-दरबार में राजस्थान के चारण-कवियों का भी प्रवेश हुआ था । इनमें से दुरसा नेवि उल्लेखनीय हैं ।^२ अकबर एक बार सोजत के मार्ग से हो कर आगरे से अहमदाबाद जा रहा था । सोजत से गूंदोच तक का मार्ग-प्रबंध दुरसा जी के संरक्षक नगरी के ठाकुर पर था किन्तु प्रबंध का भार दुरसा जी के सिर पर ही पड़ा । उन्होंने उसका इतना उचित और सुन्दर प्रबन्ध किया कि अकबर ने प्रसन्न होकर इन्हें लाख पसाव और उनकी सेवा की प्रशंसा का प्रमाणपत्र देकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई । इस प्रथम परिचय के बाद दुरसा जी का प्रवेश अकबरी दरबार में हो गया ।

दुरसा जी की एक कविता से स्पष्ट है कि जब अकबर को राणा प्रताप की मृत्यु की सूचना मिली तो वह वहीं उपस्थित थे । कवि ने अकबर की तात्कालिक वेदना का सजीव वर्णन किया, जिसका आशय है—‘हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंह तेरी मृत्यु पर बादशाह ने दाँतों के बीच जीभ दबाई और निःश्वास के साथ आँसू टपकाये क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी दूसरे के सामने नहीं फुकाया तू अपने यश के गीत गवा गया, तू अपने राज्य के धुरे को बाँधे कंधे से चलाता रहा, नौरोज में नहीं गया, न शाही डेरों में गया, कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा न रहा और तेरा रोव दुनिया पर गालिब था । अतएव तू सब तरह से विजयी रहा ।’^३

दुरसा जी का मान केवल अकबर द्वारा ही नहीं हुआ वरन् बीकानेर के महाराजा रायसिंह, जयपुर के महाराजा मानसिंह और सिरौही के राव सुरताण तथा

१ मिश्रबन्धु-वितोद, प्रथम भाग, पृष्ठ ३२४

२ " " पृष्ठ ३५२

३ अस लेगो अणदाग पाघ लेगो अणतामी गौ आड़ा गवड़ाय जिको बहतो धुर वामी ।
नवरोजै नह गयो न गो आतसां नवल्ली न गो झरोखों हेठ जेठ दुनियाण दहल्ली ।
गहलोत राण जीती गयो दसण मूंद रसणा डसी नीसास मकमरिया नयण तो मृतशाह
प्रताप सी ।

डिंगल में वीर रस, पृष्ठ ५७

कुछ अन्य राजाओं ने भी धन और गाँव आदि देकर इनका उचित सत्कार किया था। अकबरी-दरबार में इनको बैठक मिली हुई थी जिसके लिये उस समय के बड़े-बड़े राजा-महाराजा लालायित रहते थे।^१ दुरसा जी यद्यपि अकबर के कृपापात्रों में थे किन्तु उन्होंने हिन्दू-धर्म, हिन्दू-जाति और हिन्दू-संस्कृति के अनन्य उपासक होने के कारण तत्कालीन हिन्दू-समाज की वास्तविक स्थिति और अकबर की कूट-नीति का सजीव वर्णन किया है। दुरसा जी ने 'विरुद-छहत्तरी' में महाराजा प्रतापसिंह की प्रशंसा की आड़ में अकबर की मीठी चुटकियाँ ली थीं। उदाहरण के लिये—अकबर अथाह समुद्र के समान है जिसमें हिन्दू और मुसलमान सब डूब गये। परन्तु मेवाड़ का महाराजा प्रताप सिंह कमल के फूल के समान उसके ऊपर ही तैर रहा है। अकबर घोर अन्धकार के समान हैं जिसमें अन्य सब हिन्दू ऊँधने लग गये हैं लेकिन जगत का दाता प्रतापसिंह पहेरे पर जग रहा है आदि।^२ इस प्रकार दुरसा जी डिंगल-साहित्य के प्रतिभावान प्रसिद्ध कवियों में थे।

होलराय ब्रह्मभट्ट

होलराय ब्रह्मभट्ट को हरिवंशराय का राजाश्रय प्राप्त था किन्तु वे अकबरी-दरबार में आते-जाते थे। अकबर से इनको कुछ जमीन मिली थी जिसमें उन्होंने होलपुर नामक गाँव बसाया था। एक किंवदन्ती है कि गोस्वामी तुलसीदास से भी इनका संपर्क हुआ था जिसकी पुष्टि में निम्नांकित उक्ति प्रचलित है। गोस्वामी जी ने एक बार होलराय को अपना लोटा दिया जिस पर ये बोल उठे—'लोटा तुलसीदास को, लाख टका को मोल'। गोस्वामी जी ने तुरंत उत्तर दिया, 'मोल तोल कछु है नहीं, लेहु राय कवि होल'।^३

कवि होल की पुस्तक-रूप में कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। उनके केवल एक, दो छंद राजाओं की प्रशंसा के इतिहास-ग्रंथों में मिलते हैं। अकबरी-दरबार के सामंतों तथा सम्राट् अकबर की प्रशंसा का निम्नलिखित कवित्त होलराय कवि का ही माना जाता है :—

१ डिंगल में वीर रस, पृष्ठ ५८

२ अकबर समंद अथाह तिहं डूबा हींदू तुरक, मेवाड़ो तिण मांह पोयण फूल प्रताप सी।
अकबर घोर अंधार ऊँपाणा हींदू अवर, जागै जगदातार पोहरै राण प्रताप सी।

डिंगल में वीर रस, पृष्ठ ६१, ६२

३ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ५०८, ५०९

दिल्ली तें न तख्त है है बख्त ना मुगल कैसे, है है ना नगर बढ़ि आगरा नगर ते
गंग ते न गुनी तानसेन ते न तानवाज, मान ते राजा औ न दाता बीरवर ते
खानखाना ते न नर नरहरि ते न, है है न दीवान कोउ वेडर दुडर ते
नबौ खंड सात दीप सातहू समुद्र पार, है है न जलालुद्दीन साह अकबर ते ॥^१

कुम्भनदास

अकबर की भेंट 'अष्टछाप' के भक्त-कवि कुम्भनदास से भी हुई थी। ये बादशाह अकबर से फतेहपुर सीकरी में मिले थे किन्तु उन्होंने इसे अपने समय का अपव्यय ही समझा जिसका उल्लेख निम्नांकित पद में हुआ है :—

भक्तन को कहा सीकरी सों काम
आवत जात पन्हैया टूटी। विसरि गयो हरि नाम
जाको मुख देखे दुख लागै ताको करन परी परनाम
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन यह सब भूठौ धाम ॥^२

सूरदास

महात्मा सूरदास भी अकबर के संपर्क में आये थे और उन्होंने अपनी भक्ति के आवेश में लौकिक पुरुष का यशगान अनुचित ही समझा की जिसका पुष्टि एक पद से होती है :—

नाहिन रह्यो मन में ठौर
नंद नंदन अछत कैसे आनिये उर और
चलत चितवत द्यौस जागत सुपन सोवत राति
हृदय ते वह मदनमूरति छिन न इत उत जाति
कहत कथा अनेक ऊधौ लोक लोभ दिखाइ
कहा करुं चित प्रेम पूरति घट न सिंधु समाइ
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास
सूर ऐसे दरस की ए मरत लोचन प्यास ॥

कहा जाता है कि सूर के उपर्युक्त पद के अन्तिम चरण पर अकबर ने उनसे प्रश्न किया—सूरदास तुम तो अन्धे हो, तुम्हारे नेत्र दरस को प्यासे कैसे मरते हैं। सूर ने

१ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ३६९

२ चौरासी वैष्णवन की वार्ता, कुम्भनदास की वार्ता, पृष्ठ ३२३

अष्टछाप और बल्लभ-संप्रदाय, पृष्ठ २१६.

कहा—ये नेत्र भगवान को देखते हैं और उस स्वरूपानन्द का रसपान प्रत्येक क्षण करने पर भी अतृप्त बने रहते हैं। अकबर ने सूर को धन-द्रव्य और जो वस्तु वे चाहें, लेने को कहा। निर्भीक और त्यागी सूर ने उत्तर दिया—आज पाछे हमको कबहूँ फेरि मत बुलाइयो और मोको कबहूँ मिलियो मती।^१ इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि जो कथा सूरदास के अकबरी दरबार से सम्बन्ध रखने की ओर उनके अकबर से सम्मानपूर्ण पद पाने की कही जाती है वह सूर के इस त्यागपूर्ण व्यवहार पर विचार करने से विल्कुल बेमेल और असंगत प्रतीत होती है।^१

व्यास

दरबार में अनेक कवि नित्य आ-आकर सम्राट् को आशीर्वाद देते थे किन्तु वे जनता में प्रसिद्ध न थे। इनमें से एक कवि व्यास भी थे जिनका इस सम्बन्ध में निम्नांकित पद अवलोकनीय है —

गाऊं राग सभा साहन साह की जाको अकबर नाऊं
जो नर नरेन्द्र इन्द्र समान चक्री वक्री सी होत,
कबहु नहि निरखत अष्टसिद्ध नवनिद्धि पाऊं
एक एक संगीत प्रति लक्ष लक्षन करे औ
एक निरत काली खंजरी समान गाऊं बजाऊं
विनवत व्यास कोउ जानत नाही'
जलालद्दीन-महम्मद को देन आशीर्वाद नित आऊं ॥^२

चन्द्रभान

ये साधारण कोटि के कवि ज्ञात होते हैं और अपने किसी गुरु के साथ अकबर के दरबार में जाते थे। उन्होंने अकबरी-दरबार में अपने प्रवेश का आधार बताकर उससे अपना संपर्क निम्नलिखित छंद द्वारा स्पष्ट किया है :—

शाह अकबर को यश कीरत गाऊं रिझाऊं सकल सृष्टि के मन श्रवणन
चंद्रभान कहे गुरु के प्रसाद ते सभा में नित जाऊं आनन्द मनन ॥^३

१ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ २०७, २०८

२ संगीत-राग-कल्पद्रुम, भाग २, पृष्ठ १०८, १०९

३ " " " " "

अकबर के संपर्क में आने वाले कुछ कवियों का उल्लेख 'शिवसिंह-सरोज' में उपलब्ध निम्नलिखित सवैये में मिलता है :—

पाई प्रसिद्ध पुरंदर ब्रह्म सुधारस अमृत अमृत वानी
गोकुल गोप गोपाल गनेस गुनी गुनसागर गंग सुजानी
जोध जगन जगे जगदीश जगमग जैत जगत है जानी
अकबर सैन कथी इतने मिल के कविता जु बखानी ॥^१

उपर्युक्त सवैये में आये अमृत, जैत, जगदीश, जोध, जगमग कवियों का परिचय मिश्रबन्धुओं ने अपने इतिहास में भी दिया है। अमृतराय^२ कवि का रचनाकाल संवत् १६४१ और उनके द्वारा रचित-ग्रंथ 'महाभारत-भाषा' है। जैतराम^३ का जन्म संवत् १६०१, रचनाकाल संवत् १६३० है और इन्होंने 'गीता की टीका' नामक ग्रंथ लिखा था। जगदीश^४ का जन्म संवत् १५८८, रचनाकाल संवत् १६२० है और जगमग^५ कवि का रचनाकाल संवत् १६३२ माना गया है। जोध^६ कवि का जन्म संवत् १५६०, रचनाकाल संवत् १६१५ दिया गया है। मिश्रबन्धुओं ने अकबरी-दरबार से सम्बंधित एक और कवि मानराय बंदीजन^७ का उल्लेख किया है। इनका जन्म संवत् १५८० और रचनाकाल १६१० है। ये सभी कवि संभवतः साधारण कोटि के थे और इनकी रचनाएँ बहुत थोड़ी थीं जिस कारण अब तक वे उपलब्ध नहीं हो सकी हैं और इनमें से अधिकांश कवियों के विषय में केवल नाम-उल्लेख मात्र से संतोष करना पड़ता है।

ऊपर उन कवियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया जो अवसर-अनवसर अकबर के संपर्क में आये थे। इनमें अष्टछापी भक्त-कवियों तथा एक दो अन्य कवियों को छोड़ कर शेष बहुत ही साधारण कोटि के कवि थे जैसा ऊपर कहा जा चुका है। आगे के पृष्ठों में उन कवियों का परिचय दिया जायगा जो अकबरी दरबार में स्थायी रूप से रहते थे, और

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ३७७

२ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ ३४२, कवि-संख्या २७३

३ " " पृष्ठ ३०६ " २३४

४ " " पृष्ठ ३०३ " २१८

५ " " पृष्ठ ३४० " २५८

६ " " पृष्ठ ३०२ " २१०

७ " " पृष्ठ ३०१ " २०४

ये था तो दरबार से कविरूप में वृत्ति पाते थे अथवा दरबार के साधारण तथा उच्च पदों पर नियुक्त-व्यक्ति थे । इन कवियों के नाम पहले दिये जा चुके हैं और अब उनमें से कम प्रसिद्धि-प्राप्त कवियों का संक्षिप्त विवरण दिया जायगा ।

चतुर्भुजदास ब्राह्मण^१—

चतुर्भुजदास ब्राह्मण अकबरी-दरबार से राजकीय वृत्ति पाते थे । इनका वेतन एक हजार रुपये महीने तक हो गया था । ये विद्वान, पंडित तथा विद्यानुरागी थे । बीरबल की सभा में रहने पर अपने गुणों के कारण इनका प्रवेश अकबरी दरबार में भी हो गया था । दरबार में आने-जाने वाले पंडितों के साथ इनका वादविवाद होता था और अपनी विद्वत्ता से ये उनको बहुधा परास्त भी कर देते थे । वाद में ये 'वल्लभ-संप्रदाय' में श्री गुसाई' विठ्ठलनाथ के सेवक हुए और जीवनपर्यंत श्री गोवर्धन जी की सेवा में रहे ।^२ अकबर-द्वारा पुनः निमंत्रित किये जाने पर उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिख कर भेज दी थी :—

जाको मन नंद नन्दन सुं लाग्यो नीको ।

सुख संयत को कहाँ लग वरनो सब जग लागत फीको ॥

इन्होंने कृष्ण-भक्ति के बहुत से पद रचे थे जिनसे उनकी उच्च भक्ति-भावना और भाषा पर समुचित अधिकार का परिचय मित्रता है । 'मिश्रवंधु-विनोद' में अष्टछापी चतुर्भुजदास कृत 'द्वादशयश' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया गया है जिसका रचनाकाल

१ चतुर्भुजदास ब्राह्मण, अष्टछापी चतुर्भुजदास जी से भिन्न व्यक्ति थे ।

अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ ३८०

२ सो वे चतुर्भुजदास पंडित बहुत हते । और विद्या को अभ्यास विशेष हतो । अकबर बादशाह जो कुछ पूछते सो जवाब तुरन्त देते । एक दिन बादशाह ने चतुर्भुजदास के सराहना करी । तब बीरबल ने कही ये तो मेरी चाकरी करतो हतो जब बादशाह ने पूछा तब चतुर्भुजदास ने कही जो आपके मिलने के लिए कौन कौन की चाकरी न करी चहीये । ये सुन के बादशाह बहुत प्रसन्न भयो और चतुर्भुजदास कुं महीने के हजार रुपैया कर दिये और जो कोई पंडित आवतो तिनके संग चतुर्भुजदास वाद करते और सब पंडितन को जीत लेते. तब चतुर्भुजदास जी श्री गुसाई जी के सेवक भये और श्री गोवर्धन जी के दर्शन किये और श्री गोवर्धन जी के कवित्त बनाये और आखों जन्मपर्यंत श्री जी द्वार छोड़ के कहं गये नहीं.

दो सो वावन वैष्णवन की वार्ता, चतुर्भुजदास ब्राह्मण-वार्ता, पृष्ठ ३३२

संवत् १५६० है।^१ इस समय तक अष्टछापी चतुर्भुजदास का जन्म भी नहीं हुआ था। अतएव उक्त ग्रंथ को चतुर्भुजदास ब्राह्मण का ही लिखा हुआ मानना ठीक है।^२

राजा आसकरण

राजा आसकरण का उल्लेख 'आइने-अकबरी' में अबुलफ़ज़ल द्वारा दी हुई प्रभावशाली सामंतों तथा राजाओं की सूची में आया है।^३ 'शिवसिंह-सरोज' में भी राजा आसकरण दास कछवाहे का वर्णन हुआ है जिसमें कहा गया है कि ये नरवरगढ़ के राजा भीमसिंह के पुत्र थे और संवत् १६१५ में उनका जन्म हुआ था तथा उन्होंने हिन्दी के बहुत से पद रचे थे।^४ 'भक्तमाल' में भी इनका वर्णन मिलता है और ये स्वामी कीलहदेव जी के शिष्य बताये गये हैं। ग्रंथ में उनकी प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति का भी पूर्ण उल्लेख हुआ है।^५ राजा आसकरण को राग सुनने का व्यसन था और इस कारण उनके यहाँ दूर-दूर के कलावंत आते थे। तानसेन से भी इनका इसी सम्बन्ध में परिचय हुआ था और तानसेन के विष्णुपद को सुनकर उन्हें भी वैसा ही पद सीखने की इच्छा हुई थी। इन्होंने वल्लभ-संप्रदायी गोविंद स्वामी को तानसेन का गुरु जानकर उनके पास चलने की इच्छा प्रकट की और तानसेन के साथ वे गोविंद स्वामी से मिले। फिर उन्होंने श्री गुसाई विठ्ठलनाथ से सेवा की विधि सीखी, कृष्णलीला का भेद मालूम किया और कृष्ण-भक्ति में लीन रहने लगे।^६ इस भक्ति के आवेश में उन्होंने बहुत से पद गाये जिनका उल्लेख 'दो

१ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २२६, कवि संख्या १३०

२ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ ३८०

३ आइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ५३१

४ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ३८२

५ भक्तमाल, पृष्ठ ८८४

६ सो वे आसकरण जी नरवरगढ़ में रहते विनकुं राग सुनने को व्यसन बहुत हतो सो गान सुनायवे के लीये देश देश के कलावंत गवैया उहां आवते हतो... ये बात तानसेन ने सुनी तब तानसेन जी आसकरण जी के पास आए सो आसकरण जी के पास विष्णु पद गायो... सो तुमने ऐसे पद कहां ते सीखे हैं हमकुं शिखाओं जब तानसेन जी बोले श्री गोकुल में श्री विठ्ठलनाथ... सेवक गोविन्दस्वामी हैं... तानसेन जी उहां रहै और थोड़े दिन पीछे राजा आसकरण जी कुं संग लै के श्री गोकुल गये... राजा आसकरण ने वीनती करी जो में भगवत्सेवा

सौ बावन वैष्णवन की वार्ता तथा 'कीर्तन-संग्रह' ग्रंथों में हुआ है। उदाहरण के लिये उनके कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

निम्नलिखित पदों में कृष्ण की बाल-लीलाओं का स्वाभाविक वर्णन हुआ है:—

उठो मेरे लाल लाडिले रजनी वीती तिमिर गयो भयो भोर ।
घर घर दधि मथिनिया घूमे अरु द्विज करत वेद की घोर ॥
करि कलेउ दधि ओदन मिश्री बांढि परोसी ओर ।
आसकरण प्रभु मोहन नागर वारों तुम पर प्राण अंकोर ॥^१

तथा,

नन्द किशोर यह वोहनी करन न पाई ।
गोरस के मिष रहहिं ढंडोरत मोहन मीठी तानन गाई ॥
गोरस मेरे घरहि बिकेहै क्यों बृन्दावन जाय ।
आसकरण प्रभु मोहन नागर यशोमति जाय सुनाय ॥^२

कृष्ण की रूप-छटा भी निम्नांकित पद में अवलोकनीय है :—

गोप मंडली मध्य मनोहर अति राजत नन्द को नन्दा ।
शोभित अधिक शरद की रजनी उड़गण मानो पूरण चन्दा ॥
ब्रजयुवती निरख मुख ठाडी मानत सुन्दर आनन्द कन्दा ।
आसकरण प्रभु मोहन नागर गिरधर नव रस रसिक गोविंदा ॥^३

कृष्ण के प्रति माता का वात्सल्य उमड़ने का भाव एक पद में दिखाई देता है। यशोदा कृष्ण को दूध पिलाने के लिये वेणी के बढने की लालच देती हैं :—

कीजै पान लला रे ओट्यो दूध लाई जशोदा मैया ।
कनक कटोरा भर पीजै ब्रज बाल लाडले तेरी वेनी बढैगी मैया ॥

की विधि समझत नहीं हूँ आप कृपा कर के मोकुं समझाओ जब श्री गुसाई जी ने सेवा की रीति कही.....^१

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, आसकरण वार्ता, पृष्ठ १६१, १६४

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, आसकरण-वार्ता, पृष्ठ २०८

२ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, राजा आसकरण वार्ता, पृष्ठ २०८

३ " " " " पृष्ठ २११

औट्यो नीको मधुरो अछूतो रुचि सो करी लीजे कन्हैया ।

आसकरन प्रभु मोहन नागर पय पीजै सुख दीजै प्रात करोगी बैया ॥^१

गोपियां कृष्ण के प्रेम में अभिभूत हो यशोदा के पास उनका उलाहना लेकर पहुँचती है :—

कब को भयो रे ढोटा दधिदानी ।

मटुकी फोरत बांह मरोरत यह बात कित ठानी ॥

नन्दराय की कानि करत हों सुनि हो यशोदा रानी ।

आसकरन प्रभु मोहन नागर गुणसागर अभिमानी ॥^२

कृष्ण की रूप-माधुरी के अवलोकन से भक्त को जो सुख प्राप्त होता है उसके सम्मुख तीनों लोकों का सुख नगण्य है । इस भाव को कवि ने दशहरे के उत्सव पर गाये हुए एक पद में दिखाया है :—

आज दशहरा शुभ दिन नीको ।

गिरिधर लाल जवारे बाँधत बन्यो है माल कुंकुम को टीको ।

आरती करन देत नोछावर चिर जियो लाल मामतो जी को ।

आसकरन प्रभु मोहन नागर सुख त्रिभुवन को लागत फीको ॥^३

राजा आसकरण के जितने, भी पद 'वार्ता' तथा 'कीर्तन-संग्रह' ग्रंथों^४ में उपलब्ध होते हैं उनमें बाल-लीला के अंतर्गत वात्सल्य-भाव की ही प्रधानता दृष्टिगत होती है । इन सभी पदों में भावों के अनुकूल सरस और सरल भाषा का प्रयोग हुआ है ।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज महाराजा जयसिंह के छोटे भाई और कल्याण सिंह के पुत्र थे । अकबर के प्रीतिपात्र होने के कारण वे अकबरी-दरबार में ही रहते थे ।^५ परन्तु वे एक स्वदेशाभिमानी

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, राजा आसकरण वार्ता, पृष्ठ २११

२ कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृष्ठ २४४

३ " " पृष्ठ २९३

४ अवलोकनार्थ ये पद प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में दे दिये गये हैं ।

५ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२, कवि संख्या १६८

भक्तभाल, नाभादास, प्रियादास की टीका, पृष्ठ ८०७

और स्पष्ट वक्ता थे। भाषा के कवि होने के साथ ही वे संस्कृत-साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, पिंगल और संगीत-शास्त्रों में भी पारगट थे। इनके लिखे हुए कई ग्रंथ कहे जाते हैं जिनमें 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री', 'श्यामलता', 'दशरथ-रावउत', 'वसुदेव-रावउत', 'गंगा-लहरी' नामक ग्रंथ तथा कुछ फुटकर गीत, दोहे, छप्पय आदि उपलब्ध हुए हैं।^१ इनके रचे हुए दो और ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है—'प्रेम-दीपिका' और 'श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-चरित्र'। उपर्युक्त रचनाओं में 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' ही सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है और जिसका प्रकाशन हिन्दुस्तानी-एकेडेमी, प्रयाग से हो चुका है।

कहा जाता है कि अकबर ने जब राणा प्रतापसिंह की वश्यता स्वीकार करने पर प्रसन्नता प्रकट की तो पृथ्वीराज ने इस बात का खंडन करते हुए कहा—'जहाँपनाह, सागर मर्यादा, हिमालय गौरव और सूर्य अपने तेज को भले ही छोड़ दें परन्तु शरीर में बल, नसों में रक्त और हाथ में तलवार रहते तक प्रताप अपने प्रण को कभी भी न छोड़ेंगे। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेवाड़ और भारत ही क्या समस्त संसार का राज्य भी यदि प्रताप के पावों तले रख दिया जाय तो वह उसे ठुकरा देगे। स्वतंत्रता के सामने प्रताप की दृष्टि में राज्यसम्मान, राज्य-वैभव और राज्याधिकार का कोई मूल्य एवं महत्व नहीं है।'^२

पृथ्वीराज की मृत्यु सम्बंधी घटना भी रोचक है। उनकी वल्लभ-संप्रदाय की भक्ति में विशेष आस्था थी और उनका प्रण था कि वह अपने शरीर को ब्रज-प्रदेश में ही छोड़ेंगे। कहा जाता है कि इस पर उनके शत्रुओं ने अकबर को सिखाया कि वे उन्हें कहीं बहुत दूर भेज दें। बादशाह ने उन्हें काबुल की मुहीम पर भेज दिया। अनेक विजय के बाद अपना काल निकट आया देखकर वे सांडनी पर बैठकर दो दिन में ही मथुरा पहुँच गये और बीच में नदी, पर्वत आदि की कुछ भी परवाह नहीं की। इस प्रकार उन्होंने मथुरा पहुँचकर यमुना जल का पान किया और फिर अपना शरीर छोड़ दिया।^३

१ डिंगल में वीररस, पृष्ठ ४६

२ " पृष्ठ ४४

३ फेर पृथ्वीसिंघजी ने ऐंसी नेम लियों जो ब्रज में वास करनो। ब्रज में देह छोड़नी या बात की खबर पृथ्वीसिंघजी के शत्रुनकुं पड़ी सो विनमें दिल्ली पतीकुं सिखायो याकुं कहुं दूर

पृथ्वीराज की मृत्यु के सम्बन्ध में एक घटना का और उल्लेख किया गया है। किंवदन्ती है कि एक दिन अकबर ने इनसे पूछा कि तुम्हारी मृत्यु कब और कहाँ होगी। पृथ्वीराज ने उत्तर दिया—मथुरा के विश्रान्त घाट पर^१ और उस समय एक सफेद कौवा प्रकट होगा। इस भविष्यवाणी को निर्मूल सिद्ध करने के लिये अकबर ने पृथ्वीराज को राजकार्य के बहाने अटक के पार भेज दिया। साढ़े पाँच महीने बाद एक भील चकवा-चकवी के एक जोड़े को लेकर वेचने के लिये दिल्ली आया। पक्षियों की मनुष्य रूप में बोली सुनकर अकबर के पास पिंजरा पहुँचाया गया। उसी समय खानखाना ने एक पंक्ति पढ़ी—

सज्जन वारुं कोड़धां या दुर्जन की भेंट।

खानखाना दूसरी पंक्ति पूरी न कर सके। इस पर पृथ्वीराज को तुलवाया गया। वे पन्द्रहवें दिन मथुरा पहुँचे। बादशाह के दोहे की पूर्ति कर विश्रान्त घाट पर दान-पुन्य के बाद उन्होंने प्राण छोड़ दिये। सफेद कौवा भी उसी समय प्रकट हुआ और उन्होंने दोहे की पूर्ति इस प्रकार की थी^२ :—

सज्जन वारुं कोड़धां या दुर्जन की भेंट।

रजनी का मेला किया वेह के अच्छर भेंट॥

अर्थात् इस दुर्जन के ऊपर करोड़ों सज्जन भी न्योछावर हैं जिसने विधाता के लेख को मिटाकर रात में इनका मिलाप करा दिया।

उक्त कथाओं से इतना स्पष्ट है कि पृथ्वीराज की मृत्यु संभवतः विश्रान्त घाट पर मथुरा में ही हुई थी।

पृथ्वीराज की रचनाएँ अधिकार डिंगल-भाषा में हैं। उनकी स्फुट कविताओं के कुछ उदाहरण यहां पर उद्धृत किये जाते हैं।

पठारें तो ठीक। तब दिल्लीपतीनें पृथ्वीसिंघजीकुं काबुलकी मुहिम पर पठाये तो उहां बहुत मुलक जीते। तब उहां पृथ्वीसिंघजी को काल आयो तब पृथ्वीसिंघजी ने कालतें कही में ब्रजमें देह छोड़ुंगो, तब काल हट गयो। तब पृथ्वीसिंघजी सांडनी में बैठकर उहांसे सो दिनमें मथुरा आयो और बीचमें नदी और पर्वत बहुत हते परन्तु कोई ठिकाने पृथ्वीसिंघकुं प्रतिबंध न भयो। ब्रजमें आयके श्रीनाथजी के दर्शन कर के यमुना पान करके देह छोड़ दीनी—

दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता, पृथ्वीसिंघ की वार्ता, पृष्ठ ४८३, ४८४

१ भक्तमाल, पृष्ठ ८०८

२ डिंगल में वीर रस, पृष्ठ ४४, ४५

महाराज प्रतापसिंह का यश-वर्णन करते हुये इन्होंने वीरभाव के सुन्दर दोहे लिखे हैं। अकबर अथाह समुद्र है जिसमें वीरता रूपी जल भरा हुआ है। परन्तु मेवाड़ का राणा प्रताप उसमें कमल के फूल के समान है। जिस प्रकार कमल पर जल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता उसी प्रकार प्रताप पर भी अकबर की वीरता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा :—

अकबर समद अथाह सूरापण सजलि ।

मेवाड़ों तिण मांह पोयण फूल प्रताप सी ॥^१

महाराणा प्रताप ने लचकती हुई बरछी चलाई। वह शत्रुओं को भेद कर इस तरह बाहर आई मानो कोई सर्पिणी अपने बच्चों को मुंह में लेकर निकली हो :—

वाही राण प्रताप सी बरछी लचपचांह ।

जाणक नागण नीसरी मुंह भरियो बचांह ॥^२

निम्नलिखित दोहे में कवि ने प्रताप के पराक्रम की उपमा चंपे के वृक्ष से दी है :—

चम्पो चीतोड़ाह पोरस तणी प्रतापसी ।

सोरभ अकबर साह अलियल आभड़ियों नहीं ॥^३

प्रताप की वीरता के कारण अकबर उसी प्रकार उनके सामने नहीं आया जिस प्रकार भ्रमर चंपे के वृक्ष के पास नहीं फटकता ।

उपयुक्त दोहों में पृथ्वीराज की वीर-भावना उचित शब्दों में व्यक्त हुई है। जिस प्रकार इनके फुटकर दोहों और गीतों में वीर-भाव की अभिव्यक्ति मिलती है उसी प्रकार 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' खंड-काव्य में शृंगार-रस का परिपाक सरस और सरल शब्दों में हुआ है। इस प्रकार इनकी डिंगल-भाषा में वीर, शृंगार आदि भावों का चित्रण सफलतापूर्वक हुआ है।

एक खंडित हस्तलिखित ग्रन्थ में प्राप्त पृथ्वीराज का निम्नलिखित सबैया उनकी संगीत-विषयक जानकारी का द्योतक है :—

१ डिंगल में वीर रस, पृष्ठ ४७

२ " " पृष्ठ ४९

३ " " पृष्ठ ५१

धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट ।

गरें जाल झांझि परभन कत्त तत्त तत्तत्तत्त धैया धामक धैया ।

धुंधुर कि धूंटिक पुगरु कि पुटुंकि धुधुरक कर पुनि वैन बजैया ।

सकल प्राण प्रथीराज सुकवि कहि वजत मृदंग ध्वननि नचति कन्हैया ॥^३

उपर्युक्त छंद में कवि ने ताल-वाद्यों के विविध बोलों के अनुसार ही शब्द-योजना प्रस्तुत की है । 'भरत नाट्य-शास्त्र' में इसका विधान दिया गया है ।^२

कवि पृथ्वीराज की उक्त विशेषताओं को देकर नाभादास जी ने 'भक्तमाल' में उनकी सराहना निम्नलिखित छंद में की है :—

सवैया गीत श्लोक वेलि दोहा गुण नव रस ।

पिंगल कव्य प्रमाण विविध विध गायो हरि जस ॥

परि दुख विदुष सश्लाघ्य वचन रसना जु उचारै ।

अर्थ विचित्रन मोल सवै सागर उद्धारै ॥

१ कृतलिखित प्रति, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ग्रंथ संख्या ६२

२ सत्रिलयवाधयुक्ता दुष्करकरणा भवेज्जातिः

दुणुदुणुदुणाकिंकधिमधेघोटेंगमदीत्यदुघकिटिघेङ्ग ॥१३८॥

केन्ताकेन्नांगदिताभेमिजित्यक्षरैः समायुक्ता

राज्ञां स्वभावगमने जातिः कार्यावितस्तिकृता ॥१४३॥

नाट्य-शास्त्र, भरत, अध्याय ३३, पृष्ठ ४४३, ४४४

नाट्य-शास्त्र में गोपुक्ष गति, पिपीलिका गति आदि का वर्णन है जिसके आधार पर आज भी कलाकार तालवाद्यों के बोल, परण, टुकड़े, खंड, ठेका आदि बांधते हैं । नृत्य के बोल भी नृत्याचार्य लोग तालवाद्यों के बोलों के साथ ही तैयार कराते हैं । उदाहरण के लिए काली नाग नाथन की कथा में नृत्य का एक छंद त्रिताल में दिया जाता है :—

थिर थिर थिर थिर नचत फनन पर

फ्रांग धुनि फ्रांग धुनि बाजै मृदंग गति

धधकिट धगकिट फुंकारत विष भारत

विषधर अंग लपट भटकार कान्ह तन

रुक्मिणी लता वर्णन अनूप वागीश बदन कल्याण सुव ।

नरदेव उभय भाषा निपुण प्रथीराज कविराज हुव ॥^१

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन अकबरी दरबार की ओर से संडीले के अमीन-पद पर नियुक्त थे । इनका परिचय अबुलफ़ज़ल द्वारा उनको लिखे गये एक पत्र है मिलता है जिसका अनुवाद मुंशी देवी प्रसाद ने दिया है । यह पत्र अबुलफ़ज़ल ने बादशाह की ओर से उन्हें उस समय लिखा था जब उनको अपने राजकीय कार्य-संचालन में बाधा पड़ रही थी । उस पत्र द्वारा अबुलफ़ज़ल ने उनको सूचित किया था कि बादशाह अफ़वर स्वयं उस ओर जायें और इस बात का आश्वासन दिलाया था कि बादशाह के पहुँचते ही सब बाधाएँ दूर हो जायगीं । इनके वृत्तान्त को कुछ लोगों ने भ्रमवश महात्मा सूरदास के साथ मिला दिया है ।

भक्तमाल में इनका नाम 'सूरध्वज' लिखा मिलता है परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि काव्य में 'सूरदास मदनमोहन' की छाप रखने के कारण ये इसी नाम से विख्यात हो गये ।^२ ये जाति के कायस्थ और संडीले के रहने वाले माने गये हैं । इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि जो कुछ इनके पास होता वह साधुओं की सेवा में लगा दिया करते थे । कहा जाता है कि एक बार संडीले तहसील की कई लाख मालगुजारी सरकारी खजाने में जमा होने के लिये आई । उन्होंने सब साधुओं को खिला दिया और शाही खज़ाने में निम्नलिखित दोहा लिख कर भेज दिया :—

तत्थेइ तत्थेइ कर पग मारत छनन छनन
धुन नुपुर वजत सुनि देखि नचत
वनमाली धकृधान धिटधा कट्ठा कहत
वालब्रज ग्वालिन सुन सुन मैया मुरली बजैया
काली फन पर नचत कन्हैया कन्हैया कन्हैया
कन्हैया कन्हैया कन्हैया

अभिनय-नृत्यार्णव (अप्रकाशित)

१ भक्तमाल, पृष्ठ ८०६

२ " पृष्ठ ७५२, ७५३

तेरह लाख संडीले उपजे सब साधुन मिलि गटके ।

सूरदास मदनमोहन मिलि वृन्दावन को सटके ॥^१

जब ये भागकर वृन्दावन पहुँचे तो अकबर ने इनको बुला लाने के लिये आदमी भेजा और कहलाया कि उन्होंने संतों को सब खिला दिया है इससे वह अप्रसन्न नहीं वरन् प्रसन्न हैं । परन्तु सूरदास मदनमोहन ने उत्तर में लिख भेजा कि उन्होंने अब अपना शरीर वृन्दावन में डाल दिया है और वहाँ से उन्हें न बुलाया जाय । बादशाह तो मान गये परन्तु टोडरमल ने धन को नष्ट करने के अपराध में उन्हें पकड़वा मंगवाया और अकबर की बुद्धि भी फेर दी । फिर वे 'दसतम' नामक काराग्राह्यज्ञ को सौंप दिये गये जिसने इनको बहुत कष्ट दिया । अन्त में इन्होंने निम्नलिखित दोहा अकबर को लिख भेजा :—

यक तम अंधियारो करै शून्य दई पुनि ताहि ।

दसतम ते रक्षा करौ दिन मनि अकबर शाहि ॥

अकबर ने इसे पढ़कर उसके द्वारा व्यय हुए तेरह लाख रुपयों की माफ़ी देकर उन्हें क्षमा कर दिया और वृन्दावन लौट जाने की आज्ञा भी प्रदान की ।^२

इसके पश्चात् वे विरक्त हो गये और वृन्दावन में ही रहने लगे । इनकी कोई प्रसिद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती । कुछ फुटकर पद वैष्णव कीर्तन-संग्रहों तथा हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में प्राप्त होते हैं । इनकी कविता का रचनाकाल संवत् १५६५ के लगभग अनुमान किया जाता है ।^३

इनके स्फुट पदों के कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं । राधाकृष्ण की प्रेम-क्रीड़ा का वर्णन कवि ने निम्नलिखित पद में किया है :—

नवल किसोर नवल नागरिया ।

अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया ॥

करत विनोद तरनि तनया तट स्यामा स्याम उमगि रस भरिया ।

यौं लपटाइ रहै उर अंतर मरकत मनि कंचन ज्यों जरिया ॥ •

१ भक्तमाल, पृष्ठ ७५३, ७५४

अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ ११०, १११

२ भक्तमाल, पृष्ठ ७५५

३ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २९८, कवि-संख्या १८८

उपमा को घन दामिनि नाहीं कंदरप कोटि बारने करिया ।

सूरदास मदनमोहन बलि जोरी नंद नंदन वृषभानु दुलरिया ॥^१

कृष्ण की रूप-माधुरी का चित्र भी कवि ने सुन्दर और मधुर शब्दावली
चित्रित किया है :—

मधु के मतवारे स्याम खोलौ प्यारे पलकैं ।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं ॥
सुर नर मुनि द्वारा ठाढ़े दरस हेतु कलकैं ।
नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकैं ॥
कटि पीतांबर मुरली कर श्रवन कुंडल भलकैं ।
सूरदास मदनमोहन दरस देहो भलकैं ॥^२

सूरदास मदनमोहन के रूप-सौंदर्य, झूलना आदि के कुछ बड़े आकार के पद भी मिलते हैं जिन्हें परिशिष्ट में दिया गया है ।^३ कवि का निम्नलिखित वात्सल्य-भाव का पद उसके संगीत-विषयक ज्ञान का द्योतक है :—

जसोदा मैया लाल को झुलावे ।
आछे बार कन्ह को हुलरावे ॥
कनिया कनिया अईया अईया यों कही लाड लडावे ।
हुलुलुलु हुलुलुलु हाँ हाँ हाँ हाँ कहि के गोद लीये खेलावे ॥
दोउ कर पकर जसोदा रानी ठुमकी पाय धरावे ।
घननन घननन घुंघरु वाजे माँझरीयां झंझकावैं ॥
सूरदास मदनमोहन को ये ही भाँत रीझावे ।
मंमंमंमं पप् पप्पप् पप् चच्च्च् चच् चच् तत् ताथेई ॥
यह विधि लाड़ लड़ावे ॥^४

१ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २२७

२ " " पृष्ठ २२७

३ देखिये, सूरदास मदनमोहनके पद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ३, १२

४ " " पद संख्या २

देखिये, प्रस्तुत ग्रंथ का फुटनोट, संख्या २, पृष्ठ ४५, ४६

कवि के उपर्युक्त पदों से स्पष्ट है कि भावों के अनुरूप ही उसने भाषा का प्रयोग किया है। सरस, सरल और मधुर शब्दों तथा कोमलकांत पदावली एवं अलंकार-गुण के कारण ही इनके पद महाकवि सूरदास के पदों से मिल गये हैं।

‘भक्तमाल’ में कवि के उक्त गुणों का इस प्रकार वर्णन मिलता है :—

‘आप गान विद्या और काव्य में अति प्रवीण और शुभ गुणों की राशि ही थे। सब के साथ सुहृदयता रखते, सखी के अवतार ही थे। श्री राधाकृष्ण आप के उपास्य थे आप रहस्य-सुख के अधिकारी थे। नव रसों में जो मुख्य शृंगार रस है, उसको बहुत प्रकार से गान किया। आपकी कविता ऐसी फैलती थी कि जहाँ मुख से निकली कि मानों सहस्र चरणों को धारण कर चारों दिशाओं में दौड़ गई।’

मनोहर कवि :—

‘शिवसिंह-सरोज’ में इनके विषय में लिखा मिलता है कि यह महाराज संवत् १५६२ में उत्पन्न हुए थे और अकबर शाह के मुसाहब, फ़ारसी और संस्कृत-भाषा के महाकवि थे। फ़ारसी में अपना नाम ‘तोसनी’ लिखते थे।^१ ‘मिश्रबन्धु-विनोद’ में भी इसी कथन का समर्थन है।^२ ‘तुज्जु-जहाँगीरी’ में जहाँगीर ने राय मनोहर का परिचय देते हुए लिखा है कि ये कबूवाहे सरदार थे और इनके युवाकाल में अकबर की इन पर काफी कृपा-दृष्टि रहती थी। इन्होंने फ़ारसी-भाषा का अच्छा अध्ययन किया था। इनकी जाति में यद्यपि एक व्यक्ति भी साक्षर नहीं हुआ किन्तु मनोहर बुद्धि-वैभव युक्त एक भावुक व्यक्ति थे। इनकी फ़ारसी की कविताएँ प्रसिद्ध हैं।^३

मनोहर कवि के विषय में इतना स्पष्ट है कि इनकी युवावस्था अकबर के राजदरबार में और वृद्धावस्था जहाँगीर के दरबार में व्यतीत हुई। ‘राय’ की उपाधि इन्हें संभवतः अकबर ने दी थी। जहाँगीर ने अपने शासन-काल के प्रथम वर्ष में ही इन्हें ‘राय मनोहर’ के नाम से संबोधित किया है जिससे ज्ञात होता है कि उनको यह उपाधि जहाँगीर के सिंहासनारूढ होने के पूर्व ही मिल चुकी थी। जहाँगीर ने अपने राज्यारोहण के आठवें वर्ष में इनको एक हजारी का पद और आठ सौ घोड़े प्रदान किये थे। इसके कुछ वर्ष

१ भक्तमाल, पृष्ठ ७५२

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४७२, ४७३

३ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८४, कवि संख्या १६९

४ तुज्जु-जहाँगीरी, प्रथम भाग, पृष्ठ १७

बाद जहाँगीर ने इनके पुत्र पृथ्वीचंद को 'राय' की उपाधि और पाँच सौ का मनसब चार सौ घोड़ों सहित प्रदान किया। साथ ही इनको उनके निवास-स्थान में एक जागीर भी दी।¹ राय मनोहर के इसी पुत्र पृथ्वीचंद की मृत्यु का उल्लेख जहाँगीर ने अपने राज्य के पन्द्रहवें वर्ष में काँगरा के मोर्चे के प्रसंग में किया है।² इससे पता चलता है कि राय मनोहर के जीवन-काल में ही उनके पुत्र की मृत्यु हो गई थी।

इनका रचा हुआ एक ग्रंथ 'शत-प्रश्नोत्तरी' बताया जाता है परन्तु नीति तथा शृंगार के कुछ दोहे ही अभी तक उपलब्ध हुए हैं। मिश्रचंद्रियों ने इनका रचना-काल संवत् १६२० माना है।^३ किन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है कि जहाँगीर ने इनके पुत्र को 'राय' की उपाधि तथा मनसब आदि संवत् १६७० में दिया था और उस समय तक राय मनोहर वृद्धावस्था में प्रवेश कर चुके थे। अतएव संवत् १६२० इनका उद्भव-काल स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह संवत् उनके जीवन के आरंभिक काल का हो सकता है और संवत् १६४५ के आस-पास इनके जीवन तथा रचना का उत्कर्ण-काल माना जा सकता है। अपने पच्चीस-तीस वर्ष के साहित्यिक जीवन-काल में ही उन्होंने अपनी फारसी और हिन्दी की रचनाएँ लिखी होंगी। काव्य-रचना उनका गौण विषय था। प्रधान रूप में तो वह राज-कर्मचारी थे और स्वांतः सुखाय रूप में ही कविता लिखते थे। अतः उनसे बहुत सी रचनाओं की आशा नहीं की जा सकती थी और वे उपलब्ध भी नहीं होतीं।

जहाँगीर ने एक उदाहरण द्वारा उनकी कल्पना-शक्ति और काव्य-शैली का परिचय दिया है। इनकी उस कविता का आशय है कि सृष्टि में छाया का जन्म इसलिये हुआ कि सूर्य रूप मुगल-सम्राट् के ज्योति-प्रकाश पर कोई अपना पैर न रख सके, रखे भी तो छाया पर ही रखे। छाया को ही यह अनादर सहना होगा और प्रकाश इससे बचा रहेगा।^{१८}

१ तुजूक-जहांगीरी, प्रथम भाग, पृष्ठ २३१, ३२८

२ " " द्वितीय भाग, पृष्ठ १५५

३. मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८७, कवि संख्या १६९.

✧ He had learned the Persian language and although from him upto Adam the power of the understanding can not be attributed of his tribe, he is not without intelligence. He makes persian verses and the following is one of its couplets—'The object of shade in creation is this; that no one can place his foot on the light of my Lord, the Sun.

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मनोहर कवि के पांडित्य और काव्यगुण की प्रशंसा की है।^१ ऊपर शिवसिंह सेंगर तथा मिश्रबंधुओं के कथन इनके काव्य-गुण के संबंध में दिये जा चुके हैं। उनके शृंगार के दोहों में उच्च-कल्पना और भाव-व्यंजना समान रूप में दृष्टिगत होती है। फ़ारसी के कवि होने के कारण उस भाषा का पुट इनकी हिन्दी-रचनाओं में भी मिलता है। उसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

मुख, नेत्र, बाल, हृदय और वचन के लिये सुन्दर उपमानों के प्रयोग कवि की अनूठी सूक्ष्म के द्योतक हैं :—

इंदु वदन नरगिस नयन संबुलवारे बार
उर कुंकुम कोकिल वयन जेहि लखि लाजत मार ॥^२

नायिका के बालों के लिये भी कवि के भाव दृष्टव्य हैं :—

बिथुरे सुथुरे चीकने घने घने घुघुवार
रसिकन को जंजीर से बाला तेरे बार ॥^३

कवि के उपर्युक्त दोहों से उसकी शृंगारिक रचनाओं पर फ़ारसी-भाषा के शब्दों के प्रभाव का परिचय मिल जाता है। तत्कालीन धार्मिक वादविवाद और समन्वय की वृत्ति का भी परिचय कवि के दोहों से मिलता है। एक उदाहरण देखिये :—

अचरज मोहि हिन्दू तुलुक वादि करत संग्राम
इक दीपति सी दीपियत काबा काशी धाम ॥^४

सम्भव है अकबर के धार्मिक समन्वय की प्रवृत्ति का प्रभाव कवि पर पड़ा हो और उसने इस प्रकार की और भी रचनाएँ लिखी हों जो अभी तक अप्राप्य हैं।

राजा टोडरमल :—

राजा टोडरमल अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध मन्त्री थे। इनका परिचय 'शिवसिंह-सरोज' में मिलता है जिसमें कहा गया है कि पहले ये शेरशाह के दरबार में उच्च पद पर नियुक्त थे किन्तु सूरवंश के छिन्न-भिन्न होने पर ये अकबर के राजाश्रय में आ गये थे। इनका जन्म संवत् १५८० और मृत्यु-काल संवत् १६४६ था।^५ अकबर के यहाँ ये भूमिक्क-विभाग

१ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४८

मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७१, कवि संख्या १६२

२, ३, ४ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४८

५ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२५

के मन्त्री थे। अपनी कार्यकुशलता के कारण दरबार की आय इन्होंने 'काफी बढ़ा दी। जिसके कारण अकबर की दृष्टि में इनका मान बहुत हो गया था। ये पहले व्यक्ति थे जिन्होंने लोगों का ध्यान फ़ारसी-भाषा की ओर आकृष्ट किया था और सभी कार्यालयों में फ़ारसी प्रचलित करा दी थी अन्यथा देशी-भाषा हिन्दी का ही प्रचलन सब स्थानों पर हो रहा था। इन्हें अकबर द्वारा 'राजा' की उपाधि भी प्राप्त हुई।

महाजनी में वही-खाते का हिसाब, हुंडी, चिट्ठी आदि के लिखने का ढंग जैसा आज कल प्रचलित है उसका श्रेय राजा टोडरमल को ही दिया जाता है। कहा जाता है कि इन्होंने हिसाब-किताब के संबन्ध में एक छोटी पुस्तक लिखी थी उसी के गुर याद करके व्यापारी और महाजन दूकानों पर तथा देशी हिसाब जानने वाले घरों और दफ्तरों के कामों में बड़े-बड़े अद्भुत कार्य करते हैं और आज कल के स्कूलों के पढ़े-लिखे हिसाबी लोग मुँह ताकते रह जाते हैं।^१ इस सम्बन्ध में इनकी कोई स्वतंत्र पुस्तक तो उपलब्ध नहीं होती केवल कुछ छंद ही प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। यह छंद फ़ारसी-भाषा मिश्रित हिन्दी में है और इनमें किसी प्रकार के कवित्व के दर्शन नहीं होते। इन छंदों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में दे दिया गया है।^२ भूमि-कर-विभाग के मामले को जितना ये समझते थे उतना कोई और नहीं समझता था। साथ ही उनकी वीरता भी प्रसिद्ध थी। बंगाल में पठानों के विरुद्ध युद्ध-प्रणाली में इन्होंने अपनी वीरता तथा बुद्धि-कुशलता का परिचय दिया था।

टोडरमल कवि भी थे। उनके कुछ छंद हिन्दी-साहित्य-इतिहास तथा प्राचीन हस्त-लिखित संग्रह-ग्रंथों में मिलते हैं। इन छंदों को देखने से ज्ञात होता है कि इन्होंने नीति और उपदेश-सम्बन्धी रचनाएँ ही अधिक लिखी थीं। यहाँ उनके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। कवि का निम्नलिखित कवित्त प्रसिद्ध है :—

जार को विचार कहा गनिका को लाज कहा गदहा को पान कहा आँधरे को आरसी
निर्गुणी को गुण कहा दान कहा दालिद्री को सेवा कहा सूम की अरंड की सी डारसी
मद्यपी को सुचि कहाँ सांचु कहा लंपटी को नीच को बचन कहा स्यार की पुकार सी
टोडर मुकवि ऐसे हठी तैं न टार्यो टरै भावै कहौ सूधी बात भावै कहौ फारसी ॥^३

१ अकबरी-दरबार, भाग ३, पृष्ठ १४२

२ देखिए राजा टोडरमल के छंद, पृष्ठ संख्या ४०३, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग

३ हस्तलिखित प्रति ना० प्र० सभा, काशी, ग्रंथ संख्या ६२, छंद संख्या ३

कवि ने अपने अनुभव की बातों को निम्नलिखित कविता में दिया है :—

राजा वही जाको राज सराहिये काज उही सो उछाह सों कीजे
धारा वही सो सदा रहै चंचल जोरा उही सो सुगंधि सों भीजे
बात वही सो सदानि वहै कवि टोडर मानि इही सिष लीजे
फौज वही सो रहै तैयार औ मौज उही सो मगाय कै दीजे ॥^१

निम्नांकित कवित्त भी कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के परिचायक हैं :—

गुन विन कमान जैसे गुरु विन गान जैसे मान विन दान जैसे जल विन सर है
कंठ विन गीत जैसे हेत विन प्रीति जैसे वैन विन रस रीति जैसे फल विन तर है
तार विन जंत्र जैसे स्थाने विन मंत्र जैसे पुरुष विन नारि जैसे पुत्र विन घर है
टोडर सुकवि जैसे मन में विचारि देखो धर्म विन धनु जैसे पंछी विनु पर है ॥^२

तथा,

चंद विन रेनि जैसे पुत्र विन परिवार दारा विन ग्रह जैसे गऊ विन गोषरा
छत्री विन अस्त्र जैसे वेद विन द्विज राजमंत्री विन फौज जैसे नाक विन मोषरा
धृत विन भोजन ज्यों चून विन तामूल जटा विन जोगी जैसे पूछ विन लोषरा
टोडर सुकवि जैसे मन में विचारि देखो धर्म विनु धन जैसे पानी विन पोषरा ॥^३

उपर्युक्त कवित्तों में कवि की भाषा सरल तथा सर्व-जन-सुलभ है। वस्तुविशेष का यथातथ्य निरूपण कवि ने सुन्दर शब्दावली में कर दिया है। इनकी रचना में कोई विशेष काव्य का आभास नहीं मिलता। इनमें उनके जीवन-सम्बन्धी अनुभव का परिचय ही अधिक मिलता है।

अकबरी दरबार में कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे जो देश के इतिहास में तथा हिन्दी-साहित्य में काफी प्रसिद्धि पा चुके हैं और कवि के रूप में भी उनका स्थान महत्वपूर्ण है। इन कवियों के नाम अकबरी दरबार के कवियों की सूची में पहले दिये जा चुके हैं। ये कवि हैं-नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम। इन्हीं कवियों की जीवनी तथा रचनाओं का अध्ययन इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। आगे के पृष्ठों में इन कवियों का विस्तारपूर्वक परिचय दिया जायगा।

१ हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थ, ना० प्र० सभा, काशी, ग्रन्थ संख्या ६२, छंद संख्या ४

२ " " " " छंद संख्या १

३ " " " " छंद संख्या २

दूसरा अध्याय

जीवन-चरित

अकबरी दरबार के हिन्दी-कवियों में केवल रहीम ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके जीवन की घटनाओं के आकलन के लिये हमें भटकना नहीं पड़ता। शेष कवि नरहरि, ब्रह्म, तानसेन और गंग के जीवन-वृत्तान्त जिस अंश में मिल सके हैं वे छानबीन और प्रयत्न के बाद मिले हैं। इस अध्याय में रहीम की जीवन-घटनाओं के पर्यावलोकन के साथ शेष चार कवियों की जीवनी के लिये जहाँ कहीं अन्तर्साक्ष्य का अभाव है वहाँ वहिर्साक्ष्य और किंवदन्तियों का सहारा लिया गया है। इन कवियों के उपलब्ध अधिकांश छंद बाह्यविषयात्मक ही हैं आत्माभिव्यंजक नहीं। अतएव इनकी रचनाओं में आत्मचारित्रिक उल्लेख बहुत अल्प हैं किन्तु अपनी विशेष एवं विकट परिस्थितियों के कुछ उल्लेख इनकी वाणी द्वारा अवश्य हुए हैं। इसके अतिरिक्त इन कवियों के समकालीन और परवर्ती कवियों की रचनाओं तथा ऐतिहासिक ग्रंथों में भी कहीं-कहीं इनका थोड़ा सा परिचय मिलता है।

उपर्युक्त कवियों में नरहरि ही वयोवृद्ध थे। अतः उन्हीं का जीवन-चरित सबसे पहले यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

नरहरि

मुगल-शासक हुमायूँ की गुण-ग्राहकता, कला-प्रेम तथा उदार-राजाश्रय के वशी-भूत होकर हिन्दी-भाषा के अन्य कवियों के साथ हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'नरहरि' उसके दरबार में उपस्थित थे, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। कवि की रचनाओं से उसके जन्मस्थान, शिक्षा, विद्या-वैभव आदि विषयों पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। फिर भी अन्य सूत्रों द्वारा इन अंगों पर विचार किया गया है।

जन्मभूमि—

नरहरि के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विद्वानों का प्रायः एक मत है कि ये रायबरेली जिले की डलमऊ तहसील के पखरौली नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। ठाकुर

मानसिंह गौड़ ने एक लेख 'महाकवि नरहरि का निवास'^१ तथा श्री रामकृष्ण शर्मा ने 'नरहरि महापात्र और उनका एक घराना'^२ में नरहरि की जन्म-भूमि पखरौली गांव दी है। कुछ अन्य लेखकों ने भी उन्हें इसी स्थान का निवासी लिखा है। पखरौली ग्राम में नरहरि की स्थापित की हुई 'सिंहवाहिनी-देवी' का मन्दिर है। नरहरि के रायवरेली जिले के वंशज विवाह आदि के अवसरों पर उक्त देवी के दर्शनार्थ अब भी जाते हैं। पखरौली में 'बरहद' नाम का लम्बा-चौड़ा एक कच्चा तालाब है। वर्षा ऋतु में इसका पानी फैलकर गंगा से मिल जाता है जिसके सम्बन्ध में यह चौबोला आज भी सुना जाता है :—

बरहद नदी पखरपुर गांव, तोहकै ठकुरै नरहरि नाँव।

पखरौली के पूर्व में एक दूसरा तालाब है, कहा जाता है, इसमें नरहरि के हाथी नहलाये जाते थे। कवि दयाल ने नरहरि के पखरौली गाँव, सिंहवाहिनी देवी, बरहद नदी, हर ताल आदि का वर्णन एक कवित्त में इस प्रकार किया है :—

कोस भर गंगा ते प्रगट पखरौली गांव देव नरहरि की प्रसिद्ध सिंहवाहिनी।

हृद ते बेहद नदी हरताल हाथिन के हलके हिलत के अथाहिनी ॥

भूत दयाल भुइयाँ धदि भीतर में बेती व कल्यानपुर सीतला सराहिनी।

चक्रवे चक्रते अकबर बली बादशाह तेरी बादशाही में इतेक देवी वाहिनी ॥^३

शिवसिंह सेंगर ने नरहरि के निम्नलिखित कवित्त के आधार पर उनका जन्म-स्थान असनी गाँव लिखा है :—

नाम नरहरि है प्रशंसा सब लोग करें हंसहू से उज्ज्वल सकल जग व्यापे हैं,

गंगा के तीर ग्राम असनी गोपालपुर मंदिर गोपाल जी को कर मंत्रत जापे हैं।

कवि बादशाही मौज पावैं बादशाही वो जगावै बादशाही जाते अरिगण काँपे हैं,

जव्वर गनीमन के तारिबे के गव्वर हुमायूँ के बब्वर अकब्वर के थापे हैं ॥^४

१ महाकवि नरहरि का निवास, सरस्वती, मार्च, १९३१, पृष्ठ ८

२ नरहरि महापात्र और उनका एक घराना, सम्मेलन-पत्रिका, पौष, संवत् १९९६,

भाग २७, संख्या ५, पृष्ठ २

३ महाकवि नरहरि महापात्र, पृष्ठ १३६, विशाल भारत, फरवरी, १९४६

४ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ १५३

इतिहासकार 'के' ने 'हिन्दी लिटरेचर' पृष्ठ ३६ पर इनका नाम 'नरहरि सहाय' दिया है किन्तु इसका समर्थन किसी अन्य सूत्र से नहीं होता। अतः इन्हें 'नरहरि' ही कहना उपयुक्त होगा।

हिन्दी-साहित्य के अन्य इतिहासकारों ने भी नरहरि को असनी ग्राम का लिखा है।^१ किन्तु सरोजकार से भी पहले श्री काष्ठ जिह्वास्वामी उपनाम 'देव' ने संवत् १८३८ (१६०६) में प्रकाशित 'अश्विनी-कुमार-विंदु' में नरहरि और उनके पुत्र हरिनाथ की प्रशंसा के संबंध में उन्हें असनी का लिखा था :—

जग जानि आदि कवि वेद पुरुष
तेहि वंदीजन रामचरित में मुनिन कही यह बाज मुरुष
श्रीयुत् नरहरि नाथ महाकवि जिनके डर के बजत मुरुष
जिन बिन काटि बसाई असनी ब्राह्मण भक्ति न तन में है रुष
तिनसे श्री हरिनाथ प्रगट में मधुर वचन कबहुँ न कुरुष
जिनकी धुजा पताका फहरत जिनके कुल में कोउ न मुरुष
मन थिरात बिनु साधन देखत श्री गंगा की झाँक मुरुष
सो असनी भूदेव बाग सी देखत उपजत हरष हुरुष ॥

उपर्युक्त पद का उल्लेख करते हुए श्री विपिन बिहारी त्रिवेदी ने लिखा है कि उक्त छंद में जिस असनी को नरहरि द्वारा कहकर बसाया जाना लिखा है वह पुरानी असनी नहीं वरन् नई असनी है। श्री मानसिंह गौड़ ने एक लेख में दिया है कि आधुनिक असनी जो इस रूप में लगभग पाँच सौ वर्ष की पुरानी जान पड़ती है, एक बहुत प्राचीन पौराणिक स्थान है। इस असनी के पूर्व एक नाला है जो पुराणों में दत्त-प्रजापति का नाला वर्णित है और वह 'दशरथानारु' के नाम से विख्यात है। उसके इस पार नई असनी है, जिसे नरहरि ने जंगल कटवाकर बसाया था। नई असनी के पूर्व बाहर निकलकर गंगा जी के किनारे किनारे एक बड़ी भारी ईंटों, पत्थरों और मिट्टी की डीह है तथा यही ध्वंसावशेष आज भी वहाँ 'नरहरि की गढ़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस गढ़ी के आगे जंगल से घिरा हुआ 'श्री बल-खंडेश्वर' महादेव का एक प्राचीन मन्दिर है जिसके निर्माता नरहरि महापात्र कहे जाते हैं और वह अब भी नरहरि के असनी वाले वंशजों के अधिकार में है।^२ त्रिवेदी जी ने अपने लेख में काशीराज ईश्वरीदेव नारायण सिंह के दरबारी कवि गणेश महापात्र के एक

१ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २५१, कवि संख्या १५० हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४१

२ महाकवि नरहरि का निवास, सरस्वती, मार्च १९३७, पृष्ठ

कवित्त^१ और असनी के प्रसिद्ध कवि सेवकराम के एक सवैये^२ का उल्लेख किया है जिनमें इन कवियों ने नरहरि को असनी निवासी कहा है। उक्त कवि सेवकराम के वंशज श्रीकृष्ण शर्मा ने उनके ग्रन्थ वाग्विलास की भूमिका में लिखा है :—

‘इस समय में श्रीमान् ब्रह्मभट्ट नरहरि कवि जी राजेश्वर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर शाह गाजी सुलतान हिन्द की सरकार में उनके पिता के समय से महत् सम्मानपात्र थे। उनको अपनी पुत्री का विवाह करना था। योग्य वर, कुल तथा विद्वान ढूँढते थे। चरों द्वारा उक्त श्री देवकीनन्दन जी की प्रशंसा सुन वहाँ पहुँच बड़ी आदर सत्कार से अपनी पुत्री का विवाह उनसे किया और उनको इसी अश्विनी नगर में सन् १५६० में बसाया। इस नगर में सबसे विशेष प्रतिष्ठा और उत्तम व्यवहार हीरा के वाजपेयी और त्रिवेदी लोगों के थे। वे अब तक चले आते हैं। अन्य नगर निवासियों के अतिरिक्त इन घरों से भाई बन्दी के समान उक्त कवि नरहरि से चला आता था.....।’^३ इसी ग्रंथ में आगे चलकर श्री अम्बिकादत्त व्यास द्वारा लिखित भूमिका में लिखा है—‘...देवकीनन्दन ...जिला फतेहपुर के असनी नगर में आये वहाँ इन्हें गुणी और राज्यमान देख नरहरि नामक ब्रह्मभट्ट ने अपनी कन्या विवाह दी और जगह भूमि आदि दे असनी में ही

१ अश्विनीपुरी है थिर अश्विनीकुमार जहाँ घोड़े श्यामकर्ण कढ़े सुजनहु जाते हैं।
प्रगट्यो कवीन्द्र अशधारी नरहरि वहाँ दिल्लीपति मान्यो तिन्हें गुण की प्रभाते हैं।
भनत गणेश महापात्र को खिताब दै के पालकी चढ़ाय लै अकबर कंधाते हैं।
ताके हरिनाथ ताकी राजाराम दीन्हों कोटि सोउ दान दीन्हों हरखाते हरिनाते हैं॥

विशाल भारत, मार्च, १९४६, पृष्ठ २३०

२ शाह अकबर आदिक भूप मिलें असनी के कवीश्वर पाए।
देवकी नन्दन सिंह के वंश में आदर याते लहैं मन भाए।
बैठ उठे मंह छोट बड़ो सब के संग सेवक देत बताए।
श्रीधर साह बड़ाई सुनी सो बड़ाई तिहारी लखै हम आए॥

महाकवि नरहरि महापात्र, विशाल भारत, फरवरी, १९४६, पृष्ठ १४०।

३ वाग्विलास, सेवकराम, भूमिका लेखक, श्रीकृष्ण शर्मा, पृष्ठ ३

बसाया।^१ अतएव इन कथनों से स्पष्ट है कि नरहरि असनी में बहुत काल तक रहे और अपनी कन्या का विवाह असनी से ही किया था और अपने जामातृ देवकीनन्दन को वहीं बसा दिया था। नरहरि के जन्म संवत् का क्रम बैठाने से प्रकट होता है कि सन् १५६० में लड़की का विवाह करते समय इनकी अवस्था ५५ वर्ष की थी। उससे यह संभव है कि पखरौली आदि वे देखने भले ही जाते रहे हों परन्तु स्थायी रूप से असनी में ही उनका निवास-स्थान हो गया था। 'भाटों की हवेली' के नाम से असनी में उजड़े हुए खंडहर हैं, वे देवकीनन्दन और उनके वंशजों के निवास-स्थान के प्रतीक हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यही ठीक जान पड़ता है कि नरहरि का जन्म-स्थान तो पखरौली था जहाँ उनका बाल्यकाल बीता किन्तु युवाकाल में तथा पश्चात् वे असनी में ही रहने लगे थे। वेंती, पखरौली, नरहरिपुर, धर्मापुर आदि ग्राम जो नरहरि को मिले हुए बताये जाते हैं वे अधिकांश रायबरेली जिले में ही हैं और इनका प्रबन्ध, संभव है नरहरि पखरौली से ही कराते रहे हों इसी से वहाँ हाथियों के नहाने आदि की बातें सुनी-सुमाई जाती हैं।

जन्म-तिथि

नरहरि की जन्म-तिथि संवत् १५६२ उनके वंशजों में प्रचलित है। इसी तिथि का उल्लेख हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने भी किया है। हुमायूँ के हाथ में राज्य की बागडोर संवत् १५८७ में आई और एक बार राज्य खोने के अनन्तर पुनः प्राप्त करने पर उसने संवत् १६१३ तक शासन किया। संवत् १५६७ के वैशाख में शेरशाह के हाथों उसे पराजित होना पड़ा था और किसी प्रकार भाग कर उसने अपने प्राण बचाये थे। नरहरि ने हुमायूँ की इस स्थिति का वर्णन प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। उस प्रकार के वर्णन से यही ज्ञात होता है कि इस घटना का अवलोकन नरहरि ने अपनी आँखों किया था। यदि इस दृष्टि से देखें तो नरहरि का प्रवेश हुमायूँ के दरबार में इस घटना के कुछ वर्ष पूर्व ही हुआ होगा और तदर्थ पाँच-सात वर्ष की मैत्री भी आवश्यक है। इस प्रकार दरबार में उनका प्रवेश यदि संवत् १५६० के लगभग मान लिया जाय तो असंगत न होगा।

नरहरि की रचनाओं में जैसा काव्य-परिचय मिलता है उसके योग्य अपने को बनाने में भी इनको कुछ वर्ष लगे होंगे। इस प्रकार हुमायूँ के दरबार में प्रवेश करने के समय संवत् १५६२ जन्म-तिथि मान लेने से, नरहरि की अवस्था २८ वर्ष की ठहरती है जो सर्वथा उचित जान पड़ती है।^१ कुछ अन्य विद्वानों ने भी नरहरि वंशी असनी-निवासी महापात्रों के पास उपलब्ध वंश-वृत्त को प्रामाणिक मानकर उनकी जन्म-तिथि संवत् १५६२ ही निश्चित की है। रामकृष्ण शर्मा ने 'सम्मेलन-पत्रिका' वाले लेख में नरहरि का जन्म संवत् १५६५ माना है^२ किन्तु किसी प्रकार के प्रामाणिक सूत्र का उल्लेख नहीं किया है। अतएव उपर्युक्त आधार पर नरहरि की जन्मतिथि संवत् १५६२ ही ठीक प्रतीत होती है।

जाति

नरहरि ब्रह्म-भट्ट जाति के थे यह एक निर्विवाद सत्य है। उनके वंशज अपने को 'कश्यप' गोत्र का कहते हैं और इसका उल्लेख स्वयं नरहरि ने अपने सूर्य वन्दना छप्पय में किया है :—

तुअ दरसन तम दलित ललित पंकज, सुहरव्य सर
अति प्रगास बहु चक्क चक्र चविकय अनन्द कर
विप्र करत षट धर्म कर्म वेद संचरहिं उदै दिन
सुर नर मुनि गन नाम जापु जस जपहिं यक्क छिन
मो प्रभुदयाल कस्यप तनय कहि नरहरि बन्दों चरन
जन आपद भय हर कलुष जहं तहं कर राखह सरन ॥^३

अन्य लोगों ने भी नरहरि को ब्रह्म-भट्ट और 'कश्यप' गोत्र में उत्पन्न माना है। श्री विपिन विहारी त्रिवेदी ने नरहरि के वंशजों के परिचय के संबंध में नरहरि के पुत्र

१ महापात्र नरहरि और उनके काव्य पर एक दृष्टि, हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च, १९४५, पृष्ठ २४, २५

२ नरहरि महापात्र और उनका घराना, रामकृष्ण शर्मा, सम्मेलन पत्रिका, पौष संवत् १९९६, भाग २७, संख्या ५, पृष्ठ २

३ देखिए, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११६

गोपाल दत्त की शाखावाले कवि शेखर महापात्र से सामग्री प्राप्त कर एक लेख में उद्धृत किया है ।^१

नारायण महाकवि

चन्द्रशेखर महाकवि

चंडीदास महाकवि

विश्वनाथ महाकवि महापात्र

(इन्होंने अलाउद्दीन से महापात्र की पदवी पाई थी, आप संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ साहित्य दर्पण के रचयिता थे)

धीरधर " "

कुलमणि " " (शाल कवि)

नरहरि " "

वंशज और परिवार

नरहरि के पूर्वजों का जन्मस्थान भी पखरौली ही था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता । इनके पिता तो संभवतः पखरौली के निवासी थे क्योंकि नरहरि का जन्म वहीं हुआ था । असनी-निवासी नरहरि वंशी महापात्र मदनेशात्मज लाल जी ने 'अश्वनी-चरित्र' नामक एक छोटी सी पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें अपने पूर्वज नरहरि का इन शब्दों में परिचय दिया है :—

कवि रिखिवंशी सुकवि भये नरहरि सुभाग्यधर
शाह हिमाऊँ निकट रहे सुंदर सुनीति धर
शाह अकबर दीन मान सनमान विविध रुचि
महापात्र पद ग्राम कहक भूषण अमोल सुचि
तिन सुवन तीनि हरिनाथ बड़ आदिनाथ माम्लि गनी
गोपाल दत्त छोटे सुजन विद्यवान ऋषि मुनि मनी ॥^२

उपर्युक्त छंद से स्पष्ट होता है कि नरहरि के तीन पुत्र थे जिनमें हरिनाथ ज्येष्ठ, आदिनाथ मझले और गोपाल दत्त छोटे थे । इन तीनों ने एक-एक ग्राम भी बसाया

१ महाकवि नरहरि महापात्र, विशाल भारत, फरवरी, १९४६, पृष्ठ १४०

२ अश्वनी-चरित्र, पृष्ठ ३

था ।^१ हरिनाथ ने कोई असनी नहीं बसाई वरन् उसी असनी को अपेक्षाकृत अधिक जनशाली बना दिया था ।^२ आदिनाथ ने 'बेती' और गोपाल ने 'गोपालपुर' नामक गांव बसाये थे । असनी, बेती और गोपालपुर के रहने वाले ब्रह्मभट्ट इसी आधार पर अपने को नरहरि का वंशज बताते हैं । नरहरि-वंशी गोपाल दत्त की शाखावाले महापात्रों को भी उक्त वंश-वृत्त मान्य है । असनी के नरहरि-वंशी महापात्रों का निम्नलिखित वंशवृत्त, जो गोपाल दत्त की शाखा वालों को भी मान्य है,^३ इस प्रकार है :—

महाकवि नरहरि महापात्र (संवत् १५६२, १६६७)

हरिनाथ (संवत् १६०४-१७०३) आदिनाथ गोपालदत्त
पंडित रामकृष्ण शर्मा ने 'सम्मेलन-पत्रिका' वाले लेख में निम्नलिखित वंशवृत्त दिया है^४ :—

महाकवि नरहरि महापात्र (जन्म संवत् १५६५)

आदिनाथ	हरिनाथ	कल्याणनाथ	गोपालनाथ
जन्म संवत् १६३५	जन्म संवत् १६४४	इन्होंने कल्याणपुर	गोपालपुर
बेती ग्राम बसाया ।	ये पखरौली छोड़ असनी	बसाया	बसाया
•	में आ बसे थे ।		

१ श्री हरिनाथ अश्वनी भाये पितु धन पाय सुग्राम बसाये ।

आदिनाथ बेती सुखधामा गोपाल गोपाल पुरनामा ॥

अश्वनी-चरित्र, पृष्ठ ३

२ इस सम्बन्ध में निम्नलिखित छंद अत्यधिक प्रचलित है—

बाज सम पांडे बाजपेयी पक्षिराज सम सोहे हंसराज त्रिवेदी बड़े गाथ के ।

कुहू सम शुकुल मयूर से तिवारी भारी जुरी सम मिसिर नवैया जैन माथ के ।

नीलकंठ दीक्षित अवस्थी हैं चकोरवत चक्रवाक दुबे गुरु शुक सम साथ के ।

एते द्विज जाने रंग रंगन बखाने देश देशन ते आने चिड़ीखाने हरिनाथ के ॥

एक भट्ट सज्जन से प्राप्त अप्रकाशित ग्रंथ से ।

३ महाकवि नरहरि महापात्र, पृष्ठ १४१, विशाल भारत, फरवरी १९४६

४ नरहरि महापात्र और उनका एक घराना, सम्मेलन-पत्रिका, पौष संवत् १९९६

भाग २७, संख्या ५, पृष्ठ २

उक्त वंशवृत्त के अनुसार नरहरि के ज्येष्ठ पुत्र आदिनाथ ठहरते हैं जो किसी अन्य सूत्र से प्रमाणित नहीं होता। अश्वनी-चरित में भी हरिनाथ ही ज्येष्ठ माने गये हैं। फिर यह एक जबरदस्त किंवदंती है कि हरिनाथ ही नरहरि के ज्येष्ठ पुत्र थे और उन्होंने कई स्थानों से सम्मान पाया था।

श्री विपिनविहारी त्रिवेदी ने एक लेख 'महाकवि हरिनाथ महापात्र' के आधार पर यह सिद्ध किया है कि हरिनाथ का जन्म संवत् १६०४ था और शर्मा जी के अनुसार यदि आदिनाथ का जन्म संवत् १६३५ मान भी लिया जाय तो हरिनाथ ही नरहरि के ज्येष्ठ पुत्र ठहरते हैं। अतएव हरिनाथ ही नरहरि के ज्येष्ठ पुत्र थे और उन्हीं को जहाँगीर ने साढ़े पाँच सौ बीघा जमीन माफी में दी थी जिसका उल्लेख सन् १०१६ हिजरी के जहाँगीरपुरा नामक ग्राम की सनद में मिलता है।^१

उपर्युक्त वंश-वृत्त में शर्मा जी ने नरहरि के एक और पुत्र कल्याणनाथ का उल्लेख किया है जिसकी पुष्टि किसी अन्य सूत्र से नहीं होती। सभी प्रामाणिक सूत्रों से नरहरि के केवल तीन पुत्रों का ही परिचय मिलता है जिनका निर्देश पहले किया जा चुका है, शर्मा जी ने चौथे पुत्र को गोपालनाथ के नाम से दिया है।

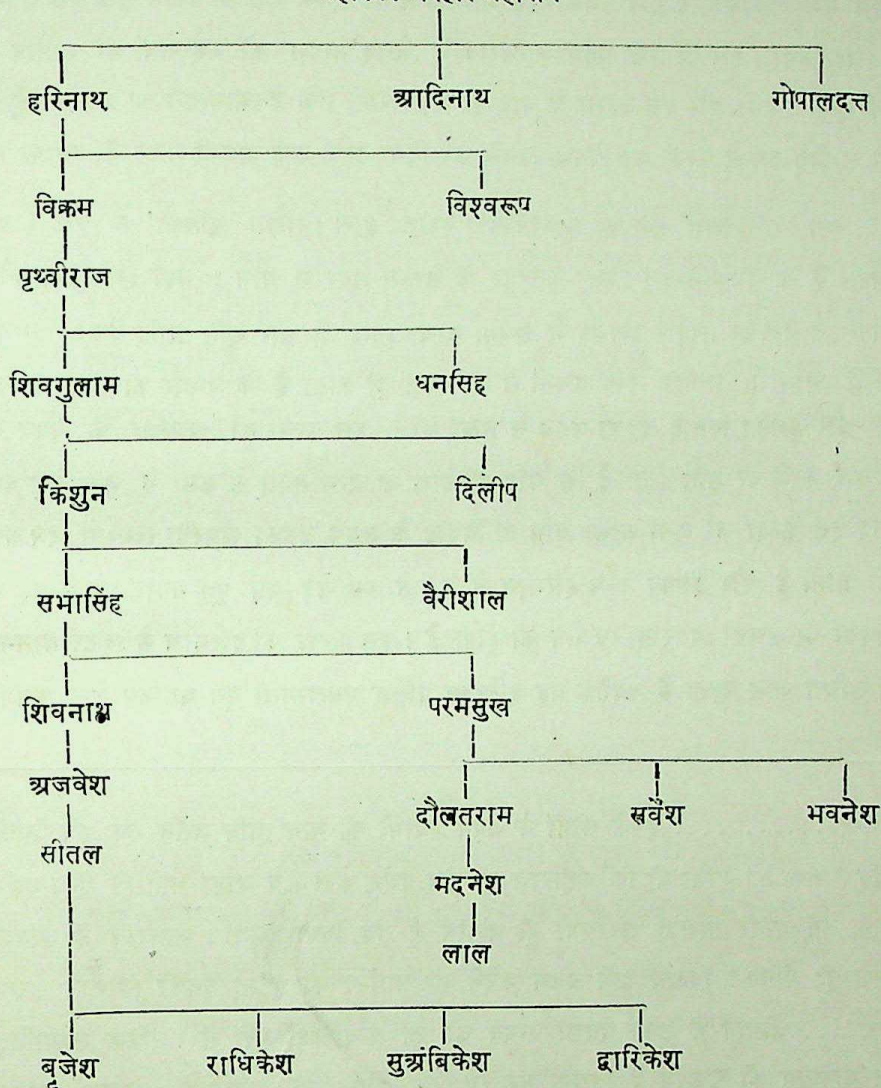
प्रामाणिक वंश-वृत्तों से यही पता चलता है कि नरहरि के ये तीसरे पुत्र हैं और उनका नाम गोपालनाथ नहीं गोपालदत्त था। अनुमान है कि शर्मा जी ने गोपालदत्त को ही गोपालनाथ के नाम से लिख दिया है। यद्यपि गोपालदत्त के विषय में अभी तक कोई सनद या छंद प्रमाण रूप में उपलब्ध नहीं हुए हैं तथापि नरहरि के उक्त तीनों पुत्रों की दोनों शाखाओं वाले वंशज गोपालदत्त को नरहरि का तीसरा पुत्र मानते हैं जिसे प्रामाणिक सूत्रों के अभाव में स्वीकार नहीं किया जा सकता। हरिनाथ के वंशजों की एक सूची 'अश्वनी-चरित्र' के आधार पर इस प्रकार है^२—

१ महाकवि नरहरि महापात्र, विशाल-भारत, फरवरी, १९४६, पृष्ठ १४१

२ महाकवि नरहरि और उनके काव्य पर एक दृष्टि लेख से उद्धृत, हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च, १९४५, पृष्ठ २६

अश्वनी-चरित्र, पृष्ठ ३

महाकवि नरहरि महापात्र



उक्त वंश के बृजेश जी तथा लाल जी प्रतिष्ठित कवि हैं और रींवा तथा अन्य रियासतों में इनका यथेष्ट मान भी है ।

नरहरि की एक कन्या का उल्लेख पहले किया जा चुका है । 'वागविलास' ग्रंथ में कवि सेवकराम की जीवनी के सम्बन्ध में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि एक समय कवि सेवकराम के स्वामी श्रीमान् महाराजाधिराज विसेन वंशावतन्स मम्फोली की पुत्री का विवाह इसलिये टला जा रहा था कि कोई कनि उनका वंश वर्णन करने वाला नहीं था ।

उस समय देवकीनन्दन ने उनकी उस मान-हानि को उनके वंश का वर्णन सुक्त-कंठ से कर बचा लिया। इस पर उक्त महाराजाधिराज ने देवकीनन्दन को 'महापात्र' की उपाधि से विभूषित किया और इस घटना के बाद ही जब नरहरि तक देवकीनन्दन की प्रशंसा पहुँची तो उन्होंने अपनी कन्या का विवाह उनसे कर दिया और उन्हें असनी नगर में बसाया।^१

इसी 'वाग्बिलास' ग्रंथ की अम्बिकादत्त व्यास द्वारा लिखित 'भूमिका' के पृष्ठ ३ पर लिखा है कि देवकीनन्दन जिला फतेहपुर के असनी नगर में आये। वहाँ इन्हें गुणी और प्रतिष्ठित देखकर नरहरि ब्रह्मभट्ट ने अपनी कन्या व्याह दी और भूमि आदि देकर असनी ही में बसाया। अतएव उक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नरहरि की एक कन्या थी और उसका विवाह देवकी नन्दन से हुआ था। इस कन्या की अवस्था के विषय में विचार करने पर ज्ञात होता है कि यदि हरिनाथ के जन्म संवत् से कम से कम डेढ़ वर्ष बाद इस कन्या का जन्म माना जाय तो विवाह के समय उसकी अवस्था लगभग १२ वर्ष की आती है और इसका जन्म हरिनाथ से कम से कम डेढ़ वर्ष पूर्व मानने पर विवाह के अवसर पर उसकी अवस्था १५ वर्ष की होती है। इस कन्या को हरिनाथ से छोटा मानना ही उचित जान पड़ता है क्योंकि वह इतिहास प्रसिद्ध मुसलमानी युग था जब हिन्दू अपनी

१.....इनके लोगों ने अपने स्वामी की मान हानि जानि एक पुत्र देवकी नन्दन नामक को आज्ञा दी कि महाराज का वंश वर्णन करो। वे आज्ञा पाते ही ऐसा वर्णन करने लगे मानों साक्षात् सरस्वती ही कंठस्थ है तब विवाह हुआ। महाराज ने अत्यन्त प्रसन्न हो संनिकट विठाय दान ग्रहण करने की प्रार्थना की हठात् इनको स्वीकार करना पड़ा.....श्रीमान ने उक्त देवकी नन्दन जी का अन्य कुटुम्बियों से अधिक सम्मानित कर महापात्र की उपाधि दे तिलक कर स्थापित किया। उसी समय में श्रीमान ब्रह्मभट्ट नरहरि कवि जी की श्री राजराजेश्वर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर शाह गाजी सुलतान हिन्द की सकारि में उनके पिता के समय से महत् सन्मान पात्र थे। उनको अपनी पुत्री का विवाह करना था। योग्य वर, कुल तथा विद्वान ढूँढते थे। चरों के द्वारा उक्त श्री देवकी नन्दन जी की प्रशंसा सुन वहाँ पहुँच बड़ी आदर सत्कार से अपनी पुत्री का विवाह उनसे किया और उनको इसी अश्विनी नगर में सन् १५६ में बसाया।

भूमिका, वाग्बिलास, पृष्ठ २, ३।

कन्याओं का विवाह करने में अधिक विलंब नहीं करते थे। अतएव इस कन्या का जन्म संवत् १६०६ के लगभग माना जा सकता है।

शिक्षा-दीक्षा

नरहरि की शिक्षा-दीक्षा आदि के विषय में कुछ पता नहीं चलता किन्तु उनकी काव्यकुशलता और भाषा-वैचित्र्य देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्हें बाल्यकाल में अच्छी शिक्षा मिली थी। मुगलकालीन दरबार में फ़ारसी का अत्यधिक प्रचार था। अतएव इनके पिता ने, ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारम्भ से ही इन्हें फ़ारसी की उत्तम शिक्षा दिलाई थी। नरहरि के नीति-वचनों से भी स्पष्ट है कि संस्कृत-भाषा का भी उन्होंने सुचारु अध्ययन किया था और इसमें उन्होंने काफी ज्ञानार्जन कर लिया था। कवि के एक दो छप्पय उसके फ़ारसी भाषा विषयक ज्ञान के द्योतक हैं :—

इस छंद का पाठ कुछ लेखकों ने इस प्रकार दिया है :—

नेक बख्त दिल पाक सखी जवाँ मर्द शेर नर
अव्वल अली खुदाय दिया तिसि पार मुल्क जर
तुम खालिक बहु वेश सकुन सालिमा अमालिम ।
दौलत बख्त बुलन्द जंग दुश्मन पर जालिम ॥
इन्साफि तुराँ गोयद खलक कवि नरहरि गुफतन चुनी ।
बाब्र न बरोबर बादशाह मन दिगर न दीदम दर दुनी ॥^१

श्रीकृष्ण शर्मा ने एक लेख में इस छप्पय का निम्नलिखित पाठ दिया है^२ :

नेक बखत दिल पाक सखी जवाँ मर्द शेर नर
अव्वल अली खुदाई दिया बिसियार मुलक जर
खालिक बहु वेश हुकुम आलिया जो आलिब
दौलत बख्त बुलंद जंग दुश्मन पर गालिब
अबसाफ तुरी गोयद सकल कवि नरहरि गुफतम चुनी
अक्रबर न बरोबर बादशाह नजर न दीदम दर दुनी ॥

१ महाकवि नरहरि महापात्र, पृष्ठ २२८, विशाल-भारत, मार्च १९४६

२ नरहरि महापात्र और उनका एक घुराना, सम्मेलन पत्रिका, पौष संवत् १९९६

हिन्दुस्तानी, भाग २७, पृष्ठ संख्या ५

श्री विपिन विहारी त्रिवेदी ने शर्मा जी के पाठ वाले उक्त छंद में 'तुरी', 'गोयम', 'सकल', 'गुफतम' और 'न नजर', 'न दीदम', 'दर', 'दुनी' शब्दों का अशुद्ध प्रयोग बता कर बाबर पाठ वाला उपर्युक्त छन्द ही प्रामाणिक माना है। किन्तु उपर्युक्त दोनों छन्दों में प्रयुक्त फ़ारसी के कुछ शब्द अशुद्ध हैं। त्रिवेदी जी वाले पाठ में 'तिसिपार', 'अमालिम', 'जालिम', 'इन्नाफि', 'गुफतन्' शब्दों के अशुद्ध प्रयोग हुए हैं। छंद के अंतिम चरण में 'न', 'मन' शब्द निरर्थक भी हैं। शर्मा जी वाले पाठ के तीसरे चरण में केवल 'आलिब', और पाँचवे में 'तुरी' शब्दों के ही अशुद्ध प्रयोग हैं वैसे पाठ ठीक है। अतएव त्रिवेदी जी की अपेक्षा शर्मा जी वाला छंद अधिक प्रामाणिक ज्ञात होता है। दोनों सज्जनों ने इस छंद की प्रामाणिकता नहीं दी है। अतएव पाठ की प्रामाणिकता के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेखक को 'बाबर' पाठ वाला उपर्युक्त छंद कई भट्ट सज्जनों से सुनने को मिला वे बड़े मधुर और उच्च स्वर में इसे गाकर गौरवान्वित होते हैं। उन्हीं में से एक भट्ट सज्जन से प्राप्त नरहरि के अप्रकाशित ग्रंथ में उक्त छंद देखने को मिलता है इसका पाठ अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध है।

नेकबरख्त दिल पाक सखी जवाँ मर्द शेर नर ।

अव्वल अली खुदाय दिया तिसि पार मुल्क जर ॥

खालिक बहुनेश हुकुम आलिया जो आलिब ।

दौलत वख्त बुलंद जंग दुश्मन पर गालिब ॥

अवसाफ तुरा गोयद सकल कवि नरहरि गुफतम चुनी ।

बाबर बरोबर बादशाह दिगर न दीदम दर दुनी ॥

त्रिवेदी जी उक्त छंद के आधार पर नरहरि को बाबर के दरबार में उपस्थित रहना मानते तो हैं किन्तु उस तिथि का कोई विशेष विवेचन उनके लेख में नहीं मिलता। बाबर बादशाह के शासन में नरहरि की अवस्था २३, २४ वर्ष की ठहरती है और इतनी आयु में इस प्रकार की कविता लिख लेना कवि के लिये कुछ असंभव नहीं प्रतीत होता। नरहरि का बाबर के दरबार से सम्बन्ध केवल इसी छंद से नहीं प्रमाणित होता है इसकी पुष्टि एक अन्य छंद से भी होती है। नरहरि ने बाबर, हुमायूँ, अकबर और अब्दुरहीम खानखाना की प्रशंसा एक ही छंद में निम्नलिखित ढंग पर की है :—

बाबर हुमायूँ गाजी सिफत करत दोऊ मन वच करम अटल स्वामी तकबर ।

एकन उथापि एकै थापत जगत हित अनख जख रिपु फिरे चहुँ चकबर ।

गुनी निरगुनी हिन्दू तुरक सकल सेवै दलपति नरहरि अब एक टकबर ।

परम प्रवीन खानखाना से वजीर जाके न्याय ही वसत विलसत शाह अकबर ॥^{११}

इस प्रकार उपर्युक्त छंदों से ज्ञात होता है कि नरहरि संभवतः बाबर से संपर्क में आये थे। किन्तु बाबर के दरबार से इनका सम्बन्ध था अथवा ये केवल उसके सम्पर्क में ही आये थे यह निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। उनके असनी के वंशज महा-पात्र नरहरि को हुमायूँ-दरबार के पूर्व किसी अन्य मुगल-शासक के दरबार से सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते।

नरहरि और उनका सम्मान

नरहरि का सम्मान उन सभी विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा हुआ था जिनके सम्पर्क में ये आये थे; उनके व्यक्तित्व का प्रभाव कवि पर पड़ा और उसने मुक्त-कंठ से उन गुणी व्यक्तियों की प्रशंसा अपने छंदों में की जिसका परिचय यहाँ दिया जायगा। कवि का बाबर की प्रशंसा सम्बन्धी परिचय पहले दिया जा चुका है। नरहरि हुमायूँ के सन्निकट तो रहे ही। उसकी श्रुतिलिप्त वीरता एवं धैर्य का कवि ने यथायोग्य वर्णन किया है :—

पूरव हृद पछिम पहार दोउ षन^१ किए विधि जानि अगाउँ ।
 इत सुमेरु उत चढ़त लङ्क हय मारि तङ्ग नरपति सब नाउँ ।
 हिन्द ते पेदि पठान षग वर दल दलमलि दरियाय बहाउँ ।
 गजहि बहुरि जिति दिल्लीपति इमिहिं डोल रच्यो साहि हिमाउँ ॥^२

एक स्थल पर कवि ने हुमायूँ की विषम परिस्थिति दिखाकर उसके प्रति अपनी सद्यः सहायुभूति प्रकट की है :—

जित्ति जगतु सब कियो अप्पु बस हुतो समोसन मुष जब ताऊँ ।
 सोइ छत्रपति बव्वर सुव नन्दन इह अघ दम सुना अगाऊँ ।
 नरहरि बान धनुष सोह अस जुन गोषि निरषि सके इक ठाऊँ ।
 विधि विरुद्ध कछु सूझ परत नहिं कहा करे वरिबंड हुमाऊँ ॥^३

१ देखिए, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२

२ " " छंद संख्या ३२

छंद संख्या ७

शेरशाह की उदार-नीति, उसकी सहृदयता एवं सद्गुणों की विशिष्टता ने कवि को अपनी ओर आकर्षित किया था। कवि ने उसके गुणों का निम्नलिखित छंदों में वर्णन किया है :—

असपति नर गजपति हुतेउ मुअपति अनेक तब ।
 ते त्वै समर संधरेउ मरेउ जसु जगत जित्ति अब ।
 तोहि जांचहि गुनि सकल कोउ न उघरेउ भुम्मि मंह ।
 नषत प्रात सम तकत जियत जलु जलधि अंत कंह ।
 वोहिन कषं भुजिमि पिष्यअै मंगन गति नरहरि भनै ।
 अस समुक्ति साहि सेरन प्रकट असो अस दिहनेहि बनै ।^१

शेरशाह के उत्तराधिकारी सलीमशाह (इस्लाम शाह) द्वारा भी नरहरि को उचित सम्मान मिला था। नरहरि ने निम्नलिखित दोहे में सलीम शाह की आयु की वृद्धि एवं राज्य-स्थिरता की कामना की है :—

प्रथम जंपि जगदीस कहं करउं कविन रचि नेमु ।
 जस निर्मल थिर चिर जिवे छत्रपति साहि सलेमु ॥^२

कवि ने यदि एक बार पठान दल को जुटते देखा था तो दूसरी बार उसे बिखरते भी देखा। निम्नलिखित छप्पय में कवि ने सूर-वंश के बाद छिन्न-भिन्न स्थिति का दिग्दर्शन कराया है :—

उर गवनि जु सुख गएउ भएउ नाहिं पुहुमि अनंफल ।
 प्रजा दुखित दल भलित गएउ फटि फूटि पठान दल ।
 दत्त सत गरुवत्त रहेउ धन धर्म कित्ति निति ।
 मंडन सोर चहुँ ओर बहुरि संबरेउ मुगलपति ।
 जगदीस देखावहिं दिष्यअै कहि नर हरि निसु दिनु पुरुक ।
 सोर न विन साहि सलेम विन सो अकल विकल हिंदू तुरुक ॥^३

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ३२

२ " " " " " " छंद संख्या १

३ " " " " " " छंद संख्या २८

यह एक ऐतिहासिक घटना है कि संवत् १६१२^१ में हुमायूँ ने सूरी-वंश पर विजय प्राप्त की और भारत का सम्राट बना। संभवतः तभी हुमायूँ ने नरहरि की पिछली सेवाओं को स्मरण कर उनका आवाहन किया था जिसका उल्लेख कवि ने निम्नलिखित छप्पय में किया है :—

सेरन साहि सलेम पुहुमि एक छत्र राजु किअ ।
 तिन मोहि कहं करि कृपा भानु धनु पिति पिताबु दिअ ।
 तिह्नुके मरत नहि मुएउ लाज गहि बनन सिधाएउं ।
 तिहकि सुतन परि विपति तहाँ केहु काम न आएउं ।
 एहि लाज गहेउ जगदीस दरु नरहरि चल तन चित्त मुख ।
 फिरि फेरि बोलावहिं साहि मोहि सो आनि दिखावउं कोन मुख ॥^१

उपर्युक्त छंद से ज्ञात होता है कि कवि को सूरी-वंश के राजाओं से मान, धन, जमीन, खिताब आदि मिले थे। साथ ही कवि की आत्मग्लानि का परिचय भी उक्त छप्पय से मिल जाता है। श्री विपिन विहारी त्रिवेदी ने उक्त छप्पय अकबर के लिये लिखा हुआ माना है और इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि इस छप्पय में ऐसे अवसर पर नरहरि ने हुमायूँ बादशाह का नाम इसीलिये नहीं लिया कि उन्हें हुमायूँ ने ठीक से पुरस्कृत नहीं किया था। उनकी यह धारणा भ्रमपूर्ण ज्ञात होती है। उक्त छप्पय में कवि अकबर का नाम लेता ही क्योंकर, उक्त छप्पय अकबर के लिये न लिखा जाकर हुमायूँ के लिये लिखा गया था और तभी कवि को इतनी आत्मग्लानि का प्रदर्शन करना पड़ा और संभवतः वह फिर 'जगदीश दरु' से उस समय तक नहीं लौटा जब तक अकबर सिंहासनारूढ़ न हुआ। रीवां-नरेश वीरभानु ने हुमायूँ की विपत्ति-दशा में समयोचित सहायता की थी। इसका उल्लेख गुलबदन बेगम द्वारा रचित 'हुमायूँनामा' में हुआ है।^२ नरहरि के छंदों में रीवां-नरेश बघेल-राजा रामचंद्र का, जो इन्हीं वीरभानु के पुत्र थे, उल्लेख हुआ है। यदि नरहरि ने जो हुमायूँ के दरबार के कवि थे उपर्युक्त घटना से संबद्ध कारणों से, रीवां तक की यात्रा की हो तो क्या आश्चर्य और फिर वहाँ पहुँचने पर रीवां-नरेश की गुण-ग्राहकता ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया होगा। नरहरि के

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५०

२ हुमायूँनामा, पृष्ठ १३६

कई छंद राजा रामचंद्र की प्रशंसा के उपलब्ध होते हैं । यहाँ पर एक उदाहरण पर्याप्त होगा । रामचंद्र सरीखे आदर्श पथगामी के लिये उसकी यह प्रशंसा ही सापेक्ष थी—

वरबधैल निरलोभ धम्म रत सेवत चरन चाहि भुवरत्नी
यह सो लोम अररन्न सरन्न किय मारि भुआरि लेत भुई अत्ती
नरहरि एक बात सकुचत हों परसत पुरुषोत्तम पग सत्ती
हों अपने नृप रामचन्द्र पर वारों में कोटि कोटि गजपत्ती ॥^१

अंतिम पंक्ति में 'अपने' शब्द से कवि की उनके प्रति आत्मीयता का भाव भी दृष्टिगत होता है ।

नरहरि का निम्नलिखित छप्पय अकबर के जन्म-अवसर पर उच्चरित बताया जाता है :—

धन्य धरनि धनि देश नगर कुल धनि सुजाति वर
धन्य सर्व भूपाल जननि धनि धनि जु गर्भ धर
धनि सुवर्ष ऋतुमास पाख सो शैल समै धनि
धनि सुयुग कलियुग धन्य संवत् समत्थ मनि
धनि तिथि व नखत सो द्योस धनि कहि नरहरि विधि निर्मयो
धनि पहर लगन सो महत्त धनि जेहि मुकुन्द गजपति भयो ॥^२

उपयुक्त छप्पय में कवि ने अकबर का कहीं उल्लेख नहीं किया है । अतएव केवल किंवदन्ती^३ के आधार पर ही 'मुकुन्द गजपति' को अकबर मान लेना भूल होगी

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १६

२ देखिए, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७

३ एक प्राचीन लेख द्वारा यह पता चलता है कि एक मुकुंद ब्रह्मचारी ने अपने शरीर के अंगों को काट कर हवनकुण्ड में डाला था और उसने यह भविष्यवाणी की थी कि वह दुबारा जन्म लेकर एक प्रतापी बादशाह होगा । गणना से अकबर की जन्मतिथि और मुकुंद ब्रह्मचारी की मृत्यु तिथि में कुछ महीनों का अंतर था । अतएव वे अकबर के रूप में ही उत्पन्न हुए यह किंवदन्ती प्रचलित हो गई ।

क्योंकि तत्कालीन जगन्नाथपुरी के राजा का नाम इतिहासों में मुकुन्द गजपति मिलता है जिनसे कि नरहरि का घनिष्ठ संबंध था और जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। नरहरि के कुछ छंदों में यह स्पष्ट रूप से मिलता है कि वे काफी समय तक जगन्नाथपुरी में रहे थे और मुकुन्द गजपति के जन्म-अवसर पर भी ये संभवतः उपस्थित थे। अतएव उक्त छप्पय अकबर के जन्म-अवसर का न होकर जगन्नाथपुरी के राजा मुकुन्द गजपति का मानना अधिक ठीक होगा।

अकबर के सिंहासनारूढ़ होने पर राज्य की व्यवस्था बिगड़ी हुई थी और प्रजा के अन्दर वह सुख-शान्ति अवशिष्ट नहीं रह गई थी जो शेरशाह और हुमायूँ के शासन के उत्तरकाल में थी। राज्यसिंहासन कुचक्रों का शिकार हो रहा था किन्तु अकबर ने अपने बुद्धिकौशल द्वारा पहले बैरमखाँ और फिर माहम-अंग्रा के चंगुल से अपने को स्वतन्त्र कर एक आदर्श राजसत्ता स्थापित करने के साधन जुटाने आरंभ किये थे। नरहरि द्वारा उल्लिखित अकबर संबंधी उपदेश के अनेक छंद उपलब्ध हैं। यदि ऐसे ही अवसर पर कवि ने अकबर को ये साधारण नीति और राजनीतिक उपदेश दिये हों तो असंभव नहीं कहा जा सकता। सर्वप्रथम कवि अकबर के बुद्धि-चातुर्य का परिचय देकर उत्साहवर्धक शब्दों में कह उठता है :—

को सिखवत कुल बधून लाज गृह कज्ज रंग रति
को हंसनि सिक्खवत करत पय पानि भिन्न गति
कै सिंहन को सिक्खत हनत गज बाजि ततच्छन
कै सज्जनसि सेक्खएउ दत्त गरु वस सुलच्छन
विधि रचेउ जानि नरहरि निरखि कुल सुभाउ नहिं मिट्टवे
गुन धर्म अकब्बर साहि कह कहहु सो को नरु सिक्खवे ॥^१

अपने पिता हुमायूँ के प्रिय कवि के प्रति अकबर की पूर्ण श्रद्धा थी और वह इनका अत्यधिक मान और पूरा विश्वास करता था। अकबर ने इसी कारण उड़ीसा के राजा के पास हसनखाँ खजांची के साथ और किसी को न भेजकर इन्हीं को भेजा था—
'महापात्र-जो भारतीय काव्य एवं संगीत कला में अद्वितीय थे, उसके साथ भेजे गये। दोनों साथ-साथ उड़ीसा गये। जगन्नाथपुरी के राजा ने बादशाह की कृपा जान कर

• १ देखिए, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२६

आगंतुकों के समुचित सत्कार के लिये अपने आदमी तुरंत भेजे और शहर में सम्मान-पूर्वक उनको लाया गया.....तीन महीने तक आदर-सत्कार करने के बाद उनको प्रसिद्ध हाथियों और बहुमूल्य पदार्थों की भेंट सहित दरबार वापिस भेजा।^१ यह घटना संवत् १६२२ की है। इससे यही अनुमान निकलता है कि कवि को 'महापात्र'^२ की उपाधि इसके पहले मिल चुकी थी। अकबरी-दरबार में नरहरि के अतिरिक्त और किसी कवि को 'महापात्र' की उपाधि नहीं मिली और नरहरि का जगन्नाथपुरी के राजा से पूर्व परिचय था जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। रीवाँ-नरेश राजा रामचन्द्र ने अकबर को सेनाओं द्वारा पराजित होने पर बांधवगढ़ की शरण ली थी किन्तु उसी समय प्रभाव-शाली व्यक्तियों के हस्तक्षेप करने पर जो रीवाँ-नरेश के आश्रय में पहले रह चुके थे अकबर ने आसफखां को राजा रामचन्द्र की राज्य-सीमा में बिना हाथ लगाये वापिस चले आने के लिये लिखा था। इसमें नरहरि का प्रधान हाथ अवश्य रहा होगा जिनका संबंध रीवाँ-नरेश से पहले दिखाया जा चुका है।

अकबर न्याय-प्रिय शासक था। आये दिन नवीनतम सुधारों का प्रचार कर अपने राज्य में शासन को सफलता की उच्चतम सीढ़ी पर पहुंचाना उसका लक्ष्य था। यह जनश्रुति अत्यधिक प्रचलित है कि नरहरि की प्रेरणा से ही अकबर ने राज्य में गोहत्या बंद करा दी थी जिसमें कहा गया है कि स्वयं नरहरि ने एक गाय मंगवा कर करियाद-स्थान पर खड़ा करवा दिया था और उस गाय की मूक-भाषा का अर्थ उन्होंने स्वयं ही निम्नलिखित छप्पय द्वारा अकबर को समझाया था:—

अरिहि दंत तिनु धरै ताहि नहि मारि सकत कोइ
हम संतत तिनु चरहि वचन उंचरहि दीन होइ
अमरित पय नित खवहि वच्छ महि थंमन जावहि
हिंदुहि मधुर न देहि कटुक तुरकहि न पियावहि
कह कवि नरहरि अकबर सुनौ विनवति गउ जोरे करन
अपराध कौन मोहि मारियत मुएहु चाम सेवइ चरन ॥^३

१ अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ २८२, २८३

२ नरहरिको 'महापात्र' की उपाधि अकबर ने दी थी जिसका अर्थ है श्रेष्ठ गुणी व्यक्ति
हिन्दी लिटरेचर, पृष्ठ ३६, ३७

३ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११८

इतिहास से भी गोवध-निषेध की सम्पुष्टि होती है। अकबर के अनेक नियमों में जो उसने प्रजा के हितार्थ घोषित किये थे, गो-हत्यारे के लिये मृत्यु-दंड की व्यवस्था भी स्थिर की गई थी। अकबर पर नरहरि के तर्कों का क्या प्रभाव पड़ा था, यह एक अज्ञात कवि के निम्नलिखित छंद से स्पष्ट हो जाता है :—

नरहरि कवि सो गऊ की विनती सुनि सांची गुन खलन पै कै मति अकससी
अकबर जारी परवाने किये मारिवे को चारिहुँ महीपन लखानी बात हकसी
व्यापि गयो हुकुम दिल्लीपति को हिंद भरि वाजिबी विचारि मन अति कै करकसी
जीवन कसाइन कौ गाइन को देत भयो गाइन की मौत ले कसाइन को बकसी ॥^१

संभवतः नरहरि ने अकबर के कुछ अन्यायपूर्ण नियम के संशोधनार्थ विनती भी की थी जिसका संकेत निम्नलिखित छंद में मिलता है। इसका भाव है—यदि माता ही पुत्र को विष दे दे, नाविक ही नाव को डुबो दे, पहरेदार ही चोरी करने लगे और यदि प्रेमी ही प्रेम को तोड़ने की चेष्टा करे, सज्जन ही यदि परधन-लोलुप हो जाय तो फिर कौन ऐसा समर्थ है जो घोर अन्याय को रोक सके अर्थात् सम्राट् ही यदि न्याय के प्रति उदासीनता ग्रहण कर ले तो प्रजा का संचालन कैसे हो :—

छत्रपति अकबर साहि सुनहु विनती करै नरहरि
जो जननि सुतहि विष देइ नाउ करिया गहि बोरै
स्वै पहरु स्वै चोर प्रीति प्रीतम हठि तोरै
वारि जो पति हठि चरे साधु परधनु लेइ
कौन समरथ करै धरहरि ॥^२

नरहरि ने अकबर की क्रोध-शान्ति के लिये भी अपनी मधुर वाणी द्वारा शांत-रस का संचार किया था। कवि अकबर से कहता है कि क्रोध में आकर अपने यश को नहीं गंवा देना चाहिये क्योंकि यश के लिये ही बलि ने बावन को तीनों लोक दे दिये, कर्ण ने स्वर्ण-दान किया, हरिश्चंद्र यश के लिये चांडाल के हाथ बिके, यश के लिये जयदेव ने अपना सिर तक दे दिया :—

१ देखिये, नरहरि सम्बंधी फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १

२ " " " " " " छंद संख्या १०

यश लागि बलि बावनहि लोक तीनिहुं समप्प दिय
 जेहि यश कारन करन कनक कर कछु न लोम्भ किय
 यश कारन हरिचंद नीच घर नीर समप्पेहु
 यश कारन जयदेव शीश कंकालहि अरपेहु
 यश अमर सदा नरहरि चलत यशहि परम पद पाइये
 भुवनाह अकबर शाह कहूँ रिस करि यश न गंवाइये ॥^१

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि नरहरि अकबर के सुहृद और सम्मानी कृपापात्रों में से थे। साथ ही इससे उनकी सभाचातुरी, नीति-निपुणता और स्पष्टभाषिता का भी आभास मिलता है। अकबर की सेवा और कृपा के फलस्वरूप ही नरहरि ने उसकी सेना की व्यापकता और आतंक का चित्ताकर्षक वर्णन किया है :—

फनपति जय परभरहिं जलधि उछ्छलहिं छंडिकुमु
 उडि रज परिहरि भुअन भए सुर सकल संभु समु
 निमु दिन बिछुरहि चक्र कवल सकुचहिं रवि भंपहि
 धूम समुक्ति अरि नृपति भभरि भञ्जहिं तन कंपहि
 नचहिं मऊर नरहरि निरषि सो द्वरंग अनवन बरन
 दलु चलत अकबर साहि को सो गिरि बन धन अकरन सरन ॥^२

नरहरि ने एक छप्पय में मुकुन्द गजपति के तुलादान का वर्णन किया है :—

कनक तुला मनि मोत्तिदान दिन कहि जो ग्रन्थगन
 सत सहस गो लच्छि देत विधि सहित सुद्ध मन
 असरथ गजरथ बसन ग्राम जनि कहउ कौन कवि
 बहुरि प्रकट कलि करन सत हरिचंद प्रात रवि
 जस हथ्य भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित संभरिय
 गजपति मुकुन्द दिव देव कह कहउ कवितु कोइ विधि करिय ॥^३

उक्त छप्पय के अन्तिम पंक्ति का पाठ श्री विपिन बिहारी त्रिवेदी ने 'दुर्गावति मात समथ को कहु केहि विधि पटतर करिय' देकर नरहरि और रानी दुर्गावती के परिचय

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११८

२ " " " " " " छंद संख्या ३४

३ " " " " " " छंद संख्या ९५

का संकेत किया है। लेखक को प्राचीन हस्तलिखित प्रति में उक्त 'गजपति मुकुन्द' का पाठ देखने को मिला जो प्रति लगभग तीन सौ वर्ष प्राचीन है। अतएव छंद की प्रामाणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता। मुकुन्द गजपति जगन्नाथपुरी के राजा थे जिनके जन्म-अवसर का उल्लेख नरहरि ने किया था जो पहले दिया जा चुका है। अबुलफ़ज्ज ने 'आईने अकबरी' में अकबर के तुलादान का भी उल्लेख किया है जिसको अकबर प्रत्येक वर्ष किया करता था, किन्तु मुकुन्द गजपति के होने पर इसे अकबर के लिये कहा गया स्वीकार नहीं किया जा सकता उक्त छंद में जगन्नाथपुरी के राजा मुकुन्द गजपति के तुलादान का ही वर्णन हुआ है, जिनसे नरहरि का घनिष्ठ सम्बन्ध पहले दिखाया जा चुका है।

किसी अज्ञात कवि ने निम्नलिखित कवित्त में अकबर द्वारा प्राप्त नरहरि के मान का वर्णन किया है :—

शाह अकबर महाकवि नरहरि जी को दीन्ह्यो महापात्र पद मरजाद जाती में
तापै चारं चोपदार चामीकर पग दीन्ह्यो पालकी में कंध केते पुर लिखि पाती में
गंग कवि हेत घने तैसे गज ग्राम दीन्हे आज लागि दान मान मौज अधिकाती में
संग दिल शाह जहांगीर सउमंग आज देत है मतंग पद सोई गंग छाती में ॥^१
नरहरि के परवर्ती कवि गणेश महापात्र ने भी उनकी मान-मर्यादा का निम्नलिखित छंद में वर्णन किया है :—

अश्विनीपुरी है थिर अश्विनी कुमार जहाँ घोड़े श्यामकर्ण कढ़े सुजनहु जाते हैं
प्रगट्यो कवीन्द्र अंशधारी नरहरि तहाँ दिल्लीपति मान्यो तिन्हें गुण की प्रभाते हैं
भनत गणेश महापात्र को खिताब दै कै पालकी चढ़ाय लै अकबर कंधाते हैं
ताके हरिनाथ ताकी राजाराम दीन्हों कोटि सोउ दान दीन्हों हरखाते हरिनाते हैं ॥^२
अकबर ने नरहरि को कई ग्राम देकर सम्मानित किया था जिसका उल्लेख वेती-निवासी दयाल कवि ने निम्नलिखित कवित्त में किया है :—

डलमउ परगना प्रथम पखरौली ग्राम दूजे मिरजापुर कल्याणपुर वेती है •
और नरहरि पुर ग्राम धरमापुर है तारापुर बन्न जमुनीपुर सुनैती है
भनत दयाल एक डला गौरी बड़ा ग्राम चांदपुर लूक सूरजपुर वरैती है
आधी नानकार के इतेक नाव गांवन के जाहिर जहान जहांगिखां समेती है ॥^३

मृत्यु-चटना

नरहरि की मृत्युतिथि का पहले उल्लेख हो चुका है। असनी-निवासी हरिनाथ के वंशजों में इनकी मृत्युतिथि संवत् १६६७ दी गई है। इस तिथि के अनुसार इनकी मृत्यु १०५ वर्ष की अवस्था में ठहरती है और जब जहांगीर के राज्यकाल को आरम्भ हुए पाँच वर्ष बीत चुके थे। नरहरि की रचनाओं में जहांगीर विषयक कोई चर्चा नहीं मिलती किन्तु संभव है वे वृद्धावस्था के कारण दरबार में न आते-जाते रहे हों। अतएव इस मृत्यु-तिथि को बिल्कुल प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता।

कहा जाता है कि अंत समय निकट आ जाने पर नरहरि असनी में गंगा जी के किनारे चले गये थे। उन्हें कुश का आसन दिया जा चुका था, परन्तु चेतना अभी लुप्त नहीं हुई थी। किसी ने पूछा—कवि जी कैसी तबियत है? मरणोन्मुख वयोवृद्ध कवि की सरस्वती स्फुटित हुई, बोले—

कुस की बनी संथरिया, धनियां परारि।

सुख सों सोवत नरहरि, पांव पसारि ॥

उपर्युक्त दोहे में धनिया परारि (परकीया) संभवतः श्री गंगा जी के लिये प्रयुक्त हुआ था। उक्त वर्णन संदेहप्रद ही है क्योंकि जिस समय उनके मुख से कविता निकल रही थी अर्थात् उनमें अपनी स्थिति को समझने की चेतना थी फिर वह गंगा के किनारे कुशासन पर कैसे झिटा दिये गये क्योंकि कुशासन केवल मरणप्राय अवस्था में ही दिया जाता है। यह तभी हो सकता है जब कि नरहरि ने स्वयं अपनी इच्छा और आप्रह से कुशासन ग्रहण किया हो।

ब्रह्म^१ (राजा वीरबल)

वीरबल अकबरी-दरबार के नवरत्नों में बड़े ही वाक्चतुर और प्रत्युत्पन्नमति पुरुष थे। उनको यह प्रसिद्धि उनके यथार्थ गुणों के कारण ही प्राप्त हुई थी। किन्तु इतने प्रसिद्ध

१ अकबर ने व्यक्ति विशेष को जिसका नाम महेशदास था 'वीरवर' की उपाधि से विभूषित किया था किन्तु उसकी इस उपाधि ने मुख्य रूप धारण कर उसके वास्तविक नाम में ही संदेह उत्पन्न कर दिया है। भाषा-विकास के विषमीकरण ध्वनि-नियम में दो समान ध्वनिएँ पास-पास नहीं आतीं। उनमें से एक का परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार 'वीरवर' शब्द के दो 'र' से एक के स्थान पर 'ल' प्रचलित हो जाना

पुरुष के जीवन की बहुत सी घटनाओं के लिखे हुए अनुमान से ही काम लेना पड़ता है। किसी भी ग्रंथ में इनके जीवन की प्रारंभिक अवस्था का उल्लेख नहीं मिलता। अबुल-फ़ज़ल, बदाउनी आदि ने वीरवल की जाति का परिचय तो दिया है किन्तु वीरवल ने अपना वचन कहाँ बिताया, इनकी शिक्षा-दीक्षा कहाँ हुई, अकबरी-दरबार में कब और किस प्रकार पहुँचे आदि महत्वपूर्ण प्रश्नों के विषय में वे भी मौन हैं।

नाम, जाति, तथा जन्म-अस्थान निर्धारण

मुंशी देवी प्रसाद ने वीरवल का वास्तविक नाम 'ब्रह्मदास' और ब्राह्मण-जाति का लिखा है।^१ बदाउनी^२ ने इनका वास्तविक नाम 'ब्रह्मदत्त' और 'प्रियर्सन' ने ब्रह्म कवि दिया है।^३ वे किस कोटि के ब्राह्मण थे, यह उन्होंने नहीं लिखा। सेंगर^४ और मिश्रबंधु^५ ने इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है। इतिहासकार के^६ ने उन्हें कनौजी दुबे ब्राह्मण बताया है। किसी ने माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण माना है। चौबे इसलिये माने जाते हैं कि ये हाजिर-जवाबी में बढ़-चढ़ कर थे और उधर चौबे जाति के व्यक्ति भी बहुधा हंसोड़ और मजाक-पसंद कहे जाते हैं। इस संबंध में एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि वीरवल ने अपनी काव्य-रचना और गान-विद्या से दुर्गा देवी को प्रसन्न किया और वरदान पाया कि जो व्यापार ये करेंगे उसी में इन्हें लाभ होगा। ये सांभर नमक भर कर ले गये। इस पर भवानी ने कहा-वाह-तूने मुझसे ही मसखरी की। अब तुझको जो मिलेगा मसखरी से मिलेगा।^७

स्वाभाविक ही है। अतः 'वीरवर' अब 'वीरवल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह संस्कृत व्याकरण सम्मत भी है—रलयोः भेदाः।

१ राजा वीरवल, पृष्ठ १, २, भाग २

२ मुन्तख़बुत्तवारीख़, अनु० लो, भाग २, पृष्ठ १६४

३ जर्नल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, प्रियर्सन, संख्या ५७, भाग २, पृष्ठ ३५

४ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४५१

५ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७२, कवि संख्या १६३

६ हिन्दी-लिटरेचर, पृष्ठ ३५

७ राजा वीरवल, भाग २, पृष्ठ २

नवनीत लिए निरख कर सों नवनीरज सी अंखिया जुग राती
नव पल्लव से फटके अधरा नवकुन्द कली मुख में मृदु दाती
नूतन श्याम तमाल सखी सूलखे छवि होंति हिए ते नहाती
मोहन मूरति नंद लाला की बलाइ लगे 'द्विज' ब्रह्म की छाती ॥२॥

मेरे हये प्रतु संत सो संगु सुआनहि भूलि हुमंगनि लाइत्यो
तुम हूं पुनि क्यों न करो मेरे नाम की एक यह अपराधी रलात्यो
षोरो खरो जन चेरनि में जनु 'ब्रह्म' चले न तऊ तो चलाइत्यो
आपुनी ओर चलाय ले मोहि अरे 'वरवीर' हों तेरी बलाइत्यो ॥³

१ राजा बीरबल, पृष्ठ २, भाग २

२ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९८

३ " " " छंद संख्या ९२

४ मआसिरुल उमरा, पृष्ठ २४९

है कि वीरबल का वास्तविक नाम 'महेशदास' था ।^१ अबुलफज्जल कृत 'आहने अकबरी' से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है ।^२ 'मआसिरुलउमरा' और 'मिफताहुल तवारीख' में भी जो फारसी-भाषा के ग्रंथ हैं, वीरबल का वास्तविक नाम महेशदास और जाति भट्ट ब्राह्मण लिखी हुई है ।^३ पंडित वल्लभ भट्ट द्वारा प्रकाशित 'राजा वीरबल' ग्रंथ में जो मियाँ आज़ादकृत 'नसावे-उदू' और मौलवी अली मोहम्मद कृत 'वीरबल की सवानह उमरी' के आधार पर लिखा गया है, वीरबल को भट्ट जाति का बताया गया है ।^४ कुछ समाचार पत्रों 'ब्रह्मभट्ट-कुलदिवाकर', 'ब्रह्मभट्ट-विजय' के आधार पर वीरबल को ब्रह्मभट्ट, उनके पिता का नाम गंगादास और इनका वास्तविक नाम महेशदास सिद्ध किया गया है । भट्ट ब्राह्मण जाति के अंतर्गत ही आते हैं और वे ब्रह्मभट्ट नाम से विभूषित होते हैं इस कथन का विवेचन कवि गंग की जीवनी-प्रसंग में आगे किया गया है । संभव है इसी-लिये इन्होंने ब्रह्मभट्ट का 'भट्ट' निकालकर अवशिष्ट 'ब्रह्म' ही अपना उपनाम बनाया हो । प्राचीनकाल से ही यह जाति वाक्-चतुर और 'वातफ़रोश' रही है । अतः वीरबल के व्यक्तित्व और तत्कालीन ऐतिहासिक लेखकों तथा अन्य उपर्युक्त प्रमाणिक आधारों पर वीरबल के ब्रह्मभट्ट होने में लेखक को संदेह नहीं है । वैसे तो गुप्ती और प्रसिद्धि-प्राप्त व्यक्ति को सभी अपनी जाति में मिला लेने के लिये तत्पर रहते हैं और इसलिये इनकी जाति के संबंध में इतनी भ्रमपूर्ण बातें फैल गई हैं ।

प्रयाग के किले के भीतर 'अशोक-स्तंभ' पर निम्नलिखित लेख खुदा हुआ है—
'संवत् १६६२, शाके १४६३ मार्ग बदी ५, सोमार, गंगादास सुत महाराजा वीरबल श्री

१ दरबारे-अकबरी, पृष्ठ २९५

२ आहने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ४०४

३ राजा वीरबल दरअसल बरहमने बूद बादशवा दर हिन्द भाट गोयन्द नाम महेश-
दास बूदह अस्त चूं बर मुलाजमात अकबर शाह रसीर व सखुन सासाई व लतीफा गोई
व वज्रलासंजी दरसिल्क मुसाहिबान इन्तिज़ाम याफ़्त व तदरीज ।

मिफताहुलतवारीख, पृष्ठ ९१

मआसिरुल उमरा, पृष्ठ २४४

४ राजा वीरबल, पृष्ठ ४३

तीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितं ।^१ यह लेख राजा वीरबल का है । इसमें उल्लिखित वीरबल के पिता गंगादास का नाम महेशदास से बिल्कुल मिलता-जुलता है जैसा कि पिता-पुत्र के होते हैं । अतः इन्हीं आधार पर हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने भी वीरबल को ब्रह्मभट्ट और उनका वास्तविक नाम महेशदास लिखा है ।

वीरबल का जन्म-स्थान भी विवादग्रस्त है । ढूँढार के लोग इनका जन्म-स्थान अजमेर के एक गाँव में बताते हैं, जो किसी पहाड़ी के नीचे था । मारवाड़ के लोग इन्हें मकराने का समझते हैं जहाँ संगमरमर की खान है और जिसका पता कहा जाता है, वीरबल ने ही सांभर के हाकिम को उस समय दिया था जब अकबर को अजमेर के किले में महल बनवाने के लिये उसकी आवश्यकता हुई थी ।^२ अब्दुलकादिर बदाउनी ने इनकी जन्म-भूमि 'काल्पी' लिखी है । मुंशी देवी प्रसाद ने भी इनका सम्बन्ध 'काल्पी' से सिद्ध किया है ।^३ इस सम्बन्ध में कविवर भूषण की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं :—

द्विज कन्नौज कुल कस्यपी रतनाकर सुतधीर
बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनि तनूजा तीर
धीर वीरबल से जहाँ उपजे कवि अरु भूप
देव बिहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वर तद्रूप ॥^४

उपर्युक्त पंक्तियों में 'कवि अरु भूप' शब्दों में अकबरी दरबार के राजा वीरबल का ही संकेत है । डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी ने इन दोहों के सम्बन्ध में लिखा है कि देव और बिहारीश्वर आदि शब्दों के प्रयोग से कुछ संदेह पैदा होता है । इसके अतिरिक्त भूषण ने वीरबल की मृत्यु के करीब ७०-८० वर्ष के बाद ये दोहे रचे होंगे । उस समय उनको ठीक पता मिला होगा या नहीं इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं है । वीरबल का कानपुर जिले के 'अकबरपुर-वीरबल' में रहना अबुलफ़ज़ल के कथन से सिद्ध होता है । संभवतः वहीं उनका घर भी था क्योंकि 'बुनगाह' शब्द के अतिरिक्त 'खाना' शब्द का भी उसी वाक्य

१ मआसिरुल उमरा, भाग १, पृष्ठ २४४

हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४३

२ राजा वीरबल, भाग २, पृष्ठ २

३ राजा वीरबल, पृष्ठ ४३

४ शिवराज-भूषण, पृष्ठ ८, छंद संख्या २६, २७

में प्रयोग किया गया है। यह स्थान काल्पी से एक दिन की यात्रा की दूरी पर था। पहले संभवतः यह काल्पी सरकार के अंतर्गत था।^१ कुछ लोग वीरबल का जन्म-स्थान 'हमीर-पुर-जालौन' कहते हैं। वस्तुतः काल्पी सरकार को काट-छाँट कर हमीरपुर जालौन और कानपूर जिलों के अन्तर्गत कर लिया गया है। अतएव उपर्युक्त कथनों का इससे समाधान हो जाता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने कविवर भूषण की उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर वीरबल का जन्म-स्थान 'तिकवाँपुर' माना है। तिकवाँपुर कानपूर जिले के अंतर्गत ही है। काल्पी सरकार की पुरानी सीमा के घेरे में यह आ जाता है। इस प्रकार बदाउनी तथा अन्य ऐतिहासिक लेखकों के कथन का विरोध नहीं होता। अजमेर, बुंदेलखंड और मारवाड़ में इनका जन्म-स्थान बताने वालों की उक्तियाँ निराधार और अप्रामाणिक हैं। वीरबल की 'कन्नौजी' की छाप लगी हुई ब्रजभाषा पर दृष्टिपात करने से 'तिकवाँपुर' उनका जन्म-स्थान मान लेने से कोई विरोध नहीं होता। इस प्रकार इन तथ्यों को लक्ष्य कर वीरबल की जन्मभूमि काल्पी-सरकार के अंतर्गत तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) ही मानी जा सकती है। क्योंकि राजा वीरबल का बसाया हुआ अकबरपुर वीरबल नामक गाँव तिकवाँपुर से लगभग दो मील की दूरी पर है। कविवर भूषण के समय में वहाँ पर वीरबल के वंशज अवश्य विद्यमान रहे होंगे तभी भूषण ने तिकवाँपुर का गौरव उक्त स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है।

वीरबल के जन्म-संवत् के विषय में भी मत-भेद है। पं० राम नरेश त्रिपाठी ने इनका जन्म संवत् १५८५ लिखा है।^२ मिश्रबन्धुओं के अनुसार भी वीरबल का जन्म संवत् १५८५ में हुआ।^३ कुछ लोग इनका जन्म संवत् १५८२ में मानते हैं।^४ ऐतिहासिक ग्रन्थों में इनकी मृत्यु की घटना और तिथि का निर्देश स्पष्ट रूप से हुआ है किन्तु उन ग्रंथों से इनकी अवस्था के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। इतना अवश्य मिलता है कि अकबरी

१ राजा वीरवर, हिन्दुस्तानी, पृष्ठ ३, जनवरी १९३१

२ कविता-कौमुदी, भाग १, पृष्ठ २३७

३ मिश्रबन्ध-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७२

४ राजा वीरबल, पृष्ठ ६६

दरबार में आने के पूर्व ये रामचन्द्र भट्ट की सरकार, काल्पी, कालिंजर और रीवा के राजाओं के आश्रय में रह चुके थे। इससे पता चलता है कि इन लोगों के आश्रय में इनके जीवन के कुछ वर्ष अवश्य बीते थे। अकबरनामा से ज्ञात होता है कि संवत् १६२६ में बीरबल ने राजा कजली के वकील को अकबर से मिलाया था जिससे सिद्ध होता है कि इस काल तक उनकी प्रतिष्ठा दरबार में स्थापित हो गई थी। अपने अनुकूल वातावरण बनाने में भी इन्हें कुछ वर्ष अवश्य लगे होंगे। अतः दरबार में इनका प्रवेश संवत् १६२० के लगभग माना जा सकता है। संवत् १५८५ में इनका जन्म संवत् मान लेने से इस समय में इनकी अवस्था ३५ वर्ष की ठहरती है। अपनी प्रतिभा को विकसित तथा शिक्षा-दीक्षा में कुछ वर्ष व्यतीत करने के बाद एवं अनेक राजाओं के आश्रय में रहने के उपरांत उनकी यह अवस्था कोई अधिक नहीं है।

कहा जाता है कि बाल्यकाल में इन्होंने हिन्दी, संस्कृत तथा तत्कालीन राजभाषा फ़ारसी का अध्ययन किया था। इनके पिता ने अपती वंश-परंपरा के अनुसार इन्हें काव्य-कला का ज्ञान तथा अभ्यास भी कराया था। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि आर्थिक परिस्थिति शोचनीय होने पर ये स्थानीय राजा के आश्रय में रहने लगे थे। प्रतिभासंपन्न तो थे ही उनकी प्रसिद्धि भी शीघ्र ही हो गई और इनका जीवन सुखद और संतोषजनक हो गया।^१

अकबरी-दरबार में बीरबल की प्रवेश सम्बन्धी कई जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक जनश्रुति^२ से पता चलता है कि बीरबल बालकाल के बाद तुरन्त ही अकबरी-दरबार में

१ राजा बीरबल, पृष्ठ ६६

२ कहा जाता है कि बालक बीरबल के माँ बाप बहुत गरीब थे और उनका घर एक पहाड़ी के नीचे था। बीरबल पहाड़ी के ऊपर चढ़ कर लकड़ियाँ एक रस्सी में बाँधकर घर ले आते थे। एक दिन वह रस्सी भूल गये। लकड़ियाँ इकट्ठी कर लेने पर रस्सी की याद आई। माँ को उन्होंने आज्ञा दी कि कुत्ते के गले में रस्सी बाँध कर भेज दो। कुत्ते को बीरबल ने पहाड़ी पर बुला लिया और लकड़ियाँ बाँध कर नीचे उतरने लगे। संयोग से अकबर के डेरे उस पहाड़ी के पास लगे थे। उन्होंने बीरबल की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए बालक को अपने पास बलाया। रास्ते में नाला पड़ता था। वह लकड़ी को उसी प्रकार सिर

पहुँच गये थे किन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि बीरबल इसके पूर्व दूसरे राजाओं के आश्रय में रह चुके थे जो ऐतिहासिक ग्रंथों से प्रमाणित होता है।^१ एक यह जनश्रुति भी प्रचलित है कि काशी में विद्योपार्जन के पश्चात् बीरबल दिल्ली गये। वहाँ उन्होंने कुछ फ़ारसी और अरबी सीखी। इसी अवस्था में उनका एक हकीम से परिचय हुआ जिसने उन्हें निरोग कर राजा टोडरमल से मिला दिया। राजा ने उन्हें योग्य और चतुर देखकर अकबर से भेंट करा दी और अकबर ने प्रसन्न हो कर उन्हें दरबार में रख लिया। किन्तु यह किंवदंती भी उपर्युक्त ऐतिहासिक घटना से मेल नहीं खाती, इसलिये असत्य है। संभव है, बीरबल की वाक्चतुरता और बुद्धिमत्ता को लक्ष्य में रख कर इन जनश्रुतियों को प्रचलित कर दिया गया हो। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ 'स्मिथ' तथा 'टॉड' के अनुसार बीरबल अकबरी-दरबार में आने के पहले राजा भगवानदास की संरक्षा में थे और राजा भगवानदास ने ही इनको अकबरी दरबार में पहुँचाया।^२ बीरबल रीवां-नरेश के आश्रय में भी रह चुके थे यह 'दरबारे-अकबरी' तथा 'मुन्तखबुत्तवारीख' से ज्ञात होता है।^३ अकबर गुणियों की खोज में रहता

पर रखे हुए उसे पार कर अकबर के पास पहुँच गये। अकबर ने उसकी पीठ ठोकी और पारितोषिक दिया। किन्तु नाले को पार करने में जब उसे कुछ देर लगी तो अकबर ने उसे फिर बुलाकर उसका कारण पूछा तो उसने निवेदन किया—जहाँपनाह, जब तो मैं हल्का था किन्तु अब कि हुजूर ने मेरे ऊपर अपना हाथ रख दिया था जिससे भारी पड़ गया था। अकबर ने बालक की बुद्धिमत्ता और वाक्चातुर्य से प्रभावित होकर उसे अपने पास रख लिया।

राजा बीरबल, भाग १, पृष्ठ ३

१ टॉड के कथनानुसार बीरबल आमेर नरेश राजा भगवानदास के आश्रय में थे। बाद में उन्होंने बीरबल को नजर रूप में अकबर के यहाँ भेज दिया।

राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ३९०

२ अकबर, पृष्ठ २३७

हिन्दी-लिटरेचर, पृष्ठ ३५

३ दरबारे-अकबरी, पृष्ठ २९५

मुन्तखबुत्तवारीख, भाग २, पृष्ठ ३४५

अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ २८३

ही था। संभव है केवल वीरबल की ख्याति ही अकबरी दरबार में उनके प्रवेश की कारण हो।

अकबरी-दरबार में प्रवेश करने के कुछ काल बाद ही वीरबल ने बहुत शीघ्र ही अपनी वाक्पटुता तथा प्रत्युत्पन्नमति द्वारा अकबर के हृदय पर अधिकार कर लिया। अपने दरबार के हिंदी-कवियों में सर्वश्रेष्ठ जानकर ही अकबर ने इन्हें 'कविराय' की उपाधि दी थी, जो 'मलिकुशशोअरा' (मुल्कुलशोरा) की उपाधि के बराबर थी।^१ ऐसा ज्ञात होता है कि अकबर ने किसी विशेष अवसर पर उनकी कविता से प्रभावित हो यह उपाधि दी थी यद्यपि दरबार के बाहर हिन्दी के महाकवि सूरदास और तुलसीदास वर्तमान थे। अकबर ने वीरबल की योग्यता से प्रभावित होकर पंजाब में नगरकोट के पास एक अच्छी जागीर देकर अमीरों में दाखिल कर लिया था और तत्पश्चात् उनको 'राजा' का खिताब भी दिया। लाहौर के मिर्जा इब्राहिम के भाई मसऊद को पकड़ लाने के उपलक्ष्य में सम्राट् ने इन्हें 'मुसाहिब दानिशवर' (बुद्धिमान मन्त्री) की उपाधि दी थी।^२ अकबर के राज्यकाल के सत्तरहवें वर्ष में अन्य अफसरों के साथ वीरबल हकीम मिर्जा के आक्रमण के विरोध के लिये पंजाब गये।^३ अष्टादहवें वर्ष में अकबर के साथ ये गुजरात के मोर्चे पर और उन्नीसवें वर्ष बादशाह के साथ ही विहार तदर्थ गये।

मुंशी देवीप्रसाद ने मुल्ला अब्दुलकादिर की तवारीख के आधार पर लिखा है कि मुसलमानों ने कांगड़े के इलाके में बड़ा अत्याचार किया। महामाया का मन्दिर लूट लिया। वहाँ के पुजारियों को मारकर जगह-जगह गोहिंसा की और गाय का खून चमड़े

१ मआसिरुल उमरा, पृष्ठ २४५

तबक़ाते-अकबरी, भाग २, पृष्ठ ३९९

हिन्दी लिटरेचर, पृष्ठ ३५

२ तबक़ाते-अकबरी, पृष्ठ ३९९

राजा वीरबल, पृष्ठ ७०

मआसिरुल उमरा, पृष्ठ २४४, २४५

३ अकबरनामा भाग २, पृष्ठ ५११

४ " भाग ३, पृष्ठ ६९

" " पृष्ठ १२३

के मोजों में भरकर शहर में फेंका। इस कारण हिन्दुओं में राजा वीरबल की बड़ी बद-नामी हुई क्योंकि वही वहाँ के जागीरदार थे। वीरबल को इससे बड़ी लज्जा हुई और फिर इस जागीर का उन्होंने दुबारा नाम तक नहीं लिया। पंजाब की अपनी पुरानी जागीर भी छोड़ दी तथा उसके बदले कड़े और कालिंजर के परगने ले लिये।^१

‘मुन्ताखिबुल तवारीख’ से ज्ञात होता है कि रीवां-नरेश अकबर के बुलाने पर भी अभी तक दरबार में उपस्थित नहीं हुए थे। वे उपहारादि अपने बेटों द्वारा दरबार में भेज देते थे। बादशाह जब इलाहाबाद में थे तो उसने पास ही रीवां-राज्य पर-फौज भेजने का आदेश दिया। रीवां-नरेश का पुत्र वहीं उपस्थित था। उसने प्रार्थना की कि फौज की क्या आवश्यकता है किसी मुसाहिव को भेज दीजिये उसके साथ वे उपस्थित हो जायेंगे। बादशाह ने इसके लिये राजा वीरबल को उपयुक्त समझकर भेजा। वीरबल के बांधवगढ़ पहुँचने पर राजा रामचन्द्र ने स्वयं बाहर आकर उनका सत्कार किया और बहुत सम्मान सहित उन्हें अपने महलों में ले गये और तत्पश्चात् उनके साथ बादशाह के पास उपस्थित हुए।^२ वीरबल न्यायप्रिय व्यक्ति थे। उनके इस गुण को लक्ष्मण में रख कर अकबर ने उन्हें संवत् १६४० में ‘न्यायाधीश’ के पद पर भी नियुक्त किया था।^३ इस प्रकार राजा वीरबल अपनी प्रतिभा द्वारा दिन प्रतिदिन उन्नति के शिखर पर चढ़ते गये। दो हज़ारी पद से वे पंचहज़ारी पद पर पहुँच गये थे जो पद साधारण श्रेणी के व्यक्तियों के लिये अनुपलब्ध था। दरबार में उनका यह मान उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही था। अकबर वीरबल को अपने पास से कभी भी अलग नहीं करता था। फतेहपुरसीकरी में जहाँ उसने अपना ‘दिवानेखास’ रखा वहाँ निकट ही राजा वीरबल का महल भी बनवाया था। किसी अन्य दरबारी का महल वहाँ नहीं था। आज भी वीरबल का वह भव्य भवन अकबर वीरबल की प्रगाढ़ मैत्री का स्मरण करा रहा है। केवल वीरबल ही एक ऐसे हिन्दू थे जिन्होंने अकबर के नवीन धर्म ‘दीने-इलाही’ का सदस्य बनकर अकबर को इस

१ राजा वीरबल, भाग १, पृष्ठ १

राजा वीरबल, पृष्ठ ५, हिन्दुस्तानी पत्रिका, जनवरी, १९३१

२ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ६२४, ६२५

३ " " " " पृष्ठ ५८५

प्रकार के धार्मिक विश्वास में प्रोत्साहन दिया था ।^१ उनका यह सहयोग अकबर की अद्भुत मैत्री से उद्भूत था । बीरबल की मृत्यु एक दुःखद घटना थी । बीरबल का अधिकांश समय दरबार में ही बीता था । युद्ध के षडयंत्र आदि से वे पूर्ण भिन्न नहीं थे । यूसुफज़ई के पठानों के विरुद्ध युद्ध में इन्हें जाना पड़ा । संभव है बीरबल की यह प्रतिष्ठा दूसरे दरबारियों को खटकती हो । अतएव किसी षडयंत्र द्वारा इनको उस मोर्चे पर जाना पड़ा अथवा नियमानुसार यह कहना कठिन है । 'तबक्काते अकबरी', 'मुन्ताखिबुल तवारीख', अकबरनामा, मुंशियात-अबुल्फज़ल आदि ग्रंथों में इस युद्ध का सविस्तार वर्णन हुआ है ।

अकबरनामा से ज्ञात होता है कि राजा बीरबल ने 'स्वात' के मैदान में पहुँच कर पठानों को सख्त सज़ा दी । जो बन्दी बने उन्हें बाहर भेज दिया गया और जिन्होंने सामना किया वे मारे गये । अंत में पठानों के पास केवल कराकुर की घाटी बच रही थी ।^२ इससे पता चलता है कि युद्ध का आरंभिक अंश बड़ी सफलतापूर्वक समाप्त हुआ था । किन्तु उसका अंत दुःखद रहा । अबुल्फज़ल ने लिखा है कि कूच के मामले में प्रतिदिन राजा और हकीम में झड़प हो जाती थी । हकीम राजा से द्वेष रखता था । जब शत्रुओं से मुठभेड़ हुई तब भी यह द्वेष बना रहा । जैनखाँ ने उस अवसर पर एक सभा की किन्तु बीरबल उसमें न गये । जैनखाँ स्वयं उनके पास गया और राजा को लेकर सभा में पहुँचा । मंत्रणा तो दूर रही हकीम और राजा में झगड़ा हो गया । जैनखाँ ने दोनों को शान्त किया और एक मन होकर कार्य करने की सलाह दी । किन्तु दोनों ने सुनी-अनुसुनी कर दी । इस भेदभाव का पता पठानों के कानों तक भी पहुँच गया ।^३ 'मुन्ताखिबुल तवारीख' से पता चलता है कि बादशाही फौज़ जब कराकुर घाटी के नीचे पहुँची तो एक व्यक्ति ने सूचना दी कि पठान रात में छापामारों और इसलिये इस तंग घाटी से दिन ही दिन निकल चलना चाहिये । उस समय दिन ढलने पर था और घाटी तीन-चार मील लम्बी थी । राजा ने जैनखाँ को सूचना भी नहीं दी और लश्कर के साथ कूच कर दिया । उन्हें क्या मालुम कि उनके साथ धोखा किया

१ दीने-इलाही, पृष्ठ २९३

२ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ७२७

३ " " पृष्ठ ७२८

गया है। घाटी में पहुँचे ही थे कि पठानों ने टिड्डी-दल की भाँति आ-आकर हथियार और पत्थर फेकने आरंभ कर दिये। अंधकार अधिक था। फौज रास्ता भूल गई। जो अलग हुआ। वह फिर न मिला। शाही सेना की पराजय हुई। कहा जाता है कि वीरबल जान बचना चाहते थे किन्तु पकड़कर मार डाले गये। यह घटना माघसुदी १२ शुक्रवार, संवत् १६४२ की है^१। इस प्रकार राजा वीरबल की मृत्यु परस्पर द्वेष के कारण हुई। अकबर उनका मृत्यु-संवाद सुनते ही चेतनाशून्य हो गया। उसने दो दिन तक भोजन नहीं किया और राज्य के संपूर्ण कार्यों से अवकाश ले लिया। तीसरे दिन मरियम मकानी तथा विश्वासपात्र सेवकों के बहुत समझाने-बुझाने पर वीरबल के हत्यारों से प्रतिशोध लेने के लिये जाना चाहा किन्तु अपने हितैषियों की प्रार्थना पर उसने यह विचार छोड़ दिया। बादशाह अकबर यही कहकर संतोष करता था कि वीरबल जीवन से संपूर्ण बंधनों से छूटकर जीवन-मुक्त हो गये थे। लाश न मिल सकने के कारण उनका संस्कार न हुआ किन्तु अकबर का कथन था कि उनके व्यक्तित्व को देखते हुए संस्कार की कोई आवश्यकता न थी, सूर्य देवता के प्रकाश की अग्नि उसके लिये काफी थी।

इस अवसर पर अकबर की मानसिक स्थिति का परिचय 'मुंशियात अयुल्फ़ज़ल' के उस पत्र से लगता है जिसे उसने गुजरात के सूबेदार नवाब खानखाना को लिखा था जिसका अनुवाद मुंशी देवी प्रसाद ने दिया। इस पत्र का भावार्थ नीचे फुटनोट में दिया गया है।^२ इस पत्र से स्पष्ट होता कि अकबर वीरबल के बहुत निकट था और उसको उनकी मृत्यु पर बहुत दुःख हुआ था। केवल अकबर ही नहीं सारे दरबार पर उनकी मृत्यु का विषाद छा गया था। खानखाना वीरबल की मृत्यु से बहुत दुःखी थे उन्हीं की सान्त्वना और प्रबोधन के लिये अकबर ने संभवतः यह पत्र खान-

१ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ७३०, ७३१

२ वे बड़ी खुशी के दिन थे। प्रत्येक और से विजय की सूचना ही आती थी किन्तु जो लश्कर स्वात और बाजोड़ के विजय के लिए भेजा गया था दुःखद रहा। विजय हो ही चुकी थी और पठान पहाड़ियों में छिप गये थे इसी बीच में हमारे सभा के रत्न, हमारे दूरबार के स्तंभ, हमारे चतुर मुसाहिब राजा वीरबल इस असार संसार से कूच कर गए। इस दुःसह दुःख से हमारी सारी खुशी किरकिरी हो गई। आशा थी कि उनका यह अंत किसी महान् कार्य में होगा। दुनिया-धोके की टट्टी है। खुशी के पीछे शोक है और संपत्ति के पीछे संताप। हमारे हृदय में इतना दुःख है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। किन्तु जो उत्पन्न होता है वह मृत्यु

खाना को लिखा था। 'अकबरनामा' की एक घटना पर दृष्टिपात करने से ज्ञात हो जाता है कि अकबर वीरबल को कितना चाहते थे। संवत् १६४० में एक दिन अकबर हाथी लड़वा रहे थे कि एक हाथी जो मनुष्यों के पकड़ने में चतुर था एक पैदल की ओर झपटा और फिर उसे छोड़ कर राजा वीरबल के पीछे पड़ गया। सूड़ में पकड़कर वह उन्हें खींच ही लेता कि अकबर वेग से घोड़ दौड़ा कर बीच में आगये जिससे राजा के प्राण बच गये। हाथी कई कदम बादशाह के पीछे भी दौड़ा फिर रुक गया।^१ इस घटना से पता चलता है कि वीरबल का जीवन अकबर के लिये कितना उपयोगी था। अकबर पठानों से बदला लेने के लिये स्वयं जाना चाहता था किन्तु लोगों के मना करने पर उसने राजा टोडरमल को शाहजादा सलीम के साथ भेजा जिन्होंने लगभग सभी पठानों को बुरी तरह पराजित किया।^२

बादशाह के दुःख-निवारणार्थ कुछ लोगों ने यह आशा दिलाई थी कि वीरबल की मृत्यु नहीं हुई है। वे युद्ध-भूमि में घायल हो गये थे और उन्हें ढूँढ लाने का बीड़ा भी कई लोगों ने उठाया था। कई लोगों ने अपने को वीरबल के नाम से प्रसिद्ध किया। कहा जाता है कि दो वर्ष पीछे सीठे गाँव के एक ब्राह्मण ने अपने को राजा वीरबल के नाम से घोषित किया। राजधानी में उसे लिवा लाने का प्रबंध किया गया किन्तु वह बीच रास्ते में ही मर गया। बाद में यह खबर उठी कि वीरबल घायल होकर नगरकोट के पहाड़ों पर चले गये हैं और फ़कीर बन गये थे। बादशाह को कुछ विश्वास हो चला था कि सम्भवतः वीरबल हार की शर्मिन्दगी से यहाँ न आते हों किन्तु यह बात भी असत्य निकली। फिर यह प्रवाद उड़ा कि वह कालिंजर में छिपे रहते हैं। वहाँ के करोड़ी को

को भी प्राप्त होता है। इसलिए चिल्लाने की अपेक्षा चुप रहना और घबड़ाने से शांति बेहतर है। तुम भी शान्त चित्त हो कर अपने इरादे से ईश्वर के इरादे को मुख्य समझो। तुम जानी हो। तुम इस दुःखद घटना के पूर्व भी हमारे निज कृपापात्र और सुहृद थे और अब तो तुम स्वयं विचार कर सकते हो कि तुम्हारा होना किस हद तक अनिवार्य है।

राजा वीरबल, भाग १, पृष्ठ १६, १९

१ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ६५४

२ " पृष्ठ ७३३, ७३७

३ राजा वीरबल, भाग १, पृष्ठ २२, २४

आज्ञा दी गयी कि वह उन्हें ढूँढ कर राजधानी में भेज दे। करोड़ी ने बीरबल के संदेह में एक आदमी को छिपा रखा था और उस बेचारे को उसने डर के कारण मरवा डाला और बादशाह को लिख दिया कि वह पोशाक आदि से तो अवश्य बीरबल ज्ञात होता था किन्तु अब वह मर गया। इस सूचना के मिलने पर बादशाह ने और शोक प्रकट किया और करोड़ी को उस अपराध के लिए दंड दिया।

अकबर को अपने जीवन में कभी भी इतना दुःख और अफसोस नहीं हुआ था जितना बीरबल की मृत्यु से हुआ।^१ कहा जाता है, अकबर ने बीरबल की मृत्यु पर कुछ सोरठे लिखे थे। उनमें से निम्नलिखित दो अत्यधिक प्रचलित हैं:—

दीन जान सब दीन एक दुरायो दुसह दुख ।

सो अब हमको दीन कछु नहिं राख्यो बीरवर ॥

पीथल स मजलिस गई तानसेन सू राग ।

हंसवो रमवो बोलवो गयो बीरवर साथ ॥

अकबर ने भी ब्रजभाषा में भी कुछ छंद लिखे थे जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इस असह्य दुःख के अवसर पर अकबर ने अपने हृदय के उद्गार प्रकट किये हों तो उसे असंभव नहीं कहा जा सकता। किन्तु उपर्युक्त दूसरे छंद की घटनाएँ कुछ सन्दिग्ध हैं। यदि इसका यह अर्थ है कि पृथ्वीराज (पीथल) और तानसेन की सत्संगति से उसका विछोह हो गया था और अब बीरबल की मृत्यु पर उसकी (अकबर) सारी प्रसन्नता, आनंदादि लुप्त हो गये तो इसमें काल-दोष आ जाता है क्योंकि पृथ्वीराज संवत् १६५७ तक जीवित थे।^२ यदि यह अर्थ लिया जाय कि बीरबल की मृत्यु पर अकबर के जीवन में पीथल की सत्संगति और प्रेम की कोई उपयोगिता ही नहीं रह गई थी क्योंकि उसके समस्त सुखों का अंत हो गया था, तो ठीक नहीं जान पड़ता है। अतएव इसे अकबर कृत नहीं माना जा सकता। आचार्य केशवदास ने बीरबल की मृत्यु का वर्णन एक सवैये में किया है:—

पाप के पुंज पखावज केशव शोक के शंख सुनै सुखमा में
भूठे की मालर म्हाँफ अलोक की आवाँफ यूथन जानी जमा में

१ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ७३३ (फुट नोट)

२ डिंगल म बीररस, पृष्ठ ४५

भेद की भेरी बड़े डर के उफ़ कौतुक भो कलिके कुरमा में
जूमत ही वलवौर बजे बहु दारिद के दरवार दमामें ॥^१

पारिवारिक जीवन

‘अकबरनामा’ में वीरबल के पुत्रों का उल्लेख हुआ है। उनके बड़े पुत्र का नाम ‘लाला’ था। वीरबल के मृत्यु के बाद ‘लाला’ ने अपना व्यय आय से बहुत अधिक बढ़ा लिया था और इतनी आय जब दरबार से न हुई तो उसने सन् १६०१ के अन्त में बादशाह को मुक्ति का प्रार्थनापत्र देकर विदा चाही और बादशाह ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।^२ किन्तु ‘इकबालनामा’ से पता चलता है कि लाला बादशाह की नौकरी से त्यागपत्र देकर इलाहाबाद शाहज़ादा सलीम के पास चला गया था। राजा वीरबल के एक पुत्र का नाम हरमराय मिलता है।^३

कहा जाता है कि वीरबल का विवाह काल्पी के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-वंश में हुआ था। वीरबल काल्पी सरकार के निवासी थे। इसका उल्लेख पहले हो चुका है। उनके जीवन का आरंभिक काल वहीं बीता था। अतएव यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका विवाह काल्पी के किसी घराने में ही हुआ होगा।

वीरबल की पुत्री के विषय में, जनश्रुति है, कि वह बहुत चतुर और बुद्धिशालिनी थी तथा अवसर-अनवसर वीरबल की सहायता करती थी। इसकी पुष्टि ‘दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता’ से होती है। ‘श्री गुसाईं जी की सेवक वीरबल की बेटी तिनकी वार्ता’ में उसकी वैष्णव-भक्ति और बुद्धिमता का वर्णन हुआ है। वीरबल की बेटी श्री गुसाईं विट्ठलनाथ की सेविका थी और कथा सुनने के लिये प्रति दिन उनके पास जाती थी।^४

१ कविप्रिया, छंद संख्या ७७, पृष्ठ ४७

२ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ १२००

३ अकबरी दरबार, भाग २, पृष्ठ २५६

४ “एक दिन श्री गुसाईं जी आगरे पधारे हतै वीरबल की बेटी कूं श्री गुसाईं जी के दर्शन साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम के भये जब वीरबल की बेटी श्री गुसाईं जी की सेवक भई और नित्यक सुनवे कुं श्री गुसाईं जी के पास जाती और कथा में जो सुनती सो मन में लिख राखती। एक अक्षर भूलती न हती और दिवस रात वा कथा को अनुभव करत हुती एक दिन वीरबल कूं बादशाह ने पूछा के साहब को मिलनों कैसे होवे है ये निश्चयकर के हमकुं कहो तब वीरबल

इस वार्ता से यह भी स्पष्ट होता है कि अकबर वीरवल के साथ श्री गुसाईं विठ्ठलनाथ से मिला था। वह घटना लगभग संवत् १५७६ की होगी जब अकबर धार्मिक सत्यता की खोज में संलग्न था और अनेक साधु, संतों, महात्माओं से मिलकर जीवन के वास्तविक तत्व को जानना चाहता था।

वीरवल और वैष्णव-धर्म

वीरवल की उपलब्ध रचनाओं में ऐसे अनेक छंद मिलते हैं जिनमें कृष्ण की बाल-लीलाओं, मुरली आदि का वर्णन हुआ है। वल्लभ-संप्रदाय में कृष्ण की बाल-लीला का अत्यधिक महत्व है और वही रूप उस संप्रदाय के भक्तों का उपास्य है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में कई ऐसी कथाएँ मिलती हैं जिनसे पता चलता है कि वीरवल वल्लभ-संप्रदाय के अनेक प्रभावशाली भक्त-कवियों और महात्माओं के सम्पर्क में आये थे। 'वीरवल की बेटी की वार्ता' के आधार पर पहले कहा जा चुका है कि वीरवल अकबर के साथ गोस्वामी विठ्ठलनाथ से मिले थे। उक्त वार्ता ग्रंथ की 'रूपमंजरी' वार्ता में आया है कि अकबर 'अष्टछाप' के प्रमुख कवि नंददास से भी मिला था। वीरवल भी इसी संबंध में नंददास से मिले थे।^१ इसी वार्ता-ग्रंथ में चाँपाभाई अधिकारी के संबंध में लिखा है कि वे इनके साथ वल्लभ-संप्रदाय के प्रतिष्ठित पद पर थे। एक बार गुसाईं जी उनके साथ गुजरात गये थे वीरवल उसी अवसर पर चाँपाभाई से मिले थे।^२

ने सब पंडित और महतन सुं पूछी परन्तु वितकी कही कछु नजर में आई नहीं तब बहुत चिंतातुर भये..... जब बेटी ने कही याको उत्तर श्री गुसाईं जी देवेंगे जग वीरवल श्री गोकुल आए। श्री गुसाईं जी कुं वीनती करी तब श्री गुसाईं जी ने आज्ञाकरी जो उत्तर पादशाह कुं एकान्त में देऊँगे। जब वीरवल ने पादशाह सों कहीं तब पादशाह श्री गोकुल आये वीरवल हुं संग आये....." दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता, पृष्ठ १३१, १३२

१ तब पृथ्वीपती ने विचार कियो जो आपने ब्रज में जानो और नंददास जी कुं मिलनो तब पृथ्वीपति सहकुटुम्ब ब्रज में आये गोवर्धन में डेरा किये और नंददास जी के पास वीरवल कुं पठाये और कही जो नंददास जी कूं पूछ आवो अब हम तुम कूं मिलवे आवें के तुम हम कुं मिलवे आवोगे तब नंददास जी ने कही हम परसू के दिन मानसी गंगा स्नान करवे कुं आवेंगे सो उहां बादशाह कुं मिलेंगे.....

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, रूप मंजरी की वार्ता, पृष्ठ ४६२

२ एक समय श्री गुसाईं जी गुजरात पधारे रस्ता में वीरवल मिले तब वीरवल ने

एक अन्य 'साहूकार के बेटा की बहू' वार्ता से पता चलता है कि श्री गुसाईं जी ने एक तुर्क और एक हिन्दू बहू के न्याय का भार अपने ऊपर लिया था। इसी सम्बन्ध में बीरबल श्री गुसाईं विट्ठलनाथ से मिले थे।^१ इस प्रकार इन वार्ताओं से स्पष्ट होता है कि बीरबल कई बार वल्लभ-मत के संचालकों तथा अधिकारी-वर्ग के संपर्क में आये थे। इन संपर्कों का यथेष्ट प्रभाव बीरबल के व्यक्तिगत जीवन तथा धार्मिक आचार-विचार पर पड़ा और उक्त वार्ता-ग्रंथ की 'छीत स्वामी की वार्ता' से बीरबल की वैष्णव-धर्म में आस्था का पूर्ण प्रमाण भी मिल जाता है जिसमें लिखा है कि छीत-स्वामी बीरबल के पुरोहित थे।^२ इसी वार्ता में आगे दिया है कि अकबर छिपे ढंग से जन्माष्टमी के अवसर पर गोकुल गया था। बीरबल पहले ही अकबर की आज्ञा लेकर उस अवसर पर गोकुल पहुँच गये थे। उत्सव की उस भीड़ में श्री गुसाईं विट्ठलनाथ ने अकबर को पहचान लिया।

चाँपाभाई सुं पूंछी जो श्री गुसाईं जी शीतकाल में क्यूं परदेश पधारे हैं तब चाँपाभाई ने कही जो करज बहुत है तब बीरबल ने कही जितनो द्रव्य चाहिए इतनो तैयार है श्री गुसाईं जी कुं पाछे श्री गोकुल पधराय ले जावो.....

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, चाँपाभाई अधिकारी की वार्ता, पृष्ठ ४७३

१ तब वा तुरुक कुं और वा बहु कुं बुलायो और सब समाचार पूछें और सुन के पृथ्वीपति कुं खबर कराई जो हम याको न्याय पंदरे दिन में कर देवेंगे ये सुनके पृथ्वीपति प्रसन्न भयो और कही जो एक महिना के भीतर जो श्री गुसाईं जी करें सो न्याय मेरे को कबूल है ऐसे कह के बीरबल दीवान कुं श्री गोसाईं जी के पास पठायो सो बीरबल ने आय के वीनती करी.....

साहूकार के बेटा की बहू की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ १६३

२ सो वे छीत स्वामी बीरबल के पुरोहित हते सो वे बीरबल के पास बसौंधी लेवे कुं गये तब सवार के समें छीत स्वामी ने यह पद गाए 'जै वसुदेव किये पूरण तप सोई फल फलित श्री वल्लभ देह' ये पद सुनके बीरबल बोले जो मैं तो वैष्णव हूं परन्तु ये बात देशाधिपति सुनेंगे तो तुम कहा जवाब देओगे वे तो मलैच्छ हैं..... जब ये बात देशाधिपति ने सुनी तब बीरबल सुं पूंछो जो तुम्हारे पुरोहित क्यों रिसाय गये... तब देशाधिपति ने कही... ये बात विचार करते तुम्हारे पुरोहित की सब बात सांची है सो तुमने क्यों विचार न करयो.....

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, छीतस्वामी चौबे, तिनकी वार्ता, पृष्ठ २२,

फिर लौटने पर अकबर ने वीरबल से पूछा कि तुमने क्या दर्शन किया ? वीरबल ने उत्तर दिया श्री गुसाईं जी पालना पर नवनीत प्रिया को झुला रहे थे । अकबर ने कहा—यह झूठ है, श्री गुसाईं जी को नवनीत प्रिया जी पालना पर झुला रहे थे । तुमको इस स्वरूप का ज्ञान इसलिये नहीं हुआ क्योंकि तुमको अपने गुरु छीतस्वामी में प्रीति नहीं है ।^१ अतएव इस वार्ता से यह स्पष्ट है कि छीत स्वामी वीरबल के गुरु थे और उत्सवों पर वे श्री नवनीत-प्रिया जी के दर्शन के लिये जाते थे और इसी कारण अकबर का संपर्क भी वल्लभ मताधिकारियों से रहा करता था ।

राजा वीरबल की संध्योपासना की अनेक वस्तुएँ पटना के संभ्रांत सेठ राय बहादुर राधाकृष्ण जालान के यहाँ मिली हैं जिनका विस्तृत वर्णन इतिहासवेत्ता डॉ० वेणी प्रसाद ने एक निबंध 'राजा वीरबल' में दिया है । पंचतन्त्र, ताम्रकुण्ड, आचमनी, नृत्य-गोपाल की मूर्ति आदि वस्तुओं के चित्र इस लेख में दिये हुए हैं जिनसे वीरबल की धार्मिक भावना पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है । अतः इतना निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि वीरबल वैष्णव-मत के अंतर्गत कृष्ण-भक्ति शाखा के उपासक थे और वल्लभ-संप्रदाय से इतना लगाव होने के कारण यही जान पड़ता है कि वे कृष्णश्रयी शाखा में वल्लभ-मत में विशेष आस्था रखते थे । वीरबल अकबर द्वारा स्थापित नवीन धार्मिक मत 'दीनेइलाही' के सदस्य भी थे जिस मत को इन्होंने अपनी धार्मिक भावनाओं से प्रभावित किया था ।

१ एक दिन वीरबल देशाधिपति सों रजा ले के श्री गोकुल में जन्माष्टमी के दर्शन कुं आयो पाछे वेष पलटाय के देशाधिपति हूं छाने छाने आयो तब जन्माष्टमीके पालना क दर्शन करे । मनुष्य की भीड़ में तब देशाधिपति कुं श्री गुसाईं जी बिना और कोई ने पहिचान्यो नहीं तब छीतस्वामी कीर्तन करत हुए और श्री गुसाईं जी श्री नवनीतप्रिया जी कुं पालना झुलावते हते तब देशाधिपति आगरे आये फेर दूसरे दिन वीरबल हुं आए तब देशाधिपति ने वीरबल सूं पूछी जो कहा दर्शन किए तब वीरबल ने कही श्री नवनीतप्रिया जी पालना झूलते हते और श्री गुसाईं जी झुलावते हते । तब देशाधिपति ने कही ये बात झूठी है श्री गुसाईं जी पालना झूलते हते और श्री नवनीतप्रिया जी झुलावते हते मोहुं ऐसे दर्शन भए हैं तब वीरबल ने कही मोकुं ऐसे दर्शन क्यूं नहीं भये तब देशाधिपति ने कही तुमकूं गुरु के स्वरूप को जान नहीं है ऐसे न सो तुमरी प्रीति नहीं है

दो सौ बावन वैष्णवों की बार्ता, छीत स्वामी चौबे तिनकी वार्ता, पृष्ठ २३, २५

कहा जाता है कि राजा वीरबल की मृत्यु के अनन्तर अकबर ने उनके बड़े पुत्र से जो संस्कृत-विद्या का बड़ा पंडित था, पूछा कि राजा के साथ कितनी रानियाँ सती हुईं । उसने उत्तर दिया—बहादुरी, दातारणी और बुद्धिमत्ता, ये तीन तो सती हों गईं और चौथी नेकनामी शेष रह गई । बादशाह ने इस उत्तर को बहुत पसन्द किया और कहा—सच है इसको रहना ही चाहिये था । इसके रहने में कोई दोष नहीं, नहीं रहती तो दोष था ।^१ उपर्युक्त वार्तालाप द्वारा वीरबल के गुणों पर प्रकाश पड़ता है । वीरबल की दानशीलता का परिचय कई सूत्रों से मिलता है । यह प्रसिद्ध है कि वीरबल ने एक बार आचार्य केशवदास को एक सवैये पर छः करोड़ दाम की हुंडियाँ दे दी थीं । ये केशवदास औरछानरेश इन्द्रजीत के आश्रय में रहते थे और अकबर के पास किसी कार्य से गये थे और तभी रुपये की आवश्यकता होने पर राजा वीरबल से मिले थे किन्तु वीरबल ने भीतर से कहला भेजा कि उन्हें अजीर्ण है बाहर नहीं आ सकते । केशवदास ने यह सुनकर निम्न-लिखित दोहा उनके पास लिखकर भेजा :—

जस जाच्यो सब जगत को भयो अजीरण तोय
अपजस की गोली दऊं ततकाले सुध होय ॥^२

वीरबल इसको पढ़ते ही बाहर चले आये और केशवदास ने उसी अवसर पर निम्न-लिखित सवैया पढ़ा जिसका भाव है—विधाता ने तीनों लोकों तथा विविध प्रकार की रचना कर वीरबल जैसे व्रतधारी, वीर पुरुष की रचना की और उनकी योग्यता के कारण उन्हीं को अपना 'करतारपना' देकर स्वयं सृष्टि-रचना से अवकाश ग्रहण कर लिया :—

नाक रसातल भूधर सिंधु नदी नद लोक रचे दिसि चारी
केसव देव । अदेव रचे नर देव रचे रचनान निवारी
रचि के नृपनाथ बली बलवीर भयो कृतकृत्य बड़ो व्रतधारी
दे करतार पनो कर तोहि बई करतार दुहूँ करतारी ॥^३

कहा जाता है कि वीरबल ने इसी सवैये पर प्रसन्न होकर अपने शाली कमाल में बंधी हुई छः करोड़ दाम की हुंडियाँ केशवदास को भेंट कर दी थीं । यद्यपि उक्त दान का

१ राजा वीरबल, भाग २, पृष्ठ १८

२ राजा वीरबल, पृष्ठ २६

३ कविप्रिया, केशवदास, पृष्ठ ४७, छंद ७८

कथन अत्युक्तिपूर्ण है फिर भी इससे वीरबल की दानशीलता का परिचय तो मिलता ही है।

अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि गङ्ग ने राजा वीरबल के गुणों की प्रशंसा कई छन्दों में की है। राजा वीरबल ने सब हाथी-घोड़ों का दान कर दिया। केवल एरावत और सूर्य के रथ के दोनों घोड़े ही बच रहे थे। सारे स्वर्ण को भी दे डाला केवल सालिग्राम में लगा हुआ सोना ही शेष रहा :—

एक बचो सुरराज हथीय सुता बल ढाडव और न होनो
और सबै बकसै बलवीर बचे रवि के रथ हय दोनो
गंग कहै कर उन्नत देखि सुमंगन मौज गुनी तजि मोनो
लंक सुमेरु लुटाई दई है रह्यो मुख सालिग्राम को सोनो ॥^१

निम्नलिखित छंदों में गंग ने वीरबल की दानशीलता, प्रतिष्ठा तथा मजलिस की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है :—

दान कृपान सुजान पनौ तू जगत को जीतव जीतन आयौ
गंग कहै सब साहिबी के अंगते ही मनो पुरहूत पठायौ
वीरवर नृप तेरी बराबरि और विरंचि न दूजो बनायौ
साहू के सोच सिवाहू के सूल सचीहू के साथ सपूत न जायौ ॥^२

वीरबल की उस मजलिस का वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकती, कहते हुए गंग ने निम्नलिखित ढंग से इसका वर्णन किया है :—

मालती शंकुतला सी को है कामकंदला सी हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरे
ऐल फैल फिरत खवास खास आस पास चोवन की चहल गुलाबन की गागरे
ऐसी मजलिस तेरी देखी राजा वीरवर गंग कहै गूंगी है के रही गिरा गरै
महि रह्यो मागधनि गीत रह्यो ग्वालियर गोरा रह्यो गोरना अगर रह्यो आगरे ॥^३

एक छंद का भाव है, यश कैलाश-पर्वत से चलकर कहीं जाते हुए गंगा-सागर के पास कवि को मिल गया जिसने वीरबल के प्रताप का बखान किया और अपना गुण प्रकट करते हुए वीरबल के प्रति अपनी दासता प्रकट की :—

१ देखिए, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३६

२ " " " " " छंद संख्या १२५

३ देखिये गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३९

आवत हुतो शिवसैल ते गिरीश जाचे मिल्यो हुतो मोहि जहां सागर सगर का
कविन की रसना की पालकी में बैख्यो देख्यो साथ सोहे रावरे प्रताप तेज वर को
गंग हम पूछी तुम को हो कित जैहो तब हमसो संदेसो कह्यो बड़े थर को
जस मेरो नाम मोहि दसो दिसकाम मेरो कहियो प्रनाम हों गुलाम वीरवर को ॥^१

इस प्रकार गंग ने वीरबल की उदार मनोवृत्ति और प्रतिष्ठा का सुन्दर वर्णन
किया है। वीरबल के परवर्ती कवियों ने भी उनकी प्रशंसा में कई छंद लिखे हैं। चिन्ता-
मणि कवि ने निम्नलिखित शब्दों में राजा वीरबल के दान का उल्लेख किया है :—

डर कै विडर ते न डर के रतन खान लंका दीप ढरकै फणीन्द्र फण फरके
वर कै वारि ईश खटकै खजानो श्री कै श्री निवास सोई रहे सिन्धु मध्य करके
पर कै पवंग उड़ सूरज को कै विमान जब वीरबल दान घटै वर करके
चिन्तामणि चटके सुमेरगिरि सरके कुबेर जिमि करके सुरेश जिय भरके ॥^२

कवि होलराय ने भी वीरबल की दानशीलता के गुणों का परिचय दिया है।

दिल्ली जैसा राजदरबार, आगरे के जैसा नगर खानों में खानखाना, वजीरों में टोडर-
मल, राजाओं में राजा मान के जैसा होना दुर्लभ है। गंग के समान गुणी, तानसेन के
समान संगीतज्ञ, वीरबल के समान दानी और सारे पृथ्वीमंडल पर जलालुद्दीन अकबर के
जैसा सम्राट् का पाना कठिन है :—

दिल्ली से न तखत वखत मुगलन से न है है न नगर कहूँ आगरे नगर से
खानन में खानखाना राजन में राजामान है है न वजीर कहूँ टंडन टोडर से
गंग से न गुनी तानसेन सो न तानधारी कानूनगो बूचन न दाता वीरवर से
सात दीप के मंझार सात हूँ समुद्र पार है है न जलालदीन गाजी अकबर से ॥^३

किसी अज्ञात कवि ने भी वीरबल के इस गुण की प्रशंसा की है :—

वरवीर करोरि दई तिन्हको जिहि पाए नहीं कबहूँ दस कोड़े
रंकन संपति सिन्धु समथि कीए द्विज पुंजनि वाजि सगोड़े

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११८

२ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त छंद

३ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ३६९

इस प्रकार इन कवियों की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वीरबल में दानशीलता का गुण प्रधान था और इसी कारण इनकी प्रसिद्धि और भी हो गई थी। यह शंका संभवतः हो सकती है कि वीरबल अपनी इस दानशीलता को निवाहते कैसे होंगे। छः करोड़ की हुंडियों का दान न सही फिर भी विस्तृत दान सीमित आय के व्यक्ति के लिये संभव नहीं। हो सकता है कि इनके बड़े दान अतिरंजित रूप में प्रचलित हो गये हों किन्तु वीरबल दानी थे इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उस शंका का समाधान 'तवारिख मुन्ताखिबुल लुबाब' के आधार पर उल्लिखित मुंशी देवीप्रसाद के कथन से हो जाता है कि वीरबल को अपनी प्रत्युत्पन्नमति तथा सूक्तबूक्त के कारण बादशाह उन्हें सदैव मूल्यवान वस्तुएँ भेंट करते रहते थे। वीरबल का बादशाह पर बहुत प्रभाव था।^१ इस प्रकार वीरबल के पास लाखों की संपत्ति सदैव बनी रहती थी।

वीरबल केवल दानशील ही न थे। उनकी कर्तव्यपरायणता तथा न्यायपटुता भी बढ़ी-चढ़ी थी जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। वीरबल की इन्हीं विशेषताओं के कारण अकबर उनकी और आकृष्ट था। राजकीय जीवन की शुष्कता में वीरबल की हास्योद्दीपक उक्तियाँ और वाग्बिदग्धता ने अकबर को उनके बहुत निकट कर दिया था। अकबर और वीरबल के इसी निकट सम्बन्ध के फलस्वरूप बहुत से चुटकुले चल पड़े हैं। इन चुटकुलों के संग्रह भी कई ग्रंथों में स्वतंत्र रूप से मिलते हैं। 'अकबर वीरबल विनोद', 'वीरबल के चुटकुले', 'अकबर-वीरबल' आदि ऐसे ही संग्रह हैं। इन चुटकुलों का आधार केवल जनश्रुति है किन्तु इन कहानियों द्वारा वीरबल की बुद्धिमत्ता, वाक्चातुर्य और प्रत्युत्पन्नमति का परिचय मिलता है। इस सम्बन्ध में डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी की निम्नलिखित पंक्तियाँ ठीक जान पड़ती हैं^२ :—

‘कविताओं के अतिरिक्त वीरवर की पहेलियाँ और चुटकुले भी आजकल चल रहे हैं। यद्यपि वे हँसमुख, खुशमिजाज, मजाकपसंद थे किन्तु उससे यह नहीं सिद्ध होता कि वे ही उन सब चुटकुलों के जन्मदाता हैं जो उनके नाम से आजकल चल रहे हैं। कौन जाने उनका दूसरों के साथ कैसा मजाक रहता था किन्तु कम से कम बादशाह के साथ तो उनका विनोद यह परिहास बहुत ही कम और शिष्टतापूर्ण रहता होगा। कारण यह है कि अकबर स्वयं बड़ा गम्भीर, मितमाषी और गुरुवृत्ति का पुरुष था। अतएव

१ राजा वीरबल, भाग २, पृष्ठ २९ .

२ राजा वीरबल, हिंदुस्तानी पत्रिका, पृष्ठ १४ .

वीरवर को विदूषक अथवा भांडू समझना असंगत और अन्यायमूलक होगा। उनकी कविताओं में भी भड़ैती की पुट नहीं पाई जाती। ...वीरबल की वाक्चतुरता का आश्रय लेकर मसखरों ने उनके नाम से तरह तरह के भले बुरे मजाक गढ़ डाले हों तो कोई आश्चर्य नहीं।” मुन्शी देवीप्रसाद ने अपनी पुस्तक ‘राजा वीरबल’ में अकबर-वीरबल सम्बन्धी कुछ कहानियाँ दी हैं। संभव है अकबर की कुछ समस्याओं की पूर्ति वीरबल ने किसी समय की हो क्योंकि समस्या-पूर्ति सम्बन्धी कुछ छंद उसकी रचनाओं में उपलब्ध होते हैं।

तानसेन

हिन्दी-साहित्य के कुछ ही इतिहासकारों ने अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन को कवि के रूप में स्वीकार किया है। हिन्दी-साहित्य के प्राचीन अन्वेषक मिश्र-बंधु^१, ठा० शिवसिंह सेंगर,^२ एडविन-ग्रीब्ज^३ तथा एफ० ई० के० ने तानसेन का परिचय अपनी रचनाओं में दिया है। हिन्दी-साहित्य के अधिकांश लेखकों-पं० रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० श्यामसुन्दर दास, डॉ० रामशंकर शुक्ल ‘रसाल’ आदि ने तानसेन का उल्लेख अपने इतिहास-ग्रन्थों में नहीं किया है। तानसेन को केवल एक संगीतज्ञ कहकर कला के संकुचित क्षेत्र में सीमित रखना उनके महत्व को कम करना होगा। ‘तुजुक जहाँगीरी में जहाँगीर ने तानसेन को अपने पिता के दरबार का सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ और उच्च कोटि का कवि होने का उल्लेख किया है।^५ तानसेन की उपलब्ध रचनाओं में काव्य-सौष्टव और भाषालालित्य का पूरा परिचय मिलता है। ‘अष्टछाप’ तथा अन्य कई भक्त-कवियों की दृष्टि

१ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

३ ए स्केच आव् हिन्दी लिटरेचर

४ हिन्दी लिटरेचर, पृष्ठ ३६

५ Of these poets the chief was Tansen Kalawant who was without a rival in my father's service (in fact there has been no singer like him in any time or age). In one of his compositions he has likened the face of a young man to the sun and the opening of his eyes to the expanding of the Kanwal and the exit of the bee. In another place he has compared the side glance of the beloved one to the motion of the Kanwal when the bee alights on it.

Tuzuk-Jahangiri, Volume I, page 413.

काव्य-रचना की और नहीं थी। भक्ति-भाव का प्रदर्शन उनका प्रधान लक्ष्य था और काव्य-रचना गौण। किन्तु आज उन्हीं कवियों की रचनाएँ हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इसी प्रकार तानसेन उच्चकोटि के संगीत-कलाकार थे और अपने पदों द्वारा संगीत-कला का प्रदर्शन उनका मुख्य ध्येय था तथा काव्य-रचना गौण। किन्तु उनके पदों की भाव-सुषमा तथा भाषा-सौन्दर्य को दृष्टि में रखते हुए उन्हें हिन्दी के कवि के रूप में भी स्वीकार किया जाना चाहिये। उनकी सांगीतिक रचना हिन्दी-काव्य की दृष्टि से महत्वशाली है। ऐसा ज्ञात होता है कि तानसेन के संगीत-गुण की प्रशंसा ने उनके उच्च कवित्व-गुण को धूमिल कर दिया था। प्रसिद्ध भाषा-तत्त्ववेत्ता डॉ॰ सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने तानसेन के हिन्दी-कवि के रूप का पूर्ण समर्थन किया है।^१

तानसेन के इसी कवि-रूप का अकबरी-दरबार के अन्य प्रसिद्ध कवियों के साथ ववेचन करना लेखक का ध्येय है और इसीलिये उन कवियों की जीवनी के साथ यहाँ पर तानसेन का जीवन-चरित भी प्रस्तुत किया जा रहा है। तानसेन उन व्यक्तियों में थे जिनकी कीर्ति श्री आज भी भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली हुई है। तीन सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं किन्तु उनकी संगीत-कला की ख्याति अजुगुग है। इतने बड़े कलाकार के जीवन का कई घटनाएँ आज भी संदेहात्मक बनी हुई हैं। उनके जीवन की केवल कुछ बातें ही ऐतिहासिक ग्रन्थों, कवियों की रचनाओं और कवि के आत्म-चारित्रिक उल्लेखों से प्रमाणित होती हैं। विश्वस्त सूत्रों के अभाव में इनके जीवन के कुछ तथ्यों के निर्धारण के लिये अनेक प्रचलित जनश्रुतियों का भी आश्रय लेना पड़ता है। यहाँ इन्हीं आधारों पर तानसेन की जीवनी पर विचार किया जायगा।

तानसेन के जन्म-स्थान के विषय में किसी भी इतिहास-लेखक ने कुछ भी नहीं लिखा है। उनकी कब्र ग्वालियर में अब भी मौजूद है। वहीं पर तानसेन की कब्र की बगल में उनके गुरु गौस मुहम्मद की कब्र भी पाई जाती है। संभव है, तानसेन की जन्मभूमि ग्वालियर ही हो और वहीं पर बाल्यावस्था में गौसमुहम्मद से उनका परिचय हुआ हो। एक किंवदन्ती^२ से पता चलता है कि तानसेन वेहट गाँव में गौसमुहम्मद की

१ नशनल फ्लैग एंड अदर एसेज, तानसेन, पृष्ठ ७७

२ आँधी जोरों से चल रही थी। रिमझिम रिमझिम पानी बरस रहा था। एक व्यक्ति वगपूर्वक चला जा रहा था... वह चलता ही गया आखिरकार वह एक साधुओं की टोली के पास पहुँचा। एक साधु जो वेशभूषा से मुसलमान दिखाई देता था,

दुआ से उत्पन्न हुए थे। बचपन में इनका नाम 'तन्नु' और उनके पिता का नाम 'मकरन्द पांडे' था। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने तानसेन को ग्वालियर-निवासी और उनके पिता का नाम 'मकरन्द पांडे' लिखा है।^१ कुछ विद्वानों ने इनका नाम त्रिलोचन मिश्र भी दिया है और इसी आधार पर इन्हें तन्ना मिश्र के नाम से भी कहा जाता है।

जन्म-काल

शिवसिंह सेंगर ने तानसेन का जन्म संवत् १५८८ दिया है परन्तु किसी प्रामाणिक आधार का उल्लेख नहीं किया है।^२ इसी तिथि को हिन्दी के अन्य इतिहासकारों ने भी अपना लिया है। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने तानसेन की जन्मतिथि संवत् १५७८ मानी है। 'अकबरनामा' से स्पष्ट होता है कि तानसेन संवत् १६१६ में रीवा

भोपड़ी के बाहर लकड़ी की चौकी पर बैठा था... आगन्तुक व्यक्ति पीर साहब के पैरों पर गिर पड़ा... पीर साहब ने उससे पूछा क्या चाहते हो आगन्तुक ने कहा, मैंने कई देवी देवताओं की मानताएँ की हैं पर मेरी मुराद पूरी नहीं हुई... मैं निःसंतान हूँ। पीर साहब को इस पर तरस आ गया और कहा जा तेरे घर पुत्र होगा और ऐसा पुत्र होगा जिसका नाम इस दुनिया में अमर हो जाएगा पीर साहब ग्वालियर के सुप्रसिद्ध पीर गौस हजरत थे और आगन्तुक मकरन्द पांडे। पीर साहब की दुआ से मकरन्द पांडे के घर एक वर्ष बाद पुत्र हुआ। बेहट गाँव में बड़ी धूमधाम हुई... बच्चा बड़ा हुआ पर वह बोल न सकता था। बच्चे का नाम तन्नू रखा गया था। तन्नू बढ़ते बढ़ते आठ वर्ष का हुआ पर वह फिर भी गूंगाही रहा।... एक दिन कुछ साधुओं की टोली गाँव में आई। मकरन्द पांडे तन्नू को लेकर साधु मंडली में गए। साधु महाराज ने आज्ञा दी 'पास ही में जो शिव जी का मन्दिर है उसमें जाकर प्रतिदिन ताजा दूध उस मूर्ति पर चढ़ाया करो...' एक दिन बरसात में पिता पुत्र दोनों मन्दिर में पहुँचे। दैवयोग से बिजली चमकी, मंदिर काँप उठा। तन्नू डर से काँप उठा उसकी चीख निकल गई। पांडे की साधना पूरी हुई। अब तन्नू बोलने लगा।

अमर कलाकार तानसेन, विलावल अंक, संगीत कला, पृष्ठ ५८, ५९

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

मि बंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

दरबार से अकबरी दरबार में आये थे।^१ इस घटना का एक तत्कालीन चित्र भी उपलब्ध है जिसमें तानसेन पूर्ण युवा दिखाये गये हैं। यदि सेंगर द्वारा उल्लिखित तिथि मान ली जाय तो उस समय तानसेन २७ वर्ष के ठहरते हैं और डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या^२ के मत से इस अवसर पर तानसेन की अवस्था ४१ वर्ष की आती है जो चित्र को देखने से असंभव प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त तानसेन का एक दूसरा चित्र भी उपलब्ध होता है जिसमें तानसेन तानपुरा लिये हुए मजलिस के बीच में उपस्थित हैं। संवत् १५८८ जन्मतिथि मान लेने से इस अवसर पर उनकी अवस्था चित्र से मेल खाती है। इससे यही अनुमान निकलता है कि इनका जन्म १५८८ संवत् के लगभग ही हुआ होगा। तानसेन प्रतिभाशाली व्यक्ति थे और सुशिक्षा के कारण बहुत शीघ्र अपनी कला में निपुण हो गये थे। ३१ वर्ष की अवस्था में उनकी ख्याति हो गई थी और तभी अकबर ने रीवां-नरेश के पास तानसेन को बुलाने के लिये अपने आदमी भेजे थे।

जाति

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों और किंवदन्तियों के आधार पर पहले बताया जा चुका है, तानसेन ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए थे। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में तानसेन की जाति के विषय में लिखा है—'सो तानसेन बड़ी जाति वारे हते।'^३ बड़ी जाति से द्विज का संकेत मिलता है किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि तानसेन के अपने धर्म-परिवर्तन के कारण वार्ताकार ने संकोचवश उनकी ब्राह्मण-जाति का स्पष्ट उल्लेख न कर उन्हें केवल बड़ी जाति का ही बताकर संतोष कर लिया है। तानसेन की निम्नलिखित पंक्तियों से उनके ब्राह्मण-वंश का होने पर प्रकाश पड़ता है :—

जै जै कर पूजो धोला गढ़ की रानी ने
पान सोपारी ध्वजा नारियल पहले भेंट भवानी ने
तेल फुलेल अरगजा अंवर ले चढ़ावत। वाक्वाणी ने
तानसेन यह प्रसाद मागत दीजै बुध और वानी ने।

२ अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ २७९, २८०

३ नेशनल फ्लैग एंड अदर एसेज, पृष्ठ ८१

४ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, तानसेन की वार्ता, पृष्ठ ४७५

ब्रह्मा वेद पढ़े तेरे द्वार शंकर ध्यान समानी ने
वीरबल वंश ब्राह्मण कुल तारण तानसेन वरदानी ने ॥^१

प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने भी तानसेन के धर्म-परिवर्तन को एक ऐतिहासिक तथ्य माना है।^२ तानसेन के वंशज भी मुसल्मान ही हैं जिनमें से कुछ रामपुर राज-दरबार के आश्रय में रहते हैं। तानसेन मुसल्मान क्यों हुए यह एक विचारणीय प्रश्न है। धन का प्रलोभन इन्हें नहीं था क्योंकि संगीतकला के सम्मानकर्ताओं की उस समय कमी नहीं थी। रीवा-नरेश रामचन्द्र के दरबार में उन्हें किसी प्रकार का अभाव नहीं था फिर अकबरी-दरबार तो गुणियों के राजाश्रय के लिये प्रसिद्ध ही था। तानसेन की जितनी भी रचना प्राप्त है उनमें हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-धर्म की पूरी झलक देखने भी को मिलती है। अतः इस्लाम-धर्म की श्रेष्ठता से प्रभावित होकर उन्होंने अपने मूलधर्म का परित्याग कर दिया हो इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रायः चार कारण ही ऐसे होते हैं जो मनुष्य को धर्म-परिवर्तन के लिये प्रेरित करते हैं—धन का प्रलोभन, किसी धर्म विशेष की श्रेष्ठता और उच्चता, वासनाजन्य प्रेम तथा अधिक संपर्क। तानसेन के सम्बन्ध में प्रथम दो कारण लागू नहीं होते यह पहले कहा जा चुका है। तीसरे कारण का कोई प्रमाण नहीं मिलता। किंवदन्ती रूप में तानसेन का एक शाही राजकुमारी से प्रेम और फिर उसको अपनाने के लिये धर्म-परिवर्तन की घटना प्रचलित है। साथ ही तानसेन का अकबर की पुत्री मेहरन्निसा से प्रेम, फिर विवाह की किंवदन्ती का उल्लेख मिलता है।^३ सम्भव है इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लेने की जनश्रुति को तानसेन का गौरव बढ़ाने के लिये इसको अकबर की अथवा किसी शाही राजकुमारी से सम्बद्ध कर दिया गया हो। तानसेन के हृदय में इस्लाम-धर्म के प्रति कोई द्वेष न होकर उदार भावना थी जो उनमें संभवतः गौसमुहम्मद के प्रभाव से आई थी। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार तानसेन जिस वर्ग थे, सम्भव है, वह जबर्दस्ती मुसल्मान बना लिया गया हो।^४ किन्तु

१ देखिए, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७९

२ Tansen became a Muhammeden, assumed or was given the title of Mirza and is buried in Muslim Holy ground at Gwalior.

Akbar the Great Mughal, Page 123.

३ अमर कलाकार तानसेन, विलावल अंक, संगीत कला, पृष्ठ ६०

४ नेशनल फ्लैग एण्ड अदर एसेज, तानसेन, पृष्ठ ८४

अकबर के शासनकाल में इस प्रकार की घटना हुई होगी ऐसा प्रतीत नहीं होता किन्तु तानसेन का अकबर के काल में ही मुसल्मान होना प्रसिद्ध है। अतएव डॉ० चाटुर्ज्या के इस मत को भी स्वीकार करने में बाधा पड़ती है। तानसेन के धर्म-परिवर्तन में उनके गुरु गौसमुहम्मद का प्रभाव ही सर्वोपरि था और यह सम्भव है कि उनमें बहुत अधिक संपर्क, रहन-सहन, यहाँ तक कि खान-पान की घनिष्टता हो जाने पर उनको हिन्दू-समाज ने ऐसी स्थिति में विधर्मी की दृष्टि से देखा हो और चूँकि एक कलाकार को धर्म की संकीर्ण परिधियाँ नहीं बाँध सकती ऐसा समझ कर तानसेन ने स्वयं ही इस्लाम-धर्म के घेरे में प्रवेश पा लिया हो। इसका संकेत हमें हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों के विवरणों में भी मिलता है।^१ ऐसा ज्ञात होता है कि राजा रामचंद्र के यहाँ ये हिन्दू ही रहे होंगे। मुसल्मान होने के बाद फिर से ये गोस्वामी/विठ्ठलनाथ जी तथा महात्मा सूरदास, गोविंद स्वामी आदि के प्रभाव से ये वैष्णव बन गये। इनके वंशजों ने हिन्दू-धर्म नहीं अपनाया। मृत्युपर्यंत ये दरबार में ही रहे थे। इसलिये इनकी कब्र ही बनाई गई, समाधि नहीं। किन्तु यह आश्चर्यजनक है कि तानसेन के मुसल्मान होने का विवरण उस काल के किसी कवि अथवा इतिहासकार ने नहीं दिया।

शिक्षा-दीक्षा

तानसेन की शिक्षा के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि गौसमुहम्मद ने मकरन्द पांडे से इन्हें अपनी देखरेख में शिक्षा देने की अनुमति ले ली थी और उन्हीं के साथ रहकर तानसेन ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की। गौसमुहम्मद ने फिर स्वयं इन्हें स्वामी हरिदास के पास दीक्षित होने के लिये भेज दिया था।^२ दूसरी किंवदन्ती है कि स्वामी हरिदास मकरन्द पांडे के घनिष्ठ और परिचित लोगों में से थे। स्वामी हरिदास के वे परमभक्त थे और स्वामी हरिदास ने तानसेन को गान-विद्या में पूर्ण कुशल कर दिया था।^३ तानसेन के पदों से भी स्पष्ट होता है कि गौसमुहम्मद और स्वामी हरिदास इनके संगीत-गुरु थे। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है कि तानसेन सूरदास के घनिष्ठ मित्र थे और अपनी अधिकांश शिक्षा उन्होंने राजा मानसिंह द्वारा संस्थापित ग्वालियर के संगीत-विद्यालय में प्राप्त की थी।^४ किन्तु ज्ञात होता है कि उनकी शिक्षा

१ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२, २८३

२ अमर कलाकार तानसेन, विलावल अंक, संगीतकला, पृष्ठ ५९

३ नेशनल फ्लैग एंड अदर एसेज, तानसेन, पृष्ठ ८१

४ अकबर दि ग्रेट मुगल, पृष्ठ ४३५

अधूरी ही थी क्योंकि उनका संगीत 'अष्टछाप' के कुछ भक्त-कवियों से घट कर था। स्वामी विठ्ठलनाथ ने तानसेन के संगीत सुनने पर दश हजार रुपये और एक कौड़ी दी। रुपये इसलिये दिये कि वे राजदरबार के कलावंत थे और कौड़ी इसलिये कि उनका संगीत वल्लभ-संप्रदाय के संगीतकारों के समस्त मूल्यरहित था। गोविंद स्वामी के पद सुनकर तानसेन फिर उनके सेवक हुए और उनसे गान-विद्या सीखी।^१ तानसेन ने निम्नलिखित पद में अपने गुरु विशेष के प्रति मान प्रदर्शित किया है :—

ब्रह्म गत अपरम्पार न पाऊँ

पृथ्वी पार पताल ढरा और गगन लो धाऊँ

जो लो न होय सुदृष्टि तुम्हारी मन इच्छा फल ही पाऊँ

तीरथ प्रयाग सरस्वती त्रवेणी सब तीरथ होकर गुरुद्वार जाऊँ

भागीरथी गौतमी और गंगा तानसेन गावै हरिदा चराऊँ ॥^२

तानसेन गुणी और उच्चकोटि के कलाकार थे और इसी कारण जिस दरबार में रहे वहीं उनको यथेष्ट मान मिला। अकबरी दरबार के इतिहासकार अबुलफ़ज़ल ने

१ एक दिन तानसेन श्री गुसाई जी के पास गायवे कुं आये सो गाये तब तानसेन कुं श्री गुसाई जी ने दस हजार रुपैया इनाम के दिये और एक कौड़ी दीनी। तब तानसेन ने पूछ्यो जो दस हजार रुपैया तो ठीक है परन्तु कौड़ी कैसी है तब श्री गुसाई जी ने आज्ञा करी जो तुम बादशाह के कलावंत हो जाके दस हजार रुपैया है और तुम्हारे गावे की कीमत हमारे गवैयन के आगे कौड़ी है तब तानसेन ने कही जो ये बात मैं कैसे मानुं तब श्री गुसाई जी ने गोविन्द स्वामी कुं आपके पास बुलाये और आज्ञा करी एक पद गावो तब गोविन्द स्वामी ने एक सारंग राग में गायो सो पद 'श्री वल्लभ नंदन रूप अनूठ सरूप कह्यो नहि जाई।' सो ये पद सुन के तानसेन चकित होय गये और गोविन्द स्वामी को गान सुनके विचार कर्यो जो मेरो गान इनके आगे ऐसे हैं जैसे मखमल के आगे टाट हैं ऐसे हैं सो ये कौड़ी की इनाम खरी। तब गोविन्द स्वामी सुं तानसेन ने कही जो बाबा साहब मोकुं गान सिखावो तब गोविन्द स्वामी ने कही हम तो अन्य मार्गीय सु भाषणहुं नहीं करें। तब तानसेन श्री गुसाई जी के सेवक भये और पचीस हजार रुपैया भेंट करे और गोविन्द स्वामी के पास गायन विद्या सीखे.....

दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, गुसाई जी के सेवक तानसेन तिनकी वार्ता, पृ० ४७५, ४७६

२ देखिए, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७८

तानसेन की प्रशंसा में यहाँ तक लिख दिया है कि ऐसा संगीतज्ञ हजार वर्ष पहले तक नहीं हुआ था।^१ यह कथन अत्युक्तिपूर्ण है किन्तु इससे तानसेन के गुणी होने का परिचय मिलता है। दरवारी गवैयों में तो तानसेन सर्वश्रेष्ठ कलाकार थे ही। दरवार के बाहर उनका गुरुवर्ग ही उपस्थित था। तानसेन ने ज्ञानोपार्जन के पश्चात् संगीत के क्षेत्र में नई खोज भी की थी।^२ इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है कि कुछ रूढ़िवादी हिन्दू-संगीतज्ञ तानसेन की भर्त्सना इसलिये करते हैं कि परंपरागत दो राग 'मेघ' और 'हिन्दोल' इनके समय से लुप्त हो गये थे।^३ तानसेन ने कुछ नई राग-रागिनियों की खोज कर प्राचीन संगीत के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया था। तानसेन ने तात्कालिक रुचि को ध्यान में रखकर ही संभवतः ऐसा किया था। निम्नलिखित छंद द्वारा तानसेन की संगीत-कला पर प्रकाश पड़ता है :—

खरज साधे गाऊँ मैं श्रवण सुनहुँ सुनाऊँ
वेद पढ़ाऊँ जोई सोई कहे सोई सोई उचराऊँ
भैरव मालकोश हिन्दोल दीपक श्री राग मेघ सुरहि ले आऊँ
तानसेन कहे सुनो हो सुघर नर यह विद्या पार नहि पाऊँ ॥^४

संगीत-कला के विकास में 'गणेश' की स्तुति करते हुए तानसेन की आकांक्षा है :—

ए गण राजा महाराजा गजानन जै विद्या जगदीश
सप्त स्वर सो गाऊँ बजाऊँ सब राग रागिनी पुत्र वधून सहीत छतीश
बाईस सुरत इकईस मूरछना उनचास कोट तान आवे जगदीश
तानसेन को दीजै छ राग छतीश रागिनी ताल लय संगीत मय सो होवे
कंठ-प्रवेश ॥^५

वार्ताकार ने तानसेन की संगीत कला-प्रशंसा निम्नलिखित शब्दों में की है—'सो तानसेन बड़ी ज्ञात वाले हते और गान विद्या को अभ्यास बहुत सुन्दर हतो सो दिल्ली में

१ आइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ६१२

२ अकबर दि ग्रेट मुगल, पृष्ठ ६०

३ " " पृष्ठ ६१

४ देखिए, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग छंद संख्या, १५७

५ देखिए, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या, ११

पृथ्वीपति के पास रहते हते और सब गवैयन में तानसेन जी मुख्य हते।^१ तानसेन अपने युग के उत्कृष्ट कलाकारों, में थे। उनकी ख्याति भी इसीलिये बढ़ गई थी क्योंकि दरबारों में इनकी पहुँच थी और दरबारी रुचि के अनुसार अपने को बना लेने में समर्थ थे। तानसेन की रचनाओं में ऐसे अनेक पद हैं जिनमें उनके हितैषियों और मित्रों का यश वर्णित है।

तानसेन आरंभ में सूरवंश के राजाश्रय में रहे। शेरशाह सूरी का पुत्र दौलतखाँ उनका प्रशंसक था और उसकी संरक्षा में ये कई वर्ष तक रहे थे।^२ उसकी मृत्यु के पश्चात् ये रीवां-नरेश राजा रामचन्द्र के यहां चले गये। रीवां-नरेश की संरक्षा में ये अकबरी दरबार में आने के पूर्व तक रहे। काशी नागरी प्रचारिणी, सभा द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण' से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है।^३ रीवां-राज्य द्वारा प्रकाशित माधवकृत, 'वीर भानूदय काव्यम्' में राजा रामचन्द्र के आश्रित प्रसिद्ध कलाकार तानसेन का पर्याप्त परिचय मिलता है। उसमें कहा गया है—तानसेन राजा रामचन्द्र के दरबार के उच्चकोटि के संगीत-विशारद तथा विभिन्न भाषाओं की खूबियों तथा संगीत की विशेषताओं से पूर्ण तथा अभिज्ञ थे। उनके जैसा संगीतज्ञ न तो पहले हुआ, न उस समय कोई वर्तमान था और न तो भविष्य में होने की आशा ही है।^४ अबुल्फ़ज़ल ने अकबरी-दरबार

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ४७५

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

३ तानसेन पहले शेरशाह के पुत्र दौलत खाँ के आश्रित थे। फिर रीवां नरेश महाराज रामसिंह के यहाँ रहे। उन्होंने इन्हें सम्राट् अकबर के दरबार में भेजा और उनके आश्रित रहे। यह भारत के प्रसिद्ध संगीताचार्य थे।

हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ ५८

४ भूतो भविष्यन्नपि वर्तमानो, न तानसेने सदृशो (नसमो) धरण्याम्।

तथा (ऽ) प्रसिध्या त्रिदितेऽपि मन्ये, नैतादृशः कोप्यनवद्यविद्यः ॥२९॥

दुर्लङ्गध्यशैलोपरिसिन्धुमध्ये, द्वीपान्तराले (ऽपि) विले वने च।

श्रीरामचारित्रसुधाभिषिक्ता, यस्य ध्रुपज्जीवति सर्वकालम् ॥३०॥

तत्रैव तत्रैव वचो विलासा, यत्रैव (यत्रैव) जनाश्चरन्ति।

यत्रैव यत्रैव बचांसि नूनम्, सा तानसेनोक्तिरुदेति तत्र ॥३१॥

वीरभानूदयकाव्यम्, दशमसर्ग, पृष्ठ १२१, १२२

में तानसेन के प्रवेश की घटना का स्पष्ट वर्णन किया है। तानसेन जो अपने युग के सर्व कलावंतों में प्रधान थे, दरबार में उपस्थित हुए। जब यह सूचना मिली कि वे दरबारी जीवन से अवकाश ग्रहण करना चाहते हैं और वे इस वक्त रीवां-नरेश रामचन्द्र के आश्रय में हैं तो इस पर शहंशाह ने आज्ञा दी कि वे हमारे दरबार में लाये जायं। जलालखां कूरसी एक विश्वस्त मुलाजिम थे। राजाज्ञा के साथ तानसेन को दरबार में ले आने के लिये भेजे गये। राजा रामचन्द्र ने उन्हें अनेक उपहारों, हाथी और जवाहिरात सहित विदा किया और तानसेन को भी अनेक वाद्यंत्र और उचित भेंट देकर दरबार में भेजा। इस वर्ष (सन् १५६२) तानसेन ने उपस्थित होकर शहंशाह को सलाम बजाया और स्वयं भी आदरान्वित हुए।^१ इस सम्बंध में कुछ किंवदन्तियां प्रचलित हैं कि राजा रामचन्द्र का राजकुमार अकबर के यहां कैद था और तानसेन ने इसीलिये दरबार में उपस्थित होकर उसकी मुक्ति कराई थी। अबुलफ़ज़ल के उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि तानसेन की ख्याति ही उनके अकबरी-दरबार में प्रवेश की कारण थी न कि किसी प्रयोजनवश वे अकबरी-दरबार में उपस्थित हुए थे। तानसेन की उपलब्ध रचनाओं में राजा रामचन्द्र सम्बंधी कई पद मिलते हैं जिन्हें आगे दिया गया है। उनसे स्पष्ट होता है कि तानसेन रीवां-नरेश के प्रति कितने आकृष्ट थे और इस कारण उनसे उनका विछोह कितना दुःखद था इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रसिद्ध कलाकार तानसेन का अकबरी-दरबार में प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना थी। इतिहासकारों ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथों में इसका उल्लेख किया है। चित्रकारों ने अपनी तुलिका द्वारा उस दृश्य का चित्रण किया और कवियों की वाणी भी इस घटना को सजीव बनाने के लिये मौन न रही होगी। तत्कालीन एक चित्र में तानसेन कुछ संगीतज्ञों के साथ अकबर के सम्मुख नीचे बायीं ओर खड़े दिखाये गये हैं।^२

१ अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ २७९, २८०

२ Plate IX represents the arrival of the famous musician and singer Tansen at the court of Akbar—an event which took place in 1562 when the Emperor was 20 years of age.... Tansen with a small group of musicians, is seen below the Emperor in the left centre of the picture.

Indian Painting under the Mughals, page 56, 57

तानसेन अपने जीवनकाल में कई गुणी पुरुषों, राजाओं और महाराजाओं के संपर्क में आये थे जिनका वर्णन उन्होंने अपने पदों में किया है।

रीवां-नरेश राजा रामचन्द्र के प्रति उनका प्रगाढ़ स्नेह था यह पहले कहा जा चुका है। कवि ने राजा रामचन्द्र के दान तथा यश का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में किया है :—

प्रथम ही आनंद रच्यो नीकी घरी महूरत पंखी शब्द बजाए

देश देश के याचक जेते आवत तेते पावत गज तुरंग नग दान सुक्ता बरत्ताए

अष्टो धरन मध्य नाम ज्योति अरिन के भाखे को विधि ने बनाए

तानसेन कहे युग युग चिरंजीव रहो राजा राम तेरो यश तिहूं लोक छाए ॥^१

राजा रामचन्द्र की वीरता और उनकी सेना के आतंक का वर्णन निम्नलिखित पद में प्रभावपूर्ण ढंग पर हुआ है :—

ए तुम सज सज दल चढ़त जब भूप पर भार होत

थरथरात देश देश के गढ़पति सुन धाक धरहरात

जाके चढे ते खुर रैन उड़त गगन छिप जात

खलबल परत सिंहहू पै वाजत निशान जब शब्द धहरात

देव दानव और रावरु ते भाज गए सब पाताल कमठ पीठ कलमलात

सहस सहस फुनकार करि चूर चूर भयो थरहरात

महाराजा न मणि राजा रामचन्द्र की असवारी होत

अश्वदल गजदल पयदल सुन सुन अकअकात धकधकात

एसो सुरो पूरो तप तेज वो सो वो ही दूजो नाही मेरे जान

तानसेन गुनी जन को अजाच कीनो वाकी सूरत मूरत पर खल बल जात ॥^२

तानसेन राजा रामचन्द्र से इतने अधिक प्रभावित थे कि उनके गुणों का प्रकाशन उन्होंने अनूठे उपमानों द्वारा भी किया है। एक पद का भाव है, विक्रम के जैसा संवत्, करण के समान दानी, वेद के समान ज्ञान अद्वितीय हैं। शक्ति में भीम, प्रतिज्ञा-निर्वाह में परशुराम, वचन-निर्वाह में युधिष्ठिर, तेजस्वी में सूर्य के समान दूसरा दृष्टिगत नहीं होता। इसी प्रकार राजाओं में राजा रामचन्द्र प्रशंसित हैं :—

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १३९

२ " " " " पद संख्या १२८

शाके को विक्रम देवे को कुल करण वेद सम नहिं ज्ञान
बल को भीम, पेज को परशुराम, वाचा को युधिष्ठिर, तेज प्रताप को भान
इन्द्रसेन राजा मूरत को कामदेव मेरु समान
तानसेन कहे सुनो शाह अकबर राजन में राजा राम नंदन विरहभान ॥^१

ऐसा ज्ञात होता है कि अकबर के कहने पर ही उक्त छंद में तानसेन ने रीवा-
नरेश वीरभान के पुत्र रामचन्द्र के गुणों का वर्णन किया था ।

अकबरी-दरबार में रहने पर तानसेन को अकबर की गुण-ग्राहकता का परिचय
भली भाँति मिल गया था । उसने अकबर के विशिष्ट गुणों का परिचय कई पदों में दिया
है । यहां पर उनमें से कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं । एक पद में तानसेन ने प्रकाशित
सूर्य और अकबर को एक तुल्य माना है :—

इत भान उत साह अकबर दो दरस जो देखे सोई होत पवित्र
इन्दै राजनि मंद सुख के वर पावे गुप्त आनंद
वे तिमिरहरण ए दुख भंजन ताकि सोई फरियत साह दिनों मकरन्द
• वह सहस किरण प्रकाश कीनो अति बुधश्रेष्ठ मया घर जगवन्द
तानसेन कहे कहां लौं अस्तुत करै कारन हार विकार दुखदन्द ॥^२

अकबर की वीरता, आतंक और उदारता का वर्णन एक ही स्थल पर कर दिया
गया है :—

ए आयो । आयो रे बलवत शाह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप औं अष्ट दिशा नर नरेन्द्र घर घर थर थर डर
निश दिन कर एक छिन पावे वरण न पावे लंका नगर
जहां तहां जीतत फिरत सुनीयत है जलालदीन मुहम्मद को लश्कर
शाह हुमायूं को नन्दन चन्दन एक तेग जोधा तकवर
• तानसेन को निहाल कीजै दीजो कोटिन जरजरी नजर कमर ॥^३

ऐसा ज्ञात होता है, किसी अवसर पर सम्राट अकबर तानसेन के गृह पर पधारे थे ।

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग पदसंख्या १७७

२ " " " पद संख्या १३५

३ " " " पद संख्या १४६

उसी सम्बंध वे अकबर के सौजन्यपूर्ण व्यवहार और महानता का गान करते हुए कवि कह उठा था :—

ए आयो आयो मेरे ग्रह छत्रपति अकबर मन भायो करम जगायो
पाछलो पुस्य मेरो प्रगट भयो याते अर्थ धर्म काम मोक्ष मन चायो चारो फल पायो
काहू की न इच्छा रही तेरे दरस देखे पाप तज धर्मराज अचल कर पढ़ायो ।
तानसेन कहे यह सुनो छत्रपति अकबर जीवन जनम सुफल कर पायो ॥^१

राज्य-सिंहासन पर विराजमान अकबर का दृश्य-वर्णन तानसेन के निम्नलिखित पद में अंकित है :—

शुभ नखत तखत बैठो राजत
छाजत है सब मूलक खलक ज विधना किए
सब छत्र धरे ते सब लागे सब सेवा करन
धन धन चक्रवर्ती नरेश अकबर
दुख हरण तानसेन ऐसो सुरपुरी नर नरेन्द्र नरन ॥^२

राजा मानसिंह की दानशीलता और गुणग्राहकता का भी तानसेन ने वर्णन किया है :—

छत्रपति मान राजा तुम चिरंजीव रहो जो लों ध्रुव मेरु तारो
चहूँ देश तो गुणीजन आवत तुम पे धावत पावत मन इच्छा सबही को जग उजियारो
तुमसे जो नहीं और कासे जाय कहूँ दौर वही आज कीरत करे मोपे रक्षा करन हारो
देत करोड़न गुणी जनन को अजाचक किये तानसेन प्रति पारो ॥^३

तानसेन का अकबरी-दरबार के अन्य पदाधिकारियों के संपर्क में आने का वर्णन भी मिलता है । 'दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता' में राजा आसकरण और तानसेन सम्बंधी वार्ता आई है जिसमें दिया हुआ है कि तानसेन ने राजा आसकरण को वल्लभ-सम्प्रदायी स्वामी विठ्ठलनाथ से ले जाकर मिलाया था ।^४ इस बात का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है ।

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १४५

२ " " " " पद संख्या १३३

३ " " " " पद संख्या १४८

४ मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२

मिश्रबंधु-विनोद और शिवसिंह-सरोज में तानसेन और महात्म सूरदास के वार्ता-लाप का भी उल्लेख मिलता है।^१ सूरदास और तानसेन समकालीन थे। सूरदास की प्रसिद्धि उस काल तक भक्त-कवियों में दूर दूर तक फैल गई थी। इतिहासकार स्मिथ ने सूर और तानसेन की मित्रता का उल्लेख किया है।^२ इसके अतिरिक्त 'दो सो बावन वैष्णव की वार्ता' से सिद्ध होता है कि तानसेन स्वामी विठ्ठलनाथ और वल्लभ-संप्रदाय के अष्टछापी भक्त-कवियों के संपर्क में आये थे और वे गोविंद स्वामी के पद सुनकर इतने प्रभावित हुए थे कि वे उनके सेवक बन गये थे यह पीछे दी गई वार्ता में दिखाया जा चुका है। वल्लभ-संप्रदाय की ओर आकृष्ट होने पर 'अष्टछाप' के सर्व प्रधान कवि भक्त प्रवर सूरदास से इनका साक्षात्कार अवश्य हुआ होगा।

तानसेन की उपलब्ध-रचना में शिव, गणेश, सरस्वती, सूर्य, अनन्त देवता आदि की वन्दना के पदों से उनकी धार्मिक विचार-धारा पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है। तानसेन ने अपने गेय पदों में कृष्ण की रूपमाधुरी, मुरली-माधुरी, मान, भक्ति, बालक्रीड़ा आदि विषयों का आश्रय लिया है। तानसेन अपने दीर्घकालीन जीवन में कई धार्मिक संप्रदायों के संपर्क में आये थे। स्वामी हरिदास 'सखी' संप्रदाय के कृष्ण-भक्त थे। उनसे तो उन्होंने संगीत की शिक्षा ही ग्रहण की थी।^३ अकबर स्वयं तानसेन को स्वामी हरिदास का प्रिय शिष्य जानकर छद्म वेश में उनसे मिला था। यह घटना संवत् १६६२ से १६७१ के मध्य किसी समय संपन्न हुई थी।^४ तानसेन वल्लभ-संप्रदाय के संपर्क में कई

१ तानसेन और सूरदास जी से बहुत मित्रता थी। तानसेन जी ने सूरदास की तारीफ में यह दोहा बनाया—

किधौ सूर को सर लग्यो, किधौ सूर को पीर।

किधौ सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत सरीर ॥

तब सूरदास जी ने यह दोहा कहा:—

विधना यह जिय जानिके, सेस न दीन्हें कान।

धरा मेरु सब डोलते, तानसेन की तान ॥

शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

२ अकबर दि ग्रेट मुगल, पृष्ठ ४२२

३ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, पृष्ठ ६८

४ कविता कौमुदी, भाग १, पृष्ठ २३०

५ भक्तमाल, नाभादास, पृष्ठ ६०९

बार आये थे। पहले दी गई 'दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता' से ज्ञात होता है कि तानसेन स्वामी विठ्ठलनाथ से मिले थे और गोविंद स्वामी के पद सुनकर इतने प्रभावित हुए थे कि बाद में वे उनके सेवक बन गये थे। 'राजा आसकरण की वार्ता' से प्रकट है कि तानसेन राजा आसकरण की गुण-ग्राहकता का परिचय पाकर उनसे मिले और उनके सम्मुख उन्होंने निम्नलिखित पद गाया था—

कुंवर बैठे प्यारी के संग अंग अंग भरे रङ्ग
अंग अंग भरे रङ्ग बल बल बल त्रिभंगी युवतिन सुखदाई
ललित गती विलास हास दंपति मन अति उल्हास विकसित कच
सुमन वास स्फुटत कुसुम निकर तैसी है शरद रैन जुन्हाई
नव निकुंज मधुप गुंज कोकिल कल कूजत पुंज सीतल सुगंध
मंद बहत पवन अति सुहाई

गोविंद प्रभु सरस जोरि नवकिशोर नवकिशोरी निरख मदन
कोज मोरी छल छबीले नवल कुंवर ब्रज नृप कल मनिराई ॥

इस पद से राजा आसकरण इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने वल्लभ-संप्रदायी गोविंद स्वामी से तानसेन के साथ मिलने की इच्छा प्रकट की। तानसेन उनके यहाँ दस-पंद्रह दिन रहकर राजा आसकरण को साथ लेकर गोकुल गये थे।^१ इससे स्पष्ट होता है कि तानसेन का वल्लभ-संप्रदाय से सम्बंध था। जब तानसेन वल्लभ-संप्रदाय के संपर्क में आये तो वे किस धर्म के मतावलंबी थे इस सम्बंध में प्रमाणिक सूत्रों के अभाव में निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संभव है उस समय तक वे मुसल्मान न हुए हों अथवा संयोगवश मुसल्मान बने हुए तानसेन 'वल्लभ-भक्ति-मार्ग' की ओर आकृष्ट हो गये हों। वल्लभ-सम्प्रदायी भक्तों में सभी जाति के व्यक्तियों का प्रवेश था। कोई भी वर्ग और किसी जाति का भी व्यक्ति आवश्यक गुण होने पर उसमें प्रवेश पा सकता था। यह उसकी आस्था पर अवलंबित था।^२

वल्लभ-मत में कृष्ण के बाल-रूप की उपासना, कृष्ण की रूप-माधुरी, मुरली-माधुरी, गोपी-विरह आदि की विशद व्यंजना हुई है। तानसेन की उपलब्ध रचनाओं में तत्सम्बंधी पदों का बाहुल्य है। 'वार्ता-साहित्य' से भी स्पष्ट है कि तानसेन ने श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन किया था। दरबार में भी

१ दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता, राजा आसकरण की वार्ता, पृष्ठ १९१, १९३

२ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ ७७

उनका आना-जाना इसीलिये कम हो गया था।^१ 'वार्ता' से यह भी पता चलता है कि पश्चात् तानसेन ने दरबार में आना-जाना बिल्कुल ही छोड़ दिया था जैसा कि निम्न-लिखित पंक्तियों से पता चलता है :—

“एक दिन तानसेन जी श्रीनाथजी के पास कीर्तन करत होते तब श्रीनाथजी मुनके मुसकाये तब वा दिन तै तानसेन ने बादशाह के इहाँ सुं जायबो आयबो छोड़ दियो और श्री गुसाईं के पास रह आये जिन सुं श्रीनाथजी बोलते, हँसते, श्री गुसाईं जी की कानतें तानसेन कुं श्रीनाथजी सब अनुभव करावते सों वे तानसेन जी ऐसे कृपापात्र होते।^२

तानसेन के हृदय में वल्लभ-मत के प्रति इस प्रकार की आस्था की सम्पुष्टि उनके उक्त विषय के पदों से भी होती है।

तानसेन की मृत्यु-तिथि

हिन्दी-साहित्य के कुछ विद्वान और लेखकों ने तानसेन की मृत्यु-तिथि संवत् १६४६ दी है।^३ अकबर का राज्यकाल संवत् १६६२ तक रहा। ‘अकबरनामा’ में स्पष्ट रूप से मिलता है कि तानसेन की मृत्यु अकबर के शासनकाल में ही संवत् १६४६ (२६ अप्रैल, १५८९) में हुई।^४ डॉ सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने भी इसी तिथि का समर्थन किया है।^५ परन्तु ‘तुजुक जहांगीरी’ के तेरहवें वर्ष की दावत के वर्णनों में एक उल्लेख मिलता है कि एक तानसेन कलावंत दरबार में उपस्थित हुए थे। यह घटना संवत् १६७५ की है जिसमें दिया हुआ है कि दरबार के एक शेख अकस्मात् बीमार हो गये और उन्होंने एक व्यक्ति को बादशाह के पास भेजकर तानसेन कलावंत को जो गान विद्या में अद्वितीय थे, बुला भेजने की प्रार्थना कराई। तानसेन ने उपस्थित होकर शेख को गाना

१..... तब तानसेन श्री गुसाईं जी के सेवक भये और पचीस हजार रुपैया भेंट करे और गोविन्द स्वामी के पास गायन विद्या सीखे और श्रीनाथजी के पास कीर्तन गायवे लगे जब तानसेन महीना में एक बार बादशाह के पास जाते और बहुधा कर के महाबन में रहते।

गुसाईं जी के सेवक तानसेन तिनकी वार्ता, दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, पृष्ठ ४७६

२ ” ” ” ” पृष्ठ ४७६, ४७७

३ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२

४ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ८१६

५ तानसेन, नेशनल फ्लैग एंड अदर एसेज, पृष्ठ ८१

सुनाया था ।^१ ऐसा ज्ञात होता है कि ये तानसेन कलावंत कोई दूसरे थे और उन्हें जहांगीर ने शेख की प्रार्थना पर बुलवाया था । क्योंकि स्वयं जहांगीर ने 'तुजुक जहांगीरी' में तानसेन की काव्य-प्रशंसा तो की है किन्तु दरबार में उनके अस्तित्व का उल्लेख नहीं किया है । तानसेन, प्रसिद्ध संगीतज्ञ और प्रस्तुत कवि तानसेन, का असली नाम नहीं था उनका यह उपाधि-प्राप्त नाम था । उक्त तानसेन कलावंत का नाम भी इसी प्रकार का ज्ञात होता है । तानसेन के बाद मुगल-दरबार के सर्वश्रेष्ठ गवैयों को, संभव है, तानसेन की उपाधि से विभूषित किया जाता हो । तानसेन की स्मृति और उनकी प्रतिष्ठा का स्मारक रखने के लिये ऐसा किया गया होगा ।

गंग

कवि गंग सम्राट अकबर के दरबारी कवि थे और उनका साहचर्य दरबार के प्रसिद्ध व्यक्तियों—अब्दुर्रहीम खानखाना, वीरवल, मानसिंह आदि से था, जो अन्तर्साक्ष्य तथा बाह्य प्रमाणों से सिद्ध होता है ।

जाति, जन्म-स्थान तथा समय

गंग के जन्मस्थान, काल और जाति के सम्बन्ध में शिवसिंह सेंगर ने इनको गंगा प्रसाद ब्राह्मण के नाम से सम्बत् १६६५ में उत्पन्न माना है । आरम्भ में इन्होंने गंग को ज़िला इटावा अथवा दिल्ली का निवासी लिखा था किन्तु बाद में अपने निश्चित विचारानुसार इन्हें इकनौर गाँव ज़िला इटावा का निवासी बताया है । बन्दीजन भट्ट-ब्राह्मण होते थे, इस सम्बन्ध में उन्होंने भाटों की प्रशंसा का निम्नलिखित छंद भी उद्धृत किया है :—

प्रथम विधाता ते प्रकट भए बन्दीजन पुनि पृथु यज्ञ ते प्रकाश सरसात है ।

माने सूत सौनकन सुनत पुराण रहे यश को बखाने महासुख बरसात है ।

१. In accordance with fate, the same night the traces of fever appeared and the next day, he sent some one to the king (with the request) to call Tansen Kalawant who was unequalled as a singer. Tansen, having gone to wait upon him. After this he sent some one to call the king.

Tuzuk-Jahangiri, part II, the 13th New Year's Feast, page 71

२. तुजुक जहांगीरी, भाग १, पृष्ठ ४१३

चन्द चौहान के केदार गोरी साहजू के गंग अकबर के बखाने गुण गात है ।

काग कैसे मास अजनास धन भाटन के लूट धरे ताको खरा खोज मिटि जात है ॥^१

इससे स्पष्ट हो जाता है कि गंग भट्ट-ब्राह्मण थे । कवि गंग ब्रह्म-भट्ट जाति के थे और उनका निवास-स्थान इकनौर गाँव था, ये तथ्य कवि के छंदों से भी प्रमाणित होते हैं । मिश्रबन्धुओं ने गंगाप्रसाद ब्राह्मण नामक एक कवि का जन्म सम्वत् १६६५ में और इकनौर गाँव ज़िला इटावा का निवासी लिखा है ।^२ प्रसिद्ध कवि गंगा प्रसाद ब्राह्मण और अकबरी दरबार के कवि गंग एक ही कवि हैं । अन्तर्साक्ष्य द्वारा भी सरोजकार और मिश्रबन्धुओं के उक्त कथन प्रमाणित होते हैं । हिन्दी साहित्य के अन्य इतिहासकारों ने गंग को भट्ट-ब्राह्मण ही लिखा है ।^३ गंग के छंदों में उसके ब्रह्म-भट्ट होने का प्रमाण मिलता है । निम्नलिखित कवित्त में 'कवि गंग भट्ट' नाम की छाप भी मिलती है :—

बैठे दरीखाने बीच साह को समूह दल दोनों बीच आन दयी एक राखी है ।

रोस कर वचन कहे है भुव पालन ते सावन को बन्धन बन्धे न सत्य भाखी है ।

भनै कवि गंग भट्ट सोर महि मन्डल में हाडावंस वीर ने कृपान खोल राखी है ।

ठोक भुज दंड प्रचंड सो जुम्हारसिंह बूंदीपति राखी सो तुम्हारे हाथ राखी है ॥^४

'भट्ट' ब्राह्मण जाति में ही परिगणित होते हैं इसका निर्देश स्वयं कवि ने निम्न-लिखित पंक्तियों में किया है :—

बाभन को जनमु जनैऊ मेलि जानि बूझि जीभ ही बिगारिवे को याच्यो जन जन में
कहि कवि गंगु कहा कीजै जो न जाने जात वाउ ग्यान देखो जु बुढाई ध्यान धन में
.....॥^५

कवि ने आत्मक्षोभ वर्णन के साथ-साथ उक्त पंक्तियों में अपनी जाति का परिचय दिया है । इसके अतिरिक्त ब्रह्म-भट्टों में यह प्रख्यात है कि कवि गंग उन्हीं की जाति के कवि थे । 'ब्रह्म भट्ट दर्पण' नामक एक छोटी पुस्तक में संस्कृत और हिन्दी के अनेक

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४०२

२ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ ३०३

३ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४५

मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७६

४ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३३

५ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १६१

भट्ट कवियों का उल्लेख मिलता है। इसमें गंग को अकबरी-दरबार का प्रमुख कवि माना गया है। भट्ट ब्राह्मण होते हैं, इस कथन की पुष्टि अनेक विद्वानों ने भी की है। पूर्व उल्लिखित 'प्रथम विधाता ते प्रगट भये वंदीजन' वाले छंद में भट्टों का ब्राह्मण होना सिद्ध है। इस प्रकार गंग का भट्ट-ब्राह्मण होना कई सूत्रों से सिद्ध होता है।

कवि गंग इकनौर गाँव ज़िला इटावा के निवासी थे, इसका परिचय जहाँगीर के सम्बन्धी जैनखाँ के विरुद्ध कहे गये कवि के छन्दों से भी मिलता है। 'जैनखाँ' ने इकनौर के कुछ ब्राह्मणों को मरवा डाला था। गंग ने अपनी जन्मभूमि के प्रेम के वशीभूत होकर जैनखाँ की निन्दा कई छन्दों में की थी :—

वाकरखाँ विरच विदरभ देस मार्यो गंग दल खान मारे मीर कन्हर गौर के।
दाही मीर मारि के अनेक देस पस्ति करि खानदेस खोहे चित्र मन्दिर मरोर के।
पूरब पछाह बरदाने मानसिंह मारे कासिमखाँ खोदे हैं मवास ठौर ठौर के।
केसोदास मारु मरि हरम कमठ करी जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के ॥^१

इससे स्पष्ट होता है कि गंग को 'इकनौर' गाँव बहुत ही प्रिय था और ऐसा लगाव अपनी जन्मभूमि से ही हो सकता है। इनके दिल्ली-निवासी होने का कोई प्रमाण नहीं है। केवल शिवसिंह सेंगर ने इसका उल्लेख किया था और बाद में उन्होंने भी अपनी भूल स्वीकार करते हुए इन्हें इकनौर गाँव ज़िला इटावा का ही माना है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। कवि की रचनाओं की ब्रज-भाषा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसका जन्म कहीं भी हुआ हो किन्तु ब्रज-प्रदेश में वह बहुत काल तक रहा था। अन्य इतिहासकारों ने भी गंग को इकनौर गाँव का निवासी लिखा है। उनकी ब्रज-भाषा के प्रयोग में कुछ कनौजी-बोली के प्रयोग भी मिलते हैं जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वे कनौजी-प्रदेश ज़िला इटावा के निवासी थे। साथ ही इससे बीरबल और गंग की बाल-मैत्री का भी जो कवि के एक दोहे से स्पष्ट है,^२ समाधान हो जाता है क्योंकि बीरबल तिकवाँपुर-निवासी थे जो कानपुर ज़िले में है और जहाँ से कवि गंग के इटावा ज़िले से सम्बन्ध होना असंभव नहीं कहा जा सकता।

१ देखिये गंग के छंद प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७२

२ आगे सुदामा कृष्ण हैं, गंग बीरबल फेर।

ता दिन में तंदुल हते, येहि दिनन में बेर ॥

गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७०

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने कवि गंग की जन्म-तिथि सम्वत् १५६५ दी है। शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्म सम्वत् १६६५ लिखा है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। वीरवल का जन्म सम्वत् १५८५ माना गया है। यह अवस्था गंग से दश वर्ष अधिक है। गंग और वीरवल का बाल-भैत्री का परिचय ऊपर आ चुका है। कृष्ण और सुदामा की मित्रता सहपाठी के रूप में हुई थी। इससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि गङ्ग और वीरवल भी सहपाठी रहे होंगे। सहपाठी का केवल यही अर्थ नहीं होता कि दो समयस्क मित्र एक ही कक्षा के विद्यार्थी हों। एक ही विद्यालय में भिन्न-भिन्न श्रेणी के विद्यार्थी भी इतने प्रगाढ़ मित्र बन जाते हैं कि कभी-कभी सकृत्ता भी उस स्थिति तक नहीं पहुँच पाती। अतएव वीरवल का गंग की अपेक्षा बड़ी अवस्था का होना सम्भव है। इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर रहीम की प्रशंसा करते समय गंग ने खानखाना को 'नवल नवाब' कह कर संबोधित किया है—'नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास, भागे देसपति धुनि सुनत निसान की। खानखाना का जन्म संवत् १६१० में हुआ था। इस प्रकार गंग जिसे 'नवल नवाब' कहते हैं वह उनसे लगभग १५ वर्ष छोटे ठहरते हैं। प्रौढ़ या वृद्ध लोग जब अपनी अवस्था से न्यून अवस्था वाले व्यक्ति को संबोधन करते हैं तब उनमें कनिष्ठतासूचक प्रिय शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। उपर्युक्त 'नवल नवाब' में यही ध्वनि है। कवि के जीवन की अन्य घटनाओं की तिथियों का मिलान करने पर भी, जो आगे संवत् १५६५ के लगभग ही कवि का जन्म मानना उचित जान पड़ता है।

कवि गंग के जीवन-चरित से सम्बन्धित अन्य बातों पर विचार करने के पूर्व उनके नाम पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा। अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग के अतिरिक्त अन्य 'गंग' नामक कवि भी हिन्दी-साहित्य में हो चुके हैं। अतः इन सब कवियों के अलग-अलग व्यक्तित्व का निर्धारण कर लेना आवश्यक है।

गंगा राम पुरोहित^१ जिनका रचना-काल संवत् १७४४ है, रीतिकाल के एक साधारण कवि थे। इनकी रचनाओं में 'गंग' की छाप मिलती है। हिन्दी-इतिहास-ग्रन्थों में इनकी 'हरिभक्ति-प्रकाश', 'सभा-विलास' आदि रचनाओं का उल्लेख आया है। एक दूसरे गंगाप्रसाद ब्राह्मण^२ नामक हिन्दी-कवि संवत् १८६० में हुए और इनकी गणना रीतिकाल के अच्छे कवियों में की जाती है। इन्होंने अपनी रचना 'दूती-विलास' में

१ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग २

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४०२, ४०३

अपना उपनाम 'गंग' दिया है। उपर्युक्त गंग कवियों और प्रसिद्ध कवि गंग के रचना-काल में इतना अन्तर है कि एक दूसरे के साथ किसी का भ्रम संभव नहीं। इनकी रचनाओं को पढ़ते वक्त अवश्य एक दूसरे का भ्रम हो सकता है किन्तु यह भ्रम क्षणिक ही है। अकबरी-दरबार के कवि गंग के छंदों में जैसा काव्यगत-चमत्कार, वाग्वैदग्ध्य, भाषा-सौष्ठव वर्तमान है उनके प्रकाश में रीतिकालीन कवियों की रचनाओं की पृथक्ता स्पष्ट हो जाती है।

'ब्रह्म-भट्ट-दर्पण' नामक पुस्तक में जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, प्रसिद्ध कवि गंग का नाम गंगाधर^१ दिया गया है। इसी नाम के दो बुन्देलखंडी कवियों का भी परिचय मिलता है शिवसिंह सेंगर द्वारा उल्लिखित नाम गंगा प्रसाद ब्राह्मण का भी कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता है। सपौली निवासी 'गंगाप्रसाद ब्राह्मण' नामक एक अन्य हिन्दी-कवि का पता हिन्दी-इतिहास से चलता है जिसका पहले उल्लेख हो चुका है। इन विद्वानों ने 'गंग' का नाम निर्धारित करते समय कोई प्रमाण नहीं दिया है। अतः विश्वस्त प्रमाणों के अभाव में प्रसिद्ध कवि गंग को केवल 'गंग' नाम से पुकारा जाना ठीक जान पड़ता है। जब तक प्रामाणिक सूत्रों द्वारा इनका वास्तविक नाम ज्ञात न हो जाय तब तक 'गंगाधर' अथवा 'गंगाप्रसाद' आदि नाम के बखेड़े में में पड़ कर उनके व्यक्तित्व पर भ्रम फैलाना उचित नहीं है।

कवि गंग के जीवन का आरंभिक काल किस प्रकार बीता इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। इतना स्पष्ट है कि इनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी न थी क्योंकि अपने मित्र वीरबल के पास बालमैत्री के विश्वास पर ही वेर के कुछ फल लेकर दरिद्रता विमोचनार्थ आये थे। गंग का निम्नलिखित दोहा जिसका निर्देश पहले हो चुका है इस बात की पुष्टि करता है :—

आगे सुदामा कृष्ण हैं, गंग वीरबल फेर।

ता दिन में तंदुल हते, येहि दिनन में वेर ॥

जैसा कवि ब्रह्म की जीवनी के प्रसंग में पहले कहा जा चुका है संवत् १६२० के लगभग वीरबल अकबर के राज्याश्रय में थे और संवत् १६२६ तक अकबरी दरबार में उनकी (वीरबल) अच्छी प्रतिष्ठा हो गई थी क्योंकि अगस्त सन् १५६६ (संवत् १६२६) में ही राजा वीरबल ने कजली के वकील को अकबर से मिलाया

था ।^१ इसके पश्चात् ही गंग वीरवल से मिले होंगे क्योंकि संवत् १६२७ में गंग का अकबर के दरबार में उपस्थित रहना प्रमाणित है जब उन्होंने अपनी गद्य-रचना 'चंद छंद वरनन की महिमा' अकबर को सुनाई थी । उक्त मित्रता से यही निष्कर्ष निकलता है कि वीरवल ही जो स्वयं कवि और साहित्यानुरागी थे गंग को लेकर अकबर से मिले होंगे । उसी समय से गंग का अकबरी दरबार में मान हो गया था । कविता-प्रेमी अकबर समय-समय पर अपने दरबारी कवियों के सम्मुख समस्याएँ उपस्थित करता था और उन समस्याओं की पूर्ति में गंग का प्रधान भाग रहता था । गंग द्वारा कहे गये समस्यापूर्ति वाले अनेक छंदों से यह बात सिद्ध होती है ।

गंग की प्रतिष्ठा

अकबरी-दरबार में प्रतिष्ठित होने पर कवि गंग दरबार के विशिष्ट व्यक्तियों के संपर्क में स्वाभावतः आये । रहीम, वीरवल, मानसिंह, टोडरमल आदि सम्मानित व्यक्तियों द्वारा उन्हें यथेष्ट सम्मान मिला । कहा जाता है कि खानखाना ने गंग को निम्नलिखित छप्पय पर प्रसन्न होकर छतीस लाख रुपये पारितोषिक रूप में प्रदान किये थे :—

चकित भंवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल बन
अहि फनि मनि नहिं लेत, तेज नहि बहत पवन घन
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिले अति
बहु सुन्दरि पदिमनि पुरुष न चहैं न करैं रति
खल-मलित सेस कवि गंग मन अमित तेज रविरथ खस्यो
खानानखान वैरम सुवन जबहि क्रोध करि तंग कस्यो ॥^२

इस पारितोषिक का विवरण हिन्दी-इतिहास ग्रन्थों में भी मिलता है । साथ ही गंग के परवर्ती कवि 'खूबचंद' ने भी इसका उल्लेख निम्नलिखित छंद में किया है :—

मान दस लाख दियो दोहा हरिनाथ के पै हरिनाथ कोटि दे कलंक कवि कैहै को
वीरवर दै षट कोटि केशव कवित्तन में शिवराज हाथी दियो भूषन ते पैहै को
छप्पै पै छतीस लाख गंगे खानखाना दियो याते दीन हूँ दूनौ दान ईदर में ऐहै को
राजा श्री गंभीरसिंह छंद खूबचंद के मैं विदा में दगा दई न दीन कोउ पैहै को ॥^३

१ अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ ४९९

२ देखिये गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४५

३ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ५३

इस प्रकार रहीम द्वारा गंग को प्राप्त पारितोषिक का उल्लेख उक्त छंद में मिलता है। सेंगर ने लिखा है कि गंग को उक्त छप्पय पर वीरबल ने भी एक लाख रुपये का पारितोषिक दिया था।^१ यह बात असंभव इसलिये भी नहीं कही जा सकती क्योंकि उस काल में कला का मान आज जैसी हीनावस्था में न था। किन्तु गंग को खानखाना द्वारा दिये गये छतीस लाख रुपयों के स्थान पर छतीस लाख 'दाम' अधिक प्रतीतिजनक ज्ञात होता है। संभव है भूल से लोगों ने 'दाम' के स्थान पर रुपये को किंवदंती चला दी हो। चालीस दाम का मूल्य चाँदी के एक रुपये के बराबर था और साधारण व्यवहार में 'दाम' का ही अधिक प्रचलन था।^२ इस प्रकार छतीस लाख दाम के मूल्य नब्बे हजार रुपये आते हैं और यह पारितोषिक कवि के लिये कम ज्ञात नहीं होता। वीरबल के एक लाख रुपयों के स्थान पर भी 'दाम' ही समझना चाहिये।

प्रतिक्रिया स्वरूप कवि गंग ने निम्नलिखित छंदों में वीरबल की सुयश गाथा का वर्णन किया है :—

मालती शकुंतला सी-कोउ कामकंदला सी हाजिर हजार चारि नटी नौल नागरै
फिरत खवास खास लिये फिरे आसपास चोषन की कूपी और गुलाबन की गागरै
ऐसी मजलिस तेरी देखी राजा वीरवर गंग कहै गूंगी हैंकै रही है गिरा गरै
महि रह्यो मांगधनि गीत रह्यो ग्वालियर गौरा रह्यो गौरना अगर रह्यो आगरै ॥^३
कवि ने वीरबल की दान वीरता का चित्रण भी गंभीरतापूर्ण ढंग से किया है :—

दान कृपान सुजान पनो तू जहान को जीतव जीतन आयो
गंग कहै सब साहिबी अंगते तै ही मानो पुरहूत बढ़ायो
वीरवली नृप तेरी बराबर और विरंचि न दूजो बनायो
साहू के सोच शिवाहू के सूल सचीहू के साधु सपूत न जायो ॥^४

अकबरी-दरबार के प्रधान सेनापति मानसिंह ने भी गंग को भारी सम्मान दिया था। कहा जाता है कि एक समय एक भिन्न कवि के सम्मुख आ उपस्थित हुआ और अपनी पुत्री के विवाह के हेतु धन की याचना करने लगा। गंग ने शीघ्र ही एक हजार की हुंडी महाराजा मानसिंह के नाम लिखकर भिन्न के हाथ में दे दी :—

१ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४०२

२ अकबर दि ग्रेट मुगल, पृष्ठ ३८८

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३९

४ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२५

सिद्धि श्री मानसिंह जी की कीरति विसद भई तो लो राज रहो जो लो भूमि थिर वेनी है
रावरी कुसल हम सिसुन समेत चाहें घरी घरी पल पल यहाँहु सुचैनी है
हुंडी एक तुम पर करी है हजार की सौ कविन को राखो मान साह जोग देनी है
पोहिचे प्रमान मान वंस में सपूत मान रोक गिनि देने जस लेते लिख देनी है ॥^१

भिदुक हुन्डी लेकर मानसिंह के पास गया और रुपये लेकर अपने घर की ओर चल
पड़ा। पश्चात् मानसिंह कवि की इतनी छोटी सेवा कर तृप्त न हुए क्योंकि गंग पर उनकी
प्रबल श्रद्धा थी और उसके अनुपात में इस तुच्छ सेवा का कोई स्थान नहीं ठहरता था।
फलस्वरूप उन्होंने कवि को लिख भेजा :—

इतमें हम महाराज हैं उतै आप कविराज।

हुन्डी लिखत हजार की लिखत न आई लाज ॥^२

गंग ने मानसिंह की इस उदारता पर मुग्ध होकर उनकी वीरता-वर्णन में
भी अद्भुत कला प्रदर्शित की है :—

सुकुत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान एकन ते एक मनो सुखमा जरद की
कहैं कवि गंग तेरे बलकी बयार लगे फूटी गजघटा घनघटा ज्यों सरद की
एते मान सोनित की नदियां उमड़ि चली रही न निसानी कहू महि में गरद की
गौरी गह्यो गनपति गनपति गह्यो गौरी गौरीपति गह्यो पूछ लपकि वरद की ॥^३

दानियाल अकबर का पुत्र और खानखाना का दामाद था। अकबर ने उसकी
शिक्षा-दीक्षा हिन्दू पंडितों की देखरेख में कराई थी। हिन्दी-भाषा और हिन्दी-कविता से
उसे विशेष अनुराग था। वह स्वयं हिन्दी में कविता करता था। इतिहासकारों ने उसे
स्वच्छन्द प्रकृति का और शराबी लिखा है। खानखाना और दानियाल में घनिष्ठ सम्बन्ध
तो था ही। गंग संभवतः खानखाना द्वारा ही दानियाल की ओर आकृष्ट हुए थे।
दानशाह की वीरता और सहृदयता ने कवि को उसकी प्रशंसा में कुछ छंद कहने के
लिये बाध्य किया :—

दलपति दरि गये दरिया उसरि गये दौरे दानशाह जू के दरषत हैं।

कहै कवि गंग हय हसित दुरद मद उदवस देखि देखि रोम हरषत हैं

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३८

२ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५७
१६

परी हुती कोरीं कोरां छाड़ी पिय चोरीं चोरां गोरिन के नैन गोराधार बरसत हैं
गरभ को गिरि गये गोद के गिराय दये पलना के परे ते पहार परषत हैं ॥^१

दानियाल की यह प्रशंसा उसकी शुभ वीरता-सम्बद्ध है। उसकी यह वीरता इतिहास-सम्मत भी है। अपनी वीरता के कारण ही वह दक्षिण का सूबेदार होकर कई वर्ष तक वहां रहा था।^२

इस प्रकार कवि गंग दरबार के अनेक विशिष्ट-मानी व्यक्तियों के संपर्क में आये थे किन्तु इन सब में कवि का रहीम से ही सबसे अधिक संपर्क था। अपने हितैषियों की गुणावली वाले छंदों में रहीम सम्बन्धी छंद ही सबसे अधिक संख्या में उपलब्ध हुए हैं। खानखाना ने जब भारतभूमि तिलक गोस्वामी तुलसीदास के हृदय को सहसा आकृष्ट कर लिया तो अपने साथ रहने वाले कवि गंग के सरस हृदय को क्यों न आकृष्ट करते। खानखाना की जितनी प्रशंसा कवि ने की है वह उसके अन्तर्तम से उद्भूत जान पड़ती है। खानखाना जिस प्रकार पंडित थे वैसे ही सुजन और वीर भी थे।

कवि की दयनीय स्थिति

कवि की उपर्युक्त स्थिति सदैव न रही। जीवन के उत्कर्षापकर्ष का भी उसे अनुभव हुआ था। कवि के दिये हुए कई छंदों से उसकी दुरवस्था और दयनीय स्थिति का पता चलता है। जहांगीर के शासन में राजकीय विरोध के कारण उसे बुरे दिन देखने पड़े। इनके हितैषियों में कुछ की तो मृत्यु हो गई थी और कुछ अपने जीवन की अत्यधिक दयनीय स्थिति में पड़े हुए थे। कवि-हृदय तो था ही, उस समय उस पर जो कुछ भी बीता उसने उन्हें सीधे सादे शब्दों में व्यक्त कर देना अनुचित नहीं समझा। यह निम्नलिखित छंदों में वर्णित है:—

एक दिन ऐसो जामे शिवकाहू गज बाजि रहे एक दिन ऐसो जामे सोयबो को सहसो
एक दिन ऐसो जामे गिलम गलीचा लागे एक दिन ऐसो जामे तामे को न पयसो
एक दिन ऐसो जामे राजन सो प्रीति होत एक दिन ऐसो जामे दुश्मन को धहसो
कहे कवि गंग नर मन में विचार देख आज दिन ऐसो जात काल दिन कै-असो ॥^३

उपर्युक्त छन्द में कवि गंग ने ऐश्वर्य और निर्धनता की विषमता का अनुभूति-

१ दरबार-अकबरी, आज्ञाद, पृष्ठ ८९-९०

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ६२

३ " " " " " १२४

जन्य चित्रण किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि को किसी मानसिक कष्ट में एक-एक दिन व्यतीत करना कठिन हो गया था। उसकी मानसिक दशा बहुत दुःखदायी हो गई थी।

कवि गंग की दानशीलता का एक उदाहरण पहले दिया जा चुका है। संभव है उनकी उदार वृत्ति ही उनकी निर्धनता की विशेष कारण बन गई हो। दुर्दिन में कवि-के याचकों को रिक्त-हस्त लौटना पड़ता था। याचक ही क्यों नाई, धोबी, मोदी आदि को भी निराश होना पड़ा था। अपनी इस विकट स्थिति का वेदनापूर्ण वर्णन कवि ने निम्नलिखित छंद में किया है :—

नटवा लों नटै न टरै रहै मोदी सु डाड़िन में बहु भाव भरै
सजि गाजे बजाज अवाज मृदंग लों वाकिये तान गिलौरी लरै
पट धोबी धरे अरु नाई नरै सु तमोलिन बोलिन बोल धरै
कवि गंग के अंगन मंगनहार दिना दस ते नित नृत्य करै ॥^१

किन्तु ऐसा जान पड़ता है कवि की स्थिति इसके बाद ठीक हो गई थी। उसने अपने जीवन में उन्नति-अवनति का कई बार अनुभव किया था। इसी का वर्णन निम्न-लिखित छन्द में हुआ है :—

कई बार इहि छिति छोटनि में छोट भयो कई बार छिति में छतीसा पायो नाऊं में
कई बार देवलोकि देवन में देव भयो देखि देखि देह दुख दुदुनि डराऊं में
कहै कवि गंग काहू और के शरण गए साचो न कहूँ तो तुअ शरण समाऊं में
नाथ की शपथ तोहि त्रिपथ पवित्र गंगा सुथ लगाऊं जैसे कुपथ न जाऊं में ॥^२

‘देह-दुख’ से स्पष्ट है कि कवि रोग-ग्रस्त भी हुआ था और उसकी दशा बहुत बिगड़ गई थी और इस स्थिति में उसने ईश्वर का आश्रय लिया था।

कवि की वृद्धावस्था

गंग जहांगीर के शासनकाल तक जीवित रहे इसका प्रमाण कवि की रचनाओं से ही मिल जाता है। एक छंद में गंग ने अपने जीवन के चौथे ‘पन’ वृद्धावस्था का वर्णन किया है :—

वाभन को जनमु जनेऊ मेलि जानि बूझि जीभ ही बिगारिवे को याच्यो जन जन में
कहि कवि गंगु कहा कीजै जो न जाने जातु आयु ग्यान देखो जु बुढ़ाई ध्यान धन में

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १६६

काम क्रोध मद लोभ मोह तिनही के बस पर्यो तिहुं पुर नायक बिसार्यो तिहुं पन में कालिमा के चलत कलापति न्यों चेत होति केस आए सेत हैं न कैसो आए मन में ॥^१

एक 'पन' के २५ वर्ष मानने से गंग की अवस्था इस समय ७५ वर्ष के लगभग थी क्योंकि वह जीवन के चौथे 'पन' में प्रवेश कर चुके थे। बाल भी उनके श्वेत ही गये थे। गंग के अनेक छंद भी जो जहांगीर के सम्बन्ध में कहे गये हैं इस बात के सूचक हैं कि कवि जहांगीर के राज्यकाल तक रहा। जहांगीर संवत् १६६२ में सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने राज्य की सारी बागडोर संवत् १६६६ में नूरजहां के हाथों दे दी थी। इस काल की राजकीय परिस्थिति सम्बन्धी छंद भी अपना विशेष महत्व रखते हैं। अतः इसमें सन्देह नहीं कि इस समय तक कवि वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुका था।

कवि गंग की मृत्यु दैवी-घटना प्रेरित न थी। यह शासक की कठोर कुभावना से उद्भूत थी। उनकी मृत्यु राजाशा द्वारा घटित हुई। कवि से प्रभावित जनता की हृदय धमनि विरुद्ध आन्दोलन के लिये हिल उठी होगी और संभव है गंग की चर्चा राज-विद्रोह समझी गई हो और कवि के ग्रंथों को भी फलस्वरूप नष्ट करा दिया गया हो। हिन्दू जनता कवि की गौरवगरिमा की विस्मृति को अन्तः गुफा में भुलाने के लिये बाध्य हुई किन्तु परवर्ती कवियों की वाणी इस सम्बन्ध में मूक न बनी रही। उन्हीं कवियों की उक्तियों से यह प्रमाणित होता है कि गंग की मृत्यु राजाशा द्वारा हाथी के प्रहार से हुई। गंग की मृत्यु सम्बन्धी जो जनश्रुति चली आती है वह भी इसी पक्ष में है। प्रसिद्ध हिन्दी-कवि 'देव ने अकबरी-दरबार से सम्बंधित तीन प्रसिद्ध कवि वीरवल, केशवदास तथा गंग की मृत्यु का वर्णन करते हुए लिखा है कि बादशाहों की सेवा में पीछे पछताना पड़ता है। तीनों ही बादशाह के कृपापात्र थे और तीनों ही की मृत्यु बुरी रीति से हुई :—

केशव से गंग से प्रसिद्ध कविवर सेजे कालहिं गए न वृथा काल ही बितावहीं
साहिन की सेवा सुख नाहिन विचारि देखो लोभ की उमाहिन पै पीछे पछतावहीं

.....

अकबर वीरवर वीर कविवर कैसो गंग की सु कविताई गाई रस पाथी ने
वरनि वरनि नारी नरनि धरनीपति मोह लीने ताना ही ताथनंग ताथी ने

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का, परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १६१

विन भगवंत के भजन अंत विपत्ति पै देवगति न पाई काऊ संपत्ति के साथी ने
एक दल सहित विलाने एक पहली में एक भये भूत एक मीज मारे हाथी ने॥^१

किसी अज्ञात कवि के निम्नलिखित छंद में भी गंग की हाथी द्वारा मृत्यु का
उल्लेख आया है :—

सब देवन को दरबार जुर्यो तहं पिंगल छंद बनाय कै गायों
जब काहू ते अर्थ कह्यो न गयो तब नारद एक प्रसंग चलायो
मृतलोक में है नर एक गुनी कवि गंग को नाम सभा में बतायो
सुनि चाह भई परमेश्वर को तब गंग को लेन गनेस पठायो ॥^२

अतएव अब प्रश्न यह है कि किसी राजाज्ञा द्वारा इन्हें हाथी का शिकार बनना पड़ा
अथवा संयोगवश किसी मतवाले हाथी के चपेट में ये आ गये। कवि द्वारा कथित छंदों से
स्पष्ट होता है कि जहांगीर का विरोध उसने कई बार किया था और अंत में शासन का
खोखलापन बताते हुए उन्हें मृत्यु की गोद में जाना पड़ा था। जहांगीर की क्रूरता के कई
उदाहरण इतिहास के पृष्ठों में मिलते हैं। जहांगीर निरपराध व्यक्तियों को भी प्राणदंड दे
डालने में संकोच नहीं करता था। वह अपने मनोरंजन के लिये मनुष्यों को हाथी और शेर से
लड़वाया करता था और मनुष्य जब हिंसक जन्तुओं का शिकार बन जाता तब उसे एक अपूर्व
आनंद मिलता था। 'तुजुक जहांगीरी' में इस प्रकार की घटनाओं के उल्लेख आये हैं।^३
उस काल में प्राणदंड पाये हुए व्यक्तियों को मस्त हाथी के सम्मुख छोड़ दिया जाता था और
हाथी उन्हें पकड़कर चीर डालता था। यह रीति केवल जहांगीर के शासनकाल ही में न
थी वरन् अधिकांश मुगल शासकों द्वारा मृत्यु-दंड का यही ढंग था।

कवि की रचनाओं से पता चलता है कि वह आरंभिक अवस्था में सलीम के अनु-
कूल था। उसने राज्यसिंहासनस्थ जहांगीर तथा युवराज सलीम (जहांगीर) दोनों की

१ वैराग्य शतक, जगद्दर्शन पच्चीसी, पृष्ठ २

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४५

३ On the 22nd when I had got within a shot of nilgaw, suddenly a
groom (Jiladaur) and two kahars appeared and the nilgaw escaped.
In a great rage I ordered them to kill the groom on the spot and
to hamstring the kahars and mount them on asses and parade them
through camps that none should again have the boldness to do
such a thing.

Tuzuk Jahangiri, part 1, Page 164.

प्रशंसा की है। अकबर के राजत्वकाल में ही कवि सलीम की ओर झुक गया था :—

हाथी चाहै सालवन सांप चाहै माथे मनि पानी को प्रवाह जैसे चाहै वेली पान की
संजोगिनी रैन चाहै जोगी जैसे जोग चाहै आतुर नायक चाहै जैसे नित मान की
चंदाहि चकोर चाहै पिक घनघोर चाहै चकई चकोर जैसे चाहै भेट भान की
हंस चाहै मानसर मोर चाहै मेघ झर गंग - चाहै नज़र सलेम सुलतान की ॥^१

अकबर की मृत्यु के पश्चात् सलीम जहांगीर के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। इस समय कवि जहांगीर की प्रशंसा में कहे हुए छंदों से स्पष्ट होता है कि वह अपने जीवन का अन्तिम समय जहांगीर की छत्रछाया में व्यतीत कर रहा था। बहुत काल तक जहांगीर की दृष्टि कवि की ओर कृपापूर्ण रही थी इसका आभास कवि-रचित जहांगीर की प्रशंसा के छंदों से लग जाता है :—

दलहिं चलत हलहलत भूमि जल थल जिमि चल दल
पल पल खल खल भलत विकल बाला कर कुल कल
जिह पट्टहिं ध्वनि युद्ध धुंधुं धुद्धुव धुद्धुव हुव
अरर अरर फटि दरकि गिरत धस मसति धुक्नि ध्रुव
भनि गंग प्रबल मिह चलत दल जहांगीर तुव भार तल
कुं कुं फरिंद कुंकरत सहस गाल उगिलत गरल ॥^२

उक्त छंद में जहांगीर की सेना के आतंक का भी कवि ने वर्णन कर दिया है।

जहांगीर संवत् १६६२ में सिंहासनारूढ़ हुआ था। उस समय गंग की अवस्था ६७ वर्ष की थी क्योंकि कवि के जन्म संवत् १५९५ का उल्लेख पहले हो चुका है। जहांगीर अपने पिता के दरबारी कवि पर श्रद्धा की दृष्टि रखता था किन्तु यह अवस्था बहुत काल तक न रही। नूरजहां जहांगीर की अधिष्ठात्री हुई और साथ ही राज्य की शासिका भी। जहांगीर ने राज्य-संचालन का सारा भार उसी पर छोड़ दिया था। इसके पश्चात् देश की राजकीय स्थिति बिगड़ने लगी। अयोग्य पुरुषों की दरबार में भरमार हुई और इस अराजकता के कारण लोग शासन से विमुख रहने लगे। जब खुर्रम को आश्विन सुदी १३, संवत् १६७४ में 'शाहजहां' की उपाधि मिली^३ तो दरबार के कई प्रतिभाशाली

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५९

२ " " " " " " १०६

३ तुजुक-जहांगीरी, भाग १, पृष्ठ ३३८

व्यक्ति उसकी ओर आकृष्ट हो गये क्योंकि जहांगीर अपने क्रूर स्वभाव और विलास-प्रियता के कारण अधिकांश लोगों का घृणापात्र बन चुका था। राजनीतिक मामलों में वह नूरजहां के हाथों की कठपुतली होने के कारण उचित न्याय करने में भी असमर्थ रहता था। लोग नये युवराज से सुंदरतर शासन की आशा कर रहे थे। अतः वे अकारण ही शाहजहां की प्रशंसा करने लगे। गंग ने भी ऐसा ही किया। उन्होंने युवराज शाहजहां की प्रशंसा इस प्रकार की थी:—

नाउ लिए घर ते निकस्यो कवि गंग कहै साहजान तिहारो ।
आइके देख्यो है कल्पतरु अरु काम दुधा मनि/चितति भारो ।
आज हमारी भई परिपूरन आस सबै कवहुं नहिं वारो ।
लोभ गयो सिगरो चित ते अब ये गयो दारिद छेदन वारो ॥^१

दरबारी व्यक्तियों की इस प्रवृत्ति का आभास नूरजहाँ को भी मिला। शाहजहाँ के पोषक व्यक्तियों से वह स्वार्थवश शत्रुभाषना रखने लगी यद्यपि स्पष्ट रूप से अभी वह उनका प्रतिकार करना उचित नहीं समझती थी। गंग की भी नूरजहाँ के प्रति कोई विशेष श्रद्धा ज्ञात नहीं होती क्योंकि नूरजहाँ की प्रशंसा में उसका रचा एक भी छन्द नहीं मिलता है। राज्य का साम्राज्ञी की प्रशंसा उसी के दरबार का कवि न करे यह एक प्रकार का अपराध ही था। किन्तु कवि के जीवन दुःखमय समय तो तब आया जब नूरजहाँ के एक सम्बन्धी जैनखां^२ ने कवि गंग के इकनौर गाँव के जुनारदारों पर आक्रमण किया तथा क्रूर भाव से उनका विध्वंस किया। इस परिस्थिति ने कवि के हृदय में विप्लव की भावना उत्पन्न कर दी। बात उचित ही थी—जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। कवि ने निर्भीकता से राज्य के इस क्रूर कार्य की कटु आलोचना की। उसने इस घटना का निम्नलिखित छंद द्वारा जिसका उल्लेख पहले हो चुका है विरोध किया :—

बाकरखां विरच विदरभ देस मारयो गंग दलखान मारे मीर कन्हार गौर के ।
दाही भीर मारि के अनेक देस पस्ति करि खानदेस खोहै चित्र मन्दिर मरोर के ।

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३०

२ ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता कि जैन खां नामक नूरजहाँ का कोई भाई था।

संभव है वह नूरजहाँ का कोई दूर के सम्बन्ध में भाई लगता हो जिसका इतिहास-ग्रंथों

में उल्लेख नहीं मिलता।

पूरब पछाह वरदाने मानसिंह मारे कासिम खाँ खोदे हैं मवास ठौर ठौर के ;
 केसोदास मारु मरि हरम कमठ करी जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के ॥^१

उक्त छंद में जैनखाँ के क्रूर कर्म की निन्दा के साथ ही समय-समय पर घटित
 अन्य व्यक्तियों द्वारा किये गये अत्याचारों का भी उल्लेख कर दिया गया है। इस
 घटना की पुष्टि किसी अज्ञात कवि के निम्नांकित छन्द से भी होती है :—

ठठा मार्यो खानखाना दच्छन अजीम कोका ईसफखाँ मीर मारे कसमीर ठौर के
 साहि के हराम खोर । मारे साह कुलीखान कहाँ लौ गिनाऊँ उमराव और के
 रुस्तम नवाब मारि बालाघाट वार कियो फाजिल फिरंगी मारे टापनि सरोर के
 वास्ती को काम छह हजार असवार जोरे जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के ॥^२

कासीराम रचित छंद में भी इस घटना का परिचय मिलता है :—

सालीग्राम कंठ तुरसी की कंठी कंठ आवे चारों वेद कंठ विरचैया जग्य ठौर ठौर के
 घासिन से दर्भ बांधे उजरे अगोछा कांधे नैसक सिखाऊँ राखे वैरी वार और के
 बड़े व्रतधारी लीने हाथन में झारी चारु कासीराम मन्त्रन करैया अघ चौर के
 तप के पहार जैहैं पुन्य अवतार ऐसे जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के ॥

शिवसिंह-सेंगर ने उक्त छन्दके 'कासीराम' को गंग का पुत्र लिखा है^३ किन्तु
 उन्होंने इसको मानने के लिये कोई निश्चित आधार नहीं दिया है।

नूरजहाँ का सगा भाई आसफखाँ था और उसे उसने राज्य के मंत्रीपद पर नियुक्त
 किया था। जैनखाँ संभवतः उसका सगा भाई न होकर किसी निकट के सम्बन्ध से भाई
 लगता था क्योंकि उसका उल्लेख गंग के परवर्ती कवि कृपामणि ने किया है :—

नूरजहाँ को भाई जैनखाँ जौन तिनकी खटाई कवि गंग ने कही हती
 अजहुँ लो जात चली बात वह जहाँ तहाँ मुलक खजाना कहाँ उनकी कमी हती
 कृपामणि कहै श्रोण दे के सरदारों सुनों कानि दै नसीहत न कौन की गनी हती
 याते भूलि बैर नहि कीजै कवि लोगन ते कविन के बैर किये जुग लौ फजी हती ॥^४

१ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

२ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

३ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४०२

४ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

इस प्रकार स्वयं कवि के छंदों तथा अन्य परवर्ती कवियों की उक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनखाँ ने इकनौर के ब्राह्मणों को मरवाया था और कवि ने उस कृत्य की निन्दा खुले रूप में की थी। गंग के ये छंद जब नूरजहाँ के कानों पड़े तो उसके हृदय में प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो उठी। फलस्वरूप दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग को जहांगीर ने हाथी से कुचले जाने की आज्ञा दी। इसका उल्लेख दरबारे-अकबरी में इस प्रकार आया है:—

‘जहांगीर बादशाह एक दिन तीरंदाजी कर रहा था। किसी भाट की यावागोई पर खफ़ा होकर हुक्म दिया कि उसे हाथी के पाँव तले पामाल करे। खानखाना पास खड़ा था। फिरका मज़कूर की हाज़िर जवाबी उसकी ज़वानदराज़ी से भी बढ़ी हुई होती है। उसने अर्ज़ की कि हुज़ूर! ज़रेवा चीज के लिए हाथी क्या करेगा। एक चुहे चिढे का पाँव भी बहुत है। हाथी का पाँव खानखाना के लिये चाहिये कि बड़ा आदमी है। जहांगीर ने उसकी तरफ देखा कि इस लुफ़्फ़ ने दिल पर क्या असर किया। पूछा क्या कहते हो? उन्होंने कहा—कुछ नहीं। दारोगा से कहा—तू बता दे। खानखाना खुद बोले कि हुज़ूर के तसद्दुक से खुदा ने मुझ नाचीज़ को ऐसा किया कि यह बड़ा आदमी समझता है मैंने उस वक़्त शुक्र-खुदा किया और कहा जब इसकी देगा खता माफ़ हो तो पाँच हजार रुपये दे देना, हुज़ूर के जानो-माल की दुआ देगा।’^१

खानखाना ने इस ढंग की पैरवी गंग भट्ट के लिये ही की होगी किन्तु ऐसा शात होता है कि नूरजहाँ के कारण जहांगीर विवश हो खानखाना की प्रार्थना को कार्यरूप में न ला सका। उसमें नूरजहाँ का विरोध करने की सामर्थ्य नहीं रह गई थी और समय भी यह वह था जब खानखाना ने जहाँगीर के विरुद्ध शाहजहाँ से मिलकर राजविद्रोह किया था। ज़ल्लादों ने वृद्ध कवि को मतवाले हाथियों के सामने खड़ा कर दिया। परन्तु मरते समय भी कवि ने अपनी स्पष्टवादिता और निर्भीकता का एक उदाहरण दिया। निम्नोद्धृत दोहा कहते-कहते वह मृत्यु की गोद में चला गया:—

कबहु न भडुआ रन चढ़ै कबहु न बाजी बंब।

सकल सभाहि प्रनाम कर विदा होत कवि गंग ॥^२

१ दरबारे-अकबरी, पृष्ठ ६५०

२ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

निम्नलिखित छंद से भी कवि का जहांगीर की आशा द्वारा हाथी से मारे जाने की पुष्टि होती है:—

शाह अकबर महाकवि नरहरि जी को दीन्ह्यों महापात्र पद मरजाद जाती में
तापै चौर चोपदार चामी कर पग दीन्ह्यो पालकी में कंध केते पुर लिखि पाती में
गंग कवि हेत घने तैसे गज ग्राम दीन्हें आज लागि बान मान भोज अधिकाती में
संग दिल शाह जहांगीर से उमंग आज देत है मतंग पद सोई गंग छाती में ॥^१

एक और गुलाब कवि की 'गंग ऐसे गुनी सो गयंद सों चिराइये' पंक्ति द्वारा गंग का आशा विशेष द्वारा हाथों से मारा जाना सिद्ध होता है।^२ कवि गंग की मृत्यु की घटना सम्बंधी उद्गारों की काव्य में व्यक्त करना कवि लोग अपना कर्तव्य समझने लगे थे। कवि गंग की मृत्यु की हृदय-विदारक घटना को किसी अज्ञात कवि ने निम्नलिखित प्रकार से दिया है:—

कायर को खेत कहा कपटी सो हेत कहा विसवा विसास कहा कबलों पताइये
वारु वारी भीत कहा ओछन सो प्रीति कहा रागें को रुपैया कहा बार बार ताइये
काठ तलवार घाटि कौन जंग जीत आयो कागज को घोड़ा कहौ कैसो दौर दौराइये
कहै ये गुलाम के तिलाम तिनके जे साह गंग कैसे गुनीन को गयंद पै तुराइये ॥^३

जहांगीर का शासन युद्ध, विजय और पराजय की विशिष्ट घटनाओं से आक्रांत नहीं था। एक तो उसने थोड़े ही वर्ष राज्य किया और इसमें भी उसके शासनकाल में अधिक काल तक अराजकता ही रही। विलासिता और सुख-लिप्सा का साम्राज्य था। अतः उक्त छंद तथा कवि गंग का कथन 'कबहु न भड़ुआ रन चढ़े कबहु न बाजी बंब' जहांगीर के शासन के लिये कहा गया उचित जान पड़ता है। जहांगीर की क्रूर प्रकृति, नूरजहां का स्वार्थ, इकनौर का अत्याचार, गंग की स्पष्टवादिता और निर्भीकता को दृष्टि के सम्मुख रखने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि जहांगीर की नृशंसता ने ही गंग को हाथी द्वारा मृत्यु का शिकार बनाया।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि कवि गंग किसी राजा अथवा नवाब की आशा से हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाये गये।^४ कुछ

१ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४६

३ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४५

अन्य हिन्दी इतिहासकारों ने इसका समर्थन किया है। विचार करने पर यह भलीभाँति विदित हो जाता है कि मुगल दरबार के एक श्रेष्ठ और सम्मानित कवि-रत्न को कोई साधारण राजा अथवा नवाब इस क्रूर कृत्य को करने का साहस ही कैसे कर सकता था। ऐसा करने पर उसे मुगल सम्राट् से प्रबल शत्रुता मोल लेनी पड़ती। फिर इस समय तक खानखाना जीवित थे। उनकी मृत्यु संवत् १६८२ में हुई। उनके सम्मुख उनके प्रिय कवि को कोई राजा या नवाब मरवा देता और वे चुप रह जाते यह भी असम्भव था। अतएव गंग की मृत्यु जहांगीर की क्रूरता का ही विषादपूर्ण परिणाम था और जिस क्रूरता ने लोगों के मुखों और इतिहासकारों की लेखनी को मौन कर दिया था। यह घटना खानखाना की मृत्यु के पहले संवत् १६७४ के बाद ही घटी होगी क्योंकि संवत् १६७४ में तो गंग ने युवराज शाहजहाँ की प्रशंसा ही की थी।

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद यह कहते हुए कि गंग राजाशा द्वारा हाथी से नहीं कुचलवाये गये, उन्हें औरंगजेब के राज्यकाल तक ले गये हैं और इसकी पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित छप्पय दिया है:—

तिमिर लंग लइ मोल चली बब्र के हलके
 • साह हिमाजं साथ गई फिरि सहर बलकके
 अकबर करी अजाच भात जहांगीर खवाए
 शाहजहां सुलतान पीठि को भार छुड़ाए
 उन छोड़ि दियो उद्यान बन भ्रमि फिरत है स्यार डर
 औरंगजेब बखसीस किय अब आइ कवि गंग घर ॥^१

इतिहासकार मिश्रबंधुओं ने तर्कपूर्वक इस छप्पय की प्रामाणिकता स्वीकार करते हुए अंतिम चरण का पाठ 'आई कविराज घर' पाठ देकर मुंशी जी का यह कथन गलत प्रमाणित किया है कि गंग औरंगजेब के काल तक जीवित थे।^२ लेखक को याज्ञिक-संग्रहालय में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में यही 'कवि लाल घर' पाठ देखने को मिला। 'सुंदरदास कविराज' शाहजहां और औरंगजेब के समकालीन थे तथा पं० सुखदेव मिश्र 'लाल' कवि के नाम से प्रख्यात औरंगजेब के कृपापात्र थे। अतः इस आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अंतिम चरण का पाठ 'कवि लाल घर' अथवा 'कविराज घर' ही होगा।

१ मिश्रबंधु-वितोद, भाग १, पृष्ठ २७७

• २ " " " पृष्ठ २७८

इस प्रकार मुंशी देवी प्रसाद का गंग को राजाशा द्वारा हाथी से न मारा जाना और औरंग-जेब के समय तक ले जाने का प्रयास निष्फल सिद्ध होता है ।

कवि गंग के कवित्तों में निम्नलिखित छंद भी दिया गया है :—

शाह सो सलाम करि मार्यो है सलावत खान नैक न सम्हार्यो बोल राख्यो ठोर ठाकरो
केते केते मीर मारे कैसे केते कपू ठाड़े खेलत शिकार जैसे मृगन में बाघरो
कहै कवि गंग गजसिंह के अमरसिंह राखी रजपूती ते नवल नर नागरो
पाव सेर लोह ते हिलाई सारी बाशाही होती शमसेर तो छिनाय लेतो आगरो ॥^१

राजा अमरसिंह सम्बंधी उपर्युक्त गंग को बादशाह शाहजहां के राज्यकाल तक ले जाता है, जो कि उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा गलत सिद्ध होता है । जहांगीर के शासन-काल में ही गंग की मृत्यु हो गई थी । उक्त छंद की भाषा, लय, प्रवाह आदि गुणों के आधार से यह गंग की रचनाओं से मेल नहीं खाता । ऐसा ज्ञात होता है कि किसी कवि ने मुगल दरबार के प्रतिशोधनार्थ यह कवित्त लिखकर उसमें गंग की छाप डाल दी है । प्रक्षिप्त अंश मिलाने वाले कवि प्रतिष्ठित कवियों की छाप डाल कर ही अपने छंदों को प्रचलित कर देते हैं ।

बाबा वेणीमाधवदास कृत कथित 'मूलगुसाई'-चरित' में यह दिया गया है कि कवि गंग ने तुलसीदास की भक्ति-पद्धति की कटु आलोचना उनकी उपस्थिति में ही की । महात्मा तुलसीदास कुछ बोले नहीं किन्तु 'ऋषि के क्षमा शाप से भारी', मार्ग में जाते समय एक हाथी ने बिगड़ कर गंग को अपनी सूंड में उठा लिया और फिर अपने पैरों से कुचलकर उनका काम-तमाम कर दिया । अयोध्या से प्रकाशित मूल-गुसाई'-चरित की निम्नलिखित पंक्तियों से इस कथन की पुष्टि की गई है :—

गंग कहै हाथी कवन माला जपेउ सुजान कठ मलिया बंचक भगत कहि सो गयो रिसान ।
छमा किये नहिं साप दिय रंगे सान्ति रस रङ्ग मारग में हाथी कियो रूपटि गङ्ग तन भंग ॥^२

किसी अन्य कवि ने इस कथन का उल्लेख नहीं किया है । विशिष्ट महात्माओं के सम्बन्ध में ऐसी जनश्रुतियाँ प्रायः प्रचलित हो ही जाती हैं । फिर 'मूलगुसाई'-चरित' की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है । डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पं० रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० दीनदयालु

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १८७

२ मूल-गुसाई'-चरित, पृष्ठ ३३

गुप्त, डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि विद्वानों ने अपनी खोजों से इसको एक अप्रामाणिक ग्रंथ सिद्ध किया है।^१ इसलिए गंग की मृत्यु वाला कथन भी अप्रामाणिक ही है दूसरे जैसा ऊपर कहा गया है कि अन्य किसी समकालीन अथवा परवर्ती कवि ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है और गंग की मृत्यु-घटना का ऊपर विस्तारपूर्वक विचार प्रस्तुत ही किया जा चुका है।

कवि गंग की धार्मिक भावना

कवि गंग की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वह कृष्णोपासक कवि थे। उनके कई छंद इसकी पुष्टि करते हैं। कवि ने राम और कृष्ण दोनों की महिमा का गुणगान किया है किन्तु उसकी उपलब्ध रचनाओं में कृष्णभक्ति का ही विस्तार पाया जाता है। कवि की भक्तिगत विह्वलता निम्नलिखित छंद में द्रष्टव्य है :—

जो कहो मोहन जा मथुरा में तो मंदिर में मढ़ई इक छाऊँ
जो कहो तो तुलसी तन माल तमालन बीच] नचो अरु गाऊँ
स्वाँग |अनेक करो कवि गंग हो कैसेहु कान्ह तिहारो कहाऊँ
काल गहे कर डोलत मोहि कछू इक बेर खुसी कर पाऊँ ॥^२

कृष्ण की बाल-क्रीड़ा, राधा-कृष्ण-केलि-कमनीयता उनकी रूप-माधुरी, यमुना-महिमा आदि के वर्णन कवि की कृष्ण-भक्ति के परिचायक हैं। गंग के परम हितैषी राजा वीरबल भी कृष्णाश्रयी शाखा के भक्त थे यह पहले उनकी जीवनी प्रसंग में दिखाया जा चुका है। वीरबल की इस धार्मिक विचारधारा का प्रभाव संभव है, गंग पर भी पड़ा होगा किन्तु यह निश्चय नहीं होता कि वे कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी किस मत के पोषक थे। संभव है बल्लभ-संप्रदाय से उनका कोई सम्बंध रहा हो क्योंकि उनके मित्र वीरबल का उससे संप्रदाय से पूरा संपर्क था ही और कृष्णभक्ति संप्रदायों में उस काल में बल्लभ-मत ही प्रधान था।

अब्दुरहीम खानखाना

अकबरी-दरबार के उत्कृष्ट हिन्दी-कवियों में रहीम ही एक ऐसे कवि हैं जिनके जीवन की अधिकांश घटनाएँ ऐतिहासिक ग्रंथों में संग्रहीत हैं। रहीम का युवाकाल

१ अष्टछाप और बल्लभ-संप्रदाय, पृष्ठ १६२

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९०

अकबर और बुढ़ापा जहांगीर के दरबार में व्यतीत हुआ था तथा मृत्यु जहांगीर के शासनकाल में घटित हुई थी। अकबर के दरबारी इतिहासकारों—अबुलफ़जल, अब्दुल-क्रादिर बदाउनी आदि और स्वयं जहांगीर ने अपनी रचना 'तुजुक-जहांगीरी' में रहीम की जीवन सम्बंधी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है। अब्दुलवाकी रचित-मआसिरे-रहीमी द्वारा भी रहीम के लौकिक और साहित्यिक जीवन पर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है।

जाति, वंश, जन्म और शिक्षा—

रहीम तुर्कमान जाति और कराकयल् परिवार की बहारलू शाखा में उत्पन्न बैरमखां खानखाना के पुत्र थे। ये अपने पिता से भी अधिक गुण-संपन्न और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।

अकबर और उसके साथी जिस समय सिकन्दर सूर के लाहौर आक्रमण का विरोध करने के लिये सोमवार पौष सुदी ५ को दिल्ली से पंजाब की ओर प्रस्थान कर रहे थे उसी अवसर पर गुरुवार माघ बदी संवत् १६१३ को बैरमखां के घर में जमालखां मेवाती की छोटी बेटी से पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अकबर ने अब्दुरहीम रक्खा।^१ स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने मुंशी देवीप्रसाद द्वारा उपलब्ध रहीम की जन्मकुंडली को उद्धृत करते हुए इस जन्म-तिथि की प्रामाणिकता सिद्ध की है।^२ अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों से भी संवत् १६१३ ही रहीम की जन्मतिथि निकलती है।^३ कालांतर में अकबर बैरमखां की अनधिकार चेष्टा देख-देख कर उसके विरुद्ध होता गया और इसके फलस्वरूप बैरमखां को शासन से अलग होना पड़ा। अकबर के विरुद्ध उसने राजविद्रोह की चेष्टा की किन्तु अकबर ने उसकी पिछली सेवाओं को स्मरण कर उसे क्षमा प्रदान किया किन्तु पाटन के एक पठान ने प्रतिशोध में उसे क़त्ल कर दिया और उस समय रहीम को लेकर जो केवल लगभग चार वर्ष का बालक था मुहम्मद अमीन दिवाना, बाबार जम्बूर और ख्वाजा मलिक अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए अहमदाबाद पहुँचे जहाँ वे चार महीने तक रहे। तभी

१ अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ ७६

२ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ३, ३४

३ दर रोज़ चहारसंवर दहुमे माहेसफ़र सन् अरबाव सिक्कीतीन वत्तिस्स में अत्त मौलूदे ग़ायत महमूद.....अल्लाह तआल्लाह व एशां करामत फ़रमूद व मुसम्मा व अब्दुरहीम खान ग़स्त।

अकबर ने उसके पालन-पोषण और शिक्षा का भार लेते हुए उसे अपने पास आश्विन सुदी २, संवत् १६१६ को आगरे बुला लिया। अकबर ने रहीम की शिक्षा के लिये सर्वोत्तम प्रकार का प्रबंध किया था और इन्हें 'मिर्जाखां' की उपाधि प्रदान की थी।^१ जीवनीकार इतिहासकार अब्दुलवाकी लिखता है कि स्वयं रहीम से उसे मालूम हुआ था कि उन्होंने ग्यारहवें वर्ष में काव्य-रचना आरंभ कर दी थी और उसी समय से लोगों ने उनकी कविता में रुचि दिखाना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने किसी को अपना गुरु नहीं बनाया था वरन् अपनी काव्य-प्रतिभा के भरोसे ही आगे बढ़े थे।^२

विवाह

अकबर ने अपनी धाय जीजी माहम अंगी की बेटी माहबानू से रहीम का विवाह किया था और इस प्रकार रहीम का बादशाह के खानदान से वही सम्बंध हो गया था जो इनके पिता बैरम खानखाना का था।

भाग्योदय और पद-प्राप्ति

गुजरात की चढ़ाई के अवसर पर अकबर ने रहीम को पाटन की जागीर अगहन सुदी ३, संवत् १६२९ को दी और सय्यद अहमद खां को इनका संरक्षक नियुक्त किया। गुजरात के लोगों ने उपद्रव मचाया किन्तु रहीम ने उन्हें पराजित किया और इसके उपलक्ष में उन्हें चैत सुदी ११, संवत् १६३३ में गुजरात की सूबेदारी मिली। वैसाख बदी १२, वृहस्पतिवार संवत् १६३५ को शाहवाज़ा की सहायता से इन्होंने कुंभलनेर का अगम दुर्ग जीता। उदयपुर भी इनके अधिकार में हो गया। इससे रहीम अकबर की दृष्टि में बहुत ऊंचे उठ गये। चैतबदी ११, संवत् १६३६ के आरम्भ में बादशाह ने इन्हें कुलीन, निःस्वार्थी तथा प्रजा का सच्चा सेवक जानकर 'मीर-अज़्र' का पद प्रदान किया। इसके कुछ काल बाद ही बादशाह से इन्हें अजमेर की सूबेदारी और रणथंभौर का प्रसिद्ध किला प्राप्त हुए।^३ अकबर रहीम की कार्य-कुशलता, योग्यता और बुद्धिमता से इतना प्रभावित

१ अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ २०३, २०४

मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १८३

२ अज़ईन सिपहसालारि आली मिक्दार इस्तिमारपत कि दर याज़दह सालगी मराब गुफ्तनि अशआर रग़वत उफताद.....

मआसिरै-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५६२

३ मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १८३

था कि किसी भी उच्च-पद के रिक्त होने पर इन्हीं की ओर उसकी दृष्टि जाती थी। अपने बड़े शाहजादे सलीम की 'अतालिकी' का भार अकबर ने इन्हीं को दिया था। कुछ काल बाद घाड़े के क्रय-विक्रय, देखभाल का कार्य भी इन्हीं को सौंपा गया। गुजरात में पुनः उपद्रव होने पर एक बड़े लश्कर के साथ इनको अकबर ने वहाँ भेजा। माघवदी १४, संवत् १६४० को पाटन पहुँचकर सात अंग का व्यूह रचा और स्वयं बीच में रहे। सेना के निरुत्साहित होने पर उन्होंने एक फरमान बादशाह की ओर से प्रकाशित किया जिसके फलस्वरूप सेना आह्लादित हो आगे बढ़ी और माघसुदी १५, संवत् १६४० को शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। शत्रुओं के सिर उठाने पर उन्हें दुबारा पराजित किया। अकबर ने इससे प्रसन्न होकर रहीम को जनवरी, १५८४ में 'खानखाना' का खिताब और पाँच हजारी का मनसब प्रदान किया।^१ 'वकील' का पद मुगलों के राज्य में सर्वोपरि समझा जाता था। राजा टोडरमल की मृत्यु के बाद यह पद पौष वदी १२, संवत् १६४६ में रहीम को प्रदान किया गया। खानखाना ने सिन्ध पर भी विजय प्राप्त की। फागुन वदी बुधवार संवत् १६५३ के अंतिम विजय से दक्षिण में भी मुगल-शासन की धाक बैठ गई।^२ अबुलफ़ज़ल की हत्या के बाद भादों सुदी २, संवत् १६५६ से दक्षिण की लड़ाइयों का सारा भार खानखाना पर हो गया था। संवत् १६६१ में शाहजादा दानियाल की मृत्यु के पश्चात् दक्षिण का पूर्ण अधिकार खानखाना को मिल गया। इस प्रकार रहीम का जीवन अभी तक एक समृद्धशाली और वैभवयुक्त व्यक्ति के समान व्यतीत हुआ था। वे शासक की दृष्टि में बहुत ऊँचे उठ गये थे। अकबर के शासनकाल में इनका काफी मान हुआ था।

कार्तिक सुदी १४, संवत् १६६२ में अकबर की मृत्यु के बाद शाहजादा सलीम जहांगीर के नाम से सिंहासनारुढ़ हुआ। इस समय की रहीम की अवस्था ४१ वर्ष की थी। जहांगीर ने खानखाना को उसी अधिकार पर रहने दिया। 'तुजुक जहांगीरी' में जहांगीर ने खानखाना का दरबार में उपस्थित होने का वर्णन सजीव ढंग पर किया है—'एक पहर दिन चढ़ा था कि खानखाना जो मेरी अतालिकी के अधिकार से सम्मानित था, बुरहानपुर से आकर सेवा में उपस्थित हुआ। वह इतना आनन्दित और

१ मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५

मआसिरूल उमरा, पृष्ठ १८४

२ खानखानानामा, पृष्ठ ३५, भाग २

उत्साहपूर्ण था कि वह नहीं जानता था कि वह पाँव से आया है या सिर से। उसने बड़ी व्याकुलता से अपने को मेरे पैरों पर डाल दिया और मैंने भी दयालुता से उसको ऊपर उठाकर छाती से लगाया और उसका मुँह चूमा। उसने मोतियों के दो हार, कई हीरे और माणिक भेंट किये जिनका मूल्य तीन लाख रुपये था। इनके अतिरिक्त बहुत सी अन्य वस्तुएँ और सौगाते भेंट की।^१ बादशाह ने भी खानखाना को एक अद्वितीय घोड़ा और 'फतह' नामक एक हाथी को जो लड़ने में अद्वितीय था, बीस और हाथियों सहित भेंट किया।^२

खानखाना ने पुनः मगसर वदी २, संवत् १६६५ को दक्षिण के लिये प्रस्थान किया। जहाँगीर ने इस अवसर पर उन्हें जड़ाऊ तलवार, पेटी और शिरोपाव खासा हाथी समेत प्रदान किया। किन्तु अपने सहायक शाहजादा परवेज, राजा वीरसिंह देव, विक्रमाजीत और शुजातखाँ की ईर्ष्या के कारण पराजित हुए। इस पर खानखाना संवत् १६६७ में दरबार में बुला लिये गये।^३ किन्तु खानजहाँ लोदी जिसके विश्वास दिलाने पर जहाँगीर ने खानखाना को वापिस बुला लिया था, शत्रुओं द्वारा पराजित हुआ। तब खानखाना पुनः दक्षिण भेजे गये। इस अवसर पर उनका मनसब छः हजार का हो गया और जड़ाऊ तलवार, हाथी एवं हराकी घोड़ा भी भेंट में मिला।^४ पौष सुदी १०, संवत् १६७५ को बादशाह ने सात हजार जात, सात हजार सवार का मनसब, खासा खिलअत, खासा हाथी, जड़ाऊ तलवार कमर पट्ट सहित और खानदेश तथा दक्षिण की सूबेदारी मिली। इस प्रकार खानखाना का दरबार में पूर्ववत् सम्मान हो गया था। अपमान, वैभवहीनता तथा पुनर्सम्मान

खानखाना ने अभी तक सुखमय जीवन ही व्यतीत किया था और किसी प्रकार का अपमान उन्हें नहीं सहना पड़ा था। किन्तु नूरजहाँ के शासिका बनने पर परिस्थितियाँ बदलीं। उसने शाहजादा शाहजहाँ (खुर्रम) की अपेक्षा छोटे शाहजादे शहयार का अधिकार बढ़ाना आरम्भ किया। क्योंकि वैसाख सुदी ४, संवत् १६७८ को नूरजहाँ की पुत्री से उसका विवाह होने पर वह उसका दामाद हो गया।^५ इसके कुछ ही पहले चैत

१ तुजुक-जहाँगीरी, भाग १, पृष्ठ १४७

२ " " पृष्ठ १५१

३ " " पृष्ठ १७८

४ " " पृष्ठ २२१, २२२

५ " भाग २, पृष्ठ १९४

वदी १४, संवत् १६७७ में उसे आठ हजारी जात और चार हजार का मनसब देकर फौज़ी अफसर बनाया गया था। किन्तु परिस्थितियों से विवश हो खानखाना ने जहाँगीर के विद्रोही शाहजहाँ का साथ देना उचित समझा। इसी कारण संवत् १६८० में जहाँगीर ने खानखाना का अपमानजनक शब्दों में वर्णन किया है—‘जब कि खानखाना जैसा अमीर जो अतालिकी के ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ था, ७० वर्ष की अवस्था में अपना मुँह नमकहरामी से काला कर ले तो क्या गिल्ला है। उसके बाप ने भी अंतिम अवस्था में मेरे बाप से ऐसा ही बरताव किया था। यह भी इस उम्र में बाप का अनुगामी होकर हमेशा के लिये कलंकित हुआ। भेड़िये का बच्चा आदमियों में बड़ा होकर भी अंत में भेड़िया ही रहता है।’^१ शाहजहाँ के विरोध के होते हुए भी खानखाना ने महावतखाँ को पत्र भेजा जो शाहजहाँ की पकड़ में आ गया और वे कैद हुए। महावतखाँ और शाहजहाँ के शर्त-प्रस्ताव पर खानखाना छूट गये। परन्तु इसके बाद वे परिस्थितिवश परवेज से मिल गये जिसके फलस्वरूप शाहजहाँ और महावतखाँ दोनों खानखाना के विरुद्ध हो गये। जब कोई उपाय दृष्टिगत न हुआ तो वे जहाँगीर के दरबार में पहुँचे और लजा के कारण बहुत देर तक उन्होंने अपना सिर जमीन की ओर से ऊपर नहीं उठाया। बादशाह ने उन्हें आश्वासन दिया और उनको उचित पद प्रदान किया। फागुन सुदी १५, संवत् १६८२ को रहीम को फिर से ‘खानखाना’ की पदवी और खिलअत के साथ कन्नौज की हुकूमत मिली। इस स्थान पर ‘मुआसिरुल उमरा’ के लेखक ने लिखा है कि अब उस दुनियादार बूढ़े वेशर्म में अपनी अंगूठी में इस भाव का शेर खुदवाया था कि जहाँगीर की मिहरवानी ने खुदा की मदद से मुझको जिन्दगी और खानखानी दुबारा दी है।^३ खानखाना को सात हजारी जात, सात हजार सवार का मनसब, खिलअत, तलवार, घोड़ा जड़ाऊ जीन सहित और खासा हाथी देकर जहाँगीर ने उनका फिर से सम्मान किया और अजमेर का सूबा भी जागीर में दिया। खानखाना अस्वस्थता के कारण काफी निर्बल हो गये थे और फागुन संवत् १६८३ में इनकी मृत्यु हो

१ तुजुक-जहाँगीरी, भाग २, पृष्ठ २५०

२ मअसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १९४

३ मरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताई दाते खानी, दो बार: जिंदगी दाद: दो बार: खान-खानानी ।

गई।^१ स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने उनकी मृत्यु-तिथि संवत् १६८६ दी है।^२ ७२ वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु बताई गई है।^३ उक्त मतभेद इसीलिये है क्योंकि उन्होंने इनका जन्म संवत् १६१३ में दिया था जिसे पहले दिया जा चुका है।

पारिवारिक जीवन तथा स्वभाव

रहीम का पारिवारिक जीवन सुखकर नहीं रहा था। पिता की हत्या जब ये लगभग चार वर्ष के थे अभी हो गई थी। इनके एक पुत्री और तीन पुत्र हुए किन्तु अपने जीवन-काल में ही इन्होंने सभी की मृत्यु अपने आँखों से देखी। पौष वदी ३०, संवत् १६५५ को इनकी बेगम महाबानू का देहान्त होगया था जिसका शोक खानखाना को तो हुआ ही, अकबर ने भी उसका काफी शोक किया था क्योंकि वह उनकी दूध शरीक बहन थी। महाबानू अकबर की धाय माहम अंगा की पुत्री थी यह पहले लिख ही जा चुका है। खानखाना की पुत्री जाना बेगम का विवाह अकबर के पुत्र दानियाल के साथ हुआ था। शराब की अति से दानियाल की मृत्यु चैतवदी ३०, संवत् १६६१ में हो गई थी। जाना बेगम ने उसके साथ सती होना चाहा किन्तु खानखाना ने बड़ी कठिनाई से इसे रोका और उसने अपने शेष दिन बड़े शोक-संताप से काटे।

जहाँगीर ने खानखाना के पुत्रों को भी विविध पद देकर अपनी कृपा-दृष्टि का परिचय दिया था। बड़े पुत्र दराबखाँ को हजारी जात, पाँच सौ सवारों का मनसब और गाजीपुर ज़िला जागीर में दिया था और एरच को जड़ाऊ पेटी तथा 'शाह नवाज़ खाँ' की उपाधि दी थी। माघवदी ६, संवत् १६६८ को बादशाह ने अपने बाँधने की तलवार जिसका नाम शाबच्चा था, शाहनवाज को दी और बाद में तीन हजारी का मनसब भी दिया। दराब खाँ को इससे कुछ अधिक का मनसब देकर छोटे पुत्र रहमान दाद को भी मनसब से विमुख नहीं रखा। किन्तु अपनी इस संपन्न स्थिति में होते हुए भी उनको पुत्रों का सुख नहीं मिला। शाहनवाज़ खाँ ३३ वर्ष की अवस्था में बूढ़े बाप को विलखता हुआ छोड़कर शराब की अति के कारण इस संसार से विदा हो गया था। जहाँगीर ने स्वयं बैसाखसुदी १२, संवत् १६७६ के वृतांत में लिखा है—'इस अशुभ समाचार को सुनकर मुझे बहुत अफसोस हुआ...और शाह नवाज़ खाँ का जो पाँच हजारी मनसब

१ मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १९६

२ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ८

३ मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १९६

था उसके भाइयों और बेटों के मनसबों में बढ़ा दिया ।' उसका छोटा भाई दराब खां शाहनवाज़ की जगह बरार और अहमद नगर के सूबों का सरदार बना । रहमानदाद दो हजारी जात और सात सौ सवार का मनसब से सम्मानित हुआ । शाह नवाज़ खाँ के बेटे 'मनुचहर' को दो हजारी जात हजार सवार का मनसब, [दूसरे पुत्र 'तुगलक' को हजारी जात पाँच सात सौ सवार का मनसब मिला ।^१ कुछ काल बाद रहीम के पुत्र रहमानदाद की मृत्यु हो गई । उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए जहाँगीर ने लिखा है—'खानखाना के बेटे रहमानदाद के विषय में यह खबर पहुँची कि वह बालापुर में मौत से मर गया । वह योग्य युवा पुरुष था, तलवार चलाने में साहसी और निपुण था । अपने तलवार का चमत्कार दिखाने की उसकी इच्छा सदैव बनी रहती थी । अभी शाहनवाज़ खाँ का जख्म ही नहीं भरा था कि यह दूसरा घाव लगा । परमेश्वर उसको संतोष प्रदान करे ।'^२ कहा जाता है कि संवत् १६६१ में महावतखाँ ने खानखाना की शत्रुता के कारण उनके पुत्र दराबखाँ का सिर कटवाकर उसे एक थाल से ढक कर तरबूज के नाम से खानखाना के पास भेजा । खानखाना ने देखकर कहाँ, तरबूज शहीदी है ।^३ उक्त वर्णनों से स्पष्ट होता है कि खानखाना के सभी पुत्रों की मृत्यु असामयिक हुई थी और जीवन की इस विषमता का प्रभाव खानखाना के व्यक्तिगत जीवन पर किसी रूप में पड़ा था इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । रहीम की 'दोहावली' में इस विषम अवस्था और कटु अनुभव का निरूपण हुआ है । लौकिक सुख-दुख,^४ जीवन की दुरवस्था^५, मानहानि, नियतिवाद में विश्वास^६ आदि से सम्बन्धित विचारों की झलक उनके दोहों में स्पष्ट रूप से मिलता है ।

१ तुजुक-जहाँगीरी, भाग २, पृष्ठ ८८

२ " " पृष्ठ १७६

३ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ ८७

४ यों रहीम सुख दुःख सहत बड़े लोग सह सांति ।

उवत चंद जेहि भाँति सों अथवत ताही भाँति ॥

५ रहिमत विपदाहू भली, जो थोड़े दिन होय ।

हित अनहित या जगत में, जानि पड़त सब कोय ॥

६ रहिमत चुप हूँ बैठिये, देखि दिनन के फेर ।

जब नीके दिन आइहैं, बनत न' लगिहैं देर ॥

रहीम-रत्नावली, दोहावली, संख्या १६, १८, २३ क्रमशः

खानखाना के जीवन में तरह-तरह के चक्र आये किन्तु उन्होंने सदैव धैर्य और दृढ़ता के साथ उनका सामना किया। सुखमय स्थिति में वे कभी मर्यादा के बाहर नहीं गये और जब दुःख का वक्त आया तो उसे सहर्ष झेलने में कभी पीछे नहीं हटे।

प्रतिष्ठा

खानखाना में विशिष्ट गुणों का अभाव नहीं था। वे गुणवान, प्रतिभासंपन्न, बुद्धिशाली व्यक्ति थे। जहाँगीर ने उनकी प्रशंसा में लिखा है—‘खानखाना दरबार के बड़े अमीरों में से थे। अकबर के राज्य में इन्होंने बड़े-बड़े काम किये जिनमें तीन मुख्य थे—गुजरात की विजय, सुहेल के युद्ध में शत्रुओं को केवल बीस हजार सवारों से पराजित करना, सिंध और ठठ्ठे की विजय।’^१ खानखाना विद्या और योग्यता में भी बड़े-चढ़े थे। वे अरबी, तुर्की, फ़ारसी, और हिन्दी भाषाओं को खूब अच्छी तरह जानते थे। इनकी विशेषता यह थी कि हिन्दी, अरबी, फ़ारसी के लेखों को समान गति से पढ़ सकते थे और पढ़ते वक्त ही एक भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में इस प्रकार कर देते थे कि ऐसा ज्ञात होता था कि मूल में वही भाषा पढ़ रहे हों। हिन्दी को फ़ारसी, अरबी, फ़ारसी को अरबी, हिन्दी और अरबी को फ़ारसी हिन्दी में समान गति से पढ़ देना उनकी एक विशेषता थी।^२ हिन्दू शास्त्रों का भी इन्हें यथेष्ट ज्ञान था। इन्होंने सभी कविताओं में अपना उपनाम ‘रहीम’ रखा था। हिन्दी में भी इन्होंने ‘रहीम’ की ही छाप रखी। यह कहा जाता है कि अकबरी-दरबार के लोगों में जितनी अधिक काव्य-रचना इन्होंने की, उतनी संभवतः किसी ने नहीं लिखी और उनकी वह काव्य-रचना गुण में भी सब से बढ़-चढ़ कर थी।^३

• • हिन्दी के अनेक कवियों ने रहीम की लोक-प्रियता, दानशीलता और काव्य-प्रेम का परिचय अपनी रचनाओं में दिया है। रहीम के साथ हिन्दी कवियों का एक समुदाय सदैव बना रहता था। उन्होंने इन हिन्दी कवियों को जितना पुरस्कृत किया उसका दसवां

१ मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १९८

२ मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५५५, ५५६

३ रहीम के नामि शरीफ़ी ईरान अस्त तख़ल्लुस मी नुमायन्द व बज़बानि हिंदी व तुर्की व अरबी नीज़ अशआरि आब्दार फ़रमूदह अन्द व दर ज़बानि हिन्दी यदि वैज़ा नमूदाअन्द चन्दान अशआरि मतीन व अबियाति दिल नशीन कि ईशान दर उन ज़बान दारिन्द हीव यक्र अज़ फूहूलि शोअराइ उन ज़बान र नीस्त।

मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५६१

भाग भी फ़ारसी कवियों को नहीं दिया। फलस्वरूप हिन्दी कवियों ने रहीम की गुण-ग्राहकता की जितनी प्रशंसा की थी उसका सौवां भाग भी फ़ारसी-कवियों ने नहीं किया।^१ हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केशवदास का रहीम से घनिष्ट परिचय था। उनकी रचना 'जहांगीर चन्द्रिका' में रहीम की प्रशंसा मिलती है :—

साहि जू की साहिबी को रक्त अनंत गति, कीनों एक भगवंत हनुवंत वीर सों
जाको जस केसोदास भूतल के आस पास सोहत छबीलो क्षीर सागर के क्षीर सों
अमित उदार अति पावन विचारि चारु जहाँ तहाँ आदरियों गंगा जी के नीर सों
खलन के घालिवे को खलक के पालिवे को खानखाना एक रामचन्द्र जू के तीर सों ॥२

उक्त पुस्तक के उद्यम और भाग्य प्रसंग में सरदारों के वर्णन में रहीम की वीरता और आतंक का उल्लेख किया गया है।

आसकरन नामक चारण ने जिसका उपनाम 'जाडा' था, खानखाना की प्रशंसा निम्नलिखित दोहों में की थी^३ :—

खानखाना नवाब हो मोहि अचम्भी एह।

मायो किमि गिरि मेरु मन साढ तिहसी दह ॥^४

खानखाना नवाब दे, खाँडे आग। खिवंत।

जल वाला नर प्राजले, तृणवाला जीवंत ॥^५

- १ तजम्मूल व इन आभव एहसाने कि व शुअराइ फ़ारसी ज़बान नमूदह अन्द दह बरावरि उन व हिन्दी ज़बानान् नमूदह वाशेन्द व चन्दान अश आर कि उन जमा अह दर मद ही ईशान् गुप्त अन्द फ़ारसी गोयान उशरि अशीरि उन न गुप्त अन्द व अल्हाल जम्मए कसीर दर रिकाविह आलीन्ड ईशान हस्तन्द।

मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५६२

- २ रहीम रत्नावली, पृष्ठ ७५

- ३ खानखानानामा, मुंशी देवीप्रसाद, भाग २, पृष्ठ १०५

- ४ मुझे यही अचंभा है कि खानखाना का मेरु पर्वत जैसा मन साढ़े तीन हाथ के शरीर में कैसे समा गया है।

- ५ खानखाना नवाब की तलवार से आग भड़ती है। पराक्रमी उसमें जल भरते हैं और दीन पुरुष बच रहते हैं।

खानखाना नवाब री, आदमगीरी धन्न ।

मह ठकुराई मेर गिरि, मन न राई भन्न ॥^१

खानखाना नवाब रा, अड़िया भुज ब्रह्मांड ।

पूठे तो है चंडिपुर, धार तले नवखंड ॥^२

कहा जाता है, रहीम ने प्रसन्न होकर कवि के प्रत्येक दोहे पर एक-एक लाख रुपया देना चाहा किन्तु उसे अस्वीकार कर अपने आश्रयदाता महाराणा प्रताप के भाई जगमल को रहीम की सहायता से जहाजपुर का परगना जो मेवाड़ प्रांत का ही एक भाग था, दिल-वाया था और साथ ही रहीम ने जाड़ा के दोहों का उत्तर निम्नलिखित दोहे में दिया था^३—

घर जड्डी अंबर जड़ा, जड्हा मंहगू जोय ।

जड्हा नाम अलाहदा, और न जड्हा कोय ॥

मंडन कवि ने रहीम की प्रशंसा निम्नलिखित छंद में की है :—

तेरे गुन खानखाना परत दुनी के कान, ये तेरे कान गुन आपनो धरत हैं ।

तू तो खग खोलि खलन पै कर लेत, लेत यह तो पै कर नेक न डरत हैं ॥

मंडन सुकवि तू चढ़त नवखंडन पै, यह भुजदंड तेरे चढ़िए रहत हैं ।

ओहती अटल खान साहब तुरक मान, तेरी याक मान तोसों तेहु सो करत है ॥^४

मुंशी देवीप्रसाद ने खानखाना की प्रशंसा का 'प्रसिद्ध' कवि कृत एक छंद दिया है :—

सात दीप सात सिंधु थरक थरक करैं जाके डर दूटत अखूट गढ़ राना के
कंपत कुबेर बेर मेर मरजाद छाँड़ि एक एक रोम मर पड़े हनुमाना के
धरनि धसक धस मुसक धसक गईं मनत प्रसिद्ध खंभ डोले खुरसाना के
सेस फन फूट फूट चूर चक चूर भए चले पेस खाना जूनवाब खानखाना के ॥^५

१ खानखाना की उदारता धन्य है कि मेरुगिरि जैसी बड़ी ठकुराई उन्होंने अपने मन में जरा सी भी नहीं मानी ।

२ खानखाना नवाब के भुज ब्रह्मांड में अड़े हुए हैं । दिल्ली तो उसकी पीठ पर है और नौ खंड तलवार की धार के नीचे हैं ।

३ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ १०६

४ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ७८

५ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ १४०

शिवसिंह-सरोज में भी 'प्रसिद्ध' कवि का खानखाना के आतंक का एक छंद में वर्णन मिलता है :—

गाजी खानखाना तेरे धौसा की धुकार सुनि सुत तजि पति तजि भाजी बैरी बाल है
कटि लचकत बार भार ना संभारि जात परी विकराल जहं सघन तमाल हैं
कवि परिसिद्ध तहां खगन खिजायों आनि जल भरि भरि लेती दगन विलास हैं
वेनी खैचे मोर सीस फूल को चकोर खैचे मुकता की माल ऐचि खैचत मराल है ॥^१

स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने रहीम की प्रशंसा का एक अन्य छंद जो उनके संग्रहालय में है, दिया है :—

जलद चरन संचरहि सवर सोहै समस्थ गति
रुचिर रंग उतंग जंग मंडहि विचित्र अति
वैरम सुवन नित वकसि वकसि हथ देत मंगिनन
करत राग परसिद्ध रोंस छंडहि न एक छिन
थर हरहि पलटहि उच्छलहि नच्यत धावत तुरंग इमि
खंजन जिमि नागरि नैन जिमि नट जिमि मृग जिमि पवन जिमि ॥^२

'संत कवि' द्वारा रचित खड़ी बोली मिश्रित भाषा के एक छंद में भी खानखाना की प्रशंसा द्रष्टव्य है :—

सेर सम सील सम धीरज समसेर सम साहवे जमाल सरसाना था
कर न कुबेर कलि कीरति कमाल करि ताले वंद मरद दरद मंद दाना था
दरबार दरस परस दखेसन को तालिब तलब कुल आलम बखाना था
गाहक गुनी के सुख चाहक दुनी के बीच संत कवि दान को खजाना खानखाना था ॥^३

अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि नरहरि के पुत्र हरिनाथ का एक कवित्त खानखाना की प्रशंसा का अवलोकनीय है :—

वैरम के तनय खानखाना जू के अनुदिन
दोउ प्रभु सहज सुभाए ध्यान ध्याए हैं

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ १९१

२ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ७९

३ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ८५

१४५

कहै हरिनाथ सातो द्वीप को दिपति करि
जहि खंड करताल ताल सों बजाए हैं
एतनी भगति दिल्लीपति की अधिक देखी
पूजत नए को मास तातें भेद पाए हैं
अरि सिर साजे जहांगीर के पगन तट
टूटे फूटे फाटे सिव सीस पै चढ़ाए हैं ॥^१

नरहरि ने भी अपने एक छंद में 'परम प्रवीन षानिषाना सो उजीर जाके न्याहि विलसत साहि अकबर' द्वारा खानखाना के गुणों की प्रशंसा की है ।^२

मुंशी देवी प्रसाद ने खानखाना की दानशीलता की प्रशंसा सम्बंधी अलाकुली कवि का एक छंद दिया है :—

लंका लायो लूट किधों सिंहन को कूट कूट हाथी घोड़े अंत एते पाए ते खजाने हैं
अलाकुली कवि की कुवेर ते मितार्ई कीनी अनतुले अनभाए नग औ नवीने हैं
पाई है तै खान लक्ष भई पहिचान भूल रह्यो है जहां नए समान कहां कीने हैं
पारस ते पाइ किधों पारा ते कमायो किधों समुद्रहू ते लायो किधों खानखाना दीने हैं ॥^३

खानखाना के परवर्ती 'तारा' कवि ने भी उनकी शुभ्र-वीरता और दानशीलता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है :—

जोरा वर अब जोर रवि रथ कैसे जोर बने जोर देखे दीठि जोरि रहियतु है
है न को लिवैया ऐसो है न को दिवैया ऐसो दान खानखाना को लहै ते लहियतु है
तन मन डारे बाजी हूँ तन संभारे जात और अधिकाई कहौ कासो कहियतु है
पौन की बड़ाइ बरनत सब तारा कवि पूरो न परत याते पौन कहियतु है ॥^४

'मुकुंद' नामक एक कवि का भी खानखाना की वीरता की प्रशंसा में एक छप्पय मिलता है :—

१ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ८६

२ देखिए, नरहरि के विविध विषयक ग्रंथ, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२

३ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ १३८

४ रहीम रत्नावली, पृष्ठ ८६

कमठ पीठ पर कोल कोल पर फन फनिंद फन
 फनपति फन पर पुहुमि पुहुमि पर दिंगत दीप गन
 सप्त दीप पर दीप एक जंबु जग लिखिख्य
 कवि मुकुंद तंह भरतखंड उप्परहिं विसिखिख्य
 खानानखान बैरम तनय तिहि पर तुव भुज कल्पतरु
 जगमगहिं खग भुज अग पर खग अग स्वामिति वर ॥^१

अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग ने खानखाना की प्रशंसा में लगभग पंद्रह छंद लिखे हैं जिनका उल्लेख ग्रंथ में गंग की रचनाओं के प्रसंग में किया गया है। यहां पर गंग के केवल दो छंद उद्धृत किये जाते हैं जिनमें खानखाना के आतंक और दानशीलता का क्रमशः वर्णन हुआ है :—

बांधिबे को अंजलि विलोकिबे को काल ढिग राखिबे को पास जिय मारिबे को रोस है
 जारिबे को तन मन भरिबो को हियो आंखे धारिबे को पग मग गनिबे को कोस है
 खाइबे को सोंहे भोंहे चढ़िबे उतारिबे को सुनिबे को प्रानघात किए अफसोस है
 बैरम के खानखाना तेरे डर बैरी बधू लीबै को उसास मुख दीबै ही को दोस है ॥^२

अन्य चकित भँवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल वन
 अहि फनि मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन
 हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिले अति
 बहु सुंदरि पदिमनी पुरुष न चहें न करें रति
 खलमलित सेस कवि गंग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो
 खानानखान बैरम सुवन जिदिन कोप करि तंग कस्यो ॥^३

रहीम-रत्नावली में खानखाना की प्रशंसा के सात छंद अज्ञात कवि के नाम से से दिये हुए हैं। इन छंदों द्वारा रहीम की वीरता, दानशीलता, प्रभुत्व तथा आतंक पर समुचित प्रकाश पड़ता है।

१ रहीम रत्नावली, पृष्ठ ८६

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४०

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४५

रहीम और राणा अमर सिंह

मुंशी देवी प्रसाद ने उदयपुर के राणा अमर सिंह और खानखाना की मैत्री-भाव सम्बंधी वार्ता का उल्लेख किया है।^१ उदयपुर के महाराणा अमरसिंह जब जहांगीर की फौज के दबाव से जंगलों में फिरते-फिरते थक गये तो उन्होंने निम्नलिखित दोहे खानखाना के पास भेजे थे:—

हाडा कूरम राव बड़ गोखां जोस करन्त
कहियो खानखानान बनचर हुआ फिरन्त
तुवरुं सूं दिल्ली गई राठौड़ा कनवज्ज
राण पयं पै खान तें वह दिन दीसे अज्ज ॥

कहा जाता है कि खानखाना ने इसके उत्तर में राणा को लिख भेजा था:—

धर रहसी रहसी धरम खप जासी खुरसाण ।
अमर विशंभर ऊपरे राखो नहचो राण ॥

रहीम और रीवां-नरेश रामचन्द्र

अबुर्हीम खानखाना का संपर्क रीवांनरेश और गोस्वामी तुलसीदास से भी हुआ था जिसका परिचय हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रंथों में मिलता है।^२ कहा जाता है, खानखाना जब दीन-दशा में थे एक याचक ने उन्हें आ घेरा। इन्होंने एक दोहा लिख कर उसे रीवां-नरेश के पास भेजा:—

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध नरेश ।

जापर विपदा परति है सो आवत यहि देश ॥

रीवां-नरेश ने उस याचक को एक लाख रुपये दिये। उस काल रीवां के राजा रामचन्द्र थे जिसका संकेत उक्त दोहे में 'अवध-नरेश' से किया गया है।

रहीम और तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास जी से भी खानखाना का स्नेह भाव था। जनश्रुति है कि एक बार एक ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिये घनाभाव में गोस्वामी जी के पास आया। गोस्वामी जी ने उसे रहीम के पास दोहे की निम्नलिखित पंक्ति देकर भेजा:—

१ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ ११५ •

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २६२ •

सुरसिय नरतिय नागतिय यह चाहत सब कोय ।

रहीम ने ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर बिदा किया और दोहे की दूसरी पंक्ति इस प्रकार पूरी कर के दे दी:—

गोद लिए तुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय ।

खानखाना और गोस्वामी तुलसीदास के संपर्क का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है । रहीम की प्रेरणा से गोस्वामी जी की 'बरवै रामायण' की रचना बताई जाती है । अयोध्या से प्रकाशित बाबा बेणी माधव दास कृत, 'मूल गुसाईं चरित' में निम्नलिखित छंद मिलता है:—

कवि रहीम बरवै रचै, पटये मुनिवर पास ।

लखि तेइ सुंदर छंद में, रचना किये प्रकास ॥^१

इसमें यह घटना संवत् १६७० की बताई गई है । किन्तु जिस 'मूल गुसाईं-चरित' को तुलसीदास के शिष्य बाबा बेणीमाधवदास विरचित कहा जाता है उसकी अप्रामाणिकता डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इन शब्दों में सिद्ध की है—'इतिहास लेखकों का कथन है कि सं० १६६९ में रहीम दक्षिण भारत भेज दिये गये थे और वहाँ से संवत् १६७३ में वापिस बुलाये गये । यह बात असंगत सी जचती है कि सुदूर दक्षिण से रहीम ने कतिपय बरवै की रचना कर उन्हें कवि के पास भेजा था ।'^२

अतएव उक्त ग्रंथ की घटना के संदिग्ध होने पर रहीम द्वारा प्रेरित गोस्वामी जी की बरवै रचना की जनश्रुति भी अप्रामाणिक सिद्ध होती है । संभव है गोस्वामी जी रहीम की बरवै सम्बंधी रचनाओं को देखकर उसके लिये स्वतः ही प्रेरित हुए हों ।

१ मूल-गुसाईं-चरित, पृष्ठ ३३, छंद ९३

२ तुलसीदास, पृष्ठ ५०,

अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ १६३

तीसरा अध्याय

रचनाएँ

नरहरि की रचनाएँ

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने नरहरि के तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है^१ — रुक्मिणी-मंगल, छप्पय-नीति और कवित्त-संग्रह। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित सन् १९०३ की खोज-रिपोर्ट तथा 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' नामक पुस्तक के प्रथम भाग में नरहरि कृत रुक्मिणी-मंगल का उल्लेख मिलता है।^२ लेखक ने काशी राज-पुस्तकालय में जाकर उक्त पुस्तिका को प्राप्त किया। यह डेढ़ सौ वर्ष के लगभग पुरानी ज्ञात होती है। पुस्तक में कुल पन्द्रह पृष्ठ हैं। लिपि देव-नागरी और कैथी मिली हुई है। लिपिकार ने दन्त्य 'स' के स्थान पर सर्वत्र तालव्य 'श' का ही प्रयोग किया है। परन्तु पुस्तक में लिपि-काल, रचना-काल तथा लिपिकार किसी का भी पता नहीं चलता। यह दोहा, चौपाई छन्दों में लिखी हुई है।^३ ग्रन्थ की भाषा प्राचीन है, इससे भी ग्रन्थ की प्रामाणिकता का बोध होता है। उक्त ग्रन्थ के रचयिता नरहरि भाट महापात्र नरहरि ही हैं जिसका उल्लेख स्वयं कवि ने ग्रन्थ के अन्त में किया है :—

महापात्र कवि नरहरि मंगल गाएउ

जो यह मंगल गावै गाइ सुनावइ

व्याइ काज कल्यान परम पद पावइ

१ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २५७, कवि संख्या १५०

हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ७३३

२ खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन् १९०३, कवि संख्या ११

हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ ८४

३ पुस्तक संख्या २०१, बस्ता संख्या १५, सरस्वती भंडार, राज-पुस्तकालय, काशी।

रुकुमिनि हरन सुनै जो हृदै विचारइ
आप तरै भव सागर कुल निस्तारइ ॥^१

उस काल में इस प्रकार के मंगल-ग्रन्थ लिखने की परिपाटी थी। तुलसी के पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल प्रसिद्ध ही हैं।

नरहरि की 'रुकुमिणी-मंगल' के अतिरिक्त कोई अन्य छन्दोबद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती। केवल उनके स्फुट छन्द ही संग्रह ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के एक प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थ में नरहरि की स्फुट रचनाएँ संग्रहीत हैं। उक्त संग्रह-ग्रन्थ^२ की प्राचीनता देखते हुए उसकी प्रामाणिकता पर संदेह नहीं होता। कुछ प्रकाशित ग्रन्थों तथा परंपरा रूप में नरहरि कृत जो छन्द मिलते हैं वे इस हस्तलिखित प्रति में भी उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कवि के छन्दों की भाषा की प्राचीनता भी उसकी प्रामाणिकता सिद्ध करने में सहायक है। उक्त ग्रन्थ एक संग्रह ग्रन्थ है जिसका लिपिकाल संवत् १७२१ और रचना-काल संवत् १६४० अंकित है। ग्रन्थ के संग्रह-कर्ता कोई लाल जो हैं। इसमें नरहरि की कविता का संग्रह 'बाहु लोहे सोने के' शीर्षक से आरम्भ होता है और बाद में कई वादों लोहे सोने का वादु, देन कान का वादु, तेल तंबोल का वादु, मंगनदानि का वादु, लजा और भूख का वादु, आदि का परिचय मिलता है। इसमें कवि कृत उपर्युक्त वादों के अतिरिक्त एक सौ तेईस छप्पय, कवित्त, दोहे आदि सब मिलाकर दिये हुए हैं। उक्त हस्तलिखित ग्रन्थ में नरहरि के छन्द संख्या ५१ से लेकर ७० तक उपलब्ध नहीं होते। प्रति के कुछ पृष्ठों के लोप हो जाने के कारण ही यह जान पड़ता है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में उल्लिखित 'छप्पय नीति' और 'कवित्त-संग्रह' ग्रन्थ लेखक के देखने में नहीं आये। संभव है ये ग्रन्थ कोई स्वतंत्र रचनाएँ न होकर कवि के स्फुट छन्दों के केवल संग्रहमात्र हों और उन्हीं के ये कल्पित नाम दे दिये गये

१ देखिए, नरहरि कृत रुकुमिणी मंगल, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पृष्ठ संख्या १०

२ ग्रन्थ में लाल कवि का विक्रम विलास, सुंदर महाकवि का सुंदर-भुंगार, अमीर खुसरो की गारी, जयतसिंह महापात्र का अलंकार-ग्रंथ, हरिनाथ और नरहरि की फुटकर रचनाएँ संग्रहीत हैं।

हों। कवि के छप्पय और कवित्त उसकी स्फुट रचनाओं में उपलब्ध होते हैं जिन्हें प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में दे दिया गया है।

इस प्रकार नरहरि की उपलब्ध प्रमाणिक रचनाओं में रुक्मिणी-मंगल तथा पूर्व उल्लिखित वादों के अतिरिक्त १२३ छंदों में ६० छप्पय, ४० सवैये, १२ दोहे, ५ कुंडलियां, ४ कवित्त, और २ सोरठों की गणना की जा सकती है।

रचनाओं का वर्ण-विषय

नरहरि हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग के कवि थे जब आधुनिक काव्य की भाव-अभिव्यंजना-प्रणाली, प्रकृति के सहारे विविध रूपों का संश्लिष्ट आयोजन और मानव भावनाओं के साथ उनका सुंदर विवेचन विशद रूप में प्रचलित न था। वहाँ तो अभिधा-प्रणाली द्वारा नीति, उपदेश एवं मानव आदर्शों का प्रकाशन करना कवि का ध्येय रहता था। नरहरि के उपदेश सम्बन्धी छंद अनुभूतिजन्य है। उन्होंने केवल सुनी-सुनाई बातों का प्रकाशन नहीं किया है वरन् स्वयं उन सबका अनुभव किया था। लोक-मर्यादा और आदर्श-पथ के निर्माणार्थ नरहरि ने कई छप्पय लिखे हैं। कवि ने अपने समकालीन सामाजिक स्थिति का निरीक्षण किया था। वे राजदरबार में रहने वाले केवल कोरे कवि न थे वरन् समाज-स्रष्टा की भावना से भी अनुप्राणित थे और सम्भव है उनके व्यक्तित्व का जनता में प्रभाव हो। क्योंकि उसका समर्थन उनकी जनश्रुतियों से होता है। उस काल में शानी, धनी, पंडित, वृद्ध सभी अपने कर्तव्य-मार्ग से विचलित हो रहे थे। पारिवारिक बंधन शिथिल हो गये थे, सन्यासियों में अर्थ-लोलुपता ने घर कर लिया था और उनमें धन-संग्रह की भावना प्रधान हो गई थी। नरहरि ने इसकी चर्चा कई छंदों में की है। नरहरि के कुछ छंदों में ज्योतिष-विद्या की भी झलक मिलती है।

नरहरि के भक्ति सम्बन्धी छंद अल्प संख्या में ही प्राप्त हैं फिर भी ये कवि की भक्ति-भावना के समर्थक और द्योतक हैं। तत्कालीन वैष्णव, शैव के भेद को मिटाकर राम और शिव की समान उपासना का उपदेश उनका रचनाओं में साथ ही मिलता है। कविने आदर्श भक्ति-मार्ग को स्थापित करने का संकेत अपनी रचनाओं में दिया है जिसका विशद निरूपण तदोपरान्त गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में पूर्ण रूप से मिलता है।

नरहरि की फुटकर रचनाओं में सीय-स्यंबर, राधा-कृष्ण का रूप-सौंदर्य तथा गोपी-विरह वर्णित हैं। कवि ने विरह के अन्तर्गत 'बारहमासा' का क्रमबद्ध वर्णन किया

है। बारहों महीनों में विरह की विविध अवस्थाओं का विवेचन हुआ है। उनकी इस विरह सम्बन्धी रचना में बहुत उच्च भावों का परिचय तो नहीं मिलता किन्तु इस विषय पर लिखी गई रचनाओं की अभिवृद्धि अवश्य करता है। नरहरि ने बारहमासा में विरह की अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रकृति के सुन्दर चित्रों की संश्लिष्ट योजना भी की है। उद्दीपन रूप में प्रकृति के नाना प्रकार के चित्रों को प्रस्तुत किया गया है। कवि की कुटुम्ब रचनाओं में उपलब्ध अनेक वादों में भी उच्च काव्य-कला की प्रस्फुटन नहीं है किन्तु वे कवि की वस्तु के यथातथ्य वर्णन की कुशलता के परिचायक और उसकी तर्कशक्ति के द्योतक हैं। इन विवादों में नाटकत्व गुण प्रधान है। निर्जीव पदार्थों को मूर्तिमत्ता प्रदान कर उन्हीं के द्वारा उनकी उपादेयता का प्रकाशन करवाया गया है। पात्रों के अनुकूल उनका चारित्रिक विकास भी हुआ है। वे अपने-अपने तर्क की पुष्टि जिस आवेश और स्फूर्ति के साथ करते हैं उनको दिखाने में कवि की लेखनी पीछे नहीं रही है।

नरहरि के छंदों से कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि भी होती है और कुछ नई घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। जगन्नाथपुरी के राजा मुकुन्द गजपति का तुलादान, चित्तौरगढ़-विजय, नरहरि और अकबर का खवाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती से पुत्र-फल के लिये प्रार्थना आदि ऐतिहासिक तथ्यों के वर्णन कवि की रचनाओं में मिलते हैं। साथ ही कई ऐतिहासिक व्यक्तियों का विवरण भी प्राप्त होता है। 'रुक्मिणी-मंगल' में कवि ने कृष्ण और कुन्दनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी के गंधर्व-विवाह का वर्णन किया है। सर्वप्रथम कुन्दनपुर के राजा भीषमराउ का परिचय, उसकी कन्या रुक्मिणी का यौवनावस्था का वर्णन, पुरोहित को लगन लेकर भोजना, जरासिन्धु शिशुपाल आदि राजाओं का स्वयंवर में आने तथा रुक्मिणी का गुप्त रूप से पुरोहित द्वारा कृष्ण के पास परिणय-संदेश भेजने आदि के वर्णन दिये गये हैं। अंत में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण और उनके द्वारा जरासिन्धु तथा शिशुपाल तथा अन्या राजाओं की पराजय और कृष्ण का रुक्मिणी के साथ गंधर्वविवाह दिखाकर कवि ने ग्रन्थ के पाठ करने का महत्व बताया है।

ब्रह्म की रचनाएँ

वीरबल की स्फुट रचनाएँ 'ब्रह्म' उपनाम से प्राचीन हस्तलिखित प्रतिबों में तथा कुछ प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में उपलब्ध होती है। पहले वीरबल की जीवनी के आरम्भ में यह प्रमाणित किया जा चुका है कि वीरबल ने 'ब्रह्म' छाप रखकर अपनी रचनाएँ

लिखी थीं। कृष्णानन्द व्यास द्वारा संपादित 'संगीत-राग-कल्पद्रुम' नामक बृहत् संग्रह-ग्रंथ में 'ब्रह्म' छाप के अतिरिक्त 'ब्रह्मदास' की छाप के कई छंद प्राप्त होते हैं। ब्रह्मदास छाप के छंद वीरवल के नहीं हैं क्योंकि उनमें न तो 'ब्रह्म' की सी शब्दावली ही है और न वह छंद और भावसुषमा ही।

ब्रह्म की कोई पुस्तकबद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती, फुटकर छंद ही मिलते हैं। संभवतः दरबार में व्यस्त जीवन होने के कारण ब्रह्म ने कोई प्रबन्ध-रचना लिखी ही नहीं। अकबर ने इनके दरबारी जीवन के प्रारंभ में ही इनको 'कविराय' की उपाधि से विभूषित किया था। इससे अनुमान लगता है कि इनकी रचनाएं उत्कृष्ट और सुंदर थी और उनका उस काल में मान भी होने लगा था।

याज्ञिक-संग्रहालय में ब्रह्म के लगभग दो सौ छंद संग्रहीत हैं, जो प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों तथा कई प्रकाशित ग्रंथों-सुंदरी-सर्वस्व, साहित्य-रत्नाकर, हफ्तीजुल्ला खां का हज़ारा, सुंदरी-तिलक, कविता-कौमुदी, कवि-वचन-सुधा (पत्रिका) आदि से लिये गये हैं।

कुछ हस्तलिखित प्रतियों का विवरण जिनको लेखक ने स्वयं देखा है और जिनमें ब्रह्म के छंद उपलब्ध होते हैं नीचे दिया जाता है:—

कांकरोली विद्या-विभाग, श्री द्वारकेश पुस्तकालय, सरस्वती भंडार।

उक्त पुस्तकालय की दो हस्तलिखित प्रतियां देखने को मिलीं^१:—

१. बंद ५०, पुस्तक संख्या ३३-४

इस प्रति में ब्रह्म के ८८ छंद क्रमबद्ध मिलते हैं। पुस्तक प्राचीन है किन्तु लिपि-काल का कुछ पता नहीं चलता। कुल १६ पत्र हैं, पुस्तक शोधित है, अच्छर सुपाठ्य हैं! पुस्तक का शीर्षक 'वीरवल के कवित' दिया हुआ है। चार-पाँच घनाक्षरी छंदों को छोड़कर शेष सबैये छंद ही हैं।

२. बंद ५१, पुस्तक संख्या ३, विशेष ११×५॥॥ इंच

उक्त प्रति एक संग्रह-ग्रन्थ है। विषय-विभाजन के अनुसार छंद दिये हुए हैं। पुस्तक में लिपि-काल का उल्लेख नहीं है किन्तु पुस्तक प्राचीन प्रतीत होती है। इस प्रति में वीरवल के ४२ छंद संग्रहीत हैं। उपर्युक्त कांकरोली की हस्तलिखित प्रतियों में संवत्

^१ डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक जी के सौजन्य से प्राप्त

१७५० के बाद के किसी कवि की रचना का उल्लेख नहीं है। इससे यह संग्रह प्राचीन शात होता है।

याज्ञिक-संग्रहालय की कुछ हस्तलिखित प्रतियों का विवरण जिनमें ब्रह्म के फुटकर छंद मिलते हैं, निम्नांकित है—

१. प्रति संख्या १०९।१६ — इस संग्रह के आदि में 'आलम कृत कवित्त' लिखा मिलता है। आलम के १५४ छन्द देने के बाद गंग के छन्द दिये हुए हैं। अंत में वीरबल के १० छन्द प्राप्त होते हैं।
२. प्रति संख्या ७१८।४४ — यह एक खंडित स्फुट संग्रह-ग्रंथ है। लिपि-काल अज्ञात है किन्तु पुस्तक प्राचीन है। इसमें ब्रह्म के ८ छन्द संग्रहीत हैं।
३. प्रति संख्या ७०४।४४ — यह भी एक खंडित संग्रह-ग्रंथ है। इसमें लिपि-काल का निर्देश नहीं है। पुस्तक प्राचीन है। ग्रंथ में ब्रह्म के ७ छन्द दिये हुए हैं।
४. प्रति संख्या ३६१।२२ — यह संग्रह-ग्रंथ है, लिपि-काल अज्ञात है किन्तु पुस्तक प्राचीन है, अक्षर सुपाठ्य हैं। इसमें ब्रह्म के कुल ४ छंद उपलब्ध होते हैं।

इन प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के सब छन्द नवीन हैं। केवल एक दो छन्दों की पुनरुक्ति मिलती है। इनके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में ब्रह्म के कुल ५० छन्द उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार इन सब को मिलाकर ब्रह्म के स्फुट छन्दों की संख्या लगभग २०० तक पहुँचती है।

रचना का वर्ण-विषय

वीरबल के अधिकांश छन्दों में भक्ति और उपदेश विषय का सन्निवेश है। वल्लभ-संप्रदायी छीत स्वामी इनके गुरु थे और संभवतः उन्होंने ही इनको इस मत की ओर आकृष्ट किया था। इनके कई छन्द कृष्ण की बाल-लीला, मान आदि के उपलब्ध हैं। उनके ये छन्द काव्य-कुशलता तथा सूक्ष्म निरीक्षण के द्योतक हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम सम्बन्धी छन्द भी उन्होंने लिखे हैं। उपदेश और शिक्षा सम्बन्धी छन्द प्रभावोत्पादक तथा कवि की उच्च अनुभूति के परिचायक हैं। संभवतः प्राचीन कवि-पद्धति और दरबारी प्रभाव भी वीरबल पर यथेष्ट रूप में पड़ा था और उसी के अनुरूप कवि 'की

रचनाओं में रूप-सौन्दर्य तथा विविध नायिकाओं के वर्णन आये हैं। संयोग शृंगार के अन्तर्गत कवि ने मुरली-माधुरी, राधा-कृष्ण केलि, रास आदि का वर्णन किया है। विप्रलम्भ के अन्तर्गत ब्रह्म ने कृष्ण का मथुरा-प्रवास, गोपी-विरह आदि के चित्र प्रस्तुत किये हैं। कवि रचित प्रकृति-वर्णन और समस्या-पूर्ति के भी कुछ छन्द उपलब्ध होते हैं। इन रचनाओं में व्रजभाषा के परिष्कृत रूप का प्रयोग हुआ है। अलंकार-योजना के अन्तर्गत उन्होंने नये-नये उपमानों का प्रयोग किया है। इसी कारण साहित्य-समीक्षकों की निम्नलिखित उक्ति प्रसिद्ध हो गई है :—

उत्तमं पदं कवि गङ्गा के उपमा में बलवीर।

केशव अर्थ गम्भीरता सूर तीन गुण धीर ॥^१

तानसेन की रचनाएँ

मिश्रबन्धु-विनोद में तानसेन कृत तीन ग्रंथों का उल्लेख किया गया है^२—संगीत-सार, रागमाला, श्री गणेशस्तोत्र। संगीत-सार का परिचय सन् १६०१ की खोज-रिपोर्ट में भी मिलता है। संगीत-सार ग्रंथ सरस्वती भण्डार, दरबार पुस्तकालय, रीवाँ में सुरक्षित है।^३ इसमें कुल ८२ पृष्ठ हैं। ग्रन्थ का लिपि-काल सम्वत् १८८८ और लिपिकार कोई हँठासिंह है। लिपि सुबोध है। संपूर्ण ग्रंथ अधिकतर दोहा छन्द में ही है। संगीत-राग-कल्पद्रुम के नित्य-कीर्तन तथा सूरसागर संस्करण में भी जो सम्वत् १८६८ का प्रकाशित है, तानसेन विरचित 'संगीतसार' ग्रंथ का थोड़ा सा उद्धरण मिलता है।^४ इस रचना में तानसेन ने संगीत-विद्या की विशेषताओं का वर्णन किया है। ग्रंथ में 'वन्दना' के बाद संगीत के दो प्रकार-मारग और देशी, नाद के लक्षण, सप्त स्वर, अवरोही-रोही लक्षण, ग्राम-लक्षण, स्वर-उच्चार-स्थान, गायन-दोष और गायन-गुण

१ यह दोहा किसी प्रमाणिक ग्रंथ में नहीं मिलता। किंवदन्ती रूप में ही प्रचलित हो गया है। इसका आधार संस्कृत का अत्यधिक प्रचलित निम्नलिखित श्लोक जान पड़ता है:—

उपमा कालिदासस्य भारवेर्धगौरवम्।

दंडिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

२ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२, कवि संख्या १६७

३ लेखक ने स्वयं रीवाँ दरबार-पुस्तकालय में जा कर ग्रंथ का अवलोकन किया। अवलो-
कनार्थ इसे प्रस्तुत ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में दे दिया गया है। उक्त ग्रंथ की संख्या
१२ और बस्ता-संख्या ११४ है।

४ संगीत-राग-कल्पद्रुम, नित्य-कीर्तन तथा सूरसागर, पृष्ठ १९, २१

के लक्षण, श्रुति, मूर्छना, भैरव मालकोश, हिंडोल, भार्या आदि के लक्षण तथा विस्तार आदि विषय वर्णित हैं। इनके अतिरिक्त 'संगीत-रत्नाकर' तथा भरत के मतानुसार विविध तालों के वर्णन भी विस्तार से दिये गये हैं। ग्रंथ में तानसेन ने रागों और तालों के आरंभ-अंत को विस्तारपूर्वक दिखाया है। लेखक के प्रयास करने पर भी ऊपर दिये गये तानसेन कृत 'रागमाला और गणेश-स्तोत्र' का पता नहीं चला।

तानसेन के जीवन-काल को देखते हुए उनकी उपलब्ध रचना न्यून है। उपर्युक्त पुस्तकबद्ध रचना 'संगीत-सार' और केवल कुछ सौ फुटकर पद ही प्राप्त हैं। अकवरी दरबार के अन्य नवरत्न कवियों की तरह ही इनकी भी कोई प्रबन्ध-रचना प्राप्त नहीं होती।

तानसेन के स्फुट पद हिन्दी के संग्रह-ग्रंथों में मिलते हैं। इनका विशेष संग्रह-कृष्णानंद व्यास रचित संगीत-राग-कल्पद्रुम में हुआ है। इस ग्रंथ के पहले और दूसरे भाग में तानसेन के लगभग दो सौ पद उपलब्ध होते हैं जिसका संग्रह एक स्थान पर नहीं है वरन् ये पुस्तक के दोनों भागों के बीच-बीच में बिखरे मिलते हैं। जगत-शान्ति, औषधालय, बुटी रोड, सितावडी, नागपूर सी० पी० के पास तानसेन विरचित लगभग तीन सौ पद संग्रहीत हैं जिनकी सूची लेखक को डॉ० भवानी शंकर याज्ञिक के सौजन्य से देखने को मिली। इनमें से दो सौ पद तो वही संगीत-राग-कल्पद्रुम के ही हैं। सौ पद नवीन ज्ञात होते हैं। इस प्रकार तानसेन की रचना-सामग्री में केवल तीन सौ पदों की सूची और उपर्युक्त 'संगीत-सार' की रचना के अतिरिक्त कोई अन्य सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

रचना-काल और वर्ण-विषय

तानसेन का रचनाकाल संवत् १६१५ के लगभग कहा जा सकता है। उनका जन्मकाल संवत् १५९५ माना गया है। तानसेन के जैसे प्रतिभाशाली और गुणी व्यक्ति ने बीस वर्ष की अवस्था से ही पद-रचना आरंभ की हो तो असंभव नहीं। अतः अपने ६० वर्ष के रचना-काल में तानसेन की काव्य-सामग्री काफी भरपूर होनी चाहिये। इससे यही ज्ञात होता है कि तानसेन की बहुत सी रचना अब भी अप्राप्य है।

तानसेन की रचनाओं को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो युवावस्था की रचनाएँ, दूसरे प्रौढ़ावस्था की और तीसरे वृद्धावस्था की। प्रथम अवस्था में उन्होंने अपने आश्रयदाताओं, संरक्षकों तथा हितैषियों की प्रशंसा और जीवन की सुखकर स्थिति का वर्णन किया है। दूसरे में अनेक देवताओं की गौरव-गरीमा का

प्रकाशन हुआ है परन्तु इसमें उनके धार्मिक विचारों की गहन अभिव्यक्ति नहीं हुई है। तीसरे में तानसेन के भक्ति-हृदय की अनुभूति की स्पष्ट रूप में झलक मिलती है। युवावस्था में तानसेन एक संरक्षक के यहां से दूसरे को यहां और वहां से फिर तीसरे की संरक्षा में रहे। उनके इस अस्थिर जीवन का परिचय इनको इस अवस्था के पदों से लगता है। रीवांनरेश राजा रामचन्द्र, मुगल सम्राट् अकबर, मानसिंह आदि के यशोगान, जनोत्सवों-विशेष-कर ईद, विजयदशमी, होली आदि पर गाये हुए पद, रूप-सौंदर्य, नखशिख वर्णन, अवस्थाओं के अनुसार नायिकाओं का विवेचन आदि सम्बन्धी विषय इनकी युवाकाल की रचना के अन्तर्गत माने जा सकते हैं। कवि की वन्दना और स्तुति-सरस्वती, गणेश, महादेव, सूर्य, अनंत देवता आदि के पद, गौस मुहम्मद तथा अन्य पीर आदि के यशवर्णन कवि की प्रथम अवस्था में ही गाये गये होंगे। किन्तु तानसेन के जीवन में गम्भीरता ज्यों-त्यों आती गई त्यों-त्यों उनकी रचनाओं का विषय भी बदला। मन-प्रबोधन, नीति-वचन, ईश्वर की सर्वव्यापकता, फारसी-शब्दावली में अल्लाह और मुहम्मद का गुण-गान तानसेन की दूसरी प्रकार की रचनाएँ हैं।

वत्सल-संप्रदाय के संपर्क में आने पर ऐसा ज्ञात होता है। उनकी धार्मिक दृष्टि भगवान् कृष्ण की छवि में केन्द्रित और एकाग्र हो गई थी। वे इस अवस्था में श्रीनाथ जी के सम्मुख कीर्तन पद गाते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगे थे। इसका परिचय उनके जीवन-चरित के प्रसंग में दिया जा चुका है। इस काल में उनका दरबारी जीवन प्रायः समाप्त हो चुका था और अवसर-अनवसर वहां पहुँचने पर भी वे भक्ति में विभोर कीर्तन-पदों के गाने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते थे। उनके जीवन का और उनकी रचना का यह अवसान-काल था। कृष्ण की बाल-लीला, मुरली-माधुरी, राधा-कृष्ण रूप-सौंदर्य, गोपी-उद्धवसंवाद, गोपी-मान, भक्तिगत-उपालंभ, गोपी-विरह व्यंजना आदि विषय के ही पद उन्होंने इसी अवस्था में गाये होंगे। तानसेन के तत्सम्बन्धी पद भाव और भाषा दोनों दृष्टि से भक्त-प्रवर सूरदास से मेल खाते हैं। इस अवस्था में ही उन्होंने 'संगीतसार' जैसी रचना लिखी होगी क्योंकि इसमें आरम्भ में ही अनहद-नाद, नाद के दो रूपों-आहत और अनाहत का वर्णन किया गया है। अनहदनाद का सम्बन्ध मुनियों और भक्तों से ही है। अतः यह उसी अवस्था की रचना हो सकती है जब उनकी प्रवृत्ति भक्ति-मार्ग में काफी ऊँची पहुँच चुकी हो।

तत्कालीन संगीत के स्वर सम्बन्धी प्रायः सभी ग्रंथों का संक्षिप्त एवं सुरूप वर्णन तानसेन ने संगीतसार-पुस्तक में कर दिया है। नाद के आध्यात्मिक महत्व का दिग्दर्शन

भी कवि ने इसमें कराया है जो वर्तमान संगीत में अप्राप्य है। स्वरों का विभिन्न जातियों में वर्गीकरण आधुनिक संगीत के लिये एक नई वस्तु है। यों तो रे, ध, ग, नि, तथा स, प में षड्ज पंचम भाव है किन्तु इनका किसी जाति विशेष में होना यह कहीं नहीं मिलता 'मूर्छना' के अन्तर्गत वर्णित तीन-तीन स्वर भी आजकल के संगीत में प्रायः प्रयुक्त नहीं होते। कवि ने ताल की ओर भी विशेष ध्यान दिया है। उसका उद्देश्य केवल स्वर सम्बंधी पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करना ही न था वरन् तालों का विविध मतों द्वारा परिचय देना भी उसको अभीष्ट था।

तानसेन ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है। कुछ पदों में फ़ारसी मिश्रित शब्दावली का अधिक व्यवहार हुआ है। यह उनकी रचना में दरबारी प्रवृत्ति का द्योतक है। अलंकार-छटा का स्वाभाविक रूप तानसेन की रचनाओं में दर्शनीय है। इस प्रकार तत्कालीन ब्रज-भाषा के परिमार्जित और परिष्कृत रूप का प्रयोग, विषय-वैविध्य, भाव-विशिष्टता उनकी रचनाओं की विशेषता है।

तानसेन एक महान् कलावंत थे। वे ध्रुपद-गायन में विशेष कुशल थे। उनके रचित ध्रुपद आज भी प्रायः सभी संगीतज्ञ गाते हैं। उन्होंने कुछ श्रुत-मधुर एवं मनो-रंजक नवीन रागों का भी आविष्कार किया, उदाहरणार्थ मियाँ की मल्हार, दरबारी कान्हरा आदि। इन रागों के अध्ययन से इनके संगीत विषयक पांडित्य का परिचय मिलता है।

कवि गंग की रचनाएँ

नागरी प्रचारिणी सभा, त्रैवार्षिक खोज-रिपोर्ट (सन् १९३२-३४) में गंग रचित तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—१. गंग-पदावली, २. गंग-पच्चीसी, ३. गंग-रत्नावली। गंग पदावली में ७२१ अनुष्टुप छन्द और पंडित देवदत्त जी (सादाबाद, तहसील, ज़िला मथुरा) के पास यह सुरक्षित बताया गया है। गंग-पच्चीसी का लिपिकाल संवत् १६६० है और यह ठाकुर पीतमसिंह (बहना नगरी, ज़िला एटा) के पास लिखा गया है। किन्तु लेखक के प्रयास करने पर भी उक्त स्थानों में इन ग्रंथों का पता नहीं चला। जैसा शीर्षक से स्पष्ट होता है, गंग-पच्चीसी में कवि विरचित २५ छन्द होंगे। गंग-रत्नावली में १४०० अनुष्टुप छन्द हैं।^१ इसका संग्रह स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक के

१ अनुष्टुप छंद—लिपिकार ने गंग के छंदों का नाम यह रख दिया है। वस्तुतः गंग की कविता कवित्त, सूत्रया छंदों में ही उपलब्ध होती है।

संग्रहालय में जो अब डॉ० भवानी शंकर याज्ञिक की देखरेख में है, सुरक्षित है। इस ग्रंथ का कोई विशेष नाम नहीं दिया हुआ है। ऐसा अनुमान होता है कि खोजकर्ताओं ने ही उक्त नाम से इस संग्रह का निर्देश कर दिया। डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक से ज्ञात हुआ कि संग्रह-ग्रन्थ में कोई नाम न रहने से उन्हीं के परामर्श से खोजकर्ताओं ने इसका नाम 'रत्नावली' रख दिया था। सम्भव है उक्त ग्रन्थ गंग-पदावली और गंग-पञ्चीसी के भी ऐसे ही कल्पित नाम हों।

याज्ञिक-संग्रहालय के हस्तलिखित संग्रह ग्रन्थों में भी गंग के कुछ छन्द उपलब्ध हैं। कुछ संग्रह-ग्रन्थों के विवरण जिनमें गंग के छन्द ही अधिक संख्या में मिलते हैं, इस प्रकार से हैं :—

१. प्रति संख्या—१०६।१६—

इस संग्रह के आदि में 'आलम कृत कवित्त' लिखा है और आरम्भ में आलम के १५४ छन्द देने के अनंतर कवि गंग के छन्द' अथ कवि गंग कृत कवित्त लिख्यते' से आरम्भ होते हैं, पैसठ छन्द देने के बाद 'इति श्री कवि गंग कृत कवित्त संपूर्ण' लेख दिया गया है। प्रति का लिपि-काल अज्ञात है। पुस्तक लगभग डेढ़, दो सौ वर्ष पुरानी ज्ञात होती है।

२. प्रति संख्या—७०४।४४—

यह भी एक संग्रह-ग्रन्थ है। प्रति खंडित है। इस प्रति में कुल पचास पृष्ठ हैं। इसमें गंग के छन्द एक कम में नहीं मिलते। प्रति के आरम्भ में गंग के कुछ छन्द दिये हुए हैं, कुछ बीच में और कुछ अंत में। गंग के कुल ३६ छन्द हैं। बीच-बीच में अन्य कवियों के छन्द हैं। प्रति के लिपि-काल का कुछ पता नहीं चलता। पुस्तक प्राचीन और अक्षर सुपाठ्य हैं।

३. प्रति संख्या—२५८।४१—

यह एक खंडित संग्रह-ग्रन्थ है। पुस्तक प्राचीन है। प्रति का लेख बहुत सुन्दर है। इसमें गंग के केवल १८ छन्द ही उपलब्ध हैं।

याज्ञिक-संग्रहालय में कुछ और भी प्रतियां देखने को मिलीं जिनमें किसी में बारह और किसी में तेरह छंद उपलब्ध होते हैं। उनमें से कुछ प्रतियाँ खंडित हैं और कुछ पूर्ण। किसी-किसी में तो गंग के केवल तीन-तीन, चार-चार छन्द ही मिलते हैं।

कांकरोली-विद्या-विभाग की प्रतियाँ जो लेखक की देखी हुई हैं, विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनका विवरण निम्नलिखित है :—

१. पुस्तक संख्या—३३-४, बंद ५०—

इस प्रति में कवि गंग के १०५ छन्द दिये हुए हैं। किन्तु इसके प्रथम पत्र के लुप्त हो जाने के कारण आरम्भ के छः छंद और सातवें छन्द के प्रथम दो चरण नहीं हैं। इसमें लिपि-काल का कहीं भी निर्देश नहीं है। ग्रंथ में सम्वत् १७५० के बाद का कोई कवि नहीं आया है। इससे पुस्तक प्राचीन और प्रमाणिक प्रतीत होती है। प्रति के कागज को देखने से भी इसकी प्राचीनता में विश्वास होता है। कुल १६ पत्र हैं। पुस्तक शोधित है और अच्छर सुपाठ्य हैं।

२. पुस्तक संख्या—३५, विभाग-हिन्दी-साहित्य, विषय-पद्यकाव्य, विशेष ११×५॥

यह एक संग्रह-ग्रंथ है और विषय-विभाजन के अनुसार छन्द दिये हुए हैं। छन्द पुस्तक भर में बिखरे पड़े हैं। हर एक कवि के रचना-संग्रह के लिये कुछ पृष्ठ छोड़ दिये गये हैं जिनमें से कई एक अधूरे दिखाई पड़ते हैं। लिपि-काल का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु इस प्रति की प्राचीनता के सम्बन्ध में भी कोई संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें सम्वत् १७५० के बाद के किसी कवि की रचना नहीं दी गई है। इसमें गंग के ५६ छन्द उपलब्ध होते हैं।

उपर्युक्त प्रतियों में गंग रचित कुल मिलाकर लगभग ४०० छन्द उपलब्ध होते हैं किन्तु इन प्रतियों में कुछ छन्दों की पुनरावृत्ति भी हो गई है। अतएव इनमें कुल लगभग ३५० फुटकर छन्द हैं।

पहले कहा गया है कि याज्ञिक जी के पास गंग के १४०० अनुष्टुप छन्द हैं। इसमें अधिकांश छन्द तो उन्हीं की प्रतियों के हैं और शेष कांकरोली तथा कामवन की हस्तलिखित प्रतियों तथा अन्य प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों द्वारा प्राप्त किये गये हैं जिनमें मुन्दरी-तिलक, नवीन-संग्रह, मनोज-मंजरी, शृंगार-संग्रह, हफ्तीजुल्लाखां का हजारा, साहित्य-रत्नाकर, कविता-कौमुदी, षट्शत-हजारा, काव्य-संग्रह आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

‘महाकवि श्री गंग के कवित्त’ नाम से पुरोहित हरिनारायण शर्मा बी० ए०, विद्याभूषण तथा मुंशी कन्हैयालाल माथुर, जयपुर ने गंग के छंदों का एक संग्रह प्रकाशित करना चाहा था। इसमें गंग के नाम से २७३ छंद दिये हुए हैं। उसकी एक प्रूफ-कापी

लेखक को भी पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा डॉ० भवानी शङ्कर याज्ञिक के सौजन्य से प्राप्त हुई। किन्तु ४० छन्द इसमें ऐसे हैं जो लेखक को प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में देखने को नहीं मिले। ये नवीन छन्द हैं। अतः गंग के उपर्युक्त ३५० छन्दों को लेकर कवि गंग के छन्दों की संख्या ४०० के लगभग पहुँचती है। पुरोहित हरिनारायण शर्मा जी के निधन हो जाने से गंग के छन्दों का उक्त संग्रह सम्भवतः प्रकाशित नहीं हो पाया क्योंकि खोज करने पर भी यह प्रकाशित संग्रह उपलब्ध नहीं होता।

ब्रह्मभट्ट-दर्पण, ग्रंथ में जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, गंग कृत गंग-विनोद पुस्तक का परिचय मिलता है।^१ सम्भव है इनमें गंग के कुछ छन्दों का संग्रह हो। हिन्दी-खोज की तृतीय त्रैवार्षिक रिपोर्ट में चतुर्भुज सहाय वर्मा (वनारस) ने गंग कृत 'खानखाना-कवित्त' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है। इसमें गंग के ४२ अनुष्टुप श्लोक बताये गये हैं जो लगभग १० कवित्त अथवा १४ सवैया की संख्या है। गंग के अनेक छन्द खानखाना की प्रशंसा में लिखे हुए लेखक को उक्त संग्रह ग्रन्थों में मिले हैं। इनकी संख्या २५ है। अतः 'खानखाना कवित्त' कवि का लिखा हुआ कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं जान पड़ता। ज्ञात होता है कि खानखाना की प्रशंसा के छन्दों का संग्रह कर यह एक कल्पित नाम दे दिया गया है।

'चन्द छन्द वरनन की महिमा' खड़ी-बोली गद्य-ग्रन्थ के लेखक भी प्रसिद्ध कवि गंग भट्ट ही कहे जाते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित-हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण नामक ग्रन्थ में गंग भाट जो संवत् १६२७ में बादशाह अकबर के आश्रित थे, कृत 'चंद छन्द वरनन की महिमा' नामक पुस्तक का परिचय दिया गया है। त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट (१९०६-१०-११) में उक्त ग्रंथ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति का वर्णन मिलता है। ३३० श्लोक १६ पृष्ठों में दिए हुए हैं। ग्रन्थ का रचनाकाल सम्वत् १५७० और लिपि-काल सन् १६५६ है।^३ इसी ग्रंथ की एक पांडु लिपि की प्रति इंडिया एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी, कलकता में सुरक्षित है। इसमें पांडु लिपिकार अथवा लिपि-काल का परिचय नहीं मिलता। प्रसिद्ध साहित्य-

१ ब्रह्म भट्ट-दर्पण, नरसिंहदास, पृष्ठ १९

२ हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम भाग, पृष्ठ ३२

३ खोज रिपोर्ट, ना० प्र० सभा, काशी, १९०९, १०, ११, पृष्ठ १४६, १४७

समालोचक मिश्रबन्धुओं तथा स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस ग्रंथ को प्रसिद्ध कवि गंगा रचित ही माना है। अतः इसे प्रसिद्ध कवि गंगा का लिखा हुआ ही ग्रन्थ कहा जा सकता है। इसके विरोध में कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि अकबरी-दरबार में प्रसिद्ध कवि गंगा के अतिरिक्त गंगा भट्ट अथवा गंगा कवि नामक किसी अन्य लेखक अथवा कवि की स्थिति सिद्ध नहीं होती। एक ही समय, एक ही नाम, एक ही जाति और एक ही दरबार में गंगा नामक दो कवियों का उपस्थित रहना भी असंगत ही कहा जायगा। मिश्रबन्धुओं ने भी दोनों को एक ही व्यक्ति स्वीकार किया है।^१

हिन्दी-साहित्य के भक्ति-काल के पूर्व की अनेक रचनाओं में खड़ी-बोली की झलक मिलती है। संत कवियों ने अपनी 'सधुक्कड़ी' भाषा में खड़ी बोली का व्यवहार किया है। इसके भी पहले अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में ही अपनी पहेलियाँ और सुक-रियाँ लिखी थीं। फिर सौर-काल के प्रसिद्ध कवि गंगा भट्ट ने जो प्रतिदिन दरबार में फ़ारसी के उत्कृष्ट कवियों के संपर्क में आते थे, खड़ी बोली की रचना लिख दी तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

गंगा ने जैसा पहले कहा जा चुका है; अपनी रचनाएँ संवत् १६२० के लगभग आरम्भ की थीं। इनकी मृत्यु संवत् १६८० के कुछ ही पूर्व हुई इसका उल्लेख पहले हो चुका है। इस दीर्घकालीन जीवन में कवि ने काफी अधिक और महत्वपूर्ण रचनाएँ लिखी होंगी किन्तु वे अब सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं होतीं।

मिश्रबन्धुओं ने कवि गंगा का रचनाकाल संवत् १६२० के लगभग माना है।^२ संवत् १६२७ में गंगा ने अपनी कृति 'चन्द छन्द वरनन की महिमा' अकबर के सम्मुख सुनाई थी।^३ किन्तु इस कृति के पूर्व भी गंगा ने कुछ रचनाएँ लिखी होंगी। भाषा-परिमार्जन, भावाभिव्यक्ति की पटुता और कथा-पुष्टि के गुण उनके काव्य में उत्तरोत्तर

१ This Ganga is probably identical with the great poet Ganga Kavi who was also a Bhatta and not a Brahmin as previously believed by us.

The second 'Triennial Report on the search for Hindi Manuscript-1909-10-11, Page 12-13

२ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७६

३ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २९१

बढ़ते गये होंगे । अतः गंग का साधारण रचनाकाल सम्वत् १६२० ठीक ही प्रतीत होता है । इस काल की रचनाओं में उनका पांडित्य, काव्य-कला-ज्ञान और भाव-प्रदर्शन आदि विशेषताएँ देखने को मिलती हैं । इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं में कई स्थलों पर संस्कृत-श्लोकों के भावसाम्य और कला-पांडित्य के दर्शन होते हैं । इससे भी स्पष्ट है कि गंग ने संस्कृत के अध्ययन में भी कुछ वर्ष लगाये थे । उस समय कवि की आयु लगभग २५ वर्ष की तो अवश्य रही होगी । इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए कवि गंग का रचनाकाल सम्वत् १६२० मान लेने में किसी प्रकार की अयुक्ति ज्ञात नहीं होती । स्वर्गीय पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने गंग का कविताकाल सत्तरहवीं शताब्दी के बीच का समय माना है । इसका यह तात्पर्य नहीं कि कवि का रचना-काल सम्वत् १६५० के लगभग ही है । सम्वत् १६२०, सत्तरहवीं शताब्दी के पूर्व मध्यकाल में इनकी रचना आरम्भ हुई और विशेष प्रौढ़ता उसमें इस शताब्दी के उत्तर मध्यकाल में ही आई होगी ।

रचनाओं का वर्ण-विषय

गंग के जितने भी छन्द प्राप्त हुए हैं उनमें विषय की विविधता और काव्योचित मौलिकता स्थल-स्थल पर द्रष्टव्य है । उन्होंने अपनी भक्ति-भावना सम्बन्धी छंदों में कृष्ण की महिमा, यमुना का महात्म्य तथा राम-नाम की महत्ता दर्शायी है । भक्ति-भाव की अनन्यता तथा व्यग्रता इन छंदों में सराहनीय है । भक्ति-भाव के छंदों से यह भी स्पष्ट होता है कि कवि ने अपने जीवन के अंतिम काल में भक्ति-मार्ग को अपनाया था क्योंकि शृंगार के दोनों पक्ष-संयोग और विप्रलंभ पर कवि की दृष्टि विशेष रूप से रमी है । गंग के पूर्व उनके पूर्ववर्ती कवि जायसी और सूर शृंगार के अंतर्गत नखशिख का वर्णन कर चुके थे । जायसी ने रहस्योद्घाटन के लिये नखशिख-वर्णन को रूपकमात्र माना था और सूर ने नखशिख को भक्ति का उद्दीपन रूप दिया था । कवि गंग ने नखशिख को एक अलग ही रूप दिया, उसे भक्ति के साथ नहीं मिलाया । इसी पद्धति को गंग के परवर्ती रीतिकालीन कवियों ने अपनाया । संयोग शृंगार का वर्णन करते समय काम-चेष्टाओं, हाव-भाव आदि के चित्रण में गंग ने प्रेम के प्रकृत रूप को नहीं भुलाया है । विप्रलंभ की सूक्ष्म भावनाओं तथा अवस्थाओं के रूप व्यक्त किये गये हैं ।

वीर-रस-चित्रण गंग का प्रधान क्षेत्र नहीं था फिर भी इस रस के कुछ छन्द उन्होंने लिखे हैं । वीर-रस की कविता का आलंबन अपने आश्रयदाता मुसल्मान शासकों

को ही अधिकतर बनाया। इसलिये इनकी तत्सम्बन्धी रचना प्रचलित न हो सकी। वीर रस के भीतर कवि गंग ने भयानक और रौद्र का भी कहीं-कहीं सुन्दर चित्रण किया है। गंग ने नीति और उपदेश सम्बन्धी विविध आवश्यक बातों का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। इनकी नीति-वर्णन-पद्धति का खानखाना पर अधिक प्रभाव पड़ा था। प्रकृति-वर्णन का निर्वाह भी गंग की कविता में उचित रूप से हुआ है। प्रकृति के ये वर्णन उद्दीपन रूप में अधिकतर आये हैं। इस प्रकार गंग का काव्य-चित्रण स्वाभाविक, सुन्दर और चित्ताकर्षक है।

प्राचीन काल से राजदरबारों में समस्या-पूर्ति की कविता भी कवियों की जीवन-संगिनी रही है। इस दिशा की ओर भी गंग ने पूर्ण सफलता प्राप्त की थी। भावुक अकबर की दी हुई अनेक समस्याओं की पूर्ति उन्होंने की थी जिसका परिचय आगे 'काव्य-विवेचन' के प्रसंग में दिया गया है।

गंग द्वारा कथित उपर्युक्त विषयों के विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने लाक्षणिक तथा व्यंजनात्मक शैली का भी अपने काव्य में सहारा लिया है। इन गुणों के कारण ही गंग के काव्य में उक्ति-वैचित्र्य तथा कल्पना-वैचित्र्य का परिचय मिलता है। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक ढंग पर हुआ है। अतः गंग की इस अल्प-कृति द्वारा ही उनकी बहुमुखी प्रतिभा का पता चलता है।

रहीम की रचनाएँ

अब्दुर्रहीम खानखाना की रचनाएँ हिन्दी-साहित्य-जगत में 'रहीम' के नाम से प्रचलित हैं। मन्नासिरे-रहीमी और मुन्नासिरुल-उमरा में स्पष्ट रूप से दिया हुआ है कि अब्दुर्रहीम खानखाना अपनी कविता में 'रहीम' का तखल्लुस रखते थे जिसे पहले रहीम की जीवनी के प्रसंग में कहा जा चुका है। हिन्दी-साहित्य के कुछ इतिहासकारों ने हिन्दी-भाषा के दो रहीम कवियों का परिचय देने का प्रयास किया है। शिवसिंहसरोज में प्रसिद्ध कवि खानखाना के अतिरिक्त एक और रहीम का उल्लेख करते हुए शिवसिंह सेंगर ने इसके समर्थन में भिखारीदास का निम्नलिखित छन्द दिया है :—

'सूर केसौ गंडग बिहारी कालिदास ब्रह्म चिंतामनि मतिराम भूषन सो जानिये
नीलकंठ नीलाधर निपट निवाज निधि नील कंठ मिश्र सुखदेव देव मानिये
आलम रहीम खानखाना रसलीन सुन्दर अनेक गन गनती बखानिये
ब्रज भाषा हेत ब्रज सब कीन अनुमान येते येते कविन की बानीहू ते जानिये ॥'

संभवतः इसी आधार पर मिश्रबन्धुओं ने भी हिन्दी के दो रहीम कवि मान लिये हैं। रहीम कवि नाम से निम्नलिखित छन्द शिवसिंह सरोज में मिलता है :—

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम राखिहौ हमें सोभा रावरी बढ़ाइहैं
तजिहौ हरषि कै तो विलग न सोचैं कछू जहाँ-जहाँ जैसे तहाँ दूनो जस गाइहैं
सुरन चढैंगे नर सिरन चढैंगे पर सुकवि रहीम हाथ हाथ में बिकाइहैं
देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे काहू भेस में रहेंगे तउ रावरे कहाइहैं ॥^१

उक्त छन्द रहीम कृत न होकर अनीस कवि का है जिसका उल्लेख शिवसिंह-सरोज में हुआ है।^२ अतएव केवल एक दूसरे रहीम के नाम को प्रचलित करने के लिये अन्य कवियों की रचनाओं का उनके साथ सम्बन्ध जोड़ देना असंगत और अनुपयुक्त प्रतीत होता है। हस्तलिखित प्रतियों में रहीम खानखाना की स्पष्ट छाप मिलती है। किसी अन्य खानखाना-उपाधि-प्राप्त व्यक्ति ने रहीम नाम से हिन्दी-रचनाएँ लिखी हों, ज्ञात नहीं होता। अतएव रहीम खानखाना एक ही व्यक्ति थे और वे अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध हिन्दी-कवि रहीम ही हैं, इसमें किसी प्रकार का संदेह निराधार है। स्व० पंडित मयाशंकर याज्ञिक ने भी हिन्दी-साहित्य के एक ही रहीम कवि के होने का समर्थन किया है।

रहीम की रचनाओं के अनेक संग्रह पच्चीस वर्ष से समय-समय पर छपते रहे हैं। इनमें ब्रजरत्नदास का 'रहिमन विलास', हिन्दी-साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'रहिमन विनोद', सुरेन्द्रनाथ तिवारी द्वारा संपादित 'रहीम कवितावली', रामनरेश त्रिपाठी का 'रहीम', रामनाथ सुमन का 'रहिमन चन्द्रिका', लाला भगवानदीन का 'रहिमन शतक' और पंडित मयाशंकर याज्ञिक द्वारा संपादित 'रहीम रत्नावली' विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सब संग्रहों में याज्ञिक जी का संग्रह पूर्ण और प्रामाणिक ज्ञात होता है। अन्य संग्रहों में रहीम की संपूर्ण रचनाओं का समावेश नहीं हुआ है। किसी में यदि कुछ संपूर्ण रचनाओं का विवरण है तो कुछ रचनाएं अधूरी ही दे दी गई हैं।

रहीम की कृतियों में सभी संग्रहकारों ने सर्वप्रथम उनकी 'दोहावली' का वर्णन किया है। कुछ लोगों के मतानुसार रहीम ने एक सतसई की रचना की थी यद्यपि लगभग

१ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ३०२

२ सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम राखिहौ हमें तो सोभा रावरी बढ़ाइहैं
तजिहौ हरषि कै तो विलग न सोचैं कछू जहाँ जहाँ जेहें तहाँ दूनो जस गाइहैं
सुरन चढैंगे नर सिरन चढैंगे पर सुकवि अनीस हाथ हाथ में बिकाइहैं
देश में रहेंगे परदेश में रहेंगे काहू भेस में रहेंगे तउ रावरे कहाइहैं ॥

तीन सौ से अधिक दोहों का परिचय किसी भी संग्रह-ग्रंथ में नहीं मिलता। इन तीन सौ में भी कुछ संदिग्ध हैं। संग्रह-ग्रंथों में प्राप्त संपूर्ण दोहावली को प्रमाणित नहीं माना जा सकता किन्तु जब ये दोहे रहीम के नाम से प्रसिद्ध ही हैं और उनके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलता तब तक इनको रहीम रचित स्वीकार करने में किसी प्रकार की बाधा ज्ञात नहीं होती। रहीम की 'सतसई रचना' का समर्थन करते हुए स्व. पं० मयाशंकर याज्ञिक ने लिखा है—“प्राप्त दोहों में शृंगार के दोहे बहुत कम हैं। संभव है कि रहीम रचित सतसई में से किसी ने शृंगार के दोहे निकालकर नीति आदि के दोहों का एक छोटा सा संग्रह कर दिया हो। अब वही संग्रह प्राप्त है और शृंगार का भाग लुप्त हो गया। रहीम ने सतसई न लिखी हो इस प्रकार का अनुमान करना वृथा प्रतीत होता है। यद्यपि हमें सतसई की खोज में सफलता नहीं प्राप्त हुई तथापि हमारा यह विश्वास नहीं कि रहीम ने सतसई लिखी ही नहीं। रहीम ने अपने ७२ वर्ष के दीर्घ जीवन-काल में यदि सतसई के सात सौ दोहे लिखे हों तो आश्चर्य ही क्या है।”^१ याज्ञिक जी ने अपने उक्त अनुमान का कोई आधार नहीं दिया है। रहीम की विविध रचनाओं पर दृष्टिपात करने से यही ज्ञात होता है कि रहीम को अपनी काव्य-रचना में छंदों के वैविध्य से जितना प्रेम था उतना किसी और वस्तु से नहीं। रहीम की दोहावली में नीति, उपदेश आदि के दोहे उपलब्ध होते हैं। शृंगार के दोहों का कोई संग्रह उसमें से अलग कर दिया गया हो, इस कथन में अधिक सत्यता नहीं मालूम पड़ती। क्योंकि रहीम के शृंगारिक भावनाओं की पूर्ति उनकी अन्य रचनाओं-सोरठे, बरवै, दोहे, अष्टक आदि छंदों में पूर्णतया हो गई है फिर अब उनकी दोहावली में ही अभिव्यक्त करने की आवश्यकता क्योंकर शेष रहती। सतसई-संग्रह से कोई शृंगार के दोहों को अलग ही क्यों करेगा। विहारी, बृंद आदि की सतसई रचना में भी शृंगार और अन्य भाव साथ-साथ वर्णित हैं और वे अपने प्रकृत रूप में मिलती हैं। वस्तुतः यही ज्ञात होता कि रहीम ने कोई 'सतसई' की रचना लिखने का प्रयत्न ही नहीं किया अन्यथा वह अपने प्रकृत रूप में अवश्य मिलती। इसके अतिरिक्त रहीम के किसी समकालीन अथवा परवर्ती कवि ने भी सम्बंधी रचना का उल्लेख नहीं किया है। रहीम का व्यस्त जीवन राजनीतिक तथा शासन सम्बंधी कार्यों से इतना ओत-प्रोत था कि किसी विशेष प्रकार की रचना का उन्हें अवकाश ही नहीं था। बरवै-नायिका भेद तो संभवतः उन्हींने जीवन के आरंभिक काल में लिख डाला था। उनके जीवन में

उत्तर-काल में इस प्रकार की रचना की आशा नहीं की जा सकती। भक्ति के आवेश में तथा जीवन की विषम परिस्थितियों में सामाजिक क्षेत्र के अनुभवों से प्रेरित होकर वे कभी अवसर-अनवसर एक, दो दोहों की रचना कर पाते होंगे।

रहीम रचित 'नगर शोभा' नामक ग्रंथ रहीम-रत्नावली में मिलता है। ग्रंथ के प्रत्येक दोहे में रहीम का नाम न होने पर भी कविता की भाषा, उसकी प्रौढ़ता तथा भावों को देखने से यह ग्रंथ रहीम का ही जान पड़ता है। रहीम के एक फुटकर संग्रह 'शृंगार-सोरठा' की भाषा से इसकी भाषा मिलती है। सब से विश्वस्त प्रमाण यह है कि पुस्तक के आरंभ में लिखा है—'अथ नगर शोभा नवाव खानखाना कृत।' ग्रंथ की प्रामाणिकता में इससे संदेह और नहीं होता कि स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने इस ग्रंथ का आधार एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति दिया है।^१ इस रचना में १४२ दोहे हैं आरंभ मंगलाचरण से होता है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि यह एक स्वतन्त्र रचना है और रहीम की दोहावली से इसका सम्बंध नहीं है। उक्त ग्रंथ बरवै छंद में भी लिखा बताया जाता है। रहीम-रत्नावली में इस प्रकार के ग्रंथ का कुछ अंश उद्धृत भी किया गया है। हिन्दी में बरवै छंद सर्वप्रथम रहीम के ही मिलते हैं। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी अन्य कवि ने 'नगर-शोभा' ग्रंथ के भावों को लेकर उन्हें बरवै छंद में रख दिया है। उसे रहीम रचित नहीं माना जा सकता। फिर रहीम द्वारा एक ही विषय की पुनरुक्ति कुछ अधिक बुद्धिसंगत नहीं मालूम पड़ती।

रहीम कृत 'बरवै नायिका-भेद' एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। कई हस्तलिखित प्रतियों में इसका उल्लेख मिलता है। सीतापुर निवासी पं० कृष्ण विहारी मिश्र तथा काशीराज के पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख रहीम-रत्नावली में हुआ है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट १९०६, १०, ११ में रहीम विरचित बरवै नायिका-भेद का परिचय दिया गया है। स्वयं रहीम ने पुस्तक के आरंभ में दे दिया है :—

कवित कह्यौ दोहा कह्यौ तुलै न छप्पय छंद।

विरच्यौ यहै विचार कै यह बरवै^२ रस कंद ॥^३

१ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ १९

२ कहा जाता है कि रहीम को बरवै छंद की प्रेरणा अपने एक दरबारी से मिली थी।

खानखाना के मुंशी ने अपने विवाह के लिए कुछ दिनों की छुट्टी ली। छुट्टी बीत गई

रहीम कृत उक्त ग्रंथ स्वतन्त्र रूप में उपलब्ध नहीं होता । तीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं और तीनों में रहीम के बरवों के साथ मतिराम के दोहों का भी संग्रह मिलता है । काशीराज पुस्तकालय की प्रति अंतिम दोहे से यह स्पष्ट है :—

लक्षण दोहा जानिये उदाहरन बरवान ।

दूनों के संग्रह भए रस सिंगार निर्मान ॥

संभव है मतिराम ने स्वयं इनका संग्रह किया हो क्योंकि याज्ञिक जी के कथनानुसार थोड़े काल के लिये रहीम और मतिराम समकालीन भी थे । रहीम और मतिराम के रचना-काल में काफी अंतर है और यह आवश्यक नहीं कि समकालीन कवियों की रचनाओं का ही प्रभाव एक दूसरे पर पड़े । पूर्ववर्ती कवि का प्रभाव परवर्ती कवि पर संभव है । उक्त ग्रंथ में लक्षण रूप में दिये गये मतिराम कृत 'रस राज' के हैं और उदाहरण रहीम के बरवों के और इन दोनों के संग्रह से ग्रंथ में पूर्णता आ गई है जिसका श्रेय रहीम को है । उक्त ग्रंथ के विषय को देखने से यही ज्ञात होता है कि रहीम ने इसे अपने जीवन के मध्यकाल में लिखा होगा । संभव है केशवदास के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसिक-प्रिया' के आस-पास ही जो संवत् १६४८ में लिखी हुई रचना है, यह ग्रंथ भी लिखा गया होगा । अतएव रहीम कृत यह रचना हिन्दी के नायिका-भेद सम्बंधी प्रारंभिक ग्रंथों में ही मानी जा सकती है ।

'बरवै-नायिका-भेद' के अतिरिक्त रहीम के १०१ बरवै स्वतन्त्र रूप से लिखे हुए 'रहीम-रत्नावली' में मिलते हैं । स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक के कथनानुसार इस रचना की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति उनको खोज में मिली थी । रहीम की माता जमालखा मेवाती

पर मुंशी जी लौट कर न आए । जब चलने लगे तो बड़े चिंतातुर थे । स्त्री ने चिंता का कारण जानकर, चतुर तो थी ही, निम्नलिखित छंद लिखकर पति को दिया कि वह दरबार में पहुँचते ही खानखाना को दे दें :—

प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय ।

सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय ॥

खानखाना ने इसे पढ़कर मुंशी को माफ कर दिया और इससे प्रेरित हो बरवै-नायिका भेद लिखा ।

३ परिशिष्ट १, रचनाकार संख्या १, पृष्ठ २५, त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट, १९०९, १०, ११

की बेटी थी और यह प्रति भी उनको मेवात में ही मिली है।^१ अतएव ग्रंथ प्रमाणिक ही ज्ञात होता है। 'खानखाना कृत बरवै' शीर्षक नाम से म्युनिसिपल-संग्रहालय, प्रयाग के एक प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ में रहीम के कुछ बरवै मिलते हैं। इनमें नगर शोभा के तीन छंद तथा बरवों की संख्या ४६ है और छंदों को छोड़कर ये सभी बरवै रहीम रत्नावली-संग्रह में आगये हैं।^२

इस रचना के आदि में मंगलाचरण के छः बरवै दिये हुए हैं जिससे यह एक स्वतन्त्र ग्रंथ प्रमाणित होता है। ग्रंथ की भाषा और भाव-चमत्कार के देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ग्रंथ की भाषा नायिका-भेद से अधिक प्रौढ़ है। इससे यही अनुमान निकलता है कि यह रचना नायिका-भेद के बाद की रचना होगी। आरंभ के मंगलाचरण छंदों में और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस के मंगलाचरण के सोरठों में काफी भाव-साम्य है। संभव है रहीम ने रामचरितमानस के सोरठों के ही तत्सम्बंधी भाव को बरवै में रचकर गोस्वामी जी के पास भेजे हों और जिसकी प्रेरणा से उन्होंने बरवै-रामायण की रचना की हो।

'मदनाष्टक' रहीम की एक शृंगारिक कृति है। संस्कृत में इस प्रकार के 'अष्टक' लिखे हुए मिलते हैं। रहीम की यह रचना संस्कृत-शैली पर मालिनी-छंद में लिखी हुई है। ये छंद संस्कृत मिश्रित खड़ी-बोली हिन्दी में लिखे गये हैं। संवत् १३८२ में अमीर खुसरो ने फ़ारसी-हिन्दी मिश्रित भाषा में अपनी कविताएं लिखी थीं। संवत् १४०० के लगभग शारंगधर ने अपनी रचना 'शारंगधर-वद्धति' में इसी मिश्रित 'रेखता' भाषा में श्रीकृष्ण सम्बंधी छंद दिया था। इस प्रकार मिश्रित भाषा में काव्य लिखने की परिपाटी रहीम के पूर्व प्रचलित थी। इसी भाषा में रहीम के आठ छंद तो उक्त रचना में और दो छंद रहीम की फुटकर रचनाओं में मिलते हैं। उनका 'खेदकौतुक ज्ञातकर्म' भी इसी मिश्रित भाषा में लिखा गया है।^३

रहीम विरचित 'मदनाष्टक' के तीन भिन्न-भिन्न पाठ संग्रह-ग्रंथों में दिये गये हैं। एक सम्मेलन पत्रिका से उद्धृत, दूसरा असनी से प्राप्त और तीसरा काशी नगरी-

१ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ २३

२ प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ, पुस्तक-संख्या ५६, वस्ता-संख्या १८७, म्युनिसिपल संग्रहालय, प्रयाग।

३ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ २६, २७

प्रचारणी पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने सम्मेलन-पत्रिका वाले पाठ को शुद्ध माना है।^१ शिवसिंह सरोज और मिश्रबंधु में उद्धृत छंद नागरी-प्रचारणी-पत्रिका वाले पाठ में नहीं है। असनी और नागरी प्रचारणी सभा की पत्रिका के प्रथम छंद में नायक की उक्तियां हैं और शेष सात में नायिकाओं की, परन्तु सम्मेलन-पत्रिका के आठों छंदों में नायिका की उक्तियां हैं। इससे भाव सम्बद्धता बनी रहती है। नागरी-प्रचारणी-सभा पत्रिका वाले का तीसरा छंद और असनी वाले का सातवां छंद कुछ साधारण पाठान्तर के साथ केदार भट्ट विरचित 'वृत्त रत्नाकर' की नारायण भट्ट की टीका में दिया गया है। संभव है नारायण भट्ट की टीका में कथित छंद को देखकर 'रहीम ने मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी' की समस्या मानकर उक्त ग्रंथ को उसके पूरक के रूप में लिखा हो और यह भी संभव है कि इनमें से कुछ छंद स्वतंत्र हों और किसी ने इन सब का संग्रह करके 'अष्टक' नाम दे दिया हो।^२

'मदनाष्टक' रहीम के प्रारंभिक जीवन की रचना ज्ञात होती है क्योंकि न तो इसमें भावों की प्रांजलता, मधुरता ही है और न भाषा की प्रौढ़ता ही। खड़ी बोली हिन्दी की दृष्टिकोण से यह रचना महत्वपूर्ण अवश्य है। रचना में एक दो स्थलों पर कुछ शब्दों के प्रयोग संस्कृत-विभक्ति सहित हुए हैं।

रहीम का ज्योतिष-ग्रन्थ 'खेटकौतुक जातकम्' भी प्रसिद्ध रचना है। ग्रंथ का प्रकाशन ज्ञान-सागर प्रेस, बम्बई से हुआ है।^३ यह ग्रन्थ फ़ारसी मिश्रित संस्कृत भाषा में लिखा गया है। ग्रंथ के आरम्भ में स्वयं रहीम ने लिख दिया है :—

करोम्यन्दुल रहीमोऽहं खुदाताला प्रसादतः । पारसीयपदैयुक्तं खैटकीतुकजातकम् ।

ग्रंथ में रहीम विरचित कुल १२३ श्लोक हैं। सूर्य, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु आदि भावों के फल तथा राज-योग पर अलग-अलग श्लोक हैं। ये श्लोक संस्कृत मिश्रित-भाषा में लिखे गये हैं जैसा ग्रंथकार के उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट होता है।

रहीम-रत्नावली में रहीम कृत रासपंचाध्यायी ग्रन्थ के नाम का भी उल्लेख किया गया है यद्यपि उस ग्रंथ के सविस्तार वर्णन का अभाव है।^४ भक्तमाल में प्राप्त कवि के कुछ

२ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ २८

१ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ २७, २८

३ खेटकौतुकजातकम्, छंद संख्या २

४ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ३२

पदों के आधार पर संभवतः उक्त ग्रंथ की कल्पना कर ली गई है। रहीम-रत्नावली में 'फुटकर' शीर्षक के अंतर्गत रहीम के चार कवित्तों, पांच सवैया, दो दोहों और दो पदों का उल्लेख हुआ है। 'खानखानानामा' में मुन्शी देवी प्रसाद ने रहीम के 'संस्कृत-काव्य' शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दी का एक सवैया और एक घनाक्षरी दिया है। ये याज्ञिक जी के संग्रह में नहीं आये हैं। रहीम के छः सोरठे भी 'शृंगार सोरठा' शीर्षक के अन्तर्गत रहीम-रत्नावली में संग्रहीत है। रहीम के संस्कृत श्लोकों का संग्रह रहीम-रत्नावली में 'रहीम-काव्य' के नाम से उपलब्ध होता है।^१ संस्कृत के ये श्लोक वही हैं जिन्हें मुन्शी देवीप्रसाद ने खानखानानामा में दिया है। इनमें दो छन्द संस्कृत मिश्रित है। संस्कृत के प्रथम श्लोक को एक छप्पय में हिन्दी-अनुवाद भी रहीम कृत ही बताया जाता है। रहीम द्वारा रचित शतरंज के खेल की एक पुस्तक का भी उल्लेख किया गया है।^२

अबदुरहीम खानखाना की उपर्युक्त रचनाएँ उनकी हिन्दी-काव्य में सजग प्रवृत्ति की द्योतक हैं। विभिन्न राजकीय परिस्थितियों के बीच फंसे रहने पर भी उन्होंने स्वयं तो साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत कींहीं, अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से उन्होंने दरबारी काव्य और कला को भी प्रश्रय दिया। रहीम की हिन्दी-रचनाओं के विषय पर दृष्टिपात करने से उनकी धार्मिक विचार-धारा का परिचय प्राप्त कर उन पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। मुसल्मान होते हुए भी उन्होंने हिन्दुत्व की भावना को अपनी हिन्दी कविता में आश्रय दिया। सम्भव है बीरबल, गंग, तानसेन आदि के संपर्क ने उनकी इस भावना को यथेष्ट रूप में प्रभावित किया हो। अकबरकालीन धार्मिक उदारता और राजाश्रयता तो इसके मूल में थी ही। गोस्वामी तुलसीदास के संपर्क ने उसको और वेगवान बनाया होगा।

रचनाओं के वर्ग-विषय

रहीम की समस्त रचनाओं में उनकी 'दोहावली' ही सब से अधिक जन-प्रचलित रचना है। शिक्षित, अशिक्षित, साहित्यिक, असाहित्यिक सभी वर्ग के व्यक्तियों में इनके कुछ दोहे जिह्वाग्र मिलेंगे। रहीम अपने दोहों के ही कारण हिन्दी-भाषा-भाषी जनता में प्रसिद्ध हैं। इन दोहों में हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेने की शक्ति है। उनके एक-

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ८१, ८४

२ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ३३, ३४

एक दोहे में कवि की सच्ची अनुभूति का परिचय मिलता है। इनमें नीति-उपदेश की कोरी शिक्षा नहीं है वरन् कवि के जीवन की मार्मिक परिस्थितियों का भी चित्रण हुआ है। दोहावली का आरम्भ 'गंगा' की स्तुति से मिलता है। इसके पश्चात् नीति, उपदेश, भक्ति, सहज अनुभूति सम्बन्धी बातों का वर्णन आया है। बीच-बीच में विरह और उसके सहारे प्रकृति के कुछ दृश्यों का भी परिचय मिलता है। नीति-उपदेश के अंतर्गत जीवन की अस्थिरता, भवितव्यता, धैर्य, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षड्रिपुओं के कुप्रभाव, मान-मर्यादा आदि को वर्णन किये गये हैं। दोहावली में उक्ति वैचित्र्य के भी कहीं-कहीं सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

अकवरी दरबार की शृंगारिक भावनाओं का प्रभाव रहीम की 'नगर-शोभा' रचना में देखा जा सकता है। इसमें विविध जाति की स्त्रियों का सजीव चित्रण मिलता है। एक-एक या दो-दो दोहों में कैथनि, जौहरनि, वरइन, रंगरेजिन, बनजारिन, तुरकिन, गूजरी आदि स्त्रियों के सजीव चित्र नेत्रों के सम्मुख खड़ा कर देना रहीम के उत्कृष्ट वर्णव-शक्ति का परिचायक है। सम्भव है अकबर द्वारा आयोजित 'मीना-बाज़ार' में एकत्र सभी वर्ण और विविध पेशों की स्त्रियों को देखकर रहीम को इस रचना की प्रेरणा मिली हो।

कवि की 'बरवै नायिका-भेद' रचना में स्वकीया, परकीया, गणिकी के भेद, उप-भेद के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। दश प्रकार की नायिकाओं-प्रोषितपतिका, प्रवत्स्यत-पतिका, वासकसजा, कलहंततरिता आदि के भी उदाहरण दिये गये हैं। विविध नायिका-उत्तमा, मध्यमा और अधमा का भी वर्णन हुआ है। नायकों के भी उदाहरण ग्रन्थ में भेद, विभेद के साथ आ गये हैं। दर्शन के अंतर्गत श्रवण, स्वप्न, चित्र, साक्षात् और सखी तथा सखी-जन कर्म के सम्बन्ध में मंडन, शिक्षा, उपालंभ, परिहास के सजीव उदाहरण रहीम ने दिये हैं। दोहावली के पश्चात् रहीम की यही रचना अधिक प्रचलित है।

रहीम के फुटकर छन्दों में शृंगारिक भावनाओं का ही समावेश है। इनमें भी विशेष रूप से विप्रलम्भ शृंगार का। इसमें छः छंदों में कृष्ण की स्तुति के बाद वियोग सम्बन्धी छंदों का आरम्भ हो जाता है। यह वर्णन बारह-मासा के क्रम पर किया गया ज्ञात होता है। इनमें विरहिणी की दीन-दशा का सजीव चित्रण हुआ है। बरवै छंदों में व्यक्त विरह की भावना कवि की उत्कृष्ट कला की द्योतक है।

अपनी 'मदनाष्टक' रचना में रहीम ने कृष्ण की मुरली के व्यापक प्रभाव, गोपियों की विह्वलता तथा कृष्ण के रूप-सौन्दर्य द्वारा उद्दीप्त गोपी-प्रेम-भावना और कृष्ण से

मिलने की उनकी तीव्र आकांक्षा का वर्णन किया है। यह सम्पूर्ण वर्णन विप्रलम्भ शृंगार के अंतर्गत स्मृति-संचारी के ही रूप में हुआ है। गोपियों में कृष्ण के वंशी-नाद, उनकी रूप-माधुरी तथा उनकी मधुर चाल-ढाल तथा बोली ने उनके विरह को और भी उद्दीप्त कर दिया है और वे कृष्ण से मिलने के लिये लालायित हो उठती हैं।

रहीम के 'खेटकौतुक जातकम्' ग्रन्थ में ज्योतिष-विषय वर्णित है। आरम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के नक्षत्रों के भाव-फल बारह-बारह श्लोकों में दिये गये हैं। इसके पश्चात् राहु का भाव-फल बारह श्लोकों और केतु का केवल एक श्लोक में वर्णित है। मनुष्य जीवन पर ग्रहों और नक्षत्रों के प्रभाव इस विद्या के अनुकूल ही दिखाये गये हैं। ग्रन्थ के अन्त में राजयोग पर एक अध्याय मिलता है जिसमें २५ श्लोक हैं। इसमें वर्णित योग और उनके फल ज्योतिष-ग्रन्थों से प्रमाणित भी होते हैं।

रहीम के पदों में कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन मधुर व्रज-भाषा में हुआ है। पदों की शब्द-योजना श्रुतमधुर और संगीतात्मक है। भाव और भाषा दोनों की दृष्टि-कोण से ये पद सूरदास के पदों से मिलते हैं। कवित्त और सवैयाँ में कृष्ण का बालरूप-वर्णन, उनके गुणों का कथन और साधारण नीति तथा शिक्षा के विषय आये हैं। सवैयाँ का भाषा तो परिमार्जित व्रज है किन्तु कवित्तों में खड़ी बोली मिश्रित व्रज-भाषा का प्रयोग हुआ है, कवि के सोरठों में कृष्ण के रूप-सौन्दर्य तथा विप्रलम्भ-शृंगार का विशेष वर्णन हुआ है। इन सोरठों में कवि ने उक्ति-वैचित्र्य के सुन्दर उदाहरण दिये हैं। कवि ने अपने संस्कृत-श्लोकों में भगवान् कृष्ण से मोक्ष की प्रार्थना की है और जाति-भेद मिटाने का प्रयास किया है।

चौथा अध्याय

काव्य-विवेचन

काव्य एक रमणीय कथन है और उसके दो पक्ष होते हैं, एक अन्तरंग और दूसरा वहिरङ्ग। यद्यपि वाक्य की रमणीयता जिसे काव्य-शास्त्र में 'रस' कहा गया है दोनों पक्षों की मिश्रित स्थिति पर निर्भर रहती है फिर भी किसी काव्य-कृति के विवेचन के लिये उसके आन्तरिक और बाह्य दोनों पक्षों में व्याप्त सौंदर्य का विश्लेषण करना पड़ता है। इन दोनों पक्षों के स्पष्टीकरण से वाक्य की रमणीयता का पूर्ण स्वरूप सामने आ जाता है। काव्य के अन्तरङ्ग में विषय-तत्त्व और भाव तथा बाह्य के अन्तर्गत अलंकार, छन्द, भाषा, उक्ति-वैचित्र्य आते हैं। प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य का सौंदर्य-विवेक उपर्युक्त विषयों के ही विवेचन द्वारा हो सकता है। प्रबन्ध-काव्य में कथा-सूत्रों का संगठन, विकास, चरित्र-चित्रण आदि पर भी विचार करना पड़ता है। आधुनिक युग में यह वाद भी प्रचलित है कि काव्य का उपयोग और महत्व केवल आनन्द-दान में ही नहीं वरन् जीवन को प्रगति देने में भी है। जीवन से नितांत अलग होकर काव्य स्थायी नहीं हो सकता। ऐसी दशा में उसके बाह्य रूप अर्थात् अभिव्यक्ति-पक्ष या कला को ही महत्त्व देना आवश्यक हो जाता है। अकबरी-दरबार के कवियों में से किसी ने भी प्रबन्ध-काव्य नहीं लिखा। प्रबन्ध-काव्य उस काल के दरबारी कवियों के द्वारा वैसे भी बहुत कम लिखा गया है। परन्तु इनके द्वारा लिखा गया काव्य केवल आश्रयदाता की प्रशंसा करने वाला ही नहीं वरन् जीवन के कटु और मधुर अनुभवों तथा जीवन की विविध समस्याओं पर प्रकाश भी डालने वाला है।

किसी काव्य-कृति में जब उसके अन्तः और बाह्य दोनों पक्षों में रमणीयता वर्तमान रहती है तो वह काव्य मन को अधिक चम्त्कार पूर्ण और सुगंधकारी लगता है। भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए काव्य का बाह्य-पक्ष बहुत पुष्ट होना चाहिए। सब प्रकार के काव्य का विवेचन भारतीय परम्परा में उपर्युक्त भाव-व्यंजना, शब्द-शक्ति, छन्द,

अलंकार आदि के रूप में ही किया जाता है। हिन्दी में मुख्यतः तीन प्रकार की काव्य-रचना हुई है—प्रबन्ध, खंड और मुक्तक। इन तीनों में तात्त्विक अन्तर होते हुए भी सब का विवेचन काव्य की उपयुक्त विशेषताओं के साथ ही किया जाता है। यह अवश्य है कि जो भाव की पूर्ण रस-धारा प्रबन्ध-रचना में सम्भव है वह मुक्तक में नहीं, फिर भी मुक्तक में रस की स्निग्ध फुहारे अवश्य रहती हैं जिनसे पाठक या श्रोता का हृदय खिल उठता है। इसीलिये वह सभा-समाजों के विनोद और तात्कालिक प्रभाव के लिये अधिक उपयुक्त होता है !

प्रस्तुत ग्रन्थ के कवियों की रचनाएँ अधिकांशतः मुक्तक हैं। यह बात इन कवियों की रचनाओं के प्रसंगों में पहले स्पष्ट की जा चुकी है। नरहरि के छप्पय, तानसेन के पद, ब्रह्म, गंग के कवित्त और सवैये, रहीम के दोहे तथा बरवै आदि मुक्तक-रचना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। नरहरि, गंग दरबार के कवि और तानसेन दरबारी संगीतज्ञ थे। ब्रह्म और रहीम दरबार के विशिष्ट पदों पर आसीन थे और उनका जीवन दरबार के कार्य-भार से इतना दबा हुआ था कि उन्हें सम्भवतः किसी प्रकार की प्रबंध-रचना का अवकाश ही नहीं मिला। समय मिलने पर वे फुटकर रचनाएँ ही कर पाते थे। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में काव्य की किसी शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण नहीं किया। उनकी कविता जीवन के नित्य-प्रति के अनुभवों और उक्ति-सौंदर्य से अनुप्राणित है। भावाभिव्यंजन ही उनका प्रधान लक्ष्य था। इनके काव्य में रीति सम्बन्धी कलात्मक बातों का समावेश गौण रूप में ही हो पाया। उनकी रचनाओं में शृंगार और भक्ति के भाव विशेष रूप से आये हैं वैसे वीर, क्रोध आदि के भाव भी कुछ कवियों की रचनाओं में व्यक्त हुए हैं। प्रकृति के कुछ सुन्दर चित्र भी इनके काव्य में उपलब्ध होते हैं। उनकी नीति और उपदेश की रचनाएँ तत्कालीन लोक-रुचि और लोकोपकार-भावना की सूचक हैं। इनकी रचनाओं में छन्दों की विविधता और नूतनता, पद-लालित्य, उक्ति-वैचित्र्य, परिष्कृत और परिमार्जित भाषा, वृत्तियों तथा अलंकारों का संयोजन यद्यपि सूर और तुलसी जैसे महान् कवियों के समान नहीं है फिर भी इनका इन्होंने सुखद प्रयोग किया है। इनके काव्य का आंतरिक रूप-भाव-व्यंजना, वस्तु-वर्णन और नीति-उपदेश, उच्चकोटि का है।

रूप-वर्णन

भारतीय काव्य-धारा की एक बहुत बड़ी विशेषता रूप-वर्णन में निहित है। संस्कृत-साहित्य के लगभग प्रत्येक कवि ने रूप-वर्णन को अपने काव्य का मुख्य अंग

बनाया है। प्राकृत-साहित्य भी इस प्रकार के रूप-राग से भरा पड़ा है। हिन्दी कवियों की रचनाओं में आरम्भ से ही इस काव्य-पद्धति का अनुसरण मिलता है। इसमें विशेष रूप से नारी-सौंदर्य का चित्राङ्कन ही अधिक हुआ है। हिन्दी-साहित्य के भक्ति-काल में नारी-सौंदर्यानुभूति द्वारा अधिकतर अलौकिक सौंदर्य की कल्पना की गई थी किन्तु रीति-काल में इस सौंदर्यानुभूति की आध्यात्मिक भावना का हास सा हो गया और इस पद्धति के निर्वाह में भौतिक सौंदर्य का चित्रण ही कवियों का लक्ष्य रहा। प्रस्तुत ग्रंथ के कवि हिन्दी-साहित्य के उत्तर-मध्यकाल में हुए थे जब रीति-काल की विशेषताओं का आरम्भ हो रहा था। इन कवियों की वर्णन-पद्धति में दोनों काल-भक्ति और रीति के प्रभाव दृष्टिगत होते हैं। उनके राधा-कृष्ण के रूप-चित्रण में आध्यात्मिक सौंदर्य की कल्पना और भौतिकता की भावना दोनों के मिश्रित रूप मिलते हैं। उनके ये वर्णन प्रेम-भाव को उद्दीप्त तथा उसका तीव्र बोधन कराने के लिये ही हुए हैं।

नरहरि ने धनुर्भंग के प्रसंग में सीता के रूप-सौंदर्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

चरण कमल केलि की सी शील गति फूली फिरे बाल मानो कुंदन कनक की
नरहरि सुकवि सुगंध संग सखिन के मधुर मधुर मृदु बानिक बनक की
आज जयमाला धर्यो माथे रघुनाथ जू के हाथहि सनाथ कीन्हों जाई सु जनक की
टूटत पिनाक पानि पान पान लागी सिया सुख निधरक भई धाक ही धनुक की ॥१

ब्रह्म ने प्रेमभाव की तीव्रता और सौंदर्यानुभूति का बोध कराने के लिये विविध उपमानों का आश्रय लिया है। उन्होंने प्रायः रूपकातिशयोक्ति और विस्मय भाव द्वारा सौंदर्य-कल्पना के कई चित्र प्रस्तुत किये हैं। रूप-सौंदर्य वर्णन ब्रह्म की विशेषता है। निम्नलिखित छंद में नायिका की अपार रूप-माधुरी से अभिभूत हो कवि कह उठता है :—

आजि एक ऐसो अचरज को तमासो देख्यौ पन्नग के माथे उयौ पूरन पून्यो को ससि
सारंग है मीन कीर कोकिला के कलरव सुपक सुरंग बिंब सुन्दर सरस असि
तिन पर बिंब संभु कनक की आभा धरै तिनपर विंदला बने ज्यों घने हैं मसि
गिरजा को वाहन सो कदली विरख पर कदली कमल पर ब्रह्म कवि यह कसि ॥२

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४६

२ देखिये, ब्रह्म के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या २६

१७७

नायिका की भृकुटि, नयन, अधर, कुच, जंघे आदि अवयवों के उचित उपमानों की जुटान कर कवि मुख की कान्ति की कल्पना पूर्णिमा के चन्द्र से करता है किंतु नायिका के उज्ज्वल मुख-भाग को उसकी काली वेणी के आश्रित देख आश्चर्यान्वित हो कह उठता है—‘पन्नग के माथे उयो पूरन पून्यो को ससि।’ वेणी और मुख की संश्लिष्टावस्था की यह सुन्दर कल्पना सराहनीय है।

अंगराई लेती हुई नायिका के शोभा की कवि ने विचित्र कल्पना की है। उसके ऐसा करने पर शरीर की रोमावलि, त्रिवली के अभाव और पीठ के तनाव में अप्रतिम शोभा का संयोजन हुआ। एड़ियों से वेणी को स्पर्श होने पर ऐसा प्रतीत हुआ मानों तीनों लोकों को जीतने के लिये कामदेव ने सोने की कमान को चढ़ा लिया हो :—

सेज ते ठाढ़ी भई उठि बालि लई उलटी । अंगराय जह्याई
रोम की राजी विराजी विसाल मिटी त्रिवली अरु पीठ खिलाई
वेनी परी पग ऊपर पाछे ते ब्रह्म यहै उपमा उर आई
लोक त्रिलोक के जीतवे कारन सोने की काम कमान चढ़ाई ॥^१

उपर्युक्त छंद में नायिका के सहज स्वाभाविक सौन्दर्य वेणी की लम्बान और स्वर्ण-सदृश तन दीप्ति की व्यंजना द्वारा प्रकट है। निम्नलिखित छंद में ब्रह्म ने नायिका के मस्तक पर स्थित काली विंदी का सुन्दर रूपक बांधा है :—

कनएनसुरा विंदुली दिये भाल सो नैक न मो मन ते टहलै
मनु इंदु के बीच में कीच अमी अलि बालक आय परयो चहलै
कवि ब्रह्म भनै घुघरी अलकैं अपने बल काढ़न को कहलै
जुरि बैठे मयंक के कूल दुहु दिसि कोउ न पैठि सके पहलै ॥^२

सद्यःस्नाता नायिका की सौंदर्य-प्रभा भी अवलोकनीय है :—

बैठी अन्हाय बनाइ विरंचि सुंदरता वरषै वरषा सी
कंज से आनन खंजन लोचन कोऊ कहै कटि आहि मृषा सी
ब्रह्म भनै नंद लाल विलोकति लागि रही लट लागि तृषा सी
झनै दुकूल में झई झलमलै देह दिपे दुति दीप सिषा सी ॥^३

१ देखिये, ब्रह्म के विविध छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या २९

२ देखिये, ब्रह्म के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ३४

३ देखिये, ब्रह्म के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४३

उपर्युक्त सौन्दर्यानुभूति में कवि ने अपनी मधुर, स्निग्ध और शांत-कल्पना का परिचय दिया है। कटि की सूक्ष्मता का वर्णन कई कवियों ने विविध उपमानों द्वारा किया है किन्तु ब्रह्म ने उपमानों का निराकरण कर 'कटि आहि मृषा सी' कह कर उसके अस्तित्व में ही संदेह उत्पन्न कर दिया है, 'सी' शब्द द्वारा उसको पूर्ण लोप होने से बचा लिया है अन्यथा इसके चित्रण में कोई विशेषता न रह जाती। सूक्ष्मवस्त्रवेष्टित नायिका के शरीर की कान्ति 'दीपशिषा' सदृश बताकर कवि ने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है।

इस प्रकार ब्रह्म ने अपनी सौन्दर्यानुभूति का परिचय अलंकारों द्वारा अधिक दिया है। इस सम्बंध में भावों की सरल अभिव्यक्ति उपमानों द्वारा विशेष रूप से हुई है।

तानसेन के पदों में नायिका के वाह्य-रूप का सौंदर्य परंपरागत रूप में वर्णित है। नखशिख के लिये पुराने उपमानों के ही प्रयोग किये गये हैं। निम्नलिखित छन्द में नायिका के नखशिख-शृंगार का एक चित्र देखिये :—

सोहत बनी बाल भाल चन्द्र भुव धनुष नेत्रकमल
श्रवण कुंडल सुंदर कपोल विलोकत रंभा रे
नासिका करि विद्रुम अधर दाडम दसन चमक सुंदर
विजली सी चौधत स्वरन मानों कंठ कोकला रे
प्रीवा कपोल कुच श्रीफल नाम कटि केहरि कदली खम्भ जांघ रच कै धरे री
तानसेन निरखि मै न रति लजित भई आवत गज मत चाल मन को हरै री ॥^१

नायिका की सुन्दरता कामदेव की रति को भी लजित कर देने वाली है। कवि ने उक्त छन्द में नायिका के समस्त अंगों के लिये परंपरागत उपमानों को सुन्दरता से जुटाया है।

नायिका के सोलह शृंगार का वर्णन कवि के निम्नलिखित पद में मिलता है :—

हारि हमेल सों नीकी लागत और गोरे हाथन चुरी हरी
कंठ पोति वदन जोति कानन वीरी और बेसर केसर की
खोर तापर लटपटात लटकत लट सुथरी

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ७६

भुज मृणाल श्रीफल से कुच कटि केहरी जंघ कजरी
चन्द्र वदनी शावक नयनी बोलत अमृत वैन धजरी
तानसेन प्रभु रिझाय लियो सोलह शृंगार बत्तीस आभरण सजरी ॥^१

नायिका की तन-दीप्ति, रूप-माधुर्य, भाव-भंगी देख कर नायक रीझकर उसी को ही सर्वश्रेष्ठ मान बैठता है :—

अहो टेटी पागरि नागनि नारि सीस धरे जैसे टेटी पाग को राख रहत चिकनीया
ठुरि ठुरि मुरि मुरि बतोया करति अगली पछिलान सो दोउ करतारो
मारति एकनि सो नैन से नव बनीया
लाही को लहंगा पचरंग चूनरि कंठ छुरा और तावीच मनिया
तानसेन प्रभु रीझि चकित भए तुही सबनि में धनि धनिया ॥^२

इस प्रकार तानसेन के रूप-सौंदर्य-वर्णन में यद्यपि कोई अनूठापन नहीं है फिर भी वह वर्णन अपनी शब्द-योजना के कारण सुंदर बन पड़ा है। नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों के लिये परंपरागत प्राचीन उपमानों का ही आश्रय कवि ने लिया है। नये उपमानों की ओर उसकी दृष्टि नहीं गई है। परन्तु सौंदर्य का स्पष्टीकरण आकर्षक और प्रभावात्मक रीति से हुआ है क्योंकि वर्णन में स्वाभाविकता है। तानसेन ने एक-दो स्थलों पर नायक के रूप-सौंदर्य का भी वर्णन किया है।

कवि गंग ने नायिका के नखशिख का वर्णन एक छंद में परंपरागत ढंग पर किया है :—

केस पर शेष दृग चलन पर खंजनी भोंह पर धनुष धरि सुरति सारों
दसन पर दामिनी कंठ पर कोकिला अधर पर बिब रहि रहि सम्हारों
जंघ पर कदलि कटि छीन पर केहरी कुचन पर मेघ महा मंड टारों
जोति पर जोति छुवि अंग पर गंग श्री राधिका नखन पर चन्द्र वारों ॥^३

उपयुक्त छन्द में कवि ने अंग-अंग के उपमान जुटाकर उन्हें उपमेय से हीन सिद्ध किया है। 'लट' की शेष से उपमा द्वारा कवि ने केश की दीर्घता इंगित की है। साथ

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८४

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९०

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७४

ही नायिका के शुभ्र ज्योतिस्वरूप के लिये प्रयुक्त गंगावाची 'गंग' को श्लिष्ट कर कवि ने अपने नामोल्लेख का भी निर्वाह कर दिया है।

गंग ने नायिका के अंतः और बाह्य दोनों सौंदर्य का उचित सम्मिश्रण निम्न-लिखित कविता में दिखाया है, जो विशेषता एक स्थल के लिये गुण है वही दूसरे स्थल के लिये अवगुण ठहरती है :—

उरज कठोर बाकी बानी न कठोर कछु मन्द मन्द गति हो न मन्द मति पाइये
जाकी भौंह वक्र मन में न वक्रताई कहूँ उदर तो छीन न नितंब छीन छाइये
चंचल नयन हो न चंचल चरित्र ताके कारे केस पास हो न कारे गुन गाइये
नाभि तो गम्भीर न गम्भीर हो रवनि गेह कहै गंग कामिनी कहूँक ऐसी पाइये ॥^१

भक्ति-पद्धति के कवि तुलसी, सूर, मीरा आदि के समान कवि गंग ने नंद-गंदन के अलौकिक रूप की कल्पना भी की है :—

मोर को मुकुट रु मुक्तान के वे अवतंस रोम रोम रूप मनो मनमथ दयी है
काछनी रुचिर रुचि सोहै पीत पट शुचि चटकीले अंग पर अति छवि छयी है
कहे कवि गंग तिहि बानक विविध भांति आभा तीनों लोक की सो एक ठौर भई है
मनि मनमोहन के कंठ में यों झलकत जानिये जुनहैया जमुना में फैल गई है ॥^२

ऐसा प्रतीत होता है, त्रिलोक का समस्त सौंदर्य एकत्र हो कर कृष्ण-रूप हो गया है। नीले जल वाली यमुना की अजस्र-धारा में जिस प्रकार ज्योत्स्ना का प्रतिबिम्ब झलकता है उसी प्रकार कृष्ण की ग्रीवा में मणि की माला झलक रही है। अंग-प्रत्यंग में एक से एक अनूठा सौंदर्य व्यक्त हो रहा है।

निम्नलिखित कवित्त में परंपरा-निर्वाह पद्धति पर कवि ने रूप-राग में उपमेय की अपेक्षा उपमानों की हीनता दिखाई है :—

चांद को कलंक दीनो धनुष को टेढ़ो कीनो बानहू को चूक मृग पसू ही दिसीजिए
कीर हाटहू बिकात बिंबहु न कोउ खात हीर तो हलाहल रूप रस लीजिए
पंज के काटे भारी कोकिला तो कीनी कारी सांपिन के विष मुख कामिनी सुनीजिए
कहै कवि गंग और अंगनि वसनि साथ प्यारी जी के मुखहू की कौन सोभा दीजिए ॥^३

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७५

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७६

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७७

उपर्युक्त छंद में कवि के सम्मुख केवल कामिनी के मुख के उचित उपमान का ही अभाव नहीं है वरन् कामिनी के अन्य अंगों के भी यथार्थ उपमान नहीं मिलते किन्तु 'और अंगनि वसनि छाए' के कथन से कवि कुछ छुटकारा पा जाता है परन्तु मुख तो खुला रहता है। इसीलिये कवि कह उठता है- 'प्यारी जी के मुखहू की कौन सोभा दीजिए'।

संपूर्ण अंगों के साथ-साथ किसी एक अंग के सौंदर्य-वर्णन में भी गंग ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। नायिका के नेत्रों के वर्णन में कवि ने रूपक की सहायता लेकर संदेह अलंकार द्वारा नेत्र और कामदेव के तुरंग के समान गुणों का वर्णन किया है :—

दीर्घ ढरारे तहां डोरे रतनारे लगे कारे तहां तारे अति भारे जे सुरंग हैं
कहै गुनि गंग जनु दूध ही सो धोए पुनि कोए विकसत सित असित दुरंग हैं
पारद सरस चार थिर से थिरकि जात तिर में चलत मानों कूदत कुरंग हैं
खैचे ना रहत अनुरागहू के वागवर मानिनी के नैन कैधों मैने के तुरंग हैं ॥^१

निम्नलिखित छंद में गंग ने 'वेणी' का अनुपम वर्णन किया है :—

मृग नैनी की पीठ पै वेनी लसै मुख साज सनेह समय रही
मुचि चीकनी चारु चुभी चित में भरि मौन भरी मुख बोध रही
कवि गंग जु या उपमा जो कियो लखि सूरत ता श्रुति गोय रही
मनो कंचन के कदली दल पै अति सांवरि सांविनि सोय रही ॥^२

उपर्युक्त छंद में कवि ने नागिन के स्वाभाविक चांचल्य का परिहार उसे सुषुप्तावस्था में दिखाकर वेणी की उपमा का पूर्णरूपेण निर्वाह कर दिया है। कवि की विशेषता पीठ को कदली-दल के रूपक बांधने में भी परिलक्षित है। नागिन की चंचलता वेणी की स्थिरता से सर्वथा भिन्न है। इस विभिन्नता के कारण दोनों का सादृश्य नहीं दिखाया जा सकता था। इसीसे कवि ने सोती सर्पिणी से चंचलता का निवारण दिखा कर उपमा को सुंदर बना दिया है।

इसी प्रकार कवि गंग ने नायिका के नख के शिख तक का सौंदर्य-वर्णन किया है। उसकी वेणी, नेत्र, भृकुटि, नासा, तिल, कुच, मुख, कर, पग, जंघे आदि के अलग-अलग और कहीं एक साथ वर्णन दिये हैं। कहीं-कहीं बाह्य सौंदर्य वर्णन के साथ-साथ

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १०

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९५

अन्तः सौंदर्य का भी वर्णन हो गया है। अंगों के लिये उपमानों के प्रयोग परंपरागत ढंग पर ही हुए हैं। कुछ नये उपमान भी आये हैं जिनके प्रयोग उनके परवर्ती कवियों की रचनाओं में मिलते हैं।

रहीम ने कृष्ण की रूप-माधुरी की विशद व्यंजना की है। उनके रूप-लावण्य, मुरली की मोहकता आदि सुन्दर ढंग से चित्रित हुए हैं। कृष्ण की छवि गोपियों के रोम-रोम में पैठ गई है। नंद-नंदन की मधुर मूर्ति ने उन्हें विह्वल कर रखा है :—

छवि आवन मोहन लाल की
काछे काछनि कलित मुरलिकर पीत पिछौरी साल की
वंक तिलक केसर की कीने दुति मानो विधु बाल की
विसरत नाहि सखी मो मन ते चितवनि नयन विसाल की
नीकी हँसनि अधर सुघरनि की छवि छीनी सुमन गुलाल की
जलसों डार दियो पुरइन पर डोलनि मुकुता माल की
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन गोपाल की
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस रहीम के हाल की ॥^१

एक अन्य पद में कृष्ण के कमल-नेत्र, उनकी मंद मुस्कान, दाँतों की कांति, विशाल हृदय पर स्थित मोतियों की माला तथा पीतांबर की शोभा का भी वर्णन हुआ है :—

कमल दल नैननि की उनमानि
विसरत नाहि सखी मो मनते मंद मंद मुसकानि
यह दसननि दुति चपलाहू ते महा चपल चमकानि
वसुधा की बस करी मधुरता सुधा पगी बतरानि
चढ़ी रहे चित उर विसाल की मुकुतामाल थहरानि
नृत्य समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि
अनु दिन श्री वृन्दावनं ब्रज ते आवन आवन जानि
अब रहीम चित ते न टरति हैं सकल स्याम की बानि ॥^२

रहीम के एक छंद में नेत्रों के विषय में किसी नायिका की उक्ति की द्रष्टव्य है :—

१ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७८

२ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७९

अति अनियारे मानो सान दै सुधा महा विष के विषारे ये करत परतात हैं
 ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं
 बार बार बोरे याते लाल लाल डोरे भये तोहू तो रहीम थोड़े विधिना सकात हैं
 घाइक घनेरे दुख दाइक हैं मेरे नित नैन बान तेरे उर वेधि वेधि जात हैं ॥^१

उपर्युक्त छंद में कवि ने नेत्रों की तीक्ष्णता का सुंदर वर्णन किया है ।

‘मदनाष्टक’ रचना में भी रहीम ने इसी प्रकार कृष्ण के नेत्रों की तरलता, मधुरता, विशालता और उनके प्रभाव का चित्ताकर्षक वर्णन किया है :—

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारैं
 अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल विदारैं
 मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखैं
 विलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आखैं ॥^२

रहीम ने इस प्रकार कृष्ण के अलौकिक रूप का बोध कराने के लिये विचित्र कल्पना का आश्रय ले कर अपनी सौंदर्यानुभूति का परिचय दिया है । साथ ही इनका वर्णन कहीं-कहीं स्थूल रूप वेष्टित है ताकि उसका लौकिक अनुभव भी किया जा सके ।

रूप-राग में भावों की सरल अभिव्यक्ति ब्रह्म कवि के अतिरिक्त शेष सभी कवियों के काव्य में समुचित ढंग पर हुई है । इन कवियों ने रूप-सौंदर्य का बोध कराने के लिये अलंकारों का अपेक्षाकृत कम सहारा लिया है किन्तु ब्रह्म ने सर्वत्र अलंकारों द्वारा ही अपनी सौंदर्यानुभूति का परिचय दिया है । कवियों के इस वर्णन में परम्परागत उपमान का ही अधिक प्रयोग हुआ है । ब्रह्म और गंग ने अवश्य कुछ नये उपमानों की सृष्टि करके अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है । प्रायः नरहरि और रहीम की तत्सम्बन्धी रचनाएँ कहीं-कहीं आध्यात्मिक भावना से प्रेरित हैं । ब्रह्म, तानसेन और गंग की इस विषय की रचनाएँ आध्यात्मिक भावना से इसलिये प्रभावित हैं क्योंकि वह युग ही भक्ति का था । लेकिन उनकी प्रवृत्ति लौकिक वर्णन की ओर विशेष है और इस प्रकार वे रीतिकालीन कवियों का मार्ग प्रशस्त करते दिखाई देते हैं ।

१ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७५

२ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७४

संयोग तथा उसके सहकारी भाव

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में शृंगार के अंतर्गत राधा, कृष्ण तथा गोपियों के रूप-सौंदर्य का वर्णन ऊपर किया गया। इसके अतिरिक्त प्रेम-क्रीड़ा, विविधप्रकार की नायिकाओं के वर्णन, विरह तथा मान सम्बन्धी विषय भी प्राप्त हैं। इनमें राम और कृष्ण सम्बन्धी भक्ति-भावना की भी झलक मिलती है। इनमें से कुछ कवियों की रचनाओं में शासक तथा अन्य लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों के वीर-भाव की भी अभिव्यक्ति हुई है। वीभत्स, क्रोध, भयानक आदि भावों के केवल एक-दो छंद ही इनकी रचनाओं में मिलते हैं। संचारी और अनुभावों के रूप में ही उनकी भाव-व्यंजना अधिकतर देखने को मिलती है।

नरहरि ने अपने छंदों में संयोग-शृंगार का बहुत कम वर्णन किया है। राधाकृष्ण के संयोग-विलास का कविकृत केवल निम्नलिखित एक छंद ही मिलता है—

करत विनोदु स्याम स्यामा संग दऊ मन मुदित रूप गुन भाजन
अंग अंग प्रति रंग रंग मह छवि उप्पम धन विंदु विराजन
नरहरि यह विपरीत सुरत रति राधे के चरन उचत अति लाजन
उछरि उछरि वेनी परति पिठिठ पर मार तमनहुँ मनमत्थ ताजन ॥^१

उक्त छंद में कवि ने शृंगार के अन्तर्गत 'हर्ष' संचारी का उल्लेख किया है।

ब्रह्म की रचनाओं में संयोग शृंगार की उच्च भावनाएं दृष्टिगत नहीं होती। प्रेम-क्रीड़ा का साधारण वर्णन ही उपलब्ध होता है।

कवि ने निम्नलिखित छंद में नायक की कामातुरता, नायिका की नारीमुलभ लज्जा, शंका आदि की अभिव्यंजना की है।

सेजहितें उठि नारि चली मन मोहन जू हसि चीर गह्यो
प्रगट्यो रवि कान्ह विहान भयो मुख मोरि के यों मृगनैनी कह्यो
वेनी दुहूँ कुच बीच रही उपमा कवि ब्रह्म यहै निबह्यो
जनमेजय के मनो जश समे दुरि तच्छक मेरु की संधि रह्यो ॥^२

उपर्युक्त छंद में मोह, त्रास, लज्जा संचारियों का सुंदर निर्वाह हुआ है तथा मुख मोड़ कर कहना, चीर पकड़ना आदि अनुभावों का भी एक ही स्थल पर निर्वाह कर दिया गया है।

१ देखिये, नरहरि के १८ विध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४१

२ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९९

जनम जीतव सुफल सखी मदन मोहन मया कीनी लीनी रस बस कर
तानसेन प्रभु सुख के नैनन सैनन हाव भाव कटाक्षन मोह लीनी तब मिथ्यो दुख डर ॥^१

उपर्युक्त छन्द में गर्व, हर्ष संचारी और सखी से कथनादि अनुभाव के निर्वाह सुन्दर ढंग से हुए हैं।

तानसेन के उक्त वर्णन में संयोग-शृंगार मर्यादानुमोदित ढंग पर आया है। परन्तु इनमें शृंगार की संपूर्ण अभिव्यक्ति न होकर संचारियों के ही प्रकाशन हुए हैं। इसलिये इन्हें भाव-वर्णन के अंतर्गत ही रखना चाहिये। संचारियों के निर्वाह में ही कवि को विशेष सफलता मिली है।

गंग की रचनाओं में संभोग-शृंगार के कवित्त और सवैये अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं। कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं के वर्णन में कहीं-कहीं उनका शृंगार-काव्य संयमित सीमा के बाहर भी चला गया है। ऐसे स्थलों पर कवि की काव्यानुभूति का परिचय नहीं मिलता वरन् वातावरण तथा दरबार की विलासमयी प्रवृत्ति की झलक ही विशेष रूप से प्रकट होती है।

गोपियाँ यमुना में स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुई ही थीं कि कृष्ण उनके पहनने के समस्त वस्त्रों को लेकर तुरन्त कदंब-वृक्ष पर चढ़ गये। गोपियाँ की तात्कालिक मानसिक स्थिति की कवि ने निम्नलिखित छन्द में सुन्दर अभिव्यक्ति की है :—

इक भीनी अधीनी करै बतियाँ जिनकी कटि छीनी छलामें करै

इक दोष धरै अफसोस करै इक रोष तै नैन ललामें करै

कवि गंग कहै हित जंघन सो उर दै श्यामैं सलामें करै

निज अंबर माँगै कदम्ब तरै ब्रज बामें मुलामें कलामें करै ॥^२

कवि ने यहाँ गोपियाँ के दैन्य, रोष, लज्जा आदि भावों के सुन्दर सम्मिश्रित वर्णन करके भाव-शबलता का उदाहरण प्रस्तुत किया है। सामान्य परिस्थितियों में विभिन्न व्यक्तियों के हृदय में पृथक-पृथक भावों का उदित होना एक मनोविज्ञानसम्मत सिद्धांत है जिसका कवि ने उक्त छन्द में भलीभाँति निर्वाह कर दिया है।

एक समय राधा और कृष्ण एक साथ वन-कुन्ज के पास खड़े हुए थे। तत्काल ही बादलों की घरघराहट और हवा के थपेड़ों ने उनकी प्रेम-क्रीड़ा में उद्दीपन का कार्य

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १३२

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७८

किया और ज्योंही नायिका ने प्रस्थान करना चाहा त्यों ही नायक ने उसके वस्त्र पकड़ लिए । कवि ने इस भाव का वर्णन इस प्रकार दिया है :—

एक समय वृषभानु सुता हरि ठाढ़े हुते वन कुन्ज कुटी तर
गंग कहै धन की घहरान सुवात सघातन जात वनै धर
लीने दुकूल दबाय तिही ललना ललना कहि आज भले धर
मानों विलथल के दल को कन लै उड़्यो भौर बधू विधु के पर ॥^१

उक्त छन्द में उद्दीपन तथा विशेष रूप से 'त्रास' संचारी-भाव के उपरान्त रति-भावोदय का व्यंग-वर्णन अपना विशेष चमत्कार रखता है । गंग ने अपने संभोग-वर्णन में रति-केलि, विपरीत-रति, आलिंगन आदि के ही अधिक वर्णन किये हैं जिनमें अश्लीलता ही विशेष रूप से चित्रित हुई है ।

रहीम ने शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति संयमित सीमा के भीतर ही की है ।

रूपगर्विता की संयोगावस्था का चित्रण कवि ने निम्नलिखित सवैये में दिया है :—

जाति हुती सखि गोहन में मनमोहन को लखि के ललचानो
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नन्द लाल को रीझिबो जानो
जाति भई फिरिके चितई तब भाव रहीम यहै उर आनो
ज्यों कमनैत दानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो ॥^२

नायिका के प्रति कृष्ण की रुक्मान वैसी ही है जैसे किसी तीरन्दाज ने तोपों की बाढ़ में तीर मार कर अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया हो । नायिका विजित होने पर भी अपने आप को विजयिनी ही बताना चाहती है । उक्त छन्द में नायिका कृष्ण पर आसक्त है किन्तु अपनी इस असक्ति को कृष्ण पर मढ़कर अपने रूप-गौरव को अल्लुग्य बनाये रहती है । कवि ने यहां नायिका की उत्कंठा, कृष्ण-सौंदर्य पर रीझ कर कटाक्ष से देखने आदि के संकेतपूर्ण वर्णन किये हैं । विषम परिस्थिति में मनोभाव की उत्पत्ति तथा प्रकाशन की चतुराई का ही इस छन्द में विशेष सौंदर्य है ।

रहीम ने बरवै नायिका-भेद के उदाहरणों में संयोग संचारी भावों के कुछ आकर्षक चित्र दिये हैं :—

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद-संख्या १८१

२ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७७

बहुत दिवस पै पियवा आएहु आजु ।

पुलकित नवल बधुइया करु गृह काजु ॥^१

यहाँ 'हर्ष' संचारी भाव का सुन्दर वर्णन है ।

कृष्ण राधिका का स्पर्श-सुख प्राप्त करने के लिये उसे जानबूझ कर छू चोर बन जाते हैं :—

खेलत जानेसि टोलवा नन्द किशोर ।

छुई वृषभान कुमरिया मैगा चोर ॥^२

उपर्युक्त उदाहरण द्वारा कवि ने संयोग-सुख की चित्ताकर्षक अभिव्यंजना की है । राधाकृष्ण प्रेम का यह बरवै उत्कृष्ट उदाहरण है ।

इस प्रकार उक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि 'नरहरि, ब्रह्म और गंग के उपलब्ध संयोग-शृंगार सम्बन्धी विविध भावों के छन्द भावपूर्ण होते हुए भी अश्लीलता की परिधि से अछूते नहीं हैं । इनमें संचारी भावों तथा अनुभावों के ही विशेष वर्णन हुए हैं । इनके वर्णन में विशेषता यही है कि भाव-वर्णन करते-करते अन्त में इन कवियों ने विशेष रूप से ब्रह्म और गंग ने उत्प्रेक्षा अथवा उपमा के सहारे नवीन उपमान लाने का प्रयत्न करके अलंकार को प्रधान और भाव-वर्णन को गौण कर दिया है । शृंगार-रस का पूर्ण विश्लेषण इनकी रचनाओं में नहीं हुआ है । कुछ ही छन्द ऐसे हैं जिनमें रस के सम्पूर्ण अवयव देखने को मिलते हैं । तानसेन और रहीम की तत्सम्बन्धी रचना अश्लील नहीं है किन्तु इनमें रस की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं मिलती ।

विप्रलंभ-शृंगार

संस्कृत काव्य-शास्त्रों में विप्रलंभ-शृंगार के अन्तर्गत अभिलाषा-हेतुक, ईर्ष्या-हेतुक, विरह-हेतुक, प्रवास-हेतुक, और शाप-हेतुक विप्रलंभ माने गये हैं^३ और इनसे उद्भूत दश विरह दशाएँ-अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृत्यु मानी गई हैं । आचार्यों ने विप्रलंभ-शृंगार का विभाजन अयोग और विप्रयोग दो रूपों में भी दिया है । नायक और नायिका में प्रेम होने पर भी परतन्त्रता के कारण जहाँ मिलन न हो सके वहाँ अयोग और जब मान अथवा प्रवास के कारण

१ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ५६

२ " " " पृष्ठ ९१

३ काव्य-कल्पद्रुम, रस-मंजरी, पृष्ठ ९१-९४

संयोग न हो सके तब विप्रयोग होता है। मानजन्य और प्रवासजन्य प्रणय और ईर्ष्या-ये दोनों मान के हेतु हैं। इसी प्रकार प्रवास भी कार्यवश अथवा शापवश माना गया है। अतः अयोग श्रृंगार अभिलाषा-हेतुक और विप्रयोग ईर्ष्या, विरह, प्रवास और शाप-हेतुक विप्रलम्भ श्रृंगार के समानुकूल कहे जा सकते हैं।

जीवन का प्रत्येक क्षण सुखपूर्ण नहीं होता। उसमें कभी दुःख की अनुभूति होती है। वियोगजन्य दुःख नायक-नायिका के प्रगाढ़ प्रेम का परिचायक और साक्षीस्वरूप होता है। इसमें दोनों की प्रेम-दृष्टि एकाग्र होकर उनका समस्त ध्यान प्रेम-क्रीड़ा की मधुर और आनन्द-प्रदायिनी स्मृतियों में केन्द्रित रहता है और उसके बाद जो मिलन होता है वह और भी सुखपूर्ण और स्थायी होता है। हिन्दी के कुछ कवियों ने विषय की तीव्रता का अनुभव कराने के लिये विप्रलम्भ-श्रृंगार के वर्णन में अत्युक्ति के काम लिया है। कहीं-कहीं पर उनका यह वर्णन बिल्कुल खिलवाड़ सा हो गया है। शब्दों की तोड़-मरोड़ और कल्पना की ऊँची उड़ान के अतिरिक्त वहाँ और कुछ भी नहीं है। परन्तु अकबरी दरबार के कवियों की रचनाओं में विप्रलम्भ के अन्तर्गत सुन्दर भाव-व्यंजना हुई है। उन्होंने कुछ स्थलों पर ऊँची कल्पना का आश्रय अवश्य लिया है किन्तु इसके द्वारा उनका उद्देश्य प्रेम की अनन्यत्वा और तल्लीनता व्यक्त करना ही है। इस प्रकार की रचनाओं में उनके प्रेम-मनोविज्ञान की विशेषता का परिचय मिलता है। मान-निदर्शन में स्त्रियों की मान-सिक स्थिति का विशेष परिचय दिया गया है।

नरहरि ने विरह के अन्तर्गत 'बारहमासा' का वर्णन किया है जिससे कवि की सहृदयता का परिचय मिलता है।

प्राप्त-प्रेम के पोषण के लिये प्रेमी कितना सचेष्ट रहता है यह नरहरि ने निम्न-लिखित 'असाढ़' के वर्णन में दिखा दिया है। शोक-संतप्ता नायिका अपनी सखी से कहती है कि प्रेमियों के मिलने की आत्ता यही है। मेघों से घिरे आकाश को देखकर अपनी प्रियतमाओं से बिल्कुड़े हुए प्रेमी कैसे बाहर रह सकते हैं। इसी आशा में प्रोषितपतिका अपने आगत प्रिय के लिये पूजा की सब सामग्री संजो कर रख लेती है। सारे जगती-तल पर हर्ष नाचता हुआ दृष्टिगत होता है परन्तु उसे कृष्ण का विरह ही निरन्तर जलाता रहता है :—

आवहि पथिक पेष्पि घन आगम राग मलार सुणत मन बाढ़
अद्रा नृपति पूजा ग्रह संचित जंषित प्रेम परस्पर गाढ़

नरहरि बुन्द विनोद बसुंधर हरि बिनु सखि विरहानल डाढ़
पथु जेवहि जिय जाति जितहि तित सब कह मिलनु अवधु असाढ़ ॥^१

उक्त छंद में कवि ने मोह, अभिलाषा, उत्कंठा भावों के सुन्दर चित्रण किये हैं ।

चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती है । नदियाँ जल से परिपूर्ण हो वेगवान हो गई हैं । चकवा-चकवी प्रसन्न होकर चहक रहे हैं और पपीहा भी अपनी आशा को फलीभूत होते देखकर नाच उठता है । आकाश पर काले बादल अत्यन्त सुहावने मालूम पड़ते हैं । नायिका जब अपने पास ही चारों ओर सखियों को हिंडोले रचकर प्रेमियों के साथ विहार करते देखती है तो उसके विरह-दुःख की सीमा नहीं रहती :—

विज्जु तरक्कि चक्कि पपीहा चहक्कित स्याम सुहष सुहावन
भुम्मि हरित्त सरित्त भरित्त दिग्गत्त रहित्त जित्त तित्त आवन
नरहरि स्वामि समीप जहाँ लगि रचहि हिंडोल सखी सुख गावन
बेआदर विलपत्तइ न कह बिन विट्ठल विलपति हे सावन ॥^२

उक्त छंद में विषाद, मोह संचारी भावों के निर्वाह हुए हैं ।

प्रिय के बिना सब सुखद वस्तुएँ किस प्रकार दुःखद हो जाती है, इसका दिग्दर्शन कवि ने फागुन के चित्रण में कराया है :—

रास विलास वसु सुर पूरित पेल्लत फिरत नृपति प्रजटागुन
बाजहि पंच सद् बहु भांतिन सज्जन समीप सुषि न सुषतागुन
नरहरि निरषि होलिका पूजहिं सब जग मुदित मोर परमागुन
वै जडुनन्दन भेग सषा सब पिय बिन वृथा फागु भई फागुन ॥^३

मोह और स्मृति संचारी भावों के कवि ने यहां सहज ही में वर्णन कर दिये हैं ।

नरहरि के विरह-चित्रण में यद्यपि बहुत उच्च भावनाओं की तीव्रता नहीं मिलती और लक्ष्मीपन का भी सामान्य विवरणमात्र है, भावों के संकेत प्रायः छंद के अन्त में मिलते हैं जो इस प्रकार के वर्णन की परिपाटी-पालन ही कहा जा सकता है ।

१ देखिये, नरहरि का बारहमासा, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १०४

२ " " " छंद संख्या १०५

३ " " " छंद संख्या १११

ब्रह्म ने अपने विप्रलम्भ शृंगार में गोपियों तथा राधा के वियोग के वर्णन किये हैं। गोपियाँ कृष्ण के रूप-सौन्दर्य तथा गुणों को स्मरण कर विह्वल हो उठती हैं।

कृष्ण के विरह में गोपियों को दर्शों दिशाएँ जलती हुई मालूम पड़ती हैं और काले बादलों का बरसना उन्हें श्यामदृगों से आँसू की धार के समान जान पड़ता है। काले बादलों के रूप में वे कृष्ण का दर्शन करती हैं :—

काल के कान्ह गये मथुरा मनौ बीत गये जुग बासर से
विरहागिन काम लगाइ दई है दसो दिस देखि वही दरसे
कवि ब्रह्म भने मोहि जान पड़े सखि स्याम घटानल सो परसे
विरही वर बार ही बार उठे दृग नीर किधौं धन धौं बरसे ॥१

कृष्ण की रूप ठगोरी के दुःखद प्रभाव का वर्णन कवि ने निम्नलिखित छंद में किया है :—

जब ते नन्द लालु चिते चलिगे संगही चलि चेटकु सो कछु कीनो
नेकु जो देखो दिखाई जू मोहि सुदेखे हियो हरि जू हरि लीनो
ब्रह्म भने तलफें दो नैन विसेखहि नीर ते न्यारे के मीनो
गए गड़ आँखिनि में सजनी बडडी अखियानि बड़ो दुख दीनो ॥२

उक्त छंद में कवि ने कृष्ण की चितवन को उद्दीपन स्मृति, मोह, विषाद को संचारी भावों तथा तड़पन आदि को अनुभाव के रूप में सुन्दर ढंग से निर्वाह कर दिया है।

नायक की अनुपस्थिति में रात पावक की भांति बढ़ती ही जाती है। केवल कृष्ण ही एक ऐसे थे जिसकी करुणा से वह अभिसिक्त रहती थी और अब तो वह शुभ ज्योत्स्ना के अस्तित्व को ही मिटाने पर तुली है। ऐसा ज्ञात होता है कि ऊधो से उसने भी योग का पाठ सीख लिया है :—

राति अराति भई सजनी सुनि पावक ज्यों विधि बूढ़ बढ़ी है
कान्ह बिना करुणा बिनु माई री जानति जोन्ह जू सीस चढ़ी है
ब्रह्म भनै निघटे न घटीक यहो किधौं ऊधो सो जोग पढ़ी है
जीवन ज्यों जसु ज्यों बलि को अलि बावन ज्यों यह रैन बढ़ी है ॥३

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५१

२ " " " छंद संख्या ५०

३ " " " छंद संख्या १००

उक्त छंद में विशेष रूप से विषाद, स्मृति संचारी के वर्णन हैं। कृष्ण के बिना सुखद वस्तुएँ दुःखदायी हो गई हैं और स्वल्प वस्तुएँ दीर्घ। रात जो संयोग के दिनों छोटी जान पड़ती थी अब वही लम्बी हो गई है। नायिका की इसी मनोदशा का यहाँ पर विशेष चित्रण है।

संयोग-शृङ्गार की अपेक्षा विप्रलम्भ में ब्रह्म की भावाभिव्यक्ति सुन्दर हुई है। अलंकारों के प्रयोग के साथ-साथ कवि के इस वर्णन में भावों की गहराई स्पष्ट है।

तानसेन के विरह सम्बन्धी पदों में तीव्र-वेदना और प्रेम की तन्मयता का परिचय मिलता है। कल्पना की ऊँची उड़ान और शब्दों के चमत्कार में कवि ने सुन्दर भावों का लोप नहीं होने दिया है। तानसेन के ये पद भाव-व्यंजना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

निम्नलिखित छंद में कवि ने नायिका की चिन्ता, अभिलाषा और दुःखमय परिस्थिति का वर्णन किया है :—

तन की तपन तब ही मिटेगी मेरी जब प्यारे को दृष्टि भर देखोंगी
जब दरस पाऊँ प्राण प्रीतम को जनम जीतन सुफल अपनो लेखोंगी
अष्टयाम मोहिं को ध्यान रहत वाको आली को लों भेटोंगी
तानसेन प्रभु कोड आन मिलावै ताके पावन शीश टेकोंगी ॥^१

इस पद में नायिका के दैन्य और मोह भावों की भी अभिव्यंजना हो गई है।

प्रिय के संयोग-समय यह ध्यान नहीं रहता कि आगे वियोग भी होगा। अतः वियोग और भी असह्य हो जाता है :—

माई री महा कठिन भई मिल बिछुरे की पीर
घड़ी घड़ी पल छिन जुग से बीतन लागै नैनन भर भर आवत नीर
जब से प्यारो भयो न्यारो कल ना परत मेरी वीर
तानसेन के प्रभु वेग आवन कीजो जियरा धरत नहीं धीर ॥^२

उपर्युक्त पद में दैन्य, मोह, विकलता की व्यंजना कवि ने सफलता के साथ की है।

नायिका ने जिस प्रेम को साधारण और सहज प्राप्त समझ रखा था उसकी विषमता का अनुभव उसे अब वियोगावस्था में लग रहा है। निद्रा भी डर के कारण पास नहीं फटकती अन्यथा स्वप्न में ही प्रिय के दर्शन हो जाते :—

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १०७

२

”

”

पद संख्या १८१

कह कह कुह कुह कोकिला के कुहकत कहा करै गंग मेरी कछू न बसाति है
आवन गए है कहि अजहुँ न आए लाल पहरक राति रही सोउ पतराति है ॥^१

उपर्युक्त छन्द में विषाद और शंका, व्याधि, औत्सुक्य संचारी भावों का निर्वाह कवि ने किया है। विरह-व्यथा की विषम और तीव्र अनुभूति उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुई है। यहां पर 'हियो हहरात,' 'पतिराति,' 'आंच' आदि शब्द बड़े भावपूर्ण हैं।

निम्नलिखित छन्द में कवि ने सहज सुखद वस्तुओं की स्वाभाविक धर्म-विपरीतता का मनोरम चित्रण किया है जो इस समय विरह-अवस्था में दुःखमय भावों को उद्दीप्त करती है :—

जा दिन ते माधो मधुवन को सिधारे सखि ता दिन से दृगनि दवागिन सी दे गयो
कहि कवि गंग अव सब ब्रजवासिन की सोभा और सिंगार सुत संग लाई ले गयो
आछे मन भावने वे विविध विछावने जे सकल सुहावने डरावने से के गयो
फूले फूले फूलनि में सेज के दुकूलनि में कालिंदी के कूलन में विसासी विस बे गयो ॥^२

इस छंद में कवि ने विषाद, निर्वेद और त्रास संचारी भावों के भी सहज ही में वर्णन कर दिये हैं।

संयोगावस्था में जो नायिका अत्यंत मानिनी थी वही वियोगावस्था में बावली सी बन जाती है :—

अंजन मंजन तेल तंबोल तजे विलखे बिन हार हियो है
बेंदी ललाट न बेसरि नाक सिंगारिन को मनो मेट कियो है
गंग कहे नख ते सिख लों पुनि सेति को मान समटि दियो है
तेरे चले बिनु मोहन लाल वै मान दगी जिन जोग लियो है ॥^३

उक्त छंद में 'मानदगी' शब्द से स्पष्ट होता है कि नायिका रूप-गर्विता थी किंतु अब उसकी दयनीय दशा है। यहाँ नायिका के वर्णन में 'निर्वेद' संचारी भाव का प्रभाव स्पष्ट है। विरह की उन्माद दशा का इसमें सुंदर चित्रण हुआ है। विरह में अपनी प्रेम-भावना के उद्दीप्त होने पर नायिका दीनता के साथ उपालम्भ का सहारा लेती हुई नायक की दृढ़ प्रेम-प्रतिष्ठा पर निम्नलिखित आक्षेप करती है :—

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४२

२ " " " छंद संख्या ४०

३ " " " छंद संख्या ३४

कालिंदी के कूल कूल कुंजन की छाया मधि कोयल की कूकन करेजा जायितु है
दौहनी को नाम सुने दूनों दुख होत दई बाँसुरी की सुधि आए आँसू डारियतु है
कहे कवि गंग तुम दीनबन्धु दीनानाथ एहो गोपीनाथ जन यों विसारयतु है
गोधन की छाया में छिपाय राखे छाती तर मेह ते बचाय अब नेह मारियतु है ॥१

यहाँ मोह, स्मृति संचारी भावों के चित्ताकर्षक वर्णन हुए हैं । प्रिय की उदा-
सीनता पर उपालम्भ का संकेत बड़ा ही तीव्र है ।

विरहिणी वियोग की अग्नि में प्रति पल जलती जा/रही है । वियोग को सीमित
समझकर उसने बहुत दिनों तक धैर्य-नीति का पालन किया किन्तु धीरे-धीरे उसे वियोग
की असीमता का ज्ञान होने लगा और नैराश्य के महानद में गोता लगाती हुई उपालम्भ
का छोर पकड़ कर एक बार फिर प्रेमाकाश में आशा-धन का अवलोकन करती है :—

के बहूँ विछुर्यो न हुतो विछुरते मिल्यौ बहुर्यो न विसासी
एकहि बार दयो दुख ढारि के नारि करी कृश चन्द कला सी
गंग कहे तन मैन दहे अति मुख पिया विनु लागति गांसी
गोकुल जारि उजारि जदुष्पति अब भए हरि वारिघ वासी ॥२

कवि ने उपर्युक्त छन्द में विषाद, मोह, आदि भावों के सुन्दर निर्वाह कर
दिये हैं ।

गंग ने इस प्रकार उपालम्भ का आश्रय लेकर अपनी विरह की भावनाओं की
सफल अभिव्यक्ति की है । इसमें भी मोह, विषाद, निर्वेद, स्मृति आदि संचारी भावों की
ओर कवि की दृष्टि स्पष्टतया गई है । उद्दीपन रूप में कुंजों, श्याम बादल, कृष्ण
रूप-सौंदर्य आदि का विशेष वर्णन हुआ है ।

रहीम ने विप्रलम्भ-शृंगार का वर्णन बरवै और दोहों में दिया है । बरवै में यह वर्णन
बारहमासा की पद्धति पर है किन्तु इनमें बारहों महीने का वर्णन नहीं मिलता । कवि के
इस चित्रण में न तो कल्पना की ऊंची उड़ान है और न निरर्थक शब्दों के प्रयोग ही ।
ये वर्णन स्वाभाविक और भावपूर्ण हैं ।

विरहिणी के लिये सावन-भादों के महीने बहुत दुःखदायी होते हैं । मैघों की
गर्जन, बिजली की कौंध हृदय को कंपा देने वाली होती है । इस समय प्रिय-मिलन की

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४७

छंद संख्या ३८

इच्छा और तीव्र हो उठती है। उसकी यह वेदना और बढ़ जाती है जब वह पास ही अपनी सखियों को प्रिय के साथ प्रेम-क्रीड़ा में निरत देखती है :—

घन घुमड़े चहुं ओरन चमकत बीज ।

पिय प्यारी मिल झूलत सावन तीज ॥^१

यहां स्मृति संचारी उद्दीपन-विभाव के साथ सुंदरता के साथ वर्णित है।

नायिका एक पथिक द्वारा अपने प्रिय के पास विरह-संदेश भेज रही है :—

कहियो पथिक संदिसवा गहि के पाय ।

मोहन तुम बिन तनकहु रह्यो न जाय ॥^२

उक्त छंद में 'तनकहु' शब्द द्वारा नायिका की आतुरता विशेष तीव्रता से व्यक्त हुई है। उसकी अनन्यता और दैन्य 'गहि के पाय' पद में भली प्रकार से भासित है।

प्रिय के विरह में नायिका को शारीरिक सुख नहीं है और अपने प्रेम के प्रवाद के फैल जाने से उसकी मानसिक अशान्ति भी बढ़ गई है :—

विरह बढ़्यो सखि अंगन बढ़्यो चवाउ ।

करयो निठुर नंद नंदन कौन कुदाव ॥^३

यहां 'चिन्ता' संचारी का निर्वाह कवि ने सुंदर ढंग से किया है।

वाह्य-दृश्य जो प्रिय के संयोग में प्रेमोद्दीपक थे वही अब विरह की अवस्था में नायिका के लिये दुःखदायी हो गये हैं :—

बन उपवन गिरि सरिता जिती कठोर ।

लगत देह से बिछुरे नंद किशोर ॥^४

स्मृति, मोह, विषाद संचारियों की एक साथ यहां सहज ही अभिव्यक्ति हो गई है।

निम्नलिखित छंद में कवि ने विप्रलम्भ के अंतर्गत मोह, विषाद संचारी भावों और अनुभावों के वर्णन किये हैं :—

जब से बिछुरे मितवा कहु कस चैन ।

रहत भर्यौ हिय सांसन आँसुन नैन ॥^५

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ६४

२ " पृष्ठ ६५

३ " पृष्ठ ६५

४ " पृष्ठ ६६

५ " पृष्ठ ६७

प्रिय के बिछुड़ जाने से चैन कहाँ है ! इस समय तो संपूर्ण शरीर में दुःख ही दुःख व्याप्त है ! हृदय विषाद से भरी हुई सासों और नेत्र आसुओं से ओत-प्रोत हैं । ये दोनों ही वस्तुएँ प्रिय की सुधि को प्रखर करती हैं । विरह की व्यथापूर्ण दशा का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र इन पंक्तियों में कवि ने रखा है ।

इसी प्रकार कृष्ण की विनोद भरी बातें किसी भी प्रकार नहीं भूलतीं । हृदय चाहे कितना ही कठोर करें परन्तु वे उसको प्रभावित करती ही हैं । इसका तीव्र एवं मर्मस्पर्शी वर्णन निम्नलिखित बरवै में देखिये :—

मनमोहन की सजनी हँसि बतरान

हिय कठोर कोजत पै खटकत आन ॥^१

निम्नलिखित छंद में विरह की जड़ता-अवस्था का कवि ने उल्लेख किया है । कृष्ण के चले जाने के बाद प्राण आँखों में आ गये और आँखे एक टक उनकी प्रतीक्षा करती हुई मार्ग में बिछी रहती हैं और न किसी प्रकार की सुधि है और न चेष्टा :—

जब ते मोहन बिछुरे कछु सुधि नाहि ।

रहे प्राण परि पलकनि दृग मग माँहि ॥^२

प्रिय के आगमन का मार्ग देखती हुई फाग के अवसर पर विरहिणी प्रेमी-प्रेमिकाओं को क्रीड़ा करते देख अपना हृदय मसोस कर रह जाती है क्योंकि इस आनन्द-उत्सव के अवसर पर उसे काग उड़ाना पड़ रहा है । स्वयं प्रिय के बिना उत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकती :—

लोग लुगाई हिल मिल खेलत फाग ।

परयो उडावन मोकों सब दिन काग ॥^३

उक्त छंद में स्मृति, आँसुक्य, विषाद संचारियों का भी निर्वाह हो गया है । इस प्रकार रहीम द्वारा लिखे हुए छोटे-छोटे बरवै मधुर-भाव से ओत-प्रोत हैं । सरल, स्वाभाविक मर्मस्पर्शी शब्दों द्वारा रहीम ने न केवल बरवै छंद को ही एक बड़ा लुभावना रूप दे दिया है वरन् इसमें व्यक्त-भावना हृदय के इतने समीप आ जाती है कि वह स्थायी रूप से मन में बैठ जाती है ।

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ६८

२ " " पृष्ठ ६८

३ " " पृष्ठ ७१

दोहों में भी रहीम का विप्रलंभ-वर्णन उच्चकोटि का है। निम्नलिखित दोहे में कवि ने स्मृति-संचारी का आश्रय ले कर नायिका की मिलन-अवस्था का परिचय और विरह-स्थिति का उल्लेख एक साथ कर दिया है:—

रहिमन इक दिन वै रहे बीच न सोहत हार
वायु जो ऐसी बह गई बीचन पड़े पहार ॥^१

अलंकार द्वारा भी कवि ने विप्रलंभ-भावों की सुंदर अभिव्यक्ति की है:—

विरह रूप घनतम भयो अवधि आस उद्योत ।
ज्यों रहीम भादों निसा चमकि जात खद्योत ॥^२

विरह के बीच में अवधि की आशा की उपमा भादों की रात के बीच चमकने वाले खद्योत से देकर यथार्थ भाव का स्पष्टीकरण किया गया है जिससे कि विरह की गहराई और आशा के अस्तित्व दोनों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार दोहे और बरवै जैसे छोटे छंदों में विरह के उत्कृष्ट भावों की अभिव्यक्ति रहीम के काव्य-कुशलता की परिचायक है।

संक्षेप में अकबरी-दरबोर के इन कवियों की विरह-व्यंजना 'ऊहा' अवस्था (अत्युक्ति-पूर्ण-कल्पना) की स्थिति तक नहीं पहुंची है। उसमें काव्य की मर्यादा बनी रहती है। इनके उपलब्ध संपूर्ण विप्रलंभ के काव्य में गंग का केवल एक सवैया ही ऐसा मिलता है जिसमें कवि ने यमुना-जल के काले होने का कारण विरहिणी गोपियों के अंजन मिश्रित-आँसुओं का मिलना माना है^३ अन्यथा ऐसे अत्युक्ति-पूर्ण वर्णन का इनके काव्य में अभाव ही है। रीतिकालीन कवियों की सी झलक इन कवियों की तत्सम्बंधी रचनाओं में नहीं मिलती। उसका इन कवियों ने प्रायः निराकरण ही किया है। इनकी विरहिणी

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १६

२ " " पृष्ठ २४

३. जा दिन ते जदुनाथ चले तजि गोकुल को मथुरा गिरिधारी ।
ता दिन ते ब्रज नायिका सुंदर रंपति भंपति कंपति प्यारी ॥
नैनन ते उनके सरिता भई अंजन आँसु चलयो बहि वारी ।
गंग कहै सुनु शाह अकबर ता दिन ते जमुना भई कारी ॥

देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १०५

नायिकाओं की विरह-भावना व्यापक न होकर गहरी अवश्य है। बाह्य-दृश्यों से उन्होंने अपना अधिक तादात्म्य स्थापित नहीं किया है किन्तु वे अपनी मनोव्यथा को संयत शब्दों में प्रकट करना अच्छी तरह जानती हैं। यह पहले कहा ही जा चुका है कि इन कवियों के शृंगार-काव्य में रस की पूर्ण अभिव्यक्ति एक ही स्थल पर नहीं मिलती। विप्रलम्भ-शृंगार के अंग-वर्णन में उद्दीपन और संचार्यों के ही अधिक प्रयोग छंदों में देखे जाते हैं।

मान-वर्णन

संस्कृत-शास्त्रकारों ने मान के दो भेद किये हैं—प्रणयमान और ईर्ष्यामान। नायक और नायिकाओं के हृदय में प्रेमाधिव्य होते हुए भी अकारण एक दूसरे के ऊपर कोप से प्रणय-मान और प्रिय की अन्य स्त्री में आसक्ति के कारण ईर्ष्यामान का उद्भव होता है। ईर्ष्यामान नायक द्वारा स्वप्न में, अन्य नायिका की बातें बड़बड़ाने अथवा नायक में उसके संभोग-चिह्नों के देखने अथवा नायक के सुख से अचानक किसी दूसरी नायिका के नाम निकल जाने से उत्पन्न होता है।^१

स्त्री का मानभंग करने के लिये शास्त्र में छः उपायों के निर्देश किये गये हैं :—साम, भेद, दान, नति, उपेक्षा और रसान्तर। प्रिय-वचन द्वारा मानभंग का उपाय साम, नायिका की स्खी को अपनी ओर मिला लेने को 'भेद', बहाने से आभूषण, वस्त्र आदि के देने को 'दान', नायक का नायिका के पैरों पर गिरने को 'नति', निष्फल होने पर निरुपाय बैठ रहने को 'उपेक्षा' और घबराहट, भय, हर्ष आदि के कारण मानभंग के उपाय को 'रसान्तर' कहा गया है।^२

१ मानः कोपः सतु द्वेधा प्रणयेर्ष्या समुद्भवः। द्वयोः प्रणयमानः स्यात्प्रमोदे सुमहृत्यपि॥१९८॥

प्रेम्णः कुटिल गामित्वात्कोपो यः कारणं विना। पत्युरन्य प्रिया संगे दृष्टेऽथानुमिते श्रुते ॥१९९॥

ईर्ष्या मानो भवेत्स्त्रीणां तत्र त्वनुमितिस्त्रिधा। उत्स्वप्नायित भोगांस्त्र गोत्रस्खलन संभवा ॥२००॥

साहित्य-दर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृष्ठ १५१, १५२

२ साम भेदोऽथ दानं च नत्युपेक्षे रसान्तरम्। तद्भंगाय पतिः कुर्यात्बहु पायानिति क्रमात्

॥२०१॥

तत्र प्रिय वचः साम भेद स्तत्सस्युपार्जनम्। दानं व्याजेनभूषादेः पादयोः पतनं नतिः ॥२०२॥

संयोग-शृङ्गार के अंतर्गत 'मान' संचारी रूप में भी माना गया है। जब यह अनुनय-विनय की अवस्था तक ही रह कर भंग हो जाता है तो वह संभोग संचारी के रूप में रहता है। किन्तु यदि वह अनुनय-विनय के बाद तक भी रहता है तो विप्रलंभ शृङ्गार के अंतर्गत आता है।

प्रस्तुत ग्रंथ के कवियों का मान-वर्णन विप्रलंभ के अंतर्गत ही आयागा क्योंकि अनुनय-विनय के पश्चात् भी मान-भंग नहीं होता वरन् वह ज्यों का त्यों स्थिर रहता है। इन कवियों की रचनाओं में प्रणय और ईर्ष्या दोनों प्रकार के मान के वर्णन हुए हैं। इन कवियों में मान का प्रसंग केवल ब्रह्म, तानसेन और गंग के काव्य में ही मिलता है।

ब्रह्म के मान सम्बंधी छंद बहुत न्यून संख्या में हैं। इनके इस वर्णन में भाव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति उतनी नहीं जितनी अलंकार-योजना और उक्ति-विचित्रता मिलती है। ब्रह्म के प्रणयमान और ईर्ष्या-मान दोनों के उदाहरण समान रूप से मिलते हैं।

निम्नलिखित प्रणयमान के छंद में 'साम' उपाय द्वारा मान-भंग का प्रयत्न है। कृष्ण के अनेक अनुनय-विनय करने पर भी राधिका का हृदय सुरक्षाया ही रहता है किन्तु प्रेमाधिक्य के कारण वह कुछ कह नहीं पाती। उसका यह कठोर मान अन्त तक बना रहता है :—

मानवती वृष-भानु सुता मुख माने न माने मनावे हरी
ब्रह्म भने मन-मोहन को मनु मोहति यों मनो चित धरी
गल हाथ दिए सिर नाइ निरखति द्विष्ट चकोर ज्यों कान्ह करी
अरविन्द विछाड़ विरुधहि निंदंत मानहु इंदुहि निंद परी ॥^१

ईर्ष्या-मान का भी कवि ने एक छंद में वर्णन किया है जिसमें नायिका नायक के संभोग-चिह्नों को देखकर अन्य नायिका में उसकी आसक्ति का शीघ्र अनुमान कर लेती है :—

भली भई भोरहूं आए हो मेरे भलो हो जो जानी भली भलाई
ब्रह्म भने चलि देखो धों चलिये हे हरि जू

सामादौ तु परिक्षीणो स्यादुपेक्षा वधीरणम्। रम सत्रासहर्षादिः कोप भ्रंशी रसान्तरम् ॥२०३॥

साहित्य-दर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृष्ठ १५३

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५८

२०१

याही ते फूलत फूल गिरे सिर फूलनि फूली सी डार हिलाई
को ललना जिहिं लाल किए दृग लाल कहां गई ओठ ललाई ॥१॥

ब्रह्म की रचनाओं में मान के बहुत उत्कृष्ट उदाहरण नहीं मिलते । कवि ने इस प्रसंग का केवल साधारण निर्वाह सा कर दिया है ।

तानसेन के पदों में मान के स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढंग पर वर्णन हुए है। इनमें प्रणय और ईर्ष्या दोनों प्रकार के मान के उदाहरण मिलते हैं। इनमें ईर्ष्या-मान के पदों की अधिकता है।

निम्नलिखित प्रणयमान के छंद में नायक ने नायिका के मान-भंग के लिये 'साम' से काम चलता न देख उसकी दूती को अपनी तरफ मिलाकर 'भेद' का आश्रय लिया है :—

जोवन के जोर तोर कैसे समझाय राखूं मेरो कछ मान प्यारी आज तेरो दाव री
तन मन धन नोछावर करहुं बीत गई रैन तासों दूट गयो चाव री
लाल मनावत तू नहि मानत उठ री गंवार नार धने समझाय री
तानसेन कहै प्रभु सों तज मान हात से गंवाय लाल फेर पछताव री ॥२॥

निम्नलिखित छंद भी प्रणयमान का सुंदर उदाहरण है :—

आज कहाँ तज बैठी है भूषण ऐसे अंग; कछू अरसीले
बोलत बोल रुखाई लिए तुम काहे कुठग किए अहसीले
क्यों न कहो दुख प्राण पिया सो असुअन रहे भर नैन लजीले
तानसेन सुख होवै जिनके तिनके मन भावन छैल छबोले ॥³

कवि ने निम्नलिखित छन्द में मान-भंग के लिये 'साम' और 'भेद' उपाय की निष्फलता दिखाते हुए 'नति' उपाय-ग्रहण का स्पष्ट उल्लेख किया है :—

है यह मानिनी मनायबे को अति ही हुलास जिय मनहु न माने पिय कैसेक मनाइए
बहोत ही सोंह दई उठ चल फिर प्यारी वाके पाय पर धरि सीस नवाइए

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ७३

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १००

पद संख्या १८

माने न मनायो नेक रचपच हारी कैसे कर वाको समझाइए
तानसेन प्रभु प्यारे आप नेक चलिए बल पायन में सिर नाय बिनती कराइए ॥^१

निम्नलिखित छन्द में नायिका नायक के संभोग-चिह्नों को देखकर तुरन्त ही मान
कर बैठती है :—

मोसों ज्यों अवध बढ़ गए सांझ को यह आए भोर भए
ऐसो को चतुर सुघर नार जिन तुम विरमाए ऐसे सुख दए
अधरन अंजन कहुं पीक पलक लीक और न सो चित हित बहु भाँतिन लए
तानसेन के प्रभु वहाँ ही पाँव धारो ए जहाँ किए नेह नए ॥^२

उक्त छन्द ईर्ष्यामान का उदाहरण है ।

गंग ने अपनी रचनाओं में प्रणयमान का ही विशेष रूप से वर्णन किया है ।
ईर्ष्यामान के छन्दों का प्रायः अभाव ही है ।

निम्नलिखित कवित्त में कवि ने प्रणयमान के भंग के लिये 'भेद' उपाय का
आश्रय लिया है जिसमें दूती ने अनेक उपायों से मानिनी का मान-भंग करने का प्रयत्न
किया है :—

चकई विछुर मिली तू न मिली प्रीतम सों गंग कवि कहै ये तो कियो मान ठान री
अथये नत्न ससि अथई न तेरी रिस तू न परसन परसन भयो भान री
तू न खोली मुख खोलो कंज औ गुलाब मुख चली सीरीवाय तू न चली भो विहान री
राति सब घटी नाही करनी घटी तेरी दीपक मलीन ना मलीन तेरो मान री ॥^३

ऊपर के कवित्त में मान-वर्णन के साथ ही प्रभात का भी मनोरम वर्णन हो गया
है । इसी प्रकार नायक ने नायिका की सखी द्वारा मानभंग के लिये 'भेद' उपाय को
ग्रहण किया है :—

बोली हारी कोयल बुलाइ हारे प्यारे लाल मारि हारयो मदन मनाइ हारे मानई
कहि कवि गंग ऐसे प्रिय सों वियोग मोही सखी सो उदेगु सब एक ही बन्ना गई

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९७

२ " " " पद संख्या ११६

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ६८

मानिनी मनायो नेकु समुक्ति अयानी आली जो पै जी की ऐसी ही तो नीकी काहे को भई कोउ एक ऐसो होय मेरो ज्यों तो में देह खीर सी खुराई राति जाति है दर्ई दर्ई ॥^१

कृष्ण ने राधिका के मान-भंग के लिये 'भेद' का आश्रय लिया किन्तु वह मान-भंग में प्रयत्नशील दूती से भी मान कर बैठती है :—

काहे को सतरि होत वो दिना संभारि देखो सीरे सीरे कमल कहूं ते वीन लावती
कहे कवि गंग तेरी हित तो हजार है है विरह की वेर पीर हों ही काम आवती
अनिल के डरत दुकूल देत दिस निस पति घसि घसि चारु चन्दन चढ़ावती
उनसों तो मान कीजे मोसो कत मौन हूजै रूठ करे राधिका जो हों ही न जिआवती ॥^२

इसमें सखी के प्रति मान स्पष्ट हुआ है। नायक के प्रति मान का भाव स्पष्ट नहीं है व्यंग्य ही है। मान दूर करने के लिये यथार्थ प्रेम आवश्यक होता है। इसका चित्रण गंग के निम्नलिखित छन्द में किया गया है। सहृदया नायिका पर 'नति' उपाय काम करता है और नायक के संदेश और स्वयं आकर बैठ जाने पर मान का भाव अपने आप ही मिट जाता है :—

में तब उतार दीनो हुतो जब दूती दु तीन बुलावन आईं
गंग सुतो मन मोहन आन अचानक बैठि रह्यो ढिग बाईं
मैं कहूँ धोखे निहारयो उते उनमें छवि काम की कोटिक पाई
मान को स्वांग न नेकु रह्यो सब आग चलयो ढरि रांग की नाईं ॥^३

उक्त छन्द में कवि ने मान-भङ्ग के 'नति' आश्रय का वर्णन किया है। गंग के उक्त मान-वर्णन में भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। कही-कहीं पर इसके सहारे वाह्य दृश्यों विशेष कर प्रकृति के वर्णन भी आ गये हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत कवियों में केवल वीरबल, तानसेन और गंग की मान सम्बन्धी रचना उपलब्ध होती है, नरहरि और रहीम की नहीं। जैसा पहले कहा जा चुका है, मान के दोनों भेद ईर्ष्या और प्रणय इनके काव्य में वर्णित हैं। मान-भङ्ग के उपायों में केवल 'साम', 'भेद', 'नति' के ही वर्णन इन कवियों ने किये

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ७०

२ " " " " छंद संख्या ६७

३ " " " " छंद संख्या १७९

हैं। तानसेन और गंग की अपेक्षा ब्रह्म के मान सम्बन्धी छन्दों में भावों की अभिव्यक्ति अलङ्कारों के सहारे अधिक हुई है। इस में सुन्दर भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से गंग की रचना जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ब्रह्म और तानसेन की नहीं।

नायिका-भेद

संस्कृत के आचार्यों ने नायिका-भेद पर विस्तारपूर्वक तथा वैज्ञानिक ढंग से विचार किया है। डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी ने नायक-नायिका भेद के मूल भाव को स्पष्ट करते हुए लिखा है - 'स्नेह, रति, प्रेमादि के द्वारा इष्ट के प्राप्त करने का सिद्धांत बहुव्यापक हो गया था। दाम्पत्य भाव की प्रधानता वैष्णवों में तो थी ही साथ ही अन्य मत वाले भी उसका सम्मान करते थे। जिस समय साहित्यकारों ने इस ओर अपना ध्यान दिया तो वे साहित्य के तत्कालीन शास्त्रसम्मत गुणावगुणों की दृष्टि से उसका संस्कार करने लगे। प्रेम, दाम्पत्य अथवा मिथुन-भाव से प्रेरित होकर मानसिक संसार में जो संकल्प-विकल्प और अनुभूतियां अथवा विकार उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं, उसका निरूपण और उनकी व्याख्या सूक्ष्म एवं स्थूल रूप में होने लगी। रस, भाव, अनुभाव, विभाव आदि का अध्ययन देश-काल और पात्र के अनुसार होने लगा। अवस्था और व्यवस्था से जो परिवर्तन होते रहते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विश्लेषण किया जाने लगा।'^१ नायिकाओं की बाह्य और आभ्यन्तर रूपों के मनोरम चित्र संस्कृत में देखने को मिलते हैं। स्वकीया, परकीया, सामान्या के विविध भेद और उपभेद, मानसिक अवस्था के अनुसार दस प्रकार की नायिकाओं के वर्णन और इनके अंतर्गत, समस्त प्रकार की नायिकाओं के विभाजन तथा उत्तमा, मध्यमा, अधमा प्रकार की नायिकाओं के शास्त्रीय विवेचन आचार्यों ने किये हैं।

अकबरकालीन सुखमय स्थिति में कवियों को संस्कृत काव्य-शास्त्रों के अध्ययन का विशेष अवसर था। फलस्वरूप दरबार के वैभव और विलास में संस्कृत की शृंगारिक रचनाओं को भी प्रश्रय मिला और दरबार के कई कवियों ने लोगों के मनोरंजनार्थ नारी-सौंदर्य के अन्तर्गत प्रेम की विविध क्रीड़ाओं, संयोग-वियोग शृंगार की अनेक अवस्थाओं के वर्णनों द्वारा अपनी कला प्रदर्शित की। अतएव इस चित्रण में ही नाना प्रकार की नायिकाओं के वर्णन स्वतः उनके काव्य में आ गये हैं।

अकबरी दरबार के प्रस्तुत हिन्दी कवियों ने विविध नायिकाओं के चित्कार्षक, सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत किये हैं। रहीम के अतिरिक्त शेष कवियों की दृष्टि नायिकाओं के शास्त्रीय वर्गीकरण की ओर नहीं थी। उनकी शृंगारिक रचनाओं में नायिकाओं के उदाहरण स्वतः ही मिलते हैं। रहीम ने अवश्य अपनी रचना 'बरवै नायिका-भेद' में नायिकाओं का शास्त्रीय वर्गीकरण किया है। अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ नायकों के उदाहरण भी बरवै छन्द में दिये गये हैं। उपपति तथा वैसिक, प्रोषित, मानी, वचन-चतुर, क्रिया-चतुर नायक के भी वर्णन उक्त ग्रन्थ में मिलते हैं। रहीम के उन उदाहरणों के साथ-साथ हिन्दी के प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि मतिराम कृत दोहे लक्षण रूप में दिये हुए हैं जिसका उल्लेख तीसरे अध्याय में किया जा चुका है। मानसिक अवस्थानुसार नायिका-भेद में प्रोषितपतिका, प्रवत्स्यपतिका, खंडिता, वासकसज्जा आदि के विशेष वर्णन इन कवियों की रचनाओं में मिलते हैं। प्रत्येक स्वकीया तथा परकीया नायिका के चित्रण में सुन्दर भावों तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यों का भी निर्वाह किया गया है।

नरहरि की दृष्टि नायिका-भेद-वर्णन की ओर नहीं थी किन्तु प्रसंगवश कई नायिकाओं के वर्णन उनकी रचनाओं में आ गये हैं।

'प्रोषितपतिका' वर्षा के आगमन पर प्रिय के विरह में व्याकुल हो उठती है। सखी से अपने दुःख को प्रकट करती हुई वह कहती है :—

आवहि पथिक पेषि धन आगम राग मलार सुणत मन बाढ़
अद्रा नृपति पूजा ग्रह संचित जंपित प्रेम परस्पर गाढ़
नरहरि बुन्द बिन्दु विनोद वसुन्धर हरि विनु सषि विरहानल डाढ़
पथु जोवहि जिय जाति जितहि तित सब कह मिलन अवधु असाढ़ ॥^१

सीता के चरित्र में कवि ने 'स्वकीया' नायिका के प्रेम का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

कबहुँ घामु कबहुँ जलु चलि सुपथ कहं छांडे सदनह
तजि सुपट्ट पहिरति तखबकल पग कंटक कुहु सोच हदनह
नरहरि फिरति निकुंज साम संघ जिनके रूप अचिरुज्ज मदनह
त दिन दुष नहि गनति सीय मन जब देषति रघुनंदन बदनह ॥^२

१ देखिये, नरहरि का बारहमासा, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १

ब्रह्म की रचनाओं में भी प्रसंगवश ही नायिकाओं के कुछ सुन्दर चित्र आ गये हैं। इस ओर कवि का कोई विशेष प्रयास ज्ञात नहीं होता।

नायिकाओं में कवि ने ऊढ़ा, अनूढ़ा, मुग्धा, प्रौढ़ा तथा उनकी मानसिक अवस्था के अनुसार विभाजित वासकसज्जा, खंडिता, प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषितपतिका आदि के ही विशेष रूप से वर्णन किये हैं।

ज्ञातयौवना मुग्धा नायिका की मानसिक और शारीरिक स्थिति का परिचय निम्न-लिखित छंद में देखिये :—

खेलत संग कुमारिन के सुकुमारि कछू सकुची मन माहीं
काम कला प्रगटी अंग अंग विलोकि बिलोकि इसे परछाहीं
ब्रह्म भनै न रहै उर अंचल लै छिन ही छिन चंपति बाहीं
डारति है शिव के सिर अंबर मानौ दिगम्बर राखत नाहीं ॥^१

यहाँ नायिका की स्वाभाविक क्रीड़ा और मनोदशा के सुन्दर वर्णन हुए हैं।

‘अनूढ़ा’ की विचित्र मानसिक दशा का चित्रण निम्नलिखित छंद में हुआ है। कृष्ण की रूप-ठगोरी के कारण उसे घर के भीतर और बाहर सभी से वैर करना पड़ता है। फिर भी लज्जा और घूँघट का निवारण ही उसके लिये श्रेयस्कर है :—

मेरी सी आँखिन मेरो सौ ज्यों करि जो विलोके हीयो गहि गाढ़ौ
आयौ री आयौ चितै किन देखै वहै चित चोर चितौत हूँ ठाढ़ौ
ब्रह्म भनै मन लाल को भो घर बाहरि वैरि को वारिघ बाढ़ौ
यहै मुख देखि कहै घरिहाई री लाज करै अरु घूँघट काढ़ौ ॥^२

विचित्र दशा में कभी-कभी ‘अनूढ़ा’ भी ‘ऊढ़ा’ का सा कार्य-व्यापार करने लगती है। एक ‘ऊढ़ा’ परकीया नायिका की उक्ति निम्नलिखित सवैये में देखिये :—

मात पिता पति पेखत ही अहो को प्रति लोम नहीं पुलकी
नंद लला लहि मेन मलाकनि कौने धों कामकला तुलकी
ब्रह्म भनै केहि केहि न लागी ठगोरी हो मूरति मंजुल की
सखी मोही न मोहन को मुख देखि जु ऐसी धो गोकुल के कुल की ॥^३

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९५

२ " " " " ३७

३ " " " " ४१

निम्नलिखित छंद में कवि ने राधा के वासकसजा-रूप का वर्णन किया है:—

एक समय वृषभान सुता परमात ही काम की केलि बनाई
नैननि की लखि आरति कीरति मोतिन माल सुहाई
वेंदी जराव लिलाट दिये गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई
ब्रह्म भनै रिपु जानि गह्यो रवि की मुसके जनु राहु चढ़ाई ॥१

‘प्रवत्स्यत्पतिका’ नायिका का रूप भी कवि ने प्रस्तुत किया है :—

जब मेरो दाहिनो नयन फरकि उठ्यो उठी अकुलाइ करि तब ही ते नुकी सी
बात के सुनत गात अति राते भये तातो भयो तनु मानो आगि दीनी फूंक सी
ब्रज भयो वारिधि सो वास भयो बड़वा सो ब्रह्म के वियोग ते विधी सी उठी हूक सी
हाय हाय हाय रे बलाय कहुँ कहाँ हूतै कूर अकूर ते तो छाती दीनी छोंकि सी ॥२

निम्नलिखित छन्द में ‘सामान्या’ नायिका का ही वर्णन शात होता है क्योंकि उसने अपना शृंगार अपने प्रिय विशेष के लिये न कर सर्वसाधारण की दृष्टि-हेतु किया है। सब के समक्ष उसके अंगों के तोड़-मरोड़ से भी यही आभास मिलता है :—

गोरे से गात फुलेल चुचात भरी अंगीया रंग केसरि बोरे
वेनी बड़ी अरु छोटी सी आपु छई छवि सो गुदना मुख गोरे
नैननि की अरुनाई कह कहौ अंजन दै दृग खंजन जोरे
ब्रह्म भनै यह को ही तिया जु चली गई आंगन आंग मरोरे ॥^३

तानसेन ने अपने पदों में कई प्रकार की नायिकाओं से संबद्ध भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। उनकी इस व्यंजना में कल्पना-वैचित्र्य का भी समन्वय हुआ है।

‘प्रोषितपतिका’ नायिका को प्रिय का विरह अब असह्य हो उठा है। उसके आवेगों के कवि ने निम्नलिखित छन्द में सुन्दर चित्रण किये हैं :—

वा दिन केवल बलि जैए री जा दिन पीतम ते होय मिलन
तन मन धन नोछावर करहुँ चरण कमल पावड़े बिछाउंगी नयन पलन

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ३२

२ " " " छंद संख्या ९६

३ " " " छंद संख्या ३५

अनेक दिनन में प्यारे मोहि मिलिहैं लेऊँगी बलिया दोउ करन
तानसेन के प्रभु सुधा की दृष्टि करि मोर मुटकी हलन ॥^१

निम्नलिखित छंद में 'खंडिता' नायिका की उक्ति भी मनोरम है :—

बरसाने ते आए अरसाने हम जाने जू लक्षण तिहारे पहंचाने
कहुँ कज्जर कहुँ पीक लीक अनमन स्वभाव न मोपै जात बखाने
नयनन नींद ध्यान मन हृदय बसत तीय ताहीं के लगत गुण गाने
धन्य तेरो नेह तानसेन के प्रभु ऐसे नटनागर को छलकर नाच नचाने ॥^२

प्रेमगर्विता 'स्वकीया' नायिका ने स्वयं अपने मुख से प्रिय के मिलन पर आनन्द
प्रकट किया है, देखिये :—

धन भाग मेरो धन आवन धन धन पति प्रेम भयो मन दरस देखत इन
अखियन सो इन इन अंग संग ते विरह गयो टर
इन आनन्दन बांदी भइ हों बन चरनन रहन कहत गर बगर अगसर
जनम जीतब सुफल सखी मदन मोहन मया कीनी लीनी रस बस कर
तानसेन प्रभु सुख के ऐन नैनन सैनन हाव भाव कटाछन सों मोह लीनी
जब मिथ्यो दुख डर ॥^३

'परकीया' नायिका के नाट्य का एक चित्र तानसेन ने निम्नलिखित पद में प्रस्तुत
किया है :—

अहो टेटी पागरि नागरि नारि सीस धरे जैसे टेटी पाग को राखे रहतु चिकनीया
दुरि दुरि मुरि मुरि बतीया करति अगली पछिलान सो दोऊ करतारो मारति एकनि सों
नैन से नव बनीया
लाही को लहंगा पचरंग चूनरि कंठ छरा और ताबीच मनीया
तानसेन प्रभु रीम्नि चकित भए तुही सबनि में धनि धनीया ॥^४

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १२३

२ " " " " पद संख्या १३१

३ " " " " पद संख्या १३२

४ " " " " पद संख्या ९०

मध्या-नायिका के 'प्रोषितपत्निका' रूप के चित्रण में कवि ने भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है :—

जाना, पंक का सूख जाना, साथ ही स्थान-स्थान पर दरारें निकल आना स्वाभाविक ही है।

निम्नलिखित कवित्त में कवि ने 'स्वकीया' मध्या नायिका का वर्णन किया है। इसमें काम और लज्जा समान रूप में द्रष्टव्य हैं :—

प्यारे लाल जिनमें है मोल को न थाह पै अथाह कुल कानि के समुद्र परिहारी हैं
भौंहनि भंवर मध्य तरि निकसत याते महाबली घूंघट ते टरति न टारी हैं
पूतरी मलाह जुग जाने कवि गंग जिय आने नहीं पैहै नेम देखे मतवारी हैं
खेइबो कटाछ बानन को होत कैसे लाज भरी अखियाँ जहाज हू ते भारी हैं ॥^१

गंग ने 'प्रोषितपतिका' नायिका के कई चित्र प्रस्तुत किये हैं। इनमें से एक का अवलोकन कीजिये :—

तुम बिन सूनी राति कारी सांपिनी हूँ खाति रीती सेज देखे वाकी छाती उमगति है
हा हा नेकु जाइ लेहु कछो है तिहारो नेह कोई हूँ देखाइ देहु डोरी ज्यों जरति है
कहै कवि गंग कान्ह विकल इते मान नाज की कनाई जैसे करेजे खगति है
कोइल अलग डार बोलत उ हारी लगे डहडही जोन्ह जी में डांस सी लगति है ॥^२

निम्नलिखित छन्द में कवि ने 'नवोढ़ा' मुग्धा नायिका का स्वाभाविक वर्णन किया है :—

चाल न जानत चंचलता चुनरी चहुं खूब बनी अति राती
चंदन खोर चुनाव की वेंदी नवेली तिया सब संग संगी
सेज को नाम लिये सकुचे कवि गंग कहै न कही छवि जाती
सोने से गात सलोने से नैन अनूठे से ओठ अछूती सी छाती ॥^३

'मुग्धा' नायिका की 'वयःसन्धि' की दशा का एक चित्र देखिये :—

फिरहरै जल जैसे दुरै दूँ कमल कली तैसे उरजन उर दई है दिखाई सी
गंग कहै सांझ सी सुहाई वैसे पेस आई तरुनाई लरिकाई मैं न लखि पाई सी

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १८०

२ " " " छंद संख्या ६०

३ " " " छंद संख्या ७१

स्यामा को सलोनी तन तामें दिना चारक में फिरयोई चहत मनमथ की दुहाई सी
सीसी में सलिल जैसे सुमन पराग तैसे सिसुता में मलमलात यौवन की मारई सी ॥^१

कवि गंग के उपर्युक्त छंदों से स्पष्ट है की नायिकाओं की विविध अवस्थाओं के सौंदर्य और उनकी मानसिक दशा के उसने विशद वर्णन किये हैं।

रहीम ने नायिकाओं का शास्त्रीय वर्गीकरण अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'बरवै नायिका-भेद' में किया है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। पुस्तक में कवि ने आद्योपांत उदारण ही दिये हैं, लक्षण नहीं। इसलिये पाठक उन्हें पाकर विभोर हो भावमग्न हो जाता है। एक दो बरवों में ही नायिका का संपूर्ण चित्र नेत्रों के सम्मुख आ जाता है। कवि ने इनके चित्रण में आवश्यक कल्पना का भी आश्रय लिया है। नायिका की मनोदशा के साथ विभाव, अनुभाव, सात्त्विक वृत्तियों आदि के चित्रण का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

रहीम ने इस ग्रंथ में स्वकीया का विभाजन मुग्धा-ज्ञातयौवना, अज्ञातयौवना, नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा, और प्रौढ़ा, परकीया का विभाजन ऊढ़ा और अनूढ़ा में किया है। परकीया के छः भेद-गुप्ता लक्षण जिसके अंतर्गत भूतसूरति-गोपना, भविष्य सूरति-गोपना, विदग्धा-लक्षण जिसके अंतर्गत वचन-विदग्धा, क्रिया-विदग्धा, लक्षिता जिसके अंतर्गत प्रथम अनुसयना, द्वितीय अनुसयना, मुदिता और कुल्टा के रूप भी दिये गये हैं। गणिका, अन्य संभोगदुःखिता, प्रेम-गर्विता, रूप-गर्विता नायिकाओं के भी उदाहरण आये हैं। फिर दसविधि नायिका के अनुसार प्रोषितपतिका मुग्धा, मध्या प्रौढ़ा, खंडिता-मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया खंडिता, सामान्या खंडिता, कलहांतरिता-मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया कलहांतरिता, सामान्या कलहांतरिता, विप्रलब्धा-मुग्धा, प्रौढ़ा परकीया विप्रलब्धा, सामान्या, विप्रलब्धा, उत्कण्ठिता मुग्धा, परकीया कण्ठिता, सामान्य उत्कण्ठिता, वासकसज्जा-मुग्धा मध्या, प्रौढ़ा, परकीया वासकसज्जा, सामान्य वासकसज्जा, स्वाधीन पतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यप्रेयसी आगतपतिका का विभाजन-मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया, सामान्या रूपों में भी किया गया है। अभिसारिका के अन्तर्गत शुक्ला-भिसारिका, दिवाभिसारिका के उदाहरण आये हैं। उत्तमा, मध्यमा, अधमा त्रिविध नायिकाओं के भी उदाहरण दिये गये हैं। त्रिविध नायक में पति के अंतर्गत अनुकूल,

दक्षिण, धृष्ट, शठ, उपपति तथा वैसिक के वर्णन हुए हैं। प्रोषित, मानी, वचन-चतुर, क्रिया-चतुर नायकों के भी उदाहरण आये हैं।

रहीम द्वारा वर्णित नायिकाओं के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। 'स्वकीया' मुग्धा की रूप-माधुरी निम्नलिखित बरवों में अवलोकनीय है :—

लहरत लहर लहरिया लहर बहार
मोतिन जरी किनरिया बिथुरे बार
लागेउ आन नवेलिअहिं मनसिज बान
उकसनु लागु उरुजवा दग तिरछान ॥^१

'ऊढ़ा' नायिका कृष्ण की मुरली-माधुरी और उसकी/छवि/पर मुग्ध है :—

निस दिन सासु ननदिया मोहि घर घेरु।
सुनन न देत मुरलिया ना धुन टेरु ॥^२

'भूत-सुरति-गोपना' नायिका ने चतुरता से अपनी सुरति को छिपाने का/भी वर्णन किया है :—

चूनत फूल गुलबवा डार कटील ।
टुटिगौ बन्द अंगिअवा फट्ट पट नील ॥^३

परकीया 'कुलटा' का वर्णन भी स्वाभाविक है :—

जस मद मातिल हथिआ हुमकत जाय
चितवति छैल तरुनिआ मुहु मुसकयाय
चितवनि ऊँच अटरिया दाहिन वाम
लाखन लखन विदेसिया हूँ बस काम ॥^४

'शुक्लामिसारिका' नायिका ने शुभ्रज्योत्सना में अपने अस्तित्व को छिपाने के लिये श्वेत पुष्प, श्वेत मोतियों के आभूषण आदि पहन रखे हैं :—

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ४१

२ " " पृष्ठ ४३

२ " " पृष्ठ ४४

३ " " पृष्ठ ४७

२१३

सेत कुसुम कै हरवा भूषन सेत ।
चली रैन उजिअरिया पिय के हेत ॥४

‘क्रिया-चतुर-नायक’ का एक चित्र देखिये :—

खेलत जानेभि टोलिया नंदकिसोर ।
हुई वृषभानु कुमरिआ भैगा चोर ॥५

वासकसज्जा का निम्नलिखित उदाहरण मिलता है :—

हरए गवन नेवैलिअहिं दीठि बचाय ।
पौढ़ी जाय पलंगिया सेज बिछाय ॥६

‘वरवै-नायिका-भेद’ के अतिरिक्त अपनी फुटकर रचनाओं में भी रहीम ने कई नायिकाओं के वर्णन किये हैं।

एक पद में रहीम ने ‘प्रोषितपातिका’ नायिका की विरह-विकलता का चित्रण किया है :—

कमल दल नैननि की उनमानि

‘ विसरत नाहि सखी मो मन ते मंद मंद मुसुकानि
यह दसनन दुति चपलाहू ते महा चपल चमकानि
सुधा की बस करी मधुरता सुधापगी बतरानि
चढी रहे चित उर विसाल की मुकुतमाल थहरानि
नृत्य साथ पीतांबरू की फहरि फहरि फहरानि
अनुदिन श्री वृंदावन ब्रज ते आवन आवन जानि
अब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की वानि ॥१

शरत्ऋतु की मध्य-रात्रि में ज्योत्स्ना इठलाती हुई अपनी अपार राशि का आस्वादन करा रही थी कि ऐसे ही समय में कृष्ण ने सधन बन में निकुंज के बीच

४ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ५५

५ " " पृष्ठ ६१

६ " " पृष्ठ ५३

७ " " पृष्ठ ७९

कामोद्दीपक वंशी की तान छेड़ दी । उसे सुनते ही ऊढ़ा परकीया नायिकाओं की क्या दशा हुई उसका चित्रण कवि ने निम्नलिखित छंद में किया है :—

शरद निशि निशीथे चांद की रोशनाई
सघन वन निकुंज कान्ह वंशी बजाई
रति पति सुत निद्रा साइयां छोड़ भागी
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥^१

‘ऊढ़ा’ नायिका नायक में इतनी अनुरक्त है कि वह अपनी ननद, जिठानी आदि सभी को तिरस्कृत कर देती है :—

मो जिय कौरी सिगरी ननद जिठानि ।
भई स्याम सों तब ते तनक पिछानि ॥^२

प्रवत्स्यत्-प्रेयसी नायिका प्रिय से कहती है :—

उमड़ि उमड़ि धन धुमड़े दिसि विदिसान ।
सावन दिन मन भावन करत पयान ॥^३

इस प्रकार इन कवियों में केवल रहीम ने ही नायिका-भेद का संपूर्ण वर्णन शास्त्रीय-पद्धति के अनुसार किया है । ब्रह्म, गंग आदि ने इस सम्बंध में केवल कुछ फुटकर छंद ही लिखे हैं जिनमें नायिकाओं की विविध अवस्थाओं के ही विशेष वर्णन हैं । इनमें भी प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषितपतिका, खंडिता आदि के ही अधिक चित्रण आये हैं । वासकसज्जा, अभिसारिका, कलहांततरिता के केवल एक-दो उदाहरण मिलते हैं ।

नायिका-भेद के अंतर्गत विविध प्रकार की मनोवृत्तियों वाले स्त्री-पुरुषों की विशेषताओं को स्पष्ट करके उनका मनोवैज्ञानिक आधारों पर वर्णन दिया गया है । स्त्री-पुरुषों का इस रूप में वर्णन संसार के सभी साहित्यों में हुआ है । भारतीय साहित्य की विशेषता इस बात में है कि उसका वैज्ञानिक विवेचन कर उसका वर्गीकरण काव्य-शास्त्र तथा नायिका-भेद के ग्रंथों में किया गया है और इस दृष्टि से इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है । हरिऔध जी ने अपने ‘रस-कलश’ की भूमिका में इसी भाव को व्यक्त

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७३

२ ” पृष्ठ ७१

३ ” पृष्ठ ६४

करते हुए लिखा है—“नायिका-भेद के मूल में जो सत्य है, वास्तविक बात यह है कि सार्वभौम एवं सार्वकालिक है। उसके भीतर वे स्वाभाविक मानवी भाव सदा मौजूद रहते हैं, जो व्यापक और सर्वदेशी हैं, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति विश्व भर में अज्ञात रूप से यथाकाल और यथावसर होती रहती है। यह मंगलमयी प्रकृति का वह गुप्त विधान है कि जिससे संसार संस्कृति सूत्र स्वतः परिचालित होता रहता है। मेरा विचार है, नाट्य-शास्त्रकार ने उसको वैज्ञानिक रीति से विधि-बद्ध करके साहित्य की शोभा ही नहीं बढ़ाई है, लोकहित-साधन का भी आयोजन किया है।”^१

भक्ति-काव्य

अकबरकालीन धार्मिक परिस्थिति के प्रसंग में पहले कहा जा चुका है कि भक्ति के युग में दरबार के बाहर कई श्रेष्ठ भक्त कवि भक्ति-भावनाओं का प्रचार कर रहे थे जिसका प्रभाव दरबार पर पड़े बिना न रहा। इसके साथ अकबर की ज्ञान और भक्ति सम्बंधी जिज्ञासा तथा इबादतखाने (प्रार्थनागृह) के धार्मिक वादविवादों का भी यथेष्ट प्रभाव दरबार के कवियों पर पड़ा था। शृंगारिक तथा विलासमय वातावरण होते हुए भी उक्त विशेषता के कारण ही दरबार के इन हिन्दी-कवियों-नरहरि, ब्रह्म, तानसेन आदि ने अपनी रचनाओं में राधा, कृष्ण, राम, शिव तथा अन्य देवताओं को आलम्बन मानकर भक्ति-भाव का प्रकाशन किया है। इनके काव्य में ईश्वर की निर्गुणोपासना सम्बंधी छंद तथा सगुण-भक्ति भरे गान दोनों मिलते हैं। इन्होंने भक्ति की जिन भावनाओं को अपनाया है उनमें उनकी तन्मयता, तल्लीनता तथा ईश्वर में अटल विश्वास की झलक मिलती है।

नरहरि की रचनाओं में भक्ति-रस की गंभीरता का वह रूप नहीं मिलता जो कि यथार्थ में भक्त कवियों में पाया जाता है परन्तु इस भाव के छींटें उनकी अनेक कवित्वपूर्ण रचनाओं में स्पष्ट लक्षित होते हैं। यह कहा जा सकता है कि कवि द्वारा भक्ति परम्परागत एक भाव रूप में ग्रहण की गई है जैसा कि निम्नलिखित कवित्त में स्पष्ट है :—

चोटी गहि द्रोपदी निम्नोरिवे को ठाढ़ी कोन्हीं कोपि कह्यो सुमिरि सहाय कौन करिहै
लैनि पावे उसासि न दुसासनि पै दीन हूँ पुकारी कहूँ दीनबन्धु हरिहै
गुरुजन पुरजन देखत तमासो सब नरहरि कोउ न करत धरहरिहै
ऐसे में अनाथनि की कोन सुध लैहै मोरपक्ष धरिहै सो मोर पक्ष धरिहै ॥^२

१ रसकलश, भूमिका, पृष्ठ १२५

२ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२७

यहाँ पर कवि ने आर्त-जनों की रक्षा करने वाले ईश्वर के रूप का दिग्दर्शन कराया है। इस भाव का मुख्य आधार पौराणिक कथा है, कवि की निजी अनुभूति नहीं। इसी प्रकार कवि ईश्वर के अनुग्रह में उनके परस्पर विरोधी गुणों एवं आचरणों के कारण विलम्ब देख उपालम्भयुक्त वाणी में कह उठता है :—

जो पै दिग्म्बर भयौ धरयौ कत धनुष सल्ल कर
जो पै धाम तजि ग्राम बस्यो कत सैल सिखर पर
जो पै भस्म लै अंग संग सुन्दरिय लयो कत
जो पै सुन्दरिय संग काम जारेउ सो कोन मत्त
सर्वग्य नाम नरहरि निरखि हठि मसान साज्यो सयन
यह अनख संभु केहि सन कहौ सब विरुद्ध पेखिख्य नयन ॥^१

शङ्कर का भक्त उन्हीं के चरित्र में पाई जाने वाली विषमता और विपरीतता का निवेदन किससे करे! अतः उपालम्भ और विवशता के द्वारा भक्ति क्रोध रूप में प्रकट हुई है।

ईश्वर की नामावली का स्मरण भक्त का एक सहज अवलम्ब है। इसकी महिमा से अवगत कवि ईश्वर-भक्ति की याचना करता है :—

माधव केशव कृष्ण विष्णु वैकुण्ठ दमोदर
हरि मुकुन्द गोविन्द अमर अविगच्छ अगोचर
नारायण नरसिंह सत्य विट्ठल बल गंजन
प्रभु मुरारि बनवारि गोपि जीवन जनरंजन
सारंग शंख गद चक्रधर पढ़त गुनत संकट हरण
जय रामचन्द्र भगवंत हित कहि नरहरि तक्यो शरण ॥^२

भक्ति के साथ अन्य भावों का सम्मिश्रण भी प्रायः कवि के छंदों में देखने को मिलता है। प्रायः प्रसिद्ध देवी-देवताओं के पराक्रम-वर्णन द्वारा उनको प्रसन्न करने का मार्ग कवि ने ग्रहण किया है। नीचे लिखे छंद में हनुमान के पराक्रम वर्णन के साथ आतंक-वर्णन में भक्ति-भावना स्पष्ट है :—

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२८

२ " " " " " छंद संख्या ११७

२१७

हनूमत गिरि चढ्यो लंक को कियो पयानह
 भय सुमेरु डगमग्यो इन्द्र इन्द्रासन जानह
 शेषनाग भरम्यो सेज पर थर थर कम्प्यो
 भानु मुदित है गयो रावण निश्चय करि शंक्यो
 जुरि रही सिन्धु पर भीर अति मन लछिमन आनंद भयो
 दशकंध अवधरणी धरी पवन दूत लंकाहि गयो ॥^१

इसी प्रकार भक्ति के साथ विस्मय-भाव का भी संकेत निम्नलिखित छप्पय में हुआ है :—

रहति गौरि अरधंग गंग जट मुकुत मध्यवस
 सति ललाट जगमगात भगत भय हरत भिषु अस
 तिम्रि नयन मुख पंच संच संगीत गीत रस
 अमर सुल्ल लिए हत्थ तत्थ तिहुँ पुर प्रसिद्ध त्रस
 तिहुँ लोक त्रिगुन नरहरि निरषि भेद रहित बंदौ चरन
 हर हर जै सित जै संभु जै सो जै जै सिव संकर सरन ॥^२

निम्नलिखित छंद में सूर्य-वन्दना कवि की भक्ति-भावना की द्योतक है :—

तुव दरसन तम ललित ललित पंकज सुहवसर
 तिमि प्रकास चहुँ चक्र चक्र चक्रिय अनंद कर
 विप्र करहि षट धर्म कर्म संचरहि उदै दिन
 गन नाग जाग जस जपहि एक्क दिन सुर नर मुनि
 भो प्रभु दयाल कस्यप तनय कहि नरहरि बंदौ चरण
 जन आपद भय हर कलुष हर जहं तंह कर दिनकर सरण ॥^३

इस प्रकार नरहरि की भक्ति-भावना तत्कालीन पद्धति के अनुसार ईश्वर तथा देवी-देवताओं की वन्दना उनके पराक्रम और गुणों के रूप में व्यक्त हुई है ।

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२९

२ " " " " छंद संख्या ८२

३ " " " " छंद संख्या ११६

ब्रह्म उन कवियों में थे जिन्होंने अकबर के लिए उसकी धार्मिक जिज्ञासा तृप्ति के साधन जुटाये थे। यहां तक कि अकबर के नवीन धर्म 'दीने-इलाही' में जैसा पहले कहा जा चुका है केवल यही एक हिन्दू सदस्य थे जिन्होंने उसमें अपनी उपस्थिति द्वारा अकबर की विचार-धारा को हिन्दू-धर्म की विशेषताओं से प्रभावित किया था। ब्रह्म ने अपने छंदों में निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार की ईश्वरोपासना का परिचय दिया है।

निम्नलिखित छंद में ईश्वर के सर्वव्यापक, निराकार-रूप का वर्णन मिलता है :—

दूरि रहे सब ही सब कोऊ नहीं परसे एसो भेखु बनायो
जलहू थलहू तलहू नभहू तुम एक हो एक भलो घर छायो
एतो बढो सुकहाइ के नाथ जु हे सु जहां आप छपायो
देख्यो सवै सब देखे तुम्हें नहि ब्रह्म लुके जनु हे कित पायो ॥^१

कवि ने और कई छंदों में निर्गुणोपासना के द्वारा अपनी धार्मिक उदारता, धार्मिक ऐक्य-भावना तथा हृदय-विशालता का परिचय दिया है किन्तु कवि वैष्णवभक्त था जैसा उसके जीवन-चरित में पहले दिखाया जा चुका है। अतएव अपनी सगुणोपासना सम्बंधी छंदों में कृष्ण-भक्ति का कवि ने पूरा परिचय दिया है।

इनमें सगुणोपासना भक्ति के अन्तर्गत कहीं-कहीं अद्वैत-भाव का स्पष्ट रूप भी दिखाई देता है। ईश्वर सम्बन्धी अद्वैत-भावना की झलक कवि के निम्नलिखित सवैये में मिलती है :—

दूसरो आहि न दूसरो देखिए दूसरो मानिए एक विसारे
वहै परगास वहै अवलोकिए ब्रह्म विवेक विचारे विचारे
यसे ही नाथ निरंतर साथ रहे तन में मन में मनु मारे
ज्यों पानी में पावक को प्रतिबिंबु न आगि जरै न बुझे जलु डारे ॥^२

निम्नलिखित छंद में निर्गुण ईश्वर-प्राप्त की कठिनाइयों का उल्लेख कर कवि ने सगुण-भक्ति को सहज बताया है।

प्राण चढ़ाय कै जोग करो काहे करो व्रत पुंज विशाला
देह तपाय तपाय पचागिन काहे सहो बन बैठि कसाला

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११

२

”

”

छंद संख्या १२

ब्रह्म विचारत जो हिय में सोइ रूप धरे नर को इहि काला
जाय लखो किन वा नंदराय के आंगने खेलत नंद को लाला ॥^१

कवि ब्रह्म का निम्नलिखित छन्द भक्ति के वात्सल्य-भाव का उदाहरण है :—

चतुराननहू चतुरानन हूँ परि पायो न मेदु वेदनि गायो
हारि दिए हर तो पटके करु हारि रहे हरि ही ऐ न आयो
ब्रह्म भने मुनि मौन के मन मारत नेक मनो न मनायो
कितो बड़ी भाग भाग जसोमति को करतार दे दे करतार नचायो ॥^२

निम्नलिखित छन्द में कवि ने भक्ति के अन्तर्गत दैन्य-भाव को व्यक्त किया है :—

जो तुम छत्र की छांह चलावत तो न कहुं कछु में रिधि पाई
जो तू घराघर भीख मगावत तो कहुं कछु आप दयाई
ब्रह्म भनै विनती इतनी अब छोखूँ नहीं हरि तो सरनाई
दीनदयाल दया करि माधव मोहि कहा सब तोहि बड़ाई ॥^३

हिन्दू-समाज में देवी-देवताओं के प्रति जो पूजनीय भाव मिलते हैं उसका भी प्रकाशन 'ब्रह्म' की कविता में कहीं-कहीं पर हुआ है।

तानसेन के भक्ति सम्बन्धी पदों में कृष्ण-भक्ति ही प्रधान है वैसे इनके पदों में शिव, राम के प्रति भी भक्ति-भावना देखने को मिलती हैं। फ़ारसी-शब्दावली के एक-दो पदों में इस्लाम-मज़हब की विशेषताएँ भी दी गई हैं। साथ ही सूर्य, गणेश, सरस्वती आदि की वन्दना के पद भी कवि ने गाये हैं और इसके द्वारा सामान्य हिन्दू-धर्म में देवी-देवताओं के प्रति जो भाव तथा विश्वास मिलते हैं वह भी प्रकाशित हुए हैं। तानसेन पर वल्लभ-भक्ति का यथेष्ट प्रभाव पड़ा था जिसका उल्लेख कवि के जीवनचरित में पहले किया जा चुका है।

निम्नलिखित पद में कवि ने ईश्वर की सर्वव्यापकता का संकेत किया है :—

ब्रह्मगत अपरम्पार न पाऊँ

पृथ्वी पार पताल ढरा और गगन लों धाऊँ

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४

२ " " " छंद संख्या ८

३ " " " छंद संख्या १

जो लों न होय सुदृष्टि तुम्हारी मन इच्छा फल ही पाऊं
तीरथ प्रयाग सरस्वती त्रिवेणी सब तीरथ होकर गुरुद्वार जाऊं
भागीरथी गौतमी और गंगा तानसेन गावै हरिद्वार चाऊं ॥^१

वल्लभ-भक्ति में कृष्ण की मुरली का बहुत बड़ा माहात्म्य है। मुरली योग-माया है जिसकी पहुँच तीनों लोकों में मानी गई है। यह आत्मास्वरूपा गोपियों का परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण से मिलन कराने वाली है। मुरली के इस माहात्म्य का वर्णन कवि ने निम्नलिखित पद में किया है :—

मुरलिया कैसे बाजै रस सानी गरजि धों करे अमृतबानी
अति ही नाद प्रवाह ताल मूल जिय धारे एसो रस कहा ते उपजत एसी स्थानी
सप्त स्वर तिन ग्राम इकईस मूरछना यह गावत सब गानी
तानसेन के प्रभु मुरली अधर धरे जाकी त्रई लोक राजधानी ॥^२

तानसेन को कृष्ण के विविध नामों का स्मरण भी 'स्मरण-भक्ति' के अंतर्गत हुआ जान पड़ता है :—

गोविंद गोपाल गरुड़गामी गोपीनाथ गोवरधनधारी गोपी मन रंजन
वंशी गिरिधारी कुंजविहारी बहु रूपधारी कंसारि मुरारि गर्वप्रहारी दुष्ट गंजन
मधुसूदन माधव मथुरापति मुक्तेश्वर मन भावन दुख भंजन
वासुदेव विठ्ठल बनवारी बद्री नाथ बौधरूप विष्णु तानसेन भक्त मन रंजन ॥^३

भक्तिगत उपालंभ का भी सुन्दर चित्र कवि ने निम्नलिखित पद में प्रस्तुत किया है :—

एरी गंवार ग्वार तू कहा जाने रे गोपिन को मरम
कान्धे कामरी और हात लकुट लिए ताको जिय कहा होत नरम
कटि सोहै पीत वसन डारो फिरत याही ते जानी जात तेरो धरम
तानसेन कहे शबरी को झूठो खायो ताके जिय कहा होत सरम ॥^४

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७८

२ " " पद संख्या ६३

३ " " पद संख्या ३१

४ " " पद संख्या १८०

उपालम्भ प्रेमोद्दीपन में अत्यधिक सहायक होता है और इसीलिये भक्त उसका आश्रय लेता है ।

तानसेन की सूर्य-वन्दना उनकी व्यापक भक्ति-भावना की परिचायक है :—

जै सूरज जगच्चक्षु जग वन्दन जगत्राता जगत करता जगन्नाथ
आदित्य सवितर अरक खग पुषर गभस्ती भान भानु दिवाकर जग कारज होय तेरे हाथ
ज्ञान ध्यान जप तप तीरथ व्रत संयम नेम धर्म कर्म सब उदै होय सनाथ
तानसेन पै प्रभु कृपा कीजिये राग रंग स्वरन सों निशदिन गाऊं तेरो गाथ ॥^१

तानसेन ने फारसी-शब्दावली में 'अल्लाह' की सर्वव्यापकता तथा उसके 'नूर' के भी वर्णन किये हैं :—

पाक महम्मद अल्ला रसूल तेरो ही नूर जहूर
धन धन परवर्दिगार गुनहैगार तुव करन तुही जग रम रखो भरपूर
बेच गुन बेच गुन वे शुबे नमुन अव्वल आखर तंही निकट तू ही दूर
जित देखूं तित तुंही व्याप रहो जल थल धरनी आकाश तानसेन तुही हजूर ॥^२

तानसेन की भक्ति के अंतर्गत षड्रिपु-काम, क्रोध, मोह आदि के त्याग, ईश्वर के साकार तथा निराकार रूप की उपासना तथा अनेक देवी-देवताओं की स्तुति और वन्दना भी वर्णित हैं जिनके विवरण कवि द्वारा वर्णित तत्कालीन रहन-सहन, विश्वास आदि की सामग्री के अंतर्गत पांचवें अध्याय में आगे दिये गये हैं ।

गंग ने कई सवैयों और कवित्तों में अपनी कृष्णोपासना तथा अन्य भक्ति-भावना के परिचय दिये हैं । इसमें अपनी दीनता, ईश्वर-अनुग्रह-प्राप्ति, प्रेमगत उपालम्भ का प्रदर्शन कवि ने स्पष्ट रूप से किया है ।

निम्नलिखित छंद में गंग की ईश्वर के साथ तादात्म्य-प्राप्ति सम्बन्धी विविध उपायों की व्यंजना मार्मिक और गहन है :—

जो कहो मोहन जा मथुरा में तो मन्दिर में मढ़ई एक छाऊं
जो कहो तो तुलसी तन माल तमालन बीच नचौं अरु गाऊं

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या २५

२ " " " " " पद संख्या ३३

स्वांग अनेक करौं कवि गंग जु कैसेहु कान्ह तिहारो कहाऊ
काल गहे कर डोलत मोहि कछू इकबेर खुसी कर पाऊ ॥^१

उपर्युक्त छंद में भक्त की व्याकुलता उसके आध्यात्मिक प्रेम की द्योतक है ।

भक्त भगवान के बल पर ही अपनी जीवन-तरणि भवसागर में छोड़ देता है । सागर के मध्य-स्थल में पहुँचने पर प्रबल वायु के झोंके उठते हैं । उसकी नौका डगमगाने लगती है । भक्त ईश्वर की विरुदावलि का अवलम्ब ग्रहण करके विलम्ब होने के कारण उलाहना देता है । कवि गंग ने इसी प्रकार के भाव का वर्णन निम्नलिखित छंद में किया है :—

दीनबन्धु दीनानाथ द्रोपदी पुकार कहै वेदन विदित कैधों विरद भुलानो है
छाड़ि गजराज खगराज लाज काज धाये कहे कवि गंग कैधों पौरुष पुरानो है
दुखी प्रहलाद जान संकर सहाय भये भक्त के प्रताप को न गिनो रंक रानो है
देह भयो दूबरो कि नेह तज्यो दीनन सों चक्र भयो भौतरो कि वाहन खुरानो है ॥^२

भौतिक संसार की अभिवृद्धि के लिये मनुष्य के संपूर्ण अंग कार्यरत रहते हैं किंतु राम-नाम नहीं लेना चाहते जो संपूर्ण परमार्थों का आश्रय है :—

मेरो चेरो मेरो घोरो मेरो घूरो मेरो घर मेरो मेरो कहत न रसना अघाति है
कहि कवि गंगु ओर ओरउ जु आक वाक कहत कहत क्योंहुं क्योंहुं न रसाति है
चार्यो वेद चवाति पढ़ति छत्रो दरसन नवरस निरूपति षट रस खाति है
देखो देखो पुरवि ले पाप के प्रताप यह राम नाम लेत जीभ ऐंड़ी बेड़ी जाति है ॥^३

उपर्युक्त कवित्त में भक्ति के अन्तर्गत पूर्व-कर्म संस्कारों पर भी कवि की आस्था जान पड़ती है ।

भक्त की दीनता और आत्म-समर्पण निम्नलिखित छन्द में अवलोकनीय है :—

कामिनी कमल नैनी करै न रहसि केलि कमल विसासिनी विशेषि वामै दयो है
घर के रहत कोऊ घरि को न पूछे बात किंकिधा बन्धि सिंधु छोर छयो है

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १०

२ " " " " छंद संख्या ८७

३ " " " " छंद संख्या ७८

कहि कवि गंग तुम करुनानिधान कोटि जो ही ऐबदार और द्वार भयो है
तुमहि किये की लाज करे ही बनेगी राज गाहक ते गयो सो गुसाई हूं ते गयो है ॥^१

ईश्वर का अनुग्रह ही भक्त का सर्वस्व है। गंग ने ईश्वर के इसी अनुग्रह का वर्णन निम्नलिखित छंद में दिया है और पापियों को भी उद्धार करने वाले यश का स्मरण दिलाया है :—

पढ्यो गुन्यो कीर ना कुलीन हुतो हंस कुल छूट्यो गीध छिन में न छाती छापे दिये तो
तार्यो अजामिल जौन परम पतित पापी सदा से सुरापी चरनोदकन पिये तो
गंग कहे तारिनी के त्रास ते मुकुत कियो काली नाग कहां को तिलक मुद्रा किये तो
धाये हरि लोक ते हकार सुनि पायक लों हाथी कहा हाथ तुलसी की माला लिये तो ॥^२

गंग ने यमुना-महिमा का भी वर्णन एक-दो छन्दों में किया है। यह कवि की भक्ति का प्रदर्शक है। इस प्रकार गंग के काव्य में भी भक्ति का परम्परागत रूप देखने को मिलता है।

रहीम ने सभी प्रकार के छन्दों-बरवै, सोरठा, दोहा, सवैया तथा पदों में भक्ति-भावना का समुचित परिचय दिया है। राम, कृष्ण, शिव आदि के भक्ति सम्बन्धी छन्द रहीम की रचनाओं में प्रायः देखने को मिलते हैं तथा सूर्य, गणेश, सरस्वती आदि की वन्दना भी कवि ने की है। इन रचनाओं से रहीम की अनन्य भक्ति, धार्मिक उदारता और हिंदू-धर्म-पद्धति के प्रति श्रद्धा का भाव प्रकट होता है।

भक्त रात-दिन कृष्ण-भक्ति में इतना लीन रहता है कि उसे अपने चारों ओर की चिन्ता है ही नहीं :—

जिहि रहीम मन आपनो कीन्हों चारु चकोर ।

निसि वासर लाग्यो रहे कृष्ण चन्द्र की ओर ॥^३

कृष्ण-भक्ति में कवि जितना द्रवीभूत हुआ है उतना ही राम-भक्ति में उसकी दर्याद्र-भावना का परिचय मिलता है :—

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८९

२ " " " " छंद संख्या ८५

३ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ९

भजि मन राम सियापति रघुकुल ईस ।

दीनबन्धु दुख टारन कोसलधीस ॥^१

उपालंभ के रूप में भी कवि ने अपनी भक्ति प्रदर्शित की है :—

रहिमन कीन्ही प्रीति साहब को भावै नहीं ।

जिनके अगनित मीत हमें गरीबन को गनै ॥^२

शिव, गणेश की वन्दना कवि ने निम्नलिखित छंदों में की है :—

ध्यावहुँ सोच विमोचन गिरिजा ईस ।

नागर भरन त्रिलोचन सुरसरि सीस ॥

बन्दहुँ विघन विनासन रिधि सिधि ईस ।

निर्मल बुद्धि प्रकासन सिमु ससि सीस ॥^३

रहीम ने एक बरवै में सूर्य की भी उपासना की है :—

भजहु चराचर नायक सूरज देव ।

दीन जनन सुखदायक त्यारन ऐव ॥^४

रहीम ने भक्ति के अंतर्गत ईश्वर के नरसिंह अवतार, गंगा-माहात्म्य, षडरिपुओं-काम, क्रोध, लोभ आदि निवारण के वर्णन तथा अनेक देवताओं की स्तुति की है जिनके उदाहरण कवि के रहन-सहन, विश्वास आदि के प्रसंग में आगे दिये गये हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत कवियों ने कृष्ण, राम, शिव तथा अनेक देवी-देवताओं की उपासना की है। इन सब में कृष्ण-भक्ति का ही विशेष वर्णन हुआ है। गंगा, यमुना के माहात्म्य का भी संकेत इन कवियों ने किया है। रूपासक्ति द्वारा भी भक्ति-प्रदर्शन का संकेत मिलता है। सूर्योपासना हिन्दू-धर्म का सदैव से एक अंग रहा है। पारसी-धर्म के अंतर्गत भी सूर्योपासना का विशेष महत्व है। तानसेन तो किसी न किसी रूप में वल्लभ-संप्रदाय से सम्बंधित थे ही परन्तु रहीम की इस विषय की भावना उनकी जाति को देखते हुए अवश्य सराहनीय है। उससे उनकी उदार भावना स्पष्ट रूप में प्रकट होती है।

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७०

२ " पृष्ठ २६

३ " पृष्ठ ६३

४ " पृष्ठ ६३

वीर-काव्य

भक्ति-काल में काव्य की सामान्य-भूमि भक्ति ही थी। फिर भी पहले से प्रवाहित वीर-रस-धारा इस काल में और उसके अनंतर भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होती है। भक्ति-काल के सर्वमान्य कवि-महात्मा सूरदास और महामना तुलसीदास के मानस की रचनाओं में भक्ति-भाव की प्रधानता होते हुए भी उनकी रचनाओं में कुछ स्थलों पर वीर-रस की विमल छटा भी देखने को मिलती है। यही विशेषता प्रस्तुत कवियों की भी है। वीर के अंतर्गत युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर, दयावीर चार भेद आचार्यों ने माने हैं।^१ हिन्दी-काव्य में अधिकतर युद्ध-वीर का ही वर्णन मिलता है।

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में शासकों की युद्ध वीरता और दान-वीरता के ही अधिक चित्रण हुए हैं। युद्ध के अवसर पर वैरी-नारियों को दशा का इन कवियों ने स्वाभाविक और मनोरंजक वर्णन किया है। किन्तु इन विशेषताओं के होते हुए भी इनकी वीर-भाव की कविता अधिक प्रचलित न हो सकी क्योंकि इन कवियों ने अपनी रचनाओं का आलंबन अपने आश्रयदाता मुसलमान तथा उन हिन्दू-शासकों को बनाया जो हिन्दू-राष्ट्र से अपना नाता तोड़ चुके थे। इसी कारण उनकी कविता लोक-प्रिय न बन सकी। उसी युग के कुछ काल बाद ही सूदन, लाल, भूषण की तत्सम्बन्धी रचनाएँ इसीलिये अधिक प्रचलित और लोक-प्रिय बन गईं क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं के आलंबन हिन्दू-राष्ट्र के कर्णधारों को बनाया था अन्यथा गंग के कई छंदों में प्रस्तुत वीर-भाव कवि भूषण के समान ही ओजपूर्ण हैं।

नरहरि अपने जीवनकाल में कई शासकों के सम्पर्क में आये थे जिनका परिचय इनकी जीवनी-भाग में दिया जा चुका है। इन शासकों की वीरता और दान का कवि ने मुक्तकंठ से गान किया है।

हुमायूँ की वीरता तथा धैर्य का वर्णन नरहरि ने निम्नलिखत छंद में किया है :—

पूरव हृद पछिम पहार दोऊ पंन किए विधि जानि अगाऊं
इत सुमेरु उत चढ़त लंक हय मारि तेग नरपति सब नाऊं
हिंद ते पेदि पठान पग वर दल दलमलि दरियाय बहाऊं
गज्जिहि बहुदि जित्ति दिल्ली पति इमि हिडोल रच्यो साहि हुमाऊं ॥^२

१ साहित्य-दर्पण, तृतीय परिच्छेद, श्लोक २३४, पृष्ठ १६२

२ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८

२२६ -

निम्नलिखित छप्पय में कवि ने अकबर की सेना की वीरता और उसके आतंक का चित्रण किया है :—

फनपति गय परभरहिं जलधि उछ्छूलहिं छंडिकुमु
उडि रज परिहरि भुअन भए सुर सकल संभु समु
निमुदिन विछुरहिं चक्र कवल सकुचहिं रवि भंपहिं
धूम समुक्ति अरि नृपति भमरि भज्जहिं तन कंषहिं
नचहिं मऊर नरहरि निरपि सो दरंग अनवन वरन
दलु चलत अकबर साहि को गिरिवन धन असरन सरन ॥^१

नरहरि ने दान-वीरता का भी वर्णन कई छन्दों में किया है। रीवां-नरेश रामचन्द्र जितने युद्धवीर थे उतने ही धर्मवीर तथा दानवीर भी। उनकी वीरता, धर्म-परायणता तथा दानशीलता की प्रशंसा अत्यधिक प्रचलित थी।

निम्नलिखित छंद में कवि ने रामचन्द्र की धर्मवीरता का उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

वर ववेल निरलोभ धम्म रत सेवत चरन साहि मुषरत्ती
यह सो लोभ असरन सरन क्रिय भारि भुआरि लेत भुई अत्ती
नरहरि एक बात कहत सकुचत हो परसत पुरुषोत्तम पगसत्ती
हों अपने नृप रामचन्द्र पर वारों मै कोटि कोटि गजपत्ती ॥^१

शेरशाह की युद्ध-वीरता तथा दान-वीरता दोनों के परिचय कवि ने निम्नलिखित छप्पय में दिये हैं :—

असपत्ति नर गजपत्ति हुतेउ भुअपत्ति अनेक तव
ते त्वै समर संघरेउ भरेउ जसु जगत जित्ति अब
तोहि जाचहिं गुनि सकल कोउ न उपरेउ भुम्मि मंह
नषत प्रात सम तकत जियत जल जलधि अंत कंह
वोहित कंष भुजिमि विष्णु मंगन गति नरहरि भनै
अस समुक्ति साहि सेरन प्रगट ऐसो अस दिह्हेहि बनै ॥^२

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ३४

१ " " " छंद संख्या १३

२ " " " छंद संख्या १६

नरहरि के उक्त वीर-काव्य वर्णन में वीर-रस के संपूर्ण अवयवों का निर्वाह नहीं हुआ है। आलंबन, अनुभाव तथा संचारियों में धैर्य, मति, गर्व के विशेष प्रयोग मिलते हैं ।

तानसेन की रचनाओं में युद्धवीर तथा दानवीर के ही वर्णन अधिक हुए हैं। अकबर की वीरता और आतंक के चित्रण कवि ने निम्नलिखित पद में किये हैं :—

ए आयो आयो रे बलवंत साह आयो छत्रपति अकबर ,
सप्त द्वीप और अष्ट दिशा नर नरेन्द्र धर धर थर थर डर
निश दिन कर एक छिन पावै वरण न पावे लंका नगर
जहां तहां जीतत फिरत सुनीयत है जलालीन महम्मद को लश्कर
शाह हुमायूँ को नन्दन चंदन एक तेग जोधा तकवर
तानसेन को निहाल कीजे दीजे कोटिन जरजरी नजर कमर ॥^१

तानसेन ने निम्नलिखित पद में राजा मानसिंह की दानशीलता का भी परिचय दिया है :—

छत्रपति मान राजा तुम चिरंजीव रहो जो लों ध्रुव मेरु तारो ।
चहुं देश ते गुणी जन आवत तुमपै धावत पावत मन इच्छा सब ही को जग उजियारो
तुम से जो नहीं और कामे जाय कहुं दौर वही आरज कीरति करै मोपै रक्षा करन हारो
देत करोड़न गुणी जनन को अजाचक किए तानसेन प्रति पारो ॥^२

गंग की रचनाओं में वीर-काव्य का संयत रूप दिखाई देता है। वीर-भाव की ओर कवि की लेखनी उसी द्रुत गति से बढ़ी है जिस गति से वह अन्य भावों की ओर प्रगतिमान हुई है। उन्होंने अपनी इस रचना में ओजगुण का उचित सम्मिश्रण किया है।

वीरकाव्य के अंतर्गत कवि ने अकबर के पुत्र दानशाह की सेना के वर्णन में कमठ के कलमलाने, शेष के फन फटने आदि में अनुभावों का आश्रय लिया है :—

कहै कवि गंग दानि साहि फौजें फरहरै थरहरै दिग भूप थरहर थारी सी
धुंधरी धरनि निधि ओक भरनि उठी हैं धुंधराति दिसि दई है किनारी सी

१ देखिय तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १४६

२ " " " "

पद संख्या १४८

कल्मल्यो कमठ और दलमली दंति पांति चले दिगपाल पेल पियूष पनारी सी
सरपट शेष के फरक में फटत फन मनिन की चट उचटति चिनगारी सी ॥^१

निम्नलिखित छंद में 'वीर' भाव के साथ-साथ 'वीभत्स' का भी चित्रण हो
गया है :—

मार मची रणभुमि रची उमड़े दलसाहि अकब्बर के
अदले बदले भई बारहि बार परे तरवारिन के अटके
गंग तहां जुग टूटि परै फिरै रुंड-भुसुंड विना सर के
मुमनौ रंगरेज के रावर मांह महावर के मथना ढरके ॥^२

गंग की रचनाओं में रहीम की युद्ध-वीरता, और दान-वीरता के कई छंद उपलब्ध
होते हैं। गंग का निम्नलिखित छंद खानखाना की युद्ध-वीरता का परिचायक है :—

प्रबल प्रचंड बली बैरम के खानखाना तेरी धाक दीपक दिसानि दह दहकी
कहै कवि गंग तहां भारी सूर वीरन के उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी
मच्यो घमासान तहां तोप तीर वान चले मंडि बलवान किरिवान कोपि गहकी
तुंड काटि मुंड काटि जोसन जिरह काटि नीम जामा जीन काटि जिमी आन ठहकी ॥^३

उपयुक्त छंद में कवि ने खानखाना को आश्रय तथा शत्रुओं को आलम्बन रूप में
चित्रित किया है। तोप, तलवार, तीर आदि अनुभाव, दलों का उमड़ना तथा वार की
चेष्टा उद्दीपन रूप में आये हैं।

गंग के काव्य में जितने उत्साहपूर्ण ढंग से खानखाना की युद्ध-वीरता का
वर्णन मिलता है उसने ही उत्साहपूर्ण ढंग से उनकी दानवीरता भी वर्णित है :—

साहिबी की हद तूही साहिव सुमति तूही शाह को सुहैली संपत्ति को धाम है
तू ही दान तू ही जान तू ही बलवीर खान तू ही ललनान उर लागत ललाम है
कहे कवि गंग ते अकेली जान्यो खानखाना ऐसे खाये खरचे खजाने खोजे काम है
जोऊं निधि नो रसन निरखि तातें नवाब तेरी नौऊं खंड नाम है ॥^४

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११२

२ " " " " छंद संख्या १३५

३ " " " " छंद संख्या १४४

४ " " " " छंद संख्या १८५

महाराणा प्रतापसिंह की युद्धवीरता का वर्णन कर कवि गंग ने अपनी लेखनी पूत की है। इससे कवि के हृदय की विशालता तथा उदारता का परिचय मिलता है :—

उदित प्रताप सवै साहि के प्रताप साहि रोस सुनि काहि रही कुजति कुवंड में
गंग कहे धनपति नृपति विकल मति लंकहू को अधिपति विपति वितंड में
कुंडली कमठ कोल भूमि गोल हाल डोल परत पतौवा जैसे पवन प्रचंड में
देखिए खुमान रान रंगे तेरे पास मान भासमान भाजि पैछो आसमान खंड में ॥^१

उपयुक्त छन्द में वर्णित वीर-भाव महाराणा प्रताप के अनुकूल ही है।

निम्नलिखित छंद में कवि ने खानखाना की वीरता से उद्भूत आतंक तथा वैरी-नारियों की विकलता, त्रास, चिन्ता, विषाद, दैन्य आदि संचारियों के वर्णन किये हैं :—

बांधिवे को अंजलि विलोकिवे को काल ढिग राखिवे का पास जिय मारिवे को रोस है
जारिवे को तन मन भरिवे को हियो आखे धरिवे कौ पगमग गनिवे कौ कोस है
खाइवे कौ सौहें भौहें चढ़िवे उतारिवे कौ सुनिवे कौ तान ध्यान किए अपसोस है
वैरम के खानखाना तेरे डर वैरी बधू लीवे को उसास मुख दीवे ही को दोस है ॥^२

गंग ने राजा वीरबल की दानवीरता का भी उत्साहपूर्ण वर्णन निम्नलिखित छन्द में किया है :—

एक बचो सुरराज हथीय सुताबल और न होनो
और सवे बकसे बलवीर बचे रवि के रथ के हय दोनों
गंग कहे कर उन्नत देखि सुमंगन मौज गुनी तजि मौनो
लंक सुमेरु लुटाई दई है रह्यो मुख सालिगराम के सोनो ॥^३

गंग के उपयुक्त छन्दों से स्पष्ट है कि कवि में वीर-काव्य रचने की पूर्ण क्षमता थी। भूषण गंग के परवर्ती कवि थे। गंग की तत्सम्बन्धी रचनाओं का प्रभाव भूषण की रचनाओं पर भी पड़ा हो तो असंभव नहीं क्योंकि यह कई छंदों में उपलब्ध भाव साश्य से प्रकट होता है।

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १८४

२ " " " " " छंद संख्या १४०

३ " " " " " छंद संख्या १३६

प्रस्तुत कवियों में केवल ब्रह्म और रहीम ही ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं में वीर-काव्य के उदाहरण नहीं मिलते। केवल नरहरि, तानसेन और गंग की ही तत्सम्यन्धी रचना उपलब्ध होती है जिनके उदाहरण ऊपर दिये गये। वीर-काव्य के अंतर्गत केवल युद्धवीर और दानवीर के ही वर्णन अधिक हुए हैं। धर्मवीर और दयावीर के केवल एक-दो उदाहरण ही मिलते हैं। साथ ही इन कवियों की वीर-रस के संपूर्ण अवयवों की ओर दृष्टि नहीं थी क्योंकि कहीं पर उद्दीपन विभाव और कहीं पर अनुभाव अवयवों के प्रायः अभाव ही मिलते हैं। भावाभिव्यंजन की दृष्टि से इन कवियों की ये रचनाएँ महत्वपूर्ण अवश्य हैं।

प्रस्तुत कवियों ने शृंगार, भक्ति, वीर-काव्य रचना की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। रौद्र, भयानक, वीभत्स, करुण, हास्य तथा अद्भुत भावों की अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में नहीं हुई है। प्रसंग-वश ही इनके एक-दो उदाहरण मिल जाते हैं।

गंग ने भयानक-रस के अंतर्गत भय-भाव की व्यंजना कई छन्दों में की है किन्तु इस रस के संपूर्ण अवयवों की अभिव्यक्ति नहीं हुई है। नीचे लिखे छंद में कवि ने रहीम को आलंबन मानकर भय-भाव को व्यक्त किया है :—

नवल नवाव खानखाना जूतिहारी त्रास भागे देसपति धुनि सुनत निसान की
गंग कहे तिनहू की रानी रजधानी छांड़ि बन बिललानी सुधि भूली खान पान की
तेउ मिली करिन हरिन मृग वानरन तिनहू की भली भई रच्छा तहां प्रान की।
सची जानो करिन भवानी जाना केहरनि मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी॥^१

उपर्युक्त छन्द में त्रास, मोह, दीनता आदि संचारी भावों के भी प्रयोग हुए हैं।

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में हास्य, अद्भुत तथा वीभत्स के भावों की अभिव्यक्ति का प्रायः अभाव ही मिलता है।

प्रकृति-वर्णन

संस्कृत-साहित्य में प्रकृति-वर्णन दो रूपों में मिलते हैं। एक में तो प्रकृति के नाना रूप आलंबन रूप में आये हैं और दूसरे के अंतर्गत प्रकृति का चित्रण स्वतन्त्र रूप में होकर उद्दीपन रूप में हुआ है। हिन्दी-साहित्य में इसी दूसरे प्रकार के रूप के

‘ब्रह्म’ की रचनाओं में भी प्रकृति के आलम्बन रूप का प्रायः अभाव है। एक-दो स्थलों पर ही प्रकृति के स्वतन्त्र रूप के चित्रण हुए हैं। निम्नलिखित छंद में ग्रीष्म-ऋतु के व्यापक प्रभाव का अवलोकन कीजिये :—

उछरि उछरि भेकी रूपटे उरग पर उरग पै केकिन के लपेटैं लहकि है
केकिन के सुरति हिये की ना कछू है भये एकी करी केहरिन बोलति बहकि है
कहे कवि ब्रह्म चारि हेरत हरिन फिरैं ब्रैहर बहत बड़े जोर सों जहकि है
तरनि के तावन तवा सी भई भूमि रही दसहूँ दिसान में दवारि सी दहकि है ॥^१

उपर्युक्त कविता कवि के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण का परिचायक है। ब्रह्म के परवर्ती कवि विहारी के एक दोहे में उक्त कवित्त का भाव मिलता है ।^२

उद्दीपन-रूप में ही कवि ने प्रकृति के दृश्यों के अधिकतर वर्णन किये हैं। निम्नलिखित कवित्त में कवि ने प्रकृति के इसी रूप का आश्रय लिया है :—

कामहू कुमुद बंद कल हंस कोकिला कुलाहल करत कोक कैकी छेकी लयो हों
ब्रह्म भने सीतल समोर धोर तीर वार धीरो न धरत देत छाती ही में छयो हों
एते सव चेरे मेरे तबहूँ ते तरे साथ तिनहि विछुरि अय चोरी करि दयो हों
कैसे नीके रहो नीके लागतु हो जो पै ऐसे रूप को वियोग विधि ठयो हों ॥^३

कृष्ण के वियोग में राधा की विरह-अग्नि के कारण आकाश का रंग लाल हो गया है और यदि जलनिधि से उसका साथ न होता तो सम्भवतः जल ही जाता। नायिका के तन-तेज से चन्द्रमा का रंग भी लाल हो गया है। कवि ने प्रकृति के इसी उद्दीपन रूप का उदाहरण निम्नलिखित छंद में प्रस्तुत किया है जो उसकी अत्युक्तिपूर्ण कल्पना का भी परिचायक है :—

सीतलता सुत अंग पियूष पियूष में अंग अमुज्ज्वल कामो
राधिका कान्ह वियोग अग्नि गगन्न वरयो सुभयो रंग रातो

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ७२

२ कहलाने एकत वसत अहि मयूर मृग वाघ।

जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ ॥

विहारी-बोधिनी, पृष्ठ २३६, दोहा संख्या ५६५

३ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५६

ब्रह्म भनै जु जलनिध जात सुजुगे न होतो तो ततो वरि जातो
तो तनु तेज तप्यो तस्नी ताते लागतु तोहि तमी पति तातो ॥^१

ब्रह्म ने इस प्रकार परंपरागत रूप के अनुसार उद्दीपन रूप में प्रकृति की छटा के अधिक वर्णन किये हैं। आलंबन रूप की ओर उनकी दृष्टि उतनी नहीं थी।

तानसेन ने प्रकृति के दोनों रूपों के समान वर्णन तो किये हैं किन्तु वे प्रकृति के उद्दीपन रूप की छटा को दिखाने के ओर ही अधिक तल्लीन दिखाई पड़ते हैं।।

प्रकृति विरहिणी नायिका के लिये किस प्रकार भयावह हो गई है यह निम्नलिखित पद में देखिये :—

वादर ऊनह आए सो पिय बिन लागे डर पाए
एक तो अधियारी कारी लागत डरावन जिय को भारी तैसेहि अवध
बीतन लागे अजहू न आए
दादुर पिक मोर सोर करन लागे विरही तन लागे डराए
तानसेन के प्रभु तुम नीके जानो भली लीनो सुध सो अजहू न आए ॥^२

तानसेन ने उपर्युक्त भाव की पुनरुक्ति निम्नलिखित पद में की है :—

वादर आए री लाल पिया बिन लागे डरपावन
एक तो अंधेरी कारी विजुरी चमकत उमर धुमड़ बरसावन
जय ते पिया परदेस गवन कीनो तब ते विरहा भयो मो तन तावन
सावन आय अति मर लावत तानसेन न आए मन भावन ॥^३

तानसेन के प्रकृति-वर्णन के आलंबन रूप की भी एक कलक देखिये :—

सघन बन छायो द्रुम बेली माधो भुवन अति प्रकाश वरन वरन पुष्प रंग लायो
कोकला खंजन कीर कपोत अति आनन्दकारी चहुं ओर मर बरसायो
सप्त सुर तीन ग्राम इकइस मूर्छना उक्त युक्त लाग डाट कर देखायो
तानसेन कहे सुनो साह अकबर प्रथम राग भैरव गायो ॥^४

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५५

२ " " " पद संख्या ११४

३ " " " पद संख्या ११०

४ " " " पद संख्या १५०

गंग ने भी प्रकृति के दोनों रूपों के सुन्दर उदाहरण अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किये हैं। कवि के इन छन्दों में भावों की चित्ताकर्षक अभिव्यंजना भी मिलती है।

निम्नलिखित छन्द में कवि ने शिशिर ऋतु का बोध कराने के लिये प्रकृति को यथार्थ आलंबन रूप प्रदान कर दिया है :—

कोप काश्मीर ते चलयो है दल साजि वीर धीर ना धरत गल गाजिवै को भीम है
सुन्न होत साँझ ते बजत दन्त आधी रात तीसरे पहर में दहल दै असीम है
कहै कवि गंग चौथे पहर सनावै आनि निपट निगोरी मोहि जानि कै यतीम है
बढ़ै शीत शंका कापै उर है अतंका लघु शंका के लगत होत लंका की सुहीम है ॥^१

निम्नलिखित छन्द में 'वसंत' का चित्रण सांकेतिक रूप में होता हुआ भी यथा-
तथ्य प्रभाव डालता है :—

गुंजहु कुंज मधूवत पुंज सरोज के सौरभ की सरसाई
गंग सु प्रानपती कों पयान भरो केहि भाँति वियोग दसाई
कोकिल बोलत बाग ही बाग वसंत के बासर सौं न बसाई
चैत की चाँदनी को चितए तन कैसे के छाड़ैगो काम कसाई ॥^२

कवि गंग के उपर्युक्त छन्दों से उनकी विशिष्ट प्रकृति-वर्णनात्मक प्रतिभा का आभास मिलता है और उन्होंने प्रकृति को आलंबन और उद्दीपन दोनों दृष्टियों से देखा है।

रहीम की रचनाओं में भी प्रकृति की छटा बिखरी मिलती है किन्तु भावविशेष के आवरण में वह अपना पूरा प्रकाश नहीं बिखेर पाती। फलस्वरूप कवि के इन प्राकृतिक चित्रों को दो रूपों में बाँटा जा सकता है। प्रथम तो भावोद्दीपन के रूप में और दूसरे उपदेशात्मक रूप में। प्रकृति के आलंबन रूप का कवि की रचनाओं में प्रायः अभाव ही मिलता है।

प्रकृति नायिका की विरह-भावनाओं को किस प्रकार उद्दीप्त करती है यह कवि के निम्नलिखित/बरवों से प्रकट है :—

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७३

२,

"

"

,, छंद संख्या १७८

बरसत मेघ चहुं दिसि मूसरधार ।
 सावन आवन कीजत नन्द कुमार ॥
 करत धुमड़ि घन घुरवा मुरवा सोर ।
 लागि रह विकसि अंकुरवा नन्द किसोर ॥
 घन धुमड़े चहुं ओरन चमकत बीज
 पिय प्यारी मिलि भूलत सावन तीज ॥^१

कवि ने रूपक द्वारा भी प्रकृति के रूपों की अभिव्यंजना की है :—

विरह रूप घन तम भयो अवधि आस उद्योत ।
 ज्यों रहीम भादों निसा चमकि जात खद्योत ॥^२

रहीम द्वारा वर्णित प्रकृति के उपदेशात्मक रूप के कुछ उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं ।
 रीति-नीति के प्रसंग में भी कवि ने प्रकृति के विविध रूपों के आश्रय लिये हैं ।
 बड़े लोगों की जान-पहिचान से क्या लाभ जब कि विधाता ही अनुकूल नहीं है, इसका
 विस्तार कवि ने निम्नलिखित छन्द में दिखाया है :—

बड़ेन सो उ न पहिचान कै रहीम कहा जो पय करता ही न मुख देनहार है ।
 सीतहर सूरज सों नेह कियो याही हेत ताऊ पै कमल जारि डारत तुषार है ।
 चीर निधि मांहि धंस्यो शंकर सीस बस्यो तऊ न कलंक नस्यो ससि में सदा रहै ।
 बड़ो गिम्बवार है चकोर दरवार है कलानिधि सो यार तऊ चाखत अंगार है ।^३

दोहों में भी कवि ने उपदेश द्वारा प्राकृतिक चित्रण के रूप प्रस्तुत किये हैं :—

मानसरोवर ही मिले हंसनि मुक्ता भोग ।
 सफरिन भरे रहीम सर वक बालक नहिं जोग ॥^४
 दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहिं ।
 रहिमन चातक रटनि हूँ सरवर कोउ नाहिं ॥^५

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ६३, ६४

२ " पृष्ठ २४

३ " पृष्ठ ७५, ७६

४ " पृष्ठ १४

५ " पृष्ठ १०

इस प्रकार के वर्णन में रहीम की अपनी विशेषता है और गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में भी उपलब्ध प्रकृति-वर्णन बहुत कुछ इसी प्रकार का है।

अतएव प्रस्तुत कवियों ने प्रसंगवश ही प्रकृति के कुछ दृश्यों के वर्णन कर दिये हैं। उन्होंने प्रकृति को कुछ स्थलों पर आलंबन और अधिकतर शृंगार के अंतर्गत उद्दीपन तथा उपदेशात्मक रूप में ही अपनाया है। इनमें कहीं-कहीं भावों की सुन्दर व्यंजना भी हुई है।

नीति और उपदेश

काव्य का उद्देश्य सत्य का प्रकाशन है और श्रेय सत्य का उद्घाटन ही सच्ची शिक्षा है। भारतीय कवियों ने काव्य के 'स्वांतः सुखाय' और 'लोकोपकाराय' दोनों स्वरूपों के चित्रण अपनी रचनाओं में किये हैं। वस्तुतः महान् आत्माओं का निज सुख समष्टि के सुख में ही अन्तर्हित रहता है और इस विचार से उनकी स्वांतःसुखाय रचनाओं में भी किसी न किसी रूप में लोकोपकारिता के गुण मिलते हैं। गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लोकोपकारिता के भावों से पूर्ण है। हिन्दी-साहित्य के अधिकांश कवियों की रचनाओं में नीति-उपदेश सम्बन्धी विषय का थोड़ा बहुत परिचय मिलता है। यह ठीक है कि इस प्रकार के काव्य में भावों की विभोरकारिणी अभिव्यंजना नहीं मिलती किन्तु उनमें मनुष्य की सहज अनुभूति के पूर्ण दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत कवियों के काव्य में नीति और उपदेश का विशिष्ट स्थान है। नरहरि, गंग के छप्पय और कवित्त, रहीम के दोहे इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन कवियों की ये रचनाएँ केवल सुनी-सुनाई बातों पर आश्रित नहीं हैं। उनकी रचनाओं से प्रकट होता है कि उन्होंने अपने जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के बीच मार्मिक अनुभूति प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त वह काल ही कुछ ऐसा था कि अक्सर-अक्सर सभी को शासक के उचित पथ प्रदर्शनार्थ नीति और उपदेश से अवगत और उसमें कुशल होना आवश्यक था। इसीलिये दरबारी कवियों के काव्य में इसका विशेष पुट मिलता है।

नरहरि प्रस्तुत सभी नीति और उपदेश के कवियों में अग्रगण्य थे। इनके 'छप्पय-नीति' ग्रंथ का विवेचन पहले किया जा चुका है। कहा जाता है नरहरि ने अकबर की अपरिपक्व अवस्था में सिंहासनारूढ़ होने पर यह ग्रंथ उसी के लिये बनाया था। कवि ने इस विषय के बहुत से छंदों को अकबर को संबोधित करके लिखा भी है। यहां पर उनमें से कुछ के उदाहरण दिये जायेंगे। सर्वप्रथम कवि अकबर के बुद्धि-चातुर्य का परिचय निम्नलिखित उत्साहवर्धक शब्दों में देता है :—

१	देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२६
२	" " " " छंद संख्या १२७
३	" " " " छंद संख्या १६

ब्रह्म को रचनाओं में नीति-उपदेश के कई छंद उपलब्ध होते हैं। उनमें कवि ने लोक-ज्ञान का समुचित दिग्दर्शन कराया है। ब्रह्म दरबार के उच्च पद पर थे और भक्ति-भावना तथा राजनीतिक अनुभवों से प्रेरित होकर उन्होंने ये छंद लिखे हों तो असंभव नहीं।

जीवन की अस्थिरता का परिचय कवि ने निम्नलिखित छंद में दिया है:—

बीच ही मिल्यो हे साथ हाथ ही भयो असाथ दारा सुत मीत बंधु दीन भलो भाखिए
हाटक एरु हाथी कोन के भये हे साथी लाख वेर लाष पाए तउ अभिलाखिए
ब्रह्म भने नाथ ही को नीको नातो नीको विधि विषय विरंचि के पिउष रस चाखिए
साथ ही रहत रहत साथ छोड़े न छुटत साथ साथ आवे साथ जाइ सोइ साथ राखिए ॥^१

दुःखी मन को संवोधन देते हुए कवि ने ईश्वर में अपने अटल विश्वास का परिचय दिया है:—

जब दांत न थे तब दूध दियो अब दांत भए कहा अन्न न दैहै
जीव पसेहि जल में औ थल में तिनकी मुधि लेइ सो तेरी लैहै
जान को अदेत अजान को देत जहान को देत सो तोहूँ को दैहै
काहे को सोच करै मन मूरख सोच करे कछू हाथ न ऐहै ॥^२

नीति सम्बन्धी तथ्यों के उल्लेख कवि ने निम्नलिखित छंद में सरल ढंग से कर दिये हैं:—

नमे तुरी बहु तेज नमे दाता धन देतो
नमे अब बहु फल्यो नमे जलधर वर सतो
नमे सुकवि जन शुद्ध नमे कुलवन्ती नारी
नमे सिंह गय हने ते नमे गज बैल सम्हारी
कुंदन इमि कसियो नमे वचन ब्रह्म सच्चा सचवे
पर सूखा काठ अजान नर दूट पड़े पर नहिं नमे ॥^३

ब्रह्म की रचनाओं में उपयुक्त उदाहरणों से जैसा स्पष्ट है, उपदेश के ही अधिक छंद मिलते हैं। इससे ज्ञात होता है, नीति-विवेचन की ओर कवि की दृष्टि संभवतः उतनी नहीं थी जितनी उपदेश की।

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ६२

२ " " " छंद संख्या ६५

३ " " " छंद संख्या ६६

तानसेन के पदों में भी नीति-उपदेश सम्बंधी बातों के थोड़े उल्लेख मिलते हैं। इनमें उपदेशात्मक छंदों की ही अधिकता है। धैर्य-धारण मनुष्य जीवन का एक प्रधान गुण है। तानसेन ने इसका उपदेश अकबर को निम्नलिखित पद में दिया है :—

धीरे धीरे धीरे मन धीरे ही सब कुछ होय
धीरे राज धीरे काज धीरे योग धीरे ध्यान धीरे सुख समाज जोय
धीरे तीरथ धीरे व्रत संयम धीरे ही को सतसंग साथ के बैठ मन को धीरे राखोय
तानसेन कहे सुनो शाह अकबर एतो बड़ो राज एती बड़ी बादशाही धीरे ही ते
पाई सोय ॥^१

इनके पूर्ववर्ती कवि कबीर ने भी भाव का संकेत अपनी एक साखी में उदाहरण के रूप में किया है।^२

तानसेन ने मन-प्रबोधन के कई पद गाये थे जिनका परिचय इनकी रचनाओं से मिलता है। इनके कुछ उपदेश भक्ति-भावना से भी प्रेरित हैं। इनमें नीतिसम्बन्धी बातों के उल्लेख प्रायः नहीं के बराबर हैं।

गंग ने व्यावहारिक जीवन को सफल बनाने के लिये नीति और उपदेश सम्बन्धी तथ्यों के कई स्थलों पर वर्णन किये हैं। राजनीति की ओर उनका कोई लक्ष्य ज्ञात नहीं होता। अपनी सूक्तियों द्वारा उन्होंने इस प्रकार के वर्णन को रोचक बनाने का भी यत्न किया है। कवि के ये तथ्य सवैये, कवित्त तथा कुछ स्थलों पर छप्पय छंदों में भी निरूपित हुए हैं।

निम्नलिखित छंद में कवि ने कई तथ्यों के एक ही स्थान पर स्पष्ट रूप में वर्णन कर दिये हैं :—

ज्ञान घटे कोउ मूढ़ की संगति ध्यान घटे बिन धीरज लाए
पीति घटे कोउ गुंगे के आगे मान घटे नित ही नित जाए

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग पद संख्या ४९

२ धीरे धीरे रे मना धीरे ते सब कुछ होय।

माली सीचे सौ घड़ा रितु आए फल होय ॥

सोच घटे कोउ साधु की संगति रोग घटे कछु औखद खाए
गंग कहै सुन शाह अकबर पाप घटे हरि के गुन गाए ॥^१

उपर्युक्त छंद में 'प्रीति घटे कोउ गूंगे के आगे' की उक्ति में कवि के प्रेम-मनो-विज्ञान का परिचय मिलता है। प्रेम का विकास प्रत्युत्तर के अभाव में संभव नहीं होता। छंद में लौकिक तथा पारलौकिक दोनों के अभ्युदय की ओर संकेत किया गया है।

गुणी व्यक्ति ही गुण-विशेष की पहिचान कर सकते हैं अन्य नहीं। इसी तथ्य का उल्लेख कवि ने कई छंदों में किया है। निम्नलिखित कवित्त में इसी का वर्णन है:—

गुनियन रसन बीच बसन फुलेलन को बोले औ खोले बिन कैसे कर जानिए
जुरेंगे बिरादरी महीपन की जहां चारु गुनी औ गंवार तहां कैसे पहचानिए
मोती मोती एक रंग मोल भांति भांति कहै जौहरी के आए बिन कैसे कर जानिए
कहे कवि गंग देखो भंवर कुरेवा दोउ एक रंग डार बैठे कल पहचानिए ॥^२

मनुष्यता की कसौटी वचन-रत्ना है और इस सम्बन्ध में ऐसी ही और समान उक्तियों का निर्वाह कवि ने निम्नलिखित कवित्त में किया है।

दुष्टन की प्रीति कहा खार बिन खेत जैसे प्रीति बिन मित्र वाकू चित्तहू न आनिये
मति बिना मोह औ नूर बिन नारी कहा अर्थ बिन कवि वाकू पशू ज्यों प्रमानिये
तोपे बिन फौज कहा हस्ती बिन हौदा जैसे द्रव्य बिन देवे दान देवधर मानिये
कहे कवि गंग सुनो साहिब के साहि सूरु आदमी को मोल एक बोल में पिछानिये ॥^३

उपर्युक्त छंद में कवि ने 'अर्थ बिन कवि' की उक्ति द्वारा कवित्व के आदर्श 'अर्थ-गौरव' का स्पष्ट रूप से संकेत किया है।

गंग ने निम्नलिखित छंद में फूट के कुपरिणाम का वर्णन कर पारस्परिक प्रेम-भावना को जगाने का प्रयास किया है—

फूट गए हीरा की कती बिकानी हाट हाट कहूँ घाट मोल कहूँ बाढ़ मोल को लयो
टूट गई लंका फूट मिल्यो जो विभीषन है रावन समेत वंस आसमान को गयो

१. देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १०४

२. " " " " छंद संख्या ९९

३. " " " " छंद संख्या ९५

कहे कवि गंग दुरयोधन से छत्रधारी तनक में फूट ते गुमान वाके नै गयो
फूट ते नरद उठि जाति बाजी चौसर की आपसु के फूटे कहु कौन को भलो भयो ॥^१

कवि गंग ने इसी प्रकार मनुष्य-जीवन की छोटी-छोटी बातों के सांगोपांग अध्ययन का समुचित परिचय अपने इन छंदों में दिया है। इनकी बहुत सी सूक्तियां जनप्रचलित भी हो गई हैं।

रहीम हिन्दी-भाषा के उन कवियों में हैं जिनके नीति-उपदेश सम्बंधी दोहे हिन्दी-भाषी जनता के मस्तिष्क में बैठ गए हैं। इसका कारण यह है कि उनके उन दोहों में मर्मस्पर्शिता कूट-कूट कर भरी है। उनके ये नीति के वचन शब्दों के कोरे वाक्य नहीं हैं वरन् उन्होंने स्वयं जीवन के घात-प्रतिघात के बीच इनकी अनुभूति प्राप्त की थी। रहीम के इन दोहों में विषय की दुरुहता, भावशिथिलता और कल्पना की झूठी उड़ान नहीं झलकती। उनकी जीवन से प्रेरित काव्यानुभूति अपनी दिव्य छटा का प्रसार करती हुई पाठक के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। यहां उनके कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं।

मनुष्य को अपनी मर्यादा के भीतर रहने के लिये रहीम ने निम्नलिखित उपदेश दिया है :—

रहिमन अती न कीजिये गहि रहिये निज कानि ।

सेजन अति फूलै तऊ डार पात की हानि ॥^२

‘धर का भेदी लंका ढावे’ उक्ति का आश्रय लेकर कवि ने निम्नलिखित उदाहरण में मार्मिकता के साथ आंसू के रहस्य को स्पष्ट किया है :—

रहिमन अंसुवा नयन ढरि जिय दुख प्रगट करेइ ।

जाहि निकारो गेह ते कस न भेद कहि देइ ॥^३

रहीम ने निम्नलिखित दोहे में अपनी राजनीतिक सूक्ष्म-बुद्धि का परिचय दिया है। यदि शासक दिन को रात कहे तो उसे तारे भी दिखा देना चाहिये :—

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १०७

२ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १६

३ ” ” १६

रहिमन जो रहिबो चहै कहै वाहि' के दांव ।
जो वासर को निखि कहै तौ कचपची दिखाव ॥^१

कवि ने आडंबरपूर्ण प्रेम को खीरा के स्वरूप से उदाहरण देकर सुंदर भावाभिव्यक्ति की है :—

रहिमन प्रीति न कीजिए जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला भीतर फांके तीन ॥^२

रहीम ने मान-निर्वाह के भी दोहे दिये हैं :—

रहिमन तब लागि ठहरिए दान मान सनमान ।
घटत मान देखिय जबहिं तुरतहि करिय पयान ॥^३
रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून ।
पानी गए न ऊबरे मोती मानुष चून ॥^४

उपयुक्त दोहे में कवि ने पानी में 'थमक' की छटा भी दिखाई है। रहीम ने इसी प्रकार क्रोध, लोभ मोह आदि के निवारण, सुसंगति तथा कुसंगति के प्रभाव आदि सम्बन्धी विषयों पर भी उपदेशात्मक दोहे लिखे हैं जिनमें उक्ति-वैचित्र्य तथा भावों के सुन्दर प्रयोग हुए हैं।

उक्ति-वैचित्र्य

कवि अपने काव्य के वर्ण्य-विषय में घुल-मिलकर उसकी तीव्रानुभूति कराने के लिये कल्पना का आश्रय लेते हुए जब किसी स्थल-विशेष के वर्णन को चमत्कार-पूर्ण बना देता है तो वे स्थल काव्यगत उक्ति-वैचित्र्य के उदाहरण होते हैं। प्रायः ऐसे स्थलों पर कवि की सुन्दर भावव्यंजना का भी परिचय मिलता है। किन्तु इस प्रकार की रचना के लिये कवि में गहरी सूक्ष्म, अनूठी कल्पना और शब्द की लक्षणा-व्यंजना शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इसमें कवि तथ्यों के विचित्र प्रकाशन द्वारा उच्च कला की सृष्टि करता है। प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में उक्ति-वैचित्र्य के

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १९

२ " " २०

३ " " पृष्ठ १९

४ " " पृष्ठ २०

नरहरि की रचनाओं में उक्ति-वैचित्र्य के एक-दो उदाहरण ही मिलते हैं। निम्नलिखित दोहे में कवि ने सज्जनों को परखने के लिये विपत्ति-कसौटी का परिचय दिया है :—

सोनो सज्जन कसन को सो विपत्ति कसौटी कीन्हि ॥^१

शिशिर ऋतु में प्रातःकाल जलाशयों का जल कुछ गर्म रहता ही है, किन्तु कवि ने इस तथ्य को अनूठे ढंग से व्यक्त किया है :—

जाय समुद्रहिं पूछ बुझी इहि कारन प्रात भभात है पानी ॥³

चन्द्रमा शुक्लपक्ष और कृष्ण-पक्ष के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है और अपनी

' " " " छंद संख्या ७७

दिशाओं को भी स्वाभाविक रूप से बदल देता है किन्तु इस कथन को कवि ने नायिका के मुख-सौंदर्य का हेतु बताते हुए कल्पना द्वारा इसे मर्मस्पर्शी और प्रभावपूर्ण बना दिया है :—

तुअ मुख औ चन्द्रमा विरंचि तुलाकार तोल्यौ
ओछो आकाश गयो धुकि धरणी रही निकाइ को भारो भरो री पला
याही ते शशी घटत बढ़त है देखि देखि तेरो बदन निर्मला
तो सम नाहिन पूजिये सब मिलि कलंगी नाम धरयो निशि भ्रमत फिरत
न रहे अचला

तानसेन प्रभु सरस बस कर लीयो रूप आभारी रूप कला ॥^१

तानसेन के रूप-सौंदर्य-वर्णन में कल्पना-वैचित्र्य के ही अधिकतर उदाहरण मिलते हैं, उक्ति-वैचित्र्य के केवल एक-दो उदाहरण ही मिलते हैं।

गंग की रचनाओं में ऊहात्मक छन्दों की अधिकता है। किन्तु केवल कल्पना की उड़ान में ही कवि नहीं रमा, वरन् कथन की विचित्रता भी देखने को मिलती है।

नीचे लिखे गंग के छन्द में उक्ति और कल्पना-वैचित्र्य का सुन्दर सम्मिश्रण देखने को मिलता है। भगवान ग्राह-ग्रस्त गजराज की करुण पुकार सुनकर छीर-सागर से पैदल ही दौड़ पड़े। उनका प्रयाण देखकर गरुड़ भी उनकी सवारी के हेतु पीछे दौड़ पड़ा किन्तु वहाँ तो बात ही कुछ और हुई। भगवान ने ज्यों ही ग्राह के प्रति रोष प्रकट किया और उसे दंड देना चाहा त्यों ही चक्र-सुदर्शन द्वारा वहाँ उनके पहुँचने के पूर्व ही ग्राह का अंत हो गया :—

गाढ़े गहौ गहिबो गुहारिबो विसारो कियो ए हो दीनबन्धु अब दीन कहूं दलि गयो
श्रवण मनक परे धायो कमला को कंत अस्त्र वस्त्र छाड़ि प्रभु वाहन वचलि गयो
भनि कवि गंग ताके पाछे पछिराज धायो अतल वितल तलातलहू वितल गयो
जौ लौं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइबे को तौ लौं ग्राह ग्रीवा पै अगारु चक्र चलि गयो ॥^२

उपयुक्त छन्द में कवि ने कारण और कार्य को एक कालावच्छिन्न रूप में दिखाकर अपनी कला प्रदर्शित की है।

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ८१

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८६

नीचे लिखे छन्द में भी गंग ने उक्ति-वैचित्र्य का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

गयंद की चुराई चाल मैदही को लंक चोरयो मुख तेरो चंद चोरयो नासा चोरी कीर की
मृगनि के नैन चोरयो पिकनि के बैन चोरयो ओठ तेरो लाल चोरयो दंत छवि हीर की
कहै कवि गंग बेनी नाग ते चुराइ ल्याइ भौंह ते कमान पल पारथ के तीर की
जेते तुम लूटे ते पुकारत कन्हैया जू पे एतनि की चोरी कहा छपेगी अहीर की ॥^१

उपर्युक्त छन्द में कवि ने कृष्ण को राधिका के रूप-सौंदर्य की ओर आकृष्ट करने के लिये सुन्दर उक्ति का आश्रय ग्रहण किया है ।

सुख-समय की सहचरी निद्रा भी दुःखावस्था में विरहिणी नायिका का साथ छोड़ देती है । निद्रावरोध उस काल का एक स्वाभाविक तथ्य है किन्तु कवि ने अपनी अद्भुत कल्पना द्वारा उस उक्ति में लक्षणा का आश्रय लेकर विचित्रता ला दी है :—

कान्ह चले कहि आयो कछु न कंपी कदली दल ज्यों थहरानी
सोचत ही सब ब्योस गयो पुनि रात पुकारत राधिका रानी
आई निवास को ज्यों नित आवत आखिनहू ते रह्यो परि पानी
गंग सु तो नाहीं फिरी उत बूड़न के डर नींद डरानी ॥^२

वस्तुतः निद्रा का निवास-स्थान नेत्र ही है और नेत्रों से जब आंसुओं की प्रवह धारा बह रही है तो बेचारी नींद को भी लौट जाना पड़ा क्योंकि उसमें उसका प्रवाहित हो जाना अनिवार्य ही था ।

गंग ने कुछ और स्थलों पर भी उक्ति-वैचित्र्य के सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं और उनमें आवश्यक कल्पना और शब्द की लक्षणा-शक्ति का आश्रय लिया है ।

रहीम के दोहों में ही उक्ति-वैचित्र्य के सुंदर उदाहरण मिलते हैं किन्तु उनके अन्य छंदों में यह विशेषता देखने को नहीं मिलती ।

मनुष्य का वैभव स्थिर नहीं रहता । आज जो वैभवशाली है वही कल दर-दर का भिखारी बन जाता है । लक्ष्मी किसी एक व्यक्ति के पास टिक कर नहीं रहती । कवि ने अपने वर्णन से इस कथन में अनूठापन ला दिया है :—

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७

कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सँव कोय ।

पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय ॥^१

ईख में प्रत्येक स्थल पर रस नहीं रहता । जहाँ उसमें गाँठ होती है वहाँ रस का लेशमात्र भी नहीं मिलता । किन्तु विवाह-मंडप के नीचे नव वर-वधू की प्रत्येक गाँठ में प्रेम-रस छलकता दृष्टिगत होता है । कवि ने इस भाव को पुनरुक्ति के सहारे निम्न-लिखित ढंग से व्यक्त किया है :—

जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं यह रहीम जग जोय ।

मंडए तर की गाँठ में गाँठ गाँठ रस होय ॥^२

हाथी का यह स्वभाव ही होता है कि वह अपनी सूँड से धरती को टटोलता चले और इस प्रकार अपने मस्तक को धूल-धूसरित करता रहे । किन्तु कवि ने इसी के कथन में एक अनूठापन ला दिया है :—

धूर धरत नित सीस पै कहु रहीम केहि काज

जेहि रज मुनि पत्नी तरी सो दूढ़त गजराज ॥^३

हाथी के दो दाँत सूँड में बाहर की ओर निकले ही रहते हैं और उसका पेट भी बहुत बड़ा होता है परन्तु कवि ने इसी के तथ्य-निरूपण के लिये अद्भुत कल्पना का आश्रय लिया है :—

बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढ़ि ।

याते हाथिहिं हहरि कै दिये दाँत दै काढ़ि ॥^४

उपर्युक्त छंदों से यह भी स्पष्ट है कि रहीम के सीधे-सादे शब्दों में लिखे गये छंदों में काव्य-कला का भी प्रस्फुटन हुआ है ।

इस प्रकार प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में कल्पना की विचित्रता अधिकतर कथनों के अनूठेपन को व्यक्त करने के लिये ही प्रयुक्त हुई है । उनमें न तो कल्पना की ऊँची और वेपर की उड़ान है और न भाव-व्यंजना का अभाव ही, वरन् आवश्यक

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ३

२. " पृष्ठ ६

३ " पृष्ठ ११

४ " पृष्ठ १२

कल्पना के साथ-साथ शब्दों की लक्षणा और व्यंजना-शक्तियों का भी कुछ स्थलों पर उचित आश्रय लिया गया है। उक्ति-वैचित्र्य के अंतर्गत अधिकतर अंलकारों की छटा ही रहती है वही इन कवियों में व्यक्त हुई है।

भाषा

भाषा भावाभिव्यक्ति का प्रधान साधन है। भाव की अभिव्यंजना श्रेष्ठ काव्य का लक्ष्य होता है। अतएव काव्य-कला की दृष्टि से भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाव कविता की आत्मा है तो भाषा शरीर। उत्तम काव्य की रचना के लिये दोनों की उच्चता अपेक्षित है। इनमें से एक भी निर्बल हुआ तो काव्य-छटा धूमिल सी दृष्टि-गत होने लगती है। भाषा काल और परिस्थिति के अनुसार विकास को प्राप्त होती है। इसलिये भाषा-विशेष पर सम्यकरूपेण विचार करने के लिये उसके विविध रूपों पर भी दृष्टिपात करना समीचीन होता है।

नरहरि, ब्रह्म, गंग आदि कवियों के समय में उत्तरी भारत में पश्चिमी-हिन्दी के अंतर्गत सब से अधिक समृद्ध और ललित ब्रज-भाषा थी और यही अकबर के काल में काव्य की प्रधान भाषा रही। पूर्वी हिन्दी की अवधी-बोली का भी प्रचार था। सूफ़ी हिन्दी कवियों तथा तुलसीदास ने उसका प्रयोग अपने काव्य में किया है। परन्तु उसका क्षेत्र ब्रज के समान विस्तृत नहीं था। अतः दरबार के इन कवियों की रचनाओं की मुख्य भाषा ब्रज ही मिलती है। इनमें अवधी का व्यवहार बहुत कम मिलता है। रहीम के 'बरवै नायिका-भेद,' फुटकर बरवों तथा नरहरि के छप्पय की भाषा अवश्य अवधी है और बरवै, छप्पय छंद विशेष रूप से अवधी में ही फवते हैं। ब्रह्म, गंग, तानसेन आदि की ब्रज-भाषा पर पश्चिमी हिन्दी की कनौजी, बुन्देली आदि बोलियों का भी प्रभाव पड़ा है। यह प्रभाव कवियों की व्यक्तिगत स्थानीय विशेषता के कारण जान पड़ता है। अकबरी दरबार की राजकीय भाषा फ़ारसी थी और जैसा पहले कहा जा चुका है कि अनेक फ़ारसी के कवि दरबार में उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त भारत के कोने-कोने से गुणी व्यक्ति भी दरबार में एकत्र हुए थे। अतएव इन सब में भाषा की विविधता स्वाभाविक ही थी। फ़ारसी भाषा का स्पष्ट प्रभाव इन कवियों की रचनाओं पर मिलता है। उक्त कवियों की रचनाओं में फ़ारसी शब्दों के व्यवहृत होने के कारणों पर कुछ विचार कर लेना यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

अकबर के नवीन राजकीय धर्म 'दीने-इलाही' में इस्लाम-धर्म के प्रभाव का लोप नहीं हो गया था। इस्लाम से सम्बन्धित आवश्यक शब्द सभी दरबारी व्यक्तियों तथा कवियों के मस्तिष्क में बैठ गये थे और कवियों ने उनका प्रयोग अवसर उपस्थित होने पर अपनी रचनाओं में किया था। तत्कालीन रहन-सहन, पहनावे, बातचीत की शैली, फ़ारसी, तुर्की वाद्यों, युद्ध-कौशल्लादि से सम्बन्धित, विदेशी अनेक हथियारों, शासन के विविध सूत्रों के लिये फ़ारसी तथा विदेशी नामों के व्यवहार बराबर मिलते हैं। अल्लाह, हाल, साहब, रहीम, रहमान, करीम, परवर्दिगार, हज़रत, अली, आलम, दीदार आदि शब्द इस्लाम-धर्म के प्रभाव के कारण इन कवियों की रचनाओं में मिलते हैं। रहन-सहन, पहनावे के लिये सुकाम, आराम, सूम, गरीब, दाग, हरम, खरच, जुल्फे, जैहरि, हमेल, ताबीज, आदि; बातचीत के लिये मुबारक, अरज, यार, अफसोस, सरम, गरूर, निहाल, नजर आदि; वाद्यों के सहनाई, रबाब, डफ आदि; युद्ध-कौशल्लादि से सम्बन्धित फौज, तरवार, कूच, दमामा, मुहीम, निसान, डंका, कमनैत, बन्दूक आदि; शासन के विविध पदों और शब्दों के लिए प्यादा, मीर, वजीर, सवार, सरदार, फरमान, खिताब, हुकुम, साह, गस्त आदि; विविध प्रकार के पेशों के अनुसार सराफ, बजाज, रंगरेज आदि शब्दों के प्रयोग प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में यत्र-तत्र मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और भी शब्द हिन्दू-यवनों के संपर्क के फलस्वरूप प्रयुक्त हुए हैं जैसे गरज, दर-दर, कागद, इज्जत, जरद, चुगल, मसक, बिकरार, दिलदार, रेखता, हज़ार, अकल, हाला, जंजीर, दरम्यान, तखत, रद्दी, बगसाइये, कबूल, मुलक, मुसाफिर, खास, दरार, खवास, ईद आदि। इन कवियों की विशेषता यह है कि केवल कुछ शब्दों को छोड़ कर सभी विदेशी शब्दों के प्रयोग हिन्दी के ढंग पर हुए हैं, जो उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट ही हैं। फ़ारसी और अरबी शब्दों को अपनाये जाने के जिस ढंग का निर्देश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दो सौ वर्ष बाद किया था वह इन कवियों की रचनाओं में पहले से ही मिलता है। तालव्य, ऊष्म ध्वनि के स्थान पर दन्त्य, मात्राओं की घटा-बढ़ी, 'स्वर-भक्ति' द्वारा संयुक्त व्यंजनों के बीच में स्वर-आयोजना जैसे खर्च ७ खरच, अर्ज ७ अरज, शर्म ७ सरम आदि तथा विदेशी शब्दों के वर्णों के नीचे से बिन्दु का लोप कर उन्हें हिन्दी का स्वरूप देकर अपनाया गया है।

प्रस्तुत कवियों में गंग और रहीम ने फ़ारसी-शब्दों के व्यवहार अपने काव्य में अधिक किये हैं। नरहरि, ब्रह्म और तानसेन में इनके प्रयोग कम हैं। इस सम्बन्ध में

कुछ उदाहरण यहाँ देना असंगत न होगा। नरहरि ने अपने एक, दो छंदों की भाषा बिल्कुल फ़ारसी रखी है। यहाँ उसका एक उदाहरण निम्नांकित है—

नेक बख्त दिल पाक सखी ज्वां मर्द शेर नर
अबल अली खुदाय दिया विसियार मुल्क ज़र
तुम खालिक बहु वेश शकुन सालिया अमालिम
दौलत बख्त बुलन्द जंग दुश्मन पर जालिम
इन्साफ़ तुरा गोयद खलककवि नरहरि गुफतन चुनी
बाबर न बरोबर बादशाह मन दिगर न दीदम दर दुनी ॥^१

तानसेन की रचनाओं के भक्ति-प्रसंग में फ़ारसी-शब्दावली से पूर्ण कई पद उपलब्ध होते हैं जिनसे तानसेन के इस्लाम-धर्म के संपर्क का परिचय मिलता है।

गंग की रचनाओं में फ़ारसी-शब्दावली के दो छंद उपलब्ध होते हैं^२ जिनमें प्रत्येक की दो पंक्तियाँ इसी प्रकार की हैं। निम्नलिखित छंद इसका उदाहरण है :—

एक समय घर से निकसी सखियान के संग सु सांवल सूरत
वाम्ज़ नार नमूद सनम वेताब शुदम अफ़जूद कदूरत
मुसकाय कै मो तन ताकि दियो तिरछी अखियां चितवन को भरूरत
होशम रफ़्त न मुन्द वदस्त शुदे दिल मस्त जिदीदने सूरत ॥^३

रहीम, अरबी, फ़ारसी, तुर्की तथा हिन्दी भाषाओं के पूर्ण पंडित थे। इन सब में उनकी समान गति थी। अपनी हिन्दी-रचनाओं में उन्होंने यत्र-तत्र फ़ारसी शब्दों के व्यवहार तो किये हैं किन्तु उनके कुछ छंदों की शब्दावली तो बिल्कुल फ़ारसी ही है :—

मी गुजरत ई दिलरा वे दिलदार
इक इक सा अत हमयूँ साल हजार ॥^४
कै गोयम अहवालम पेश निगार
तनहा नजर न आयद दिल लाचार ॥^५

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२८

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ३०

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७४

४ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७०

५ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७१

संभव है इन फ़ारसी-शब्दावली पूर्ण छंदों से दरबार के फ़ारसी-भाषा के कवियों, विशेषज्ञ, मुल्ला-मौलवी, अधिकारी-वर्ग तथा स्वयं शासक को आनंद-लाभ हुआ हो किन्तु हिन्दी भाषा-भाषी जनता के लिये ये छंद ग्रीक, लेटिन के सदृश ही दुरूह हैं। हां, इनसे प्रस्तुत कवियों की भाषा-विविधता के ज्ञान का परिचय अवश्य मिलता है।

इन दरबारी कवियों की भाषा की कुछ विशेषताएँ भी द्रष्टव्य हैं। हिंदी के 'अर्धतत्सम' तथा 'तद्भव' शब्दों के ही अधिक प्रयोग हुए हैं। आधुनिक खड़ी-बोली हिन्दी की भांति 'तत्सम' शब्दों के प्रयोग का प्रायः निराकरण मिलता है। 'स्वर-भक्ति' 'स्वरागम', 'स्वर-संकोच' आदि द्वारा उनकी यह विशेषता प्रकट ही है। उदाहरणतया भक्त>भगत, पुरुषार्थ>पुरुषारथ, क्लेश>क्लेश, स्नेह>सनेह, रत्न>रतन, वर्ण>वरन, मुग्ध>मुगध, दर्शन>दरसन, मुक्त>मुकत, दीर्घ>दीरघ, लवण>लोन, पर-मेश्वर>परमेश्वर, अवधि>ओधि आदि। प्राकृत भाषा के कुछ शुद्ध प्रयोग भी इनमें से नरहरि की रचनाओं में मिलते हैं :—मित्र<मित्र, अखखर<अक्षर, कज<कार्य, अप्प<आत्मा, किचि<कीर्ति, विज्जु<विद्युत, दुज्जन<दुर्जन, समत्थ<समर्थ, पेम्म<प्रेम, पुहुप<पुष्प आदि।

पहले कहा जा चुका है कि प्रस्तुत दरबारी कवियों की रचनाओं पर ब्रजभाषा की सजातीय बोलियों—कनौजी, बुंदेली के भी प्रभाव पड़े हैं और यह उन कवियों की स्थानीय विशेषता और उनके देश-देशांतर के पर्यटन के फलस्वरूप कहा जा सकता है। ब्रज और कनौजी में 'अकारांत' संज्ञाओं के स्थान पर 'उकारांत' रूप प्रायः अधिक मिलता है। नरहरि के काव्य में मानु, धनु, पिताबु, चंदु, जसु, आजु, आदि; ब्रह्म के छंदों में प्रतिबिंबु, तपु, मेदु, जपु, बपु, तनु, कबु, आदि; गंग में धरु, संगु, साहसु, गंगु, नीरु, जनसु, जतनु आदि; रहीम ने भी आजु, काजु आदि कनौजी रूपों के व्यवहार किये हैं। कनौजी के भूतकाल का रूप 'हुतै' अथवा 'हुतौ' का प्रयोग भी मिलता है—

'आवत हुतौ शिव सैल ते गिरीश जांचे मिल्यौ हुतौ मोहि जहाँ सागर सगर को',

हुती लरिकाई, ता दिन में तंदुल हते (गंग)

हुतो कहि कौन को, लोगनि में हुती खांची (ब्रह्म)

बुन्देलखण्ड का प्रभाव गंग और रहीम की रचनाओं पर पड़ा है :—

आनबी, सानिबी, बखानबी, जानबी आदि (गंग)

सराहिबी, काहिबी, लाहिबी, साहिबी आदि (रहीम)

बुंदेली के प्रथम पुरुष सर्वनाम 'में' का प्रयोग प्रस्तुत कवियों के काव्य में मिलता है—में अपुबल... (नरहरि), में तो मुन्यो हे, में तो जान्यो... (ब्रह्म), में वारी, में पायो री (तानसेन)। ब्रह्म के छंदों में ब्रज-भाषा के बीच एक-दो स्थलों पर अवधी की क्रियाओं का प्रयोग हुआ है—दूसरो आहि न दूसरो देखिए, भविष्य क्रिया के रूप दीवो, कीवो, पीवो आदि। गंग ने तकिवे, ढकिवे, बकिवे, लीवे, दीवे आदि अवधी-क्रियाओं के प्रयोग अपनी रचनाओं में किये हैं। राजस्थानी के कुछ शब्दों के प्रयोग भी इनमें से कुछ कवियों ने किया है। नरहरि के छंदों में बढ्ढे, लज्या, भज्या आदि; ब्रह्म के में बड्डी, बढी, जान्या आदि शब्द मिलते हैं। अरबी शब्द 'इजार' से—'इजारै लेत है' और फ़ारसी शब्द 'बख्श' से 'बगसाइए' हिन्दी-क्रियाओं के रूप बनाये गये हैं।

हिन्दी की खड़ी-बोली का भी उस समय विकास हो गया था और हिन्दी की ब्रज, अवधी, कनौजी आदि बोलियों की भाँति ही उसका भी प्रयोग जनता में प्रचलित था। मेरठ, मुजफ्फरनगर आदि तथा दिल्ली के आस-पास के प्रदेशों में इस बोली का विस्तार था। हिन्दी-भाषा के सम्बन्ध में पं० चन्द्रबली पांडे ने लिखा है :—

.....फिर भी अकबर के शासन में भाषा का महत्त्व कम नहीं हुआ बल्कि स्वयं अकबर के अपना लेने से उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गई। वह सचमुच भारत की राष्ट्र-भाषा बन गई। दक्षिण के बहमनी राज्य में उसे दफ्तर में भी जगह मिली और हिन्दी हिन्द की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई।... ..उसके (प्रजा) काम-काज, लेन-देन, वनिज-व्यापार आदि की भाषा वही भाषा थी। फ़ारसी की ज़रूरत तो तब नजर आती थी जब हुजूर के फरमान निकलते थे या हुजूर से किसी खास रहम की हाजत होती थी।^१

उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि दरबार के भीतर और बाहर राजकीय विशेष कार्यों के अतिरिक्त बोल-चाल के लिये हिन्दी-भाषा ही व्यवहृत होती थी। हिन्दी-भाषा की खड़ी बोली में फ़ारसी-अरबी शब्दों के भी प्रयोग होने लगे और हिन्दी का वह रूप 'रेख्ता' कहलाया। खड़ी-बोली हिन्दी के पहले कवि अमीर खुसरो थे जिन्होंने 'खालिकबारी' नामक कोष फ़ारसी, अरबी तथा हिन्दी-भाषा के अर्थों को स्पष्ट करने के लिये लिखा था और जिसका प्रचार देश-देशान्तर में किया गया।^२ अमीर खुसरो का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। हिंदी की खड़ी बोली का स्वतंत्र रूप में प्रयोग केवल कवि गंग की रचनाओं

१ कचहरी की भाषा और लिपि, पृष्ठ १२, १३

२ दि लाइफ एन्ड वर्क्स आव् अमीर खुसरो, पृष्ठ २३१

में मिलता है। इनकी 'चंद-छंद वरनन की महिमा' की भाषा खड़ी-बोली हिंदी है जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है। उक्त पुस्तक की कुछ पंक्तियाँ निम्नोद्धृत हैं—

‘सिद्धि श्री १०८ श्री श्री पातसाहि जी श्री दलपति जी अकबर साह जी आम खास में तखत ऊपर विराजमान हो रहे हैं और आम खास भरने लगा है जिसमें तमाम उमराव आय आय कुर्निश बजाय जुहार कर के अपनी अपनी बैठक पर बैठ जाया करें अपनी अपनी मिसल से। जिनकी बैठक नहीं सो रेसम के रस्से में रेसम की लूमें पकड़ पकड़ के खड़े ताजीम में रहे।.....इतना सुन के पातसाहि जी श्री अकबर साहि जी आद सेर सोना नरहरदास चारन को दिया। इनके डेढ सेर सोना हो गया रास वंचना पूरन भया। आमखास बरखास हुआ।^१

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि फ़ारसी के कुछ व्यावहारिक शब्द ही ग्रंथ में प्रयुक्त हुए हैं जिनका उसमें आ जाना स्वाभाविक ही था। क्योंकि फ़ारसी उस समय दरबार की राज्य-भाषा थी।

रहीम की 'मदनाष्टक' रचना की भाषा खड़ी बोली हिन्दी ही है। किन्तु इसमें संस्कृत के कुछ शब्दों के प्रयोग सविभक्तिक रूप में हुए हैं। इस रचना के कुछ छंद देखे जा सकते हैं :—

शरद निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
 सघन बन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई ॥
 रति पति सुत निद्रा साइयाँ छोड़ भागी।
 मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥
 जरद वसन वाला गुल चमन देखता था।
 मुक मुक मतवाला गावता रेखता था ॥
 श्रुति युग चपला से कुन्डल भूमते थे।
 नयन कर तमाशे मस्त हैं घूमते थे ॥^२

उक्त छंद में 'रेखता' का प्रयोग छंद विशेष के लिये किया गया है न कि भाषा के लिये। ग्रंथ में फ़ारसी-भाषा के प्रचलित रोशनाई, जरद, गुलचमन, जुल्फे आदि शब्दों के ही प्रयोग हुए हैं।

१ हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४८६

२ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७३

प्रस्तुत दरबारी कवियों की रचनाओं में भी इस प्रकार खड़ी-बोली के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं ।

रहीम की निम्नलिखित पंक्तियों में खड़ी-बोली के शब्द प्रयुक्त हुए हैं :—

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु सरासन दोय किया ।

गये गहेहि त्यागि के ताहि समै सुनि कै पिता वनवास दिया ॥^१

इस प्रकार इन कवियों की भाषा का मूल ढाँचा ब्रज-भाषा का ही है किन्तु उसमें अपनी मातृ-भाषा एवं विशेष प्रसंग, अवसर और संपर्क के अनुसार फ़ारसी, संस्कृत भाषाओं तथा राजस्थानी, अवधी, खड़ी-बोली आदि का मेल दिखाई देता है क्योंकि उस समय का आदर्श भाषा की पूर्ण शुद्धता न होकर भाषा के विविध प्रकारों का आवश्यकतानुसार चमत्कारपूर्ण संमिश्रण था ।

उपर्युक्त विवेचन भाषा को दृष्टि में रखकर किया गया है किन्तु कहां तक इन कवियों की भाषा काव्य-सौष्टव में सहायक हुई है उसका भी विचार करना आवश्यक है । उनकी भाषा में शब्द-चयन विषय के अनुकूल ही हुआ है । वाक्य-विन्यास सुव्यवस्थित है । काव्य में कोमला तथा उपनागरिका वृत्ति के प्रयोग बाहुल्य के साथ हुए हैं । तदनुसार उनकी भाषा में माधुर्य और प्रसादगुण अधिकांश रूप में मिलते हैं । कुछ स्थलों पर वीर एवं रौद्र भावाभिव्यक्ति में पुरुषावृत्ति का प्रयोग भाषा को ओजपूर्ण बना देता है । यह अवश्य है कि प्रत्येक कवि में सब वृत्तियां समान रूप में व्यवहृत नहीं हुई हैं । ब्रह्म और तानसेन की रचनाओं में पुरुषावृत्ति का अभाव है । इस सम्बन्ध के कुछ उदाहरण मनो-रंजक हैं ।

नरहरि के काव्य में हिन्दी के प्राचीन रूप का अधिक प्रयोग है । कहीं-कहीं पर प्राकृताभास हिन्दी का ही प्रयोग उनकी रचनाओं की विशेषता है । किन्तु कवि की अन्य स्थलों की भाषा भावाभिव्यक्ति में किसी प्रकार पीछे नहीं रही है । निम्नलिखित छंद इसका उदाहरण है :—

चरण कंवल केलि की सो सील गति वाल फूली फिरै बेलि मानों कुंदन कनक की
नरहरि सुकवि सुगन्ध सुष सपिन के मधुर मधुर मधु बानक बनक की

पूरब हद्द पछिम पहार दोउ बन किए विधि जानि अगाऊं
 इत सुमेरु उत चढ़त लंक हय मारि तेग नरपति सब नाऊं
 हिन्द ते षेदि पठान प्रग वर दल दलमलि दरियाय बहाऊं
 गज्जिहिं बहुरि जिति दिल्लीपति इमि हिंडोल रच्यो साहि हुमाऊं ॥२

निम्नलिखित छंद में भाषा का माधुर्य और प्रवाह अवलोकनीय है :—

जब ते नंदलालु चितै चलिगे संग ही चलि चेटकु सो कछु कीनो
नेकु जो देखो दिखाई जु मोहि सु देखे हियो हरिजू हरि लीनो
ब्रह्म भने तलफै दो नैन बिसेखेहि नीर ते न्यारे के मीनो
गण्ड गड़ आखिनि में सजनी बडडी आंखियानि बड़ो दुख दीनो ॥³

तानसेन के पदों में भाषा का माधुर्य और प्रसाद-गुण भली प्रकार सुरक्षित है :—

ओढ़े सारी प्यारी केसर की रंग छिरकी छिरकी
चितवन में वश कीन्ही मोहन को याते फिरत थिरकी थिरकी
अबीर गुलाल लिए भर मोरी रंग की कमोरी शिर ठिरकी ठिरकी
तानसेन सो फगुआ लीन्हों याते डोलत हिरकी हिरकी ॥४

निम्नलिखित पद अपनी माधुर्य-व्यंजकता के उदाहरणस्वरूप रखा जा सकता है :-

माई री महा कठिन भई मिल बिछुरे की पीर
घडी घडी पल छिन जुग से बीतन लागे नैनन भर भर आवत नीर

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४६

छंद संख्या ८

३ " "

३ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५०

४ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ८९

जब से प्यारो^१ भयो न्यारो कल ना परत मेरी वीर
तानसेन के प्रभु वेग आवन कीनो जियरा धरत नहीं धीर ॥^१

तानसेन के केवल एक पद में अकबर की वीरता-वर्णन में ओज गुण की थोड़ी सी
फलक मिलती है :—

ए आयो आयो बलवंत शाह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप औ अष्ट दिशा नर नरेन्द्र घर घर थर थर डर
निस दिन कर एक छिन पावे वरन न पावे लंका नगर
जहाँ तहाँ जोतत फिरत है सुनीयत है जलालदीन महम्मद को लसकर
शाह हुमायूँ को नन्दन चन्दन एक तेग जोधा तकवर
तानसेन को निहाल कीजै दीजो कोटिन जरजरी नजर कमर ॥^२

गंग की रचनाओं में पदों की उत्तमता सराहनीय है। प्रसाद, माधुर्य और ओज
गुणों का कवि के काव्य में सम्यक् निर्वाह हुआ है।

निम्नलिखित छंद कवि के प्रसाद-गुण का परिचायक है :—

बांधिवै को अंजलि बिलोकिबे को काल ढिग राखिवे के पास जिय मारिवे को रोस है
जारिवे कौ तन मन भरिवे कौ हियो आखें धरिबो कौ पगमग गनिबे कौ कोस है
खाइबे कौ सोंहैं भौहैं चढ़िवे उतारिवे कौ सुनिबे कौ तान ध्यान किए अपसोस है
वैरम के खानखाना तेरे डर वैरी वधू लीबे कौ उसास मुख दीबे ही कौ दोस है ॥^३

कवि ने माधुर्य-गुण का उदाहरण निम्नलिखित छंद द्वारा प्रस्तुत किया है :—

केस पर शेष दृग चलन पर खंजनी भौंह पर धनुष धरि सुरति सारों
दसन पर दामिनी कंठ पर कोकिला अधर पर बिम्ब रहि रहि सम्हारों
जंघ पर कदलि कटि छीन पर केहरी कुचन पर मेघ महा-मंड टारों
जोति पर जोति छवि अंगर पर गंग श्री राधिका नखन पर चन्द्र वारों ॥^४

वीर-रसोद्रेक में कवि गंग ने ओज-गुण का परिचय दिया है :—

१ देखिये, तानसेन के धुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १८१

२ " " " छंद संख्या १४६

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४०

४ " " " छंद संख्या १८२

प्रबल प्रचंड बली बैरम के खानखाना तेरी धाक दीपन दिसान दह दहकी
कहै कवि गंग तहां भारी सूर वीरिन के उमड़ि अखंड दल प्रलै पौन लहकी
मच्यो घमसान तहां तोप तीर वान चले भंडि बलवान किरिवान कोपि गहकी
तुंड काटि मुंड काटि जोसन जिरह काटि नीमा जामा जीन काटि जिमी आन ठहकी॥^१

शांत, शृंगार की रसाभिव्यक्ति में शब्द-सौष्टव का प्रदर्शन सहज है किन्तु वीर, भयानक में पद की उत्तमता को स्थिर रहना प्रत्येक कवि के लिये संभव नहीं है। गंग की इसी उपर्युक्त विशिष्टता को लक्ष्य कर निम्नलिखित उक्ति प्रचलित हो गई है--

उत्तम पद कवि गंग के उपमा में बलवीर ।

केशव अर्थ गम्भीरता सूर तीन गुन धीर ॥

रहीम ने अपने दोहों, बरवों, सोरठों में भाषा के प्रसाद और माधुर्य-गुणों का ही प्रदर्शन किया है। ओज-गुण का कवि की रचनाओं में अभाव है।

प्रस्तुत कवियों ने मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भी अपनी भाषा को सजीव बनाया है। यहाँ उनके कुछ प्रयोग दिये जाते हैं।

नरहरि

पछितह बहुरि कर मिडिबै, एक पंथ दुइ काज, जरेउ पर जस लोन, सर्प मुख
अंगुलि मेल्लहि, मट्टिहि मिले, पान दे विदा करिय आदि ।

ब्रह्म

गड़ गए आँखिन में, दाहिनो नयन फरकि उख्यो, वामन ज्यों यह रैन बड़ी है,
अपने घर को पनिओ पहिचानत बाहर डारत दूध फुही है, घूर वघूरे को पात भयो हों,
जीभ गहौं, उर आनतु नाहिन, अपनो करि के नहि राखतु, चित्त आइ
परे आदि ।

तानसेन

सिन्दूर माँग दीजिए, पावड़े विछाउंगी नयन पलन, जो लौ जमुन गंग पानी,
ताके पायन शीश टेकौंगी, जादू सो कीनो, जो लौ ध्रुव मेरु तारो, गावत है सब गारी,
गिनत बीते मोहे सब निसि तारे, सौंहे खात आदि ।

गंग

भए दोउ नैन जहाज को पच्छी, दोउ भये राजी तो काजी कहाकर है, मीठो पर

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४४

जोड़ खेए सोइ सब सीठो लागै, छीर छांड़ि छाछ पिये सोइ खाटा खाइगो, मौसिया सों ननसार की बातें, खर गुर जहाँ पटंतरौ, अन्धे आगे आरसी, पानी में भिलायगो लोन सो, दियो घाइनि में नोन है, एक हय की बटाउनी, गाहक ते गयो तो गुसाईँ ही सो गयो, पीठ दिखाये आदि ।

रहीम

बरसत मेघ मूसरधार, रहै प्रान परि पलकनि, पीर पराई जानै, बौरी बांझ न जानै व्यावर पीर, पर्यौ उड़ावन मोकौ सब दिन काग, भरयो हिय सांसन आंसुन नैन, पलक न टारै बदन ते, मन हाथ दै, पलक न मारे चित्त आदि ।

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में लान्छनिक प्रयोगों के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं । इनके द्वारा इन कवियों ने निर्जीव पदार्थों को मूर्तिमत्ता प्रदान की है । जैसे फटि-फूटि पठान दल, बाल फूली फिरै आदि (नरहरि) ; गात जरै चिनगारी, मन तोहि अजीरन नाही, सुन्दरता वरषै वरषा सी, विलोकि विलोकि हंसै परछाही, जोन्ह जु सीस चढ़ी है कमला अब नाची आदि (ब्रह्म) ; भूमि भूमि चहुं ओर बरसत मेह आदि (रहीम) ।

इस प्रकार इन दरबारी कवियों की भाषा उनके काव्य के बाह्य-पक्ष को पुष्ट करती है । उसमें शब्दों के ऐसे तोड़-मरोड़ नहीं मिलते जिनसे शब्द का अर्थ-ग्रहण न किया जा सके । प्रसंग-वश कुछ शब्दों के रूप अवश्य विकृत हैं किन्तु बिना विशेष प्रयास के ही उनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है । अधिकांश शब्द सरल और व्याकरणसम्मत ही हैं । जैसे गंग द्वारा प्रयुक्त 'गेहरा' (गृह) के सादृश्य पर बना हुआ 'नेहरा' (स्नेह) शब्द । दोनों शब्दों में प्राप्त 'रा' अक्षर लघुतावाचक है ।

छन्द-योजना

काव्य और संगीत का घनिष्ठ सम्बन्ध है । काव्य की छंदोबद्ध रचना संगीतगत नाद-सौंदर्य पर आश्रित रहती है । कविता में जब तक लय, तुक आदि का सम्यक् आयोजन नहीं रहता उसका समुचित प्रभाव नहीं पड़ता । अलग-अलग छन्दों में विशेष ध्वनियों का अगम होता है जिसके कारण भावाभिव्यक्ति के लिये छन्द-विशेष का प्रयोग किया जाता है । कभी-कभी बिना किसी प्रकार के छन्द-ज्ञान के ही हृदय में कविता को सुनते ही क्रुणा, विषाद, क्रोध, वीर आदि भाव जाग्रत हो उठते हैं । इससे भी भावाभिव्यक्ति के लिये छन्द-विशेष का महत्व स्पष्ट होता है । शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' नाटक का पात्र 'केलीबन' मानवोचित गुणों से शून्य होते हुए भी 'एरियल' की संगीत-ध्वनि से प्रभावित

हो सुख-निद्रा में निमग्न हो जाता है। 'मर्सिया' के सुनने पर शोक की अनुभूति होती है। 'आल्हा' के छन्द मनुष्य में वीर-भाव का संचार कर देते हैं। इसीलिये विशेष भावों को व्यक्त करने के लिये भिन्न-भिन्न छन्दों का आश्रय कवि लोग लेते हैं। वीर-भाव की व्यंजना जितनी सुन्दरता के साथ छप्पय, घनाक्षरी छन्दों में होती है उतनी ही उत्कृष्टता के साथ भक्ति, शृंगार, नीति आदि विषय दोहा, सवैया चौपाई आदि छन्दों में प्रतिपादित किये जा सकते हैं। संस्कृत-कवियों की रचनाओं में भी भावाभिव्यक्ति के लिये विशेष छन्दों के प्रयोग मिलते हैं। वीर-रस के वर्णन में अनुष्टुप, वंशस्थ, स्तुति के लिये शिखरिणी, खगधरा, भुजंगप्रयात आदि छन्दों के प्रयोग किये गये हैं।

छन्दों में लय और तुक प्रधान तत्त्व होते हैं। लय छन्दों के वर्णों और मात्राओं पर निर्भर करता है और इसी आधार पर हिन्दी में मात्रिक और वर्णिक छन्दों का विभाजन हुआ है। आधुनिक-हिन्दी-काव्य में अंगरेजी के प्रभाव से अतुकांत कविता की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है किन्तु इनमें भी लय और स्वर का पूरा आयोजन रहता है। हिन्दी की प्राचीन कविता मात्रिक और वर्णिक छन्दों में ही लिखी मिलती है। व्रज-भाषा-काव्य में कवित्त, सवैया और अवधी में दोहे, चौपाई, बरवै छन्दों के विशेष प्रयोग मिलते हैं।

प्रस्तुत दरबारी कवियों ने अपनी रचनाओं में उक्त प्रकार से ही छन्दों का आश्रय लिया है। नरहरि, ब्रह्म, तानसेन आदि सभी कवियों ने छन्दोबद्ध तुकांत रचना की है। तानसेन की रचनाओं के कुछ पदों में अवश्य थोड़ी स्वच्छन्दता देखने को मिलती है। यह उनके संगीतात्मक स्वरविस्तार के कारण है। उनके ताल और स्वरों के आयोजन में यह स्वच्छन्दता स्वाभाविक लालित्य का समावेश करती है। इसमें आधुनिक काव्य के छन्दों की स्वच्छन्दता का मूल-संकेत मिलता है। किन्तु तानसेन के इस प्रकार के छन्द अतुकांत नहीं हैं।

नरहरि ने छप्पय, सवैया, कुंडलिया, कवित्त, दोहा छंदों के प्रयोग अपनी रचनाओं में किये हैं किन्तु इन सब में छप्पय छंद ही कवि को विशेष प्रिय है। इसी में कवि की अधिकांश रचना उपलब्ध होती हैं। कवि-द्वारा वर्णित अनेक संवाद, नीति, उपदेश, भक्ति तथा कुछ स्थलों पर ऐतिहासिक तथ्यों के निरूपण 'छप्पय' में ही हुए हैं। वीरभाव की व्यंजना सवैया में मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि अपने पूर्व की विशेष रूप से चन्द कवि की रचनाओं की ओर आकर्षित नहीं हुआ था अतः यथा छप्पय छंद के विशेष

प्रिय रहने पर भी वह सवैयाओं में वीर-भाव व्यक्त न करता। शृंगार, ऋतुवर्णन आदि के लिये कवि ने सवैया छंद के सफल प्रयोग किये हैं। नीति, उपदेश की अभिव्यक्ति दोनों और कुंडलियों में भी हुई है। रूप-सौंदर्य-वर्णन में कवित्त को अपनाने की प्रवृत्ति कवि में दृष्टिगत होती है।

कवि के कई छंदों में वर्णों और मात्राओं की घटाबढ़ी झलकती है किन्तु यह कवि का दोष न होकर लिपिकारों का दोष कहा जा सकता है। यहाँ एक इस प्रकार का उदाहरण दिया जाता है :—

खोज मोनदी पीर सुनहु विनती करै नरहरि
नरहरि विनती क्या करै हिंदू तुरक समेत पाय पयादे जगत
गुरु जानत हो केहि हेत चेति उत्तम जस लिज्जै
उचित पुत्र फल वेगि साहि अकबर कह दिज्जै
चिरंजीव पितु सहित पुहुमि राखै करतरहरि ॥^१

यह वास्तव में कुंडलिया छंद है जिसका शुद्ध रूप इस प्रकार है :—

खोज मोनदी पीर सुनहु विनती करै नरहरि
नरहरि विनती क्या करै हिन्दू तुरक समेत
पाय पयादे जगत गुरु जानत हो केहि हेत
जानत हो केहि हेत चेति उत्तम जस लिज्जै
उचित पुत्र फल वेगि साहि अकबर कहँ दिज्जै
चिरंजीव पितु सहित पुहुमि राखै करतरहरि
खोज मोनदी पीर सुनहु विनती करै नरहरि ॥

ब्रह्म की उपलब्ध रचना में सवैयाओं का ही अधिक प्रयोग मिलता है। कुछ स्थलों पर प्रकृति और शृंगार से चित्रण में कवित्तों का प्रयोग हुआ है। कवि के दो सौ छंदों में केवल सात कवित्त ही उपलब्ध हुए हैं। भक्ति, नीति, उपदेश, शृंगार आदि विषय सवैयाओं में ही वर्णित हैं। कवि के तीन दोहे वीरवल के नाम से उपलब्ध होते हैं जिनमें पहेली का बुझावल दिया गया है :—

राधी तो गलती नहीं बिन राधी गल जाहि, कही पहेली वीरवल सुनिये अकबर साहि ।
कर बोले कर ही सुने खवन सुने नहिं ताहि, कही पहेली वीरवल सुनिये अकबर साहि ॥^२

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९

२ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८५

तानसेन की रचनाएँ पद्यबद्ध ही हैं। ये सब पद तुकान्त और लय-स्वर में बँधे हुए हैं, किन्तु कुछ पदों में छंद की स्वच्छन्दता भी उपलब्ध होती है जिसका पहले संकेत किया जा चुका है। यहाँ पर उसके कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं :—

शुभ नखत तखत बैठो राजत

छाजत है सब मूलक खलकेज विधना किए

सब छत्र धरे ते लागे सब सेवा करन

धन धन चक्रवर्ती नरेश अकबर

दुख हरण तानसेन ऐसो सुरपुरी नर नरेन्द्र नरन ॥ १

अन्य—

जे गुणीजन गुरु पावै गावै नीकी तान गुण सो रिझावै

जब बजावै बीन अच्छी नीकी परमाण सोच समस्त तान लेत

ध्यान धरत जिय में जब सुर संगत पावै

द्वरन मुरन सो वाको समस्त आवै

सात तीन इकईस बाइसी लाग ठाट खुली मुदी दरसावै

सप्त अध्याय संगीत मत करके तब तानसेन प्रभु को रिखावै ॥२॥

गंग ने कविता, सर्वैयों तथा कुछ छप्पय और दोहों में अपने भाव व्यक्त किये हैं। भक्ति, शृंगार नीति उपदेश के अधिकांश वर्णन सर्वैयों तथा वीर-भाव कविता और छप्पय में ही विशेष रूप से आये हैं।

रासो-पद्धति पर विरचित वीरभाव का एक छप्पय देखिये :—

गुज्जरेश गंभीर नीर नीम्बर निम्भरियो

अति अथाह दाऊद बुन्द बुन्दन उब्बरियो

धाम घंट रघुराय जाम जलधर हरि लिखिव

हिन्दू तुरक तलाव कोन कर्दम बस किन्निय

कवि गंग अकब्बर अक्कि भनि नृप मियान सब बस करिय

राणा प्रताप रयणांक मंक्त छण दुब्बत छण उच्छरिय ॥³

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १३३

२ " " " पद संख्या १४०

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५८

किन्तु केवल एक-दी छप्पयों में ही उक्त पद्धति का निर्वाह मिलता है। अधिकांश स्थलों पर छप्पय में वर्णित वीरभाव स्वाभाविक रूप में ही मिलता है। कवि के कवित्त, सवैया, दोहा आदि छंदों में गति-भंग दोष नहीं मिलता यह उसकी विशेषता है। छंदों और पदों की उत्तमता सर्वत्र बनी रहती है।

रहीम की रचनाओं में छंदों का वैविध्य द्रष्टव्य है। कवि ने दोहा, सोरठा, बरवै, कवित्त, सवैया तथा संस्कृत के मालिनी छंदों के प्रयोग अपनी रचनाओं में किये हैं। कवि के नीति, उपदेश तथा नगर-शोभा रचना दोहों में, नायिका-भेद बरवै में, शृंगारिक रचना सवैया और सोरठा में, 'मदनाष्टक' रचना संस्कृत के मालिनी छंद में मिलती हैं। समस्त रचनाओं में दोहों और बरवों के ही अधिक प्रयोग मिलते हैं। रहीम को दोहा छंद का चमत्कार भी अच्छी तरह से विदित था :—

दीर्घ दोहा अरथ के आखर थोरे आहिं ।

ज्यों रहीम नट कुंडली सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं ॥^१

कवि ने उक्त गुण को अपने दोहों में प्रमाणित भी किया है। दोहों के बाद बरवै ही कवि का विशेष प्रिय छंद ज्ञात होता है। नवीन-नवीन छंदों का आयोजन कवि का लक्ष्य था और इसका पर्याप्त संकेत 'नायिका-भेद' के आरंभ में दिये गये कवि के निम्नलिखित छंदों से लग जाता है :—

कवित्त कह्यो दोहा कह्यो तुलै न छप्पय छंद ।

विरच्यो यहै विचारि कै यह बरवा रस कन्द ॥^२

'बरवै' छंद की प्रशंसा भी कवि ने की है :—

बेधक अनियारो बड़ो समुझै चतुर सुजान ।

सुनत जात चित्त चाव पै यह बरवै के बान ॥^३

बरवै छंद की प्रेरणा कवि को अपने दरबार के किसी साधु से मिली थी जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इससे ज्ञात होता है कि रहीम के पूर्व बरवै लिखने की परंपरा थी। रहीम की प्रेरणा से ही संभवतः तुलसी ने अपनी 'बरवै-रामायण' की रचना की थी जिसका संकेत पीछे किया जा चुका है। रहीम ने उपर्युक्त छंद में छप्पय

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १०

२ " " पृष्ठ ४०

३ " " पृष्ठ ४०

रचना का भी उल्लेख किया है किन्तु कवि की रचनाओं में छप्पय के उदाहरण अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। कविता, दोहा, सोरठा, सवैया तथा पदों में ब्रज-भाषा और वरवै के लिये अवधी का आश्रय कवि ने लिया है, जिस पद्धति का अनुसरण उसके परवर्ती कवियों में मिलता है। वर्य विषय का भी विभाजन छंदों के अनुकूल हुआ है। वरवै जैसे छोटे छंद में भावों की विशद व्यंजना, अर्थ-गंभीरता तथा विषय का सम्यक् निर्वाह कवि की उत्कृष्ट काव्यकला का परिचायक है। अपनी छंदोबद्ध कविता में रहीम ने लयस्वर-संधान तथा तुकादि का पूरा ध्यान रखा है।

इस प्रकार प्रस्तुत दरबारी कवियों की रचनाएँ छंदोबद्ध काव्य की सुन्दर उदाहरण हैं। इन कवियों ने परंपरागत रूप में ही छप्पय, दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त, सोरठा, कुंडलिया आदि छंदों के ही अधिक प्रयोग किये हैं। छंदों के प्रयोग में शब्दों की तोड़-मरोड़ में इन्होंने पूरी स्वच्छन्दता ग्रहण की है।

अलंकार-प्रयोग

आचार्य दंडी के मतानुसार काव्य की शोभा को बढ़ाने वाले गुणों को अलंकार कहते हैं—“काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।”^१ इसीलिये भाव, वस्तु, रूप, गुण तथा क्रिया की तीव्रता का अनुभव कराने वाली युक्ति को अलंकार के नाम से कहा जा सकता है। अलंकारों को ही काव्य का सर्वस्व तथा ‘भूषण बिन न विराजई कविता बनिता मित्त’ की उक्ति मानने वाले आचार्य केशव ने भी एक स्थान पर किसी कामिनी की कमनीयता के वर्णन में यह स्वीकार करते हुए कि यदि वास्तविक सौंदर्य हो तो वहिरंग अलंकार अनावश्यक है, कहा है:—

भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करेउ होहिं आंजी ऐसी आंखै केसवराय हिय हारे हैं
काहै को सिंगारि कै बिगारति है मेरी आली तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं ॥^२

आभूषणों का यह तिरस्कार आचार्य केशव के मुख से निकलकर यही सिद्ध करता है कि आभूषण निश्चित सीमा में परिवद्ध होकर ही सौंदर्योद्दीपन में सहायक हो सकते हैं। यदि वे सीमा-उल्लंघन कर डालें तो लावण्य-वृद्धि के स्थान पर सौंदर्य-हास होने लगेगा। यद्यपि केशव ने स्वयं कविता-कामिनी के प्रत्येक-अंग को अलंकाराच्छादित कर उसके स्वाभाविक सौंदर्य का लोप कर दिया। हिन्दी के अधिकांश भक्तिकालीन कवियों की रचनाओं में अलंकार-योजना, भाव-सौंदर्य तथा

१ काव्यादर्श, परिच्छेद २, सूत्र संख्या २२०

२ कवि-प्रिया, छंद संख्या १२

रूप, गुण, वस्तु आदि का सरलतर बोध कराने के लिये ही हुई है। अलंकारों का सीधा सम्बन्ध भावों की अभिव्यञ्जना से रहता है। किन्तु वे माधुर्य-संयोजक भी होते हैं।

प्रस्तुत दरबारी कवियों की रचनाओं में नरहरि की अलंकार-योजना स्वाभाविक रूप में हुई है। इनमें किसी प्रकार के चमत्कार-प्रदर्शन का लक्ष्य ज्ञात नहीं होता। प्रायः इनके उपमान जीवन के स्वाभाविक चित्रों से सम्बंध रखते हैं। 'ब्रह्म' अवश्य अलंकार-वर्णन द्वारा कहीं-कहीं पर भावों को क्लिष्ट बना देते हैं और उनसे वस्तुओं का स्वाभाविक बोध नहीं हो पाता। इसलिये कहीं-कहीं पर उनका ध्येय अलंकारों द्वारा चमत्कार-सृष्टि करना प्रमुख ही हो जाता है। तानसेन के पदों में अलंकार-छटा मधुर रूप में दिखाई पड़ती है। इन्होंने भावों के स्पष्टीकरण के लिये ही इस युक्ति का आश्रय लिया है। गंग इस दिशा में मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं। अलंकारों के प्रयोग से कहीं-कहीं पर भावों की व्यञ्जना सरल हो गई है और कहीं पर भाव दब गये हैं। इनमें केवल रहीम एक ऐसे कवि हैं जिनमें अलंकार-प्रयोग बहुत ही स्वाभाविक ढंग पर हुआ है। इन सभी कवियों ने परंपरागत अलंकारों को ही अधिकतर अपनाया है। शब्दों में चमत्कार लाने के प्रयास में इन्होंने कुछ स्थलों पर कई शब्दालंकारों के आश्रय भी ग्रहण किये हैं।

सर्वप्रथम यहाँ पर नरहरि की रचनाओं में प्रयुक्त अलंकारों पर दृष्टिपात किया जायगा।

नरहरि ने अर्थालंकार के अन्तर्गत सादृश्यमूलक अलंकारों का विशेष आश्रय लिया है। इनमें भी उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक प्रधान हैं।

निम्नलिखित छुप्पय में कवि ने जग-जलनिधि 'रूपक' का सम्यक् निर्वाह किया है :—

जगु जलनिधि जल मोह महा त्रस्ता तरंग धर
तट दुहु दिशि मदमान लोभ अज्ञान भवैर भर
काम क्रोध अति जंतु गहि करवर छल बोरहि
मन विलास वह पवन कलुष ववंडर म्कमोरहि
लै विषम सत्रु तेहि माँस पर कहि नरहरि केहि संभरइ
पुरुषोत्तम परम कृपाल विन एहि अवतथ को उद्धरइ ॥^१

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९१

चरण कमल केलि की सी शील गति वाल फूली फिरै बेलि मानो कुंदन कनक की
नरहरि सुकवि सुगंध संग सखिन के मधुर मधुर मृदु वानक वनक की ॥११

फनपति गय परभरहिं जलधि उच्छलहिं छंडि कुमु
उड़िराज परिहरिअ भुअन भए ते सुर सकल संभु समु
निसु दिन बिछुरहि चक्र कवँल सकुचहिं राति भंपहि
धूम समुक्ति अरि नृपति भभरि भजिहिं तन कंपहि
नचहि मऊर नरहरि निरषि सो दुरंग अनवन वरन
दलु चलत अकवर साहि को सो गिरि वन धन असरन सरन ॥२

चोटी गहि द्रौपदी निम्नोरिवे को ठाढ़ी कीन्हौ कोपि कह्यो सुमिरि सहाय कौन करिहै
ऐसे में अनाथन की और कौन सुध लैहै मोर पक्ष धरिहै सो मोर पक्ष धरिहै ॥³

कुटिल कुरूप कुजाति कुवंदसि कंस दासि दासिहु ते सुवरि
देखत मन अति विकृत चकृत रहे गति काहू ते न उवरि

॥ , छंद संख्या १२९

नरहरि जानि जानि सो मानि तिविक्रम जानिब प्रभु दयाल इह दुवरि
तब बनि ठनि आइ सकल जु अति त्रिभुअन गर्व गवावति कुंवरि ॥^१

छेकानुप्रास का भी कवि ने उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

नरहरि सुकवि सुगंध संग सखिन के मधुर मधुर मृदु बानिक बनक की ॥^२

प्रस्तुत कवियों में ब्रह्म ने अलंकारों के प्रयोग में अपनी विशिष्टता प्रदर्शित की है। संकेतित-वस्तुओं के लिये नवीन उपमानों के दिग्दर्शन में कवि ने अपनी सूक्ष्मता का परिचय दिया है।

निम्नलिखित छन्दों में कवि ने 'उत्प्रेक्षा' अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है :—

सेज ते ठाढ़ी भई उठि बाल लई उलटी अंगराय जंभाई
रोम की राजी विराजी विसाल मिटी त्रिवली अरु पीठ खिलाई
बेनी परी पग ऊपर पाछे ते ब्रह्म यहै उपमा उर आई
लोक त्रिलोक के जीतिवे कारन सोने की काम कमान चढ़ाई ॥^३

उक्त छंद में नायिका के स्वर्ण-सदृश देह को कमान और वेणी को प्रत्यंचा दिखाकर कवि ने कमनीय-कल्पना का निदर्शन कराया है।

देह के लिये 'दीपशिखा' की उपमा में भी कवि ने अद्भुत कल्पना दिखाई है :—

बैठी अन्हाय बनाइ विरंचि की सुंदरता वरषै वरषा सी
कंज से आनन खंजन लोचन कोऊ कहै कटि आहि मृषा सी
ब्रह्म भनै नंदलाल विलोकति लागि रही लट लागि त्रिषा सी
मीनै दुकूल में साई मलामलै देह दिपै दुति दीपसिषा सी ॥^४

उत्प्रेक्षा अलंकार में कवि ने अप्रस्तुत-योजना का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

सीय स्वयंवर श्री रघुनाथ जू चाप चढ़ावन को पशुधारे
ताहि विलोकन को बनिता कवि ब्रह्म भनै सब रूप उज्यारे

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५

२

”

”

छंद संख्या ४६

३ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या २९

४

”

”

छंद संख्या ४३

यों उम्मेके झुकि झंकि झरोखन ठाढ़ी तहां मुख जोति अपारे
सोहत मानो जराय के मन्दिर सों बंधी चन्द की बन्दन वारे ॥^१

कवि की निम्नलिखित पंक्तियों में भी उत्प्रेक्षा का मौलिक उदाहरण आया है :—

ब्रह्म सुवेसरि को मुक्ता पिय लोचन के दिग यों छवि पावै
मनो सरदिंदु अमी लिये विंदु चक्रोर की चोंच में चारो चुगावे ॥^२

नीचे के छंद में हेतूप्रेक्षा और वृत्त्यनुप्रास की सुन्दर छटा देखने को मिलती है :—

सीतलता सुत अंग पियूष पियूष में अंग समुज्ज्वल कातो
राधिका कान्ह वियोग अगिनि गगन्न वर्यो सुभयो रंग रातो
ब्रह्म भनै जु जलन्निध जात सु जुगे न होतो तो ततो बरि जातो
तो तनु तेज तप्यो तरुनी ताते लागतु तोहि तमीपति तातो ॥^३

‘प्रतीप’ अलंकार द्वारा कवि ने कृष्ण की बाल-रूप-माधुरी की तीव्रता का बोध कराया है :—

नंद अनंदित हूँ जलपे कलपे अति ही गति गातन की
पद पानि मिले दृग आनंद सो छवि छीन लई जल जातन की
ब्रह्म भनै चुचकारि कहे मोहि लागति हे तुतरातन की
छंगना मगना अंगना विहरो बलि जाइ बबा इन वातन की ॥^४

‘संदेहालंकार’ का प्रयोग विप्रलम्भ-भाव का तीव्र अनुभव कराने के लिये किया गया है :—

काल के कान्ह गये मथुरा मनौ बीत गये जुग वासर सै
विरहागिन काम लगाइ दई है दसो दिस देखि यही दरसै

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८७

२ " " " छंद संख्या ४६

३ " " " छंद संख्या ५५

४ " " " छंद संख्या ९७

कवि ब्रह्म भनै मोहिं जान पड़ै सखि स्याम घटानल सो परसै
विरही वर बारही बार उठे दृग नीर किधों घन धों वर ॥^१

रूप-सौंदर्य-वर्णन में कवि ने 'उपमा' के साथ 'अनन्वय' का भी आश्रय लिया है :—
चंदन सी चंद सी हे सीरीं घनसार सी है सुमन सुवासहूं ते भई भोन भान सी
ब्रह्म भने पेखत पियूष सी हो परसत प्रान सो पावत सब सुख की निधान सी
कहाँ लगि कहौं हुती आपनि ही आप ही सी बिछुरे ते विपरीत भई आपु आन सी
में तो जान्यो बनि के मदन वान वारि हे पे याहो को बनाइ हीए लागी हिये वान सी ॥^२
'शब्दालंकारों' द्वारा भी कवि ने काव्यछटा बढ़ाई है । इनमें अनुप्रास, यमक
के विशेष प्रयोग हुए हैं ।

निम्नलिखित छन्द में वृत्त्य तथा छेकानुप्रास की छटा द्रष्टव्य है :—

जोहित ज्यान्यो नहीं जगदीस कह्यो चहे तोरी नहीं जम जेलहिं
ब्रह्म भने मनि दूर के क्रूर तूं धूरि क्यारिन वार सकेलहिं
दूसरो पेड़ों न हूँ न आहि रे पेड़े को पाइ पहारन पेलहि
खेलत खेलत खेलहिगो अब खेल मुखेलु जु खेलन खेलहिं ॥^३

निम्नलिखित पंक्तियों में 'यमक' के प्रयोग द्वारा कवि ने काव्य को साधुर्य-व्यंजक बना दिया है :—

परिचाह करेगी तो चाह न पावैगी — हैगी तू कि नहीं चहियै
कवि ब्रह्म कहै कवि वै जु सिधारत न कहौ, तोसों को कहियै ॥४

अन्य,

हे गय जीरन हू गए हेरे ते हारि न मानी बहारि पराहीं
बनिता बनिता रसु जीरनु में तू तऊं बनि के निरखे परछाहीं
पायो सो जीरन ब्रह्म भयो पहिरे पट जीरन है फट जाहीं
जीरनु के तनु जीरनु तू है अजो मन तोहि अजीरन नाही ॥^५

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५१

२ " " " " छंद संख्या ४५

३ " " " " छंद संख्या २९

४ " " " " छंद संख्या ५२

५ " " " " छंद संख्या ६०

निम्नलिखित वात्सल्य-वर्णन में कवि ने 'करतार' शब्द में यमक का उदाहरण प्रस्तुत किया है :--

ब्रह्म भने मुनि मोन ही के मन मारत नेक मनो न मनायो,
कितो बड़ो भाग जसोमति को करतारु दै दै करतारु नचायो ॥^१

कवि ने कुछ अन्य स्थलों पर भी अनुप्रास तथा यमक की छटा प्रदर्शित की है। तानसेन की रचनाओं में भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिये ही अलंकारों के प्रयोग हुए हैं। अलंकारों द्वारा चमत्कार-प्रदर्शन कवि का लक्ष्य नहीं है। काव्य के कुछ स्थल अनुप्रास-प्रयोग से श्रुति-मधुर और माधुर्यव्यंजक अवश्य हो गये हैं।

नायिका के रूप की ता का बोध कराने के लिये कवि ने 'प्रतीप' का आश्रय लिया है :--

एरी तू अंग अंग रानी अति ही सयानी री तू पिय मन मानी री तू
सोलह कला समानी बोलत अमृत बानी तेरी मुख देखे चन्द जोतहु लजानी री तू
करि केहर कदली जंघा नासिका पर कीर वारों श्रीफल उरोजन की छवि आनी री तू
तानसेन कहे प्रभु दोऊ चिरंजीवी रहो तेरी नेह रहे जो लों गंग जमुना पानी री तू ॥^२

कवि ने वैसे तो कई स्थलों पर 'व्यतिरेक' द्वारा भावोत्कर्ष किया है परन्तु निम्न-लिखित पद में हेतुप्रेक्षा के साथ इसकी योजना सुन्दर है :--

तुअ मुख और चन्द्रमा विरंचि तुलाकारी तोल्यो ओछो
आकाश गयो धुकि धरनी रही निकाई को भारो भरो री पला
याही ते ससी घटत बढ़त है देखि देखि तेरो बदन निर्मला
तो सम नाहिन पूजीये सब मिलि कलंकी नाम
धरयो निसि भ्रमत फिरत न रहे अचला
तानसेन प्रभु सरस वस कर लीयो रूप आगरी रूप कला ॥^३

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८८

२ देखिये तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ८७

३ " " " " पद संख्या ८१

निम्नलिखित पद में 'प्रतीप' के साथ 'अनन्वय' अलंकार का भी आश्रय रूप की तीव्रता का बोध कराने के लिये किया गया है :—

मन मोहन मन मानी याते तू प्रवीण सयानी
मुन्दर वदन चन्द्रकला लजानी तोसी तुही तिया औ नाही त्रिहू लोक सानी
तानसेन चिर चिरंजीवो ऐसी प्रीत रही जो लो जमुन गंग पानी ॥^१

अन्य पदों में भी 'तोसो तुही और दूजो नाही,' 'तुमहि सो तुम' आदि शब्दों द्वारा 'अनन्वय' का आश्रय कवि ने लिया है।

रूप-सौंदर्य के वर्णन में उत्प्रेक्षा का कवि ने कई स्थलों पर प्रयोग किया है। निम्न-लिखित पंक्तियों में कवि ने नवीन उपमान के साथ उत्प्रेक्षा अलंकार का दिग्दर्शन कराया है :—

एरी हो रीझ देख भोर ही उठके प्यारी कजरा दग दोउ कर सों लागे मलन
पुन या छवि सों ऐंडात जंभात नीर वही मानो कमल मध ते अलक सुत छुट लागे चलन ॥^२

निम्नलिखित पंक्तियों में 'निदर्शना' अलंकार द्रष्टव्य है :—

तेरो आली रूप पिय के तन को खिलौनो निश दिन लिए रहत संग
तानसेन प्रभु प्रवीण के चित्त चढ़ी एसो जैसे ईश शीष बसत गंग ॥^३

शब्दालंकारों में अनुप्रास की छटा ही कवि ने प्रदर्शित की है। यमक, श्लेष, वक्रोक्ति के उदाहरण तानसेन की उपलब्ध रचनाओं में नहीं मिलते।

निम्नलिखित छन्दों में कवि ने वृत्त्यनुप्रास की मधुरता व्यंजित की है :—

री या तन को मत कर मान मन में नहीं चाहे मन मन करत हो मान
मानो मेरी मति मोहनी माननी मो मति मति मन में मानी मत करो मोहनसों मान
मुर मुर चितवत मन ही मन भावन को माधो मुकुन्द वै है मथुरापति मुरारि नन्ददान
मान री मान मेनका सी माधुर्यता तानसेन प्रभु मन मोहन को मान ॥^४

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ७९

२ " " " पद संख्या ७१

३ " " " पद संख्या ६२

४ " " " पद संख्या ९६

गंग ने अधिकांश स्थलों पर अलंकारों को चमत्कार-विधायक रूप में ही प्रस्तुत किया है। भाव, वस्तु, रूप आदि की तीव्रता का बोध कराने के लिये अलंकार-प्रयोग कुछ ही स्थलों पर हुए हैं।

कवि के उत्प्रेक्षा के कुछ उदाहरण स्वाभाविक हैं :—

मनि मनमोहन के कंठ में यो मलकत जानिये जुन्हैया जमुना में फैल गई है ॥^१

श्वेत-मणि की माला कृष्ण के गले में यमुना पर चन्द्र-ज्योत्स्ना के सदृश ज्ञात होती है। वस्तुत्प्रेक्षा का यह सुन्दर उदाहरण है।

उत्प्रेक्षा का कवि ने इसी प्रकार और कई स्थलों पर सहारा लिया है। उपमा और रूपक के प्रयोग एक ही स्थल पर देखिये :—

लाज महा बड़वानल सी सखि प्रेम समुद्र न बाढ़न पावै ॥^२

वस्तु-विशेष के गुण का अनुभव कराने के लिये निम्नलिखित पंक्ति में 'व्याघात' अलंकार का प्रयोग किया गया है :—

दाख बड़ो फल है सुखदायक, काग भल्लै तो महादुख पावै ॥^३

किसी नायिका की निम्नलिखित कल्पनापूर्ण उक्ति 'संदेहालंकार' की पुष्टि करती है :—

लीलैहि लेत निशाचर से मुख प्राची दिशा कि पिशाच कि दारा

पीय पयान कि प्राण पयान पिकी पिक रोर कृपान कि धारा

गंग बसंत कि अतंक शीत समीर कि तीर तरन्य कि तारा

जोन्ह कि जाल मृडाल कि व्याल सखी धनसार कि सार कि आरा ॥^४

विप्रलंभ-भावना की तीव्रता दिखाने के लिये अत्युक्ति का प्रयोग हुआ है :—

'गंग कवि वृन्दावन चन्द्र बिना चंदमुखी चंदहि निहारेगी तो चंद जरि जायगो।'

निम्नलिखित पंक्ति में 'उदाहरण' का प्रयोग मिलता है :—

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या २९

२ " " " " छंद संख्या ३२

३ " " " " छंद संख्या १७६

४ " " " " छंद संख्या १७७

हा हा भैकु जाइ लेहु कछो हे तिहारो नेह
कहू हूँ दिखाइ देह डोरी ज्यों जरति है ॥^१

निम्नलिखित छंद में 'परिसंख्या' अलंकार का संकेत मिलता है :—

बांधिबे को अंजलि बिलोकिवे कौ काल ढिग राखिवै को पास जिय मारिवे को रोस है
जारिवे को तन मन भरिवौ को हियो आखैं धारिवै को पग मग गनिवै का कोस है
खाइवै को सोहै भौंहि चढ़िवे उतारिवे को मुनिवै को तान ध्यान किए अफसोस है
बैरम के खानखाना तेरे डर वैरी वधू लीबे को उसास मुख दीबे ही को दोस है ॥^२

उक्त छंद में वैरी-नारियों के पास यदि कुछ बांधने को है तो केवल अंजलि, जलाने के लिये है तो अपना तन-मन, गिनने को है तो केवल कोसों की दूरी, खाने के लिये है तो सौहै आदि भावों में परिसंख्या का आश्रय लिया गया है ।

शब्दालंकार के अंतर्गत वृत्त्यनुप्रास की छटा भी द्रष्टव्य है :—

(१) छार भरे छरहरे छगन छरग वारे छाये हैं छविनु छय्यनु छाइयत है ॥^३

(२) विरह की बेलि बेरी बो गयो ॥^४

कुछ स्थलों पर 'यमक' द्वारा भी शब्दगत चमत्कार आ गया है :—

जल ढारि सनीचर पंथ वधू बिनवै कर जोरि सु पी परसों
तरु देव गुसाई बड़े तुम हो यह मागत दीन है सु पीपर सों
आवन के दिन बीस कहै बिन ओधि की गति तची परसों
भूलि गए हरि दूरि विदेस किधौं अटके कहूं पी पर सों ॥^५

रहीम की रचनाओं में अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है । कवि ने गूढ़ भावों को इनके द्वारा सरल बना दिया है । उनको अलंकारों के प्रयोग में किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ा है, वे स्वाभाविक रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं ।

१	देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ६०
२	" " " " छंद संख्या १४०
३	" " " " छंद संख्या १८३
४	" " " " छंद संख्या ३६
५	" " " " छंद संख्या ६४

२७३

निज-अनुभूति के निरूपण के लिये रहीम ने अर्थान्तरन्यास अलंकार का विशेष आश्रय लिया है :—

विपति भए धन ना रहे रहे जो लाख करोर ।
नभ तारे छिपि जात हैं ज्यों रहीम भय मोर ॥^१
रहिमन निज सम्पत्ति बिना कोउ न विपति सहाय ।
बिनु पानी ज्यों जलज को नहिं रवि सकै बचाय ॥^२

कुछ स्थलों पर नीति उपदेश के तथ्य-निरूपण में भी विरोधाभास के साथ श्लेष अलंकार का प्रयोग किया गया है :—

जो रहीम गति दीप की कुलकपूत गति सोय ।
वारे उजियारे लगे बड़े अंधेरो होय ॥^३

‘पियाव’ शब्द में श्लेष का सुन्दर प्रयोग हुआ है—

पथिक आय पनघटवा कहत पियाव
पैया परो ननदिया फेरि कहाव ॥^४

निम्नलिखित दोहों में ‘दीपक’ अलंकार द्वारा कवि ने अपनी लौकिक अनुभूतियों का सुन्दर प्रकाशन किया है :—

यह रहीम निज संग ले जनमत जगत न कोय ।
वैर प्रीति अभ्यास जस होत होत ही होय ॥^५
अरज गरज माने नहीं रहिमन ए जन चारि ।
रिनिया राजा मांगता काम आतुरी नारि ॥^६

विरह-भाव की तीव्रता का बोध कराने के लिए भी ‘दीपक’ का प्रयोग हुआ :—

- १ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १३
- २ " " पृष्ठ २०
- ३ रहिमन-विलास, दोहावली, पृष्ठ ४९
- ४ " " वरवै, पृष्ठ ६४
- ५ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १५
- ६ " " पृष्ठ २

जब से विछुरे मितवा कहु कस चैन ।

रहत भरथौ हिय सांसन आंसुन नैन ॥^१

कृष्ण-रूप की माधुरी को व्यक्त करने में 'संदेह' अलंकार की योजना रहीम ने की है :—

भुजंग जुग किधों है काम कमनैत सोंहैं ।

नटवर तब मोहै बाकुरी मान भौहैं ॥^२

रूप-माधुर्य की तीव्रता का अनुभव कराने के लिये रूपक और उपमा अलंकारों का निम्नलिखित दोहों में आश्रय लिया गया है :—

सजल नैन बाके निरखि चलत प्रेम सर फूट ।

लोक लाज उर धाक ते जात मसक सी छूट ॥^३

कहि रहीम इक दीप ते प्रगट सबै दुति होय ।

तन सनेह कैसे दुरै दग दीपक जरु दोय ॥^४

निम्नलिखित छंद में निदर्शना का प्रयोग सुन्दर है :—

चली लिवाइ नवेलिअहिं सखि सब संग ।

जस हुलसत गो गोदवा मत्त मतंग ॥^५

प्रस्तुत के लिये अप्रस्तुत की योजना में उत्प्रेक्षा अलंकार का कवि ने कई स्थलों पर परिचय दिया है । भाव-विशेष की तीव्रता का बोध कवि ने उत्प्रेक्षा द्वारा कराया है :—

जाति हुती सखि गोहन में मन मोहन को लखि के ललचानो

नागरि नागि नई ब्रज की उनहूँ नन्दलाल को रीझिबो जानो

जाति भई फिरि कै चितई तब भाव रहीम यहै उर आनो

अनु कमनैत दमानक में फिरि तीर सों मारि ले जात निसानो ॥^६

१ रहीम-रत्नावली पृष्ठ ६७

२ " " पृष्ठ ७४

३ " " पृष्ठ ३२

४ " " पृष्ठ ३

५ " " पृष्ठ ५४

६ " " पृष्ठ ७७

कृष्ण के रूप-माधुर्य के वर्णन में भी उत्प्रेक्षा का प्रयोग हुआ है :—

बंक तिलक केसर को कीनो दुति मानो विधु बाल की ।

शब्दालंकारों के द्वारा रहीम ने अपने काव्य के कुछ स्थलों को श्रुति-मधुर भी बनाया है । अनुप्रासों का ही इनमें विशेष परिचय मिलता है । छेकानुप्रास के एक-दो उदाहरण भी देखिये :—

लहरत लहर लहरिया लहर बहार ।
मोतिन जरी किनरिया विथुरे वार ॥^१

ससि संकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम ।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है घटत घटत घटि सीम ॥^२

‘यमक’ का भी कुछ स्थलों पर प्रयोग हुआ है :—

पानी पीरी अति बनी चन्दन खोरै गात ।
परसत बीरी अधर की पीरी कै हूँ जात ॥^३

रहिमन अपने पेट सों बहुत कह्यो समुझाय ।
जो तू अनखाए रहे तोसों को अनखाय ॥^४

निम्नलिखित छंद ‘श्लेष’ का उदाहरण है :—

भरै कुपी कुचपीन की कंचुक में न समाइ ।
नव सनेह असनेह भरि नैन कुपा ढरि जाइ ॥^५

इस प्रकार उपर्युक्त कवियों की रचनाओं में अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग ही हुए हैं, उनमें चमत्कार-प्रदर्शन का उद्देश्य नहीं है ।

- | | |
|---|-------------------------|
| १ | रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ४१ |
| २ | ” पृष्ठ २६ |
| ३ | ” पृष्ठ २९ |
| ४ | ” पृष्ठ १६ |
| ५ | ” पृष्ठ ३६ |

पाँचवाँ अध्याय

सामाजिक जीवन एवं ऐतिहासिक तथ्य

सामाजिक जीवन और विश्वास

भारतवर्ष में मुसलमानों के राज्य-संस्थापन के अनन्तर शासक की विचार-धारा का प्रभाव यहाँ की भारतीय जनता पर पड़ा परन्तु परंपरागत विश्वास, चितन-प्रणाली, रीति-नीति आदि के व्यवहार में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों की रचनाओं में तत्कालीन भारतीय जीवन का थोड़ा सा परिचय मिलता है।

सामाजिक जीवन के अन्तर्गत समाज और परिवार के विभिन्न वर्गों और व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बंध और कार्य-कलाप का वर्णन होना चाहिये किन्तु ऐसे वर्णनों का अवकाश प्रबंध-काव्यों में ही संभव है। इन कवियों ने प्रबंध-काव्य नहीं लिखे। अतः सामाजिक जीवन का अध्ययन उनकी कृतियों में प्राप्त विश्वासों, वेश-भूषा, आभूषण, उत्सव आदि के वर्णनों के आधार पर किया जायगा।

नरहरि, ब्रह्म, तानसेन और गंगा तो जन्मजात हिन्दू थे। अतः उनमें भारतीय जीवन सम्बन्धी विश्वासादि की भावना स्वाभाविक ही थी किन्तु रहीम जन्म से मुसलमान थे फिर भी इनके हृदय पर भारतीय जीवन की इतनी गहरी छाप पड़ी थी कि उनकी हिन्दी रचनाओं को देखकर कोई भी भावुक उन्हें मुसलमान नहीं कह सकता। रहीम मुसलमान अवश्य थे परन्तु वे भारत की पुनीत भूमि पर उत्पन्न हुए थे। हिन्दुओं के सदृश ही उन्होंने पतित-पावनी गंगा की निर्मल छटा का अवलोकन किया था। हिमिगिरि की उत्तुंग शृंगों का दर्शन भी उन्होंने उसी दृष्टि से किया था जिससे यहाँ के हिन्दू करते हैं। गायों के प्रति उनकी यही आस्था और श्रद्धा थी जो जहाँ के आर्यों की थी। इस प्रकार भारतीय वातावरण में उत्पन्न होने, पलने और रहने के कारण उनके हृदय में उन्हीं विश्वासों का विकास और परिवर्धन हुआ जिनका यहाँ के अन्य निवासियों में होता आया है। खानखाना का हृदय कवि का हृदय था। भारतीय संस्कृति का इन पर जैसा प्रभाव

पड़ा उसे ये सीधे शब्दों में व्यक्त कर देना धर्म-विरुद्ध नहीं समझते थे। रहीम के संस्कृत-भाषा-ज्ञान से उनमें भारतीयता की भावना और भी पुष्ट हो जाती है। रहीम के हृदय-पटल पर भारत की प्रत्येक वस्तु और भावना अंकित हो गई थी। उनकी यह निजी विशेषता है।

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में गो-रक्षा, सरिता-पूजन, तीर्थाटन, एकात्मवाद तथा अवतारवाद, ईश्वरोपासना, प्रतिमा-पूजन, उत्सव, शुभ-अशुभ शकुन, षड्रिपु, नीति, वेश-भूषा, रहन-सहन आदि विषयों का पर्याप्त परिचय मिलता है, जो भारतीय जीवन और विश्वास के द्योतक हैं।

‘गो-रक्षा’ भारतीय संस्कृति का एक चिरंतन प्रमुख अंग है। दिलीप ने नन्दिनी के बदले अपने आपको सिंह के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया था। महाकवि कालिदास ने ‘रघुवंश’ महाकाव्य में गाय और पृथ्वी के तादात्म्य का वर्णन किया है।^१ भारत कृषि-प्रधान देश है और दूध-दही का खाद्य पदार्थों में विशेष महत्व है क्योंकि यह सात्विक वृत्ति का परिपोषक भी होता है। इसीलिये गो-दान, गोवध-निषेध की ओर लोगों का ध्यान आदि काल से रहा है। आज भी गो-रक्षा भारतीयता का एक अंग है और इस सम्बन्ध में लोगों का प्रयास निरन्तर होता रहता है। मुसलमानों के लिये गोवध-निषेध नहीं था। जनश्रुति के रूप में यह प्रचलित है कि अकबर के शासनकाल में गोवध-निषेध का आंदोलन दरबार के कवि नरहरि ने खड़ा किया था जिसका परिचय कवि के छंदों में मिलता है।^२ कहा जाता है, आन्दोलन की इस भावना को अकबर तक पहुंचाने के लिये नरहरि ने एक उपाय सोचा। उन्होंने फरियाद-स्थल पर एक गाय को मंगवाकर खड़ा कर दिया। जब अकबर ने गाय के आने का कारण पूछा तो कवि ने गाय के मूक-संदेश को अपनी वाणी में कह सुनाया :—

१ पयोधरीभूत चतुस्समुद्राम् जुगोप गोरूप धराम् धरीत्रीम्।

रघुवंश, सर्ग २, छंद संख्या ३

२ गउन को गनव हतत फन्नपति मुख पवन्न ठेल्लत जहार्जहि
इंदुर डर विलार जस भाजत स्यार तमक्कि पात मृगरार्जहि
स्वान चरण जस मारि विडाल तकय नुरत धावै विन साजहि
नरहरि कृपा करें रघुनंदन मारै तमक्कि गरगिया बार्जहि॥

नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२२

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहि मारि सकत कोइ
 हम संतत तिनु चरहि वचन उच्चरहि दीन होइ
 अमरित पय नित श्रवहि वच्छ महि थंभन जावहि
 हिंदुहि मधुर न देहि कटुक तुरकहि न पियावहि
 कह कवि नरहरि अकबर सुनौ विनवति गउ जोरे करन
 अपराध कौन मोहि मारियत मुएउ चाम सेवइ चरन ॥^१

कवि के हृदय में गो-वत्सलता की मधुर धारा इस रूप में प्रवाहित थी कि उसने सम्राट से गोवध-निषेध के लिये मार्मिक अभ्यर्थना की थी। संभव है, ऐसी घटना तथा अन्य कारणों से प्रेरित होकर ही अकबर ने गोहत्या-निवारण के लिये उचित मार्ग का अवलंबन किया था।^२

भारतीय विश्वास का एक अंग सरिता-पूजन भी है। गंगा और यमुना में अत्यन्त प्राचीन काल से पुनीतता और माहात्म्य का आरोप होता आया है। उनके प्रति श्रद्धा भरे उद्गार अकबरी दरबार के इन कवियों में भी मिलते हैं। प्रकृति में परम शक्ति की व्यापक सत्ता का अवलोकन कर भारतीय मानव ने उसके विविध अंगों को आदि-काल से पूज्य-दृष्टि से देखा है। मनुष्य-समाज में पर्वत, समुद्र, नदी, आकाश, वृक्षादि की विशिष्ट शक्ति के अधिष्ठाता रूप में पूजा भारतीय परम्परा का एक अंग है। भारत की सरिताओं में गंगा और यमुना का विशिष्ट स्थान है। यों तो गंगा की उपादेयता ही उसकी विशेष स्थिति और उसके प्रति विशेष आर्कषण के लिये पर्याप्त है और संभवतः इसी से प्रेरित होकर आर्य ऋषियों ने इसमें देवत्व-भाव की प्रतिष्ठा कर दी थी। भारतीय विश्वास के अनुसार गंगा केवल इसीलिये पूज्य नहीं है कि उसका जल निर्मल तथा स्वास्थ्यवर्धक है वरन् वह इसलिये भी पवित्र है कि उसकी धारा ब्रह्मा के कमंडल से निकलकर शिव के मस्तक पर गिरती और फिर आर्यावर्त को पवित्र करने के लिये पृथ्वी पर अवतरित होती है। पुराणों में गंगा की महिमा का विशद वर्णन है। रामायण तथा महाभारत में भी गंगा का महत्त्व वर्णित है। यमुना इसलिये भी पूज्य है कि कृष्ण ने उसकी कछारों में, पार्श्ववर्ती कुंजों में विविध क्रीड़ाएँ की थीं। श्रीमद्भागवत में यमुना को विशेष महत्त्व दिया गया

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२७

२ आइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ १९३

है। कृष्ण-भक्ति के अंतर्गत यमुना का विशेष माहात्म्य माना जाता है जिसका गान हिन्दी के भक्त-कवियों ने मुक्त कंठ से किया है।

प्रस्तुत कवियों में ब्रह्म, तानसेन, गंग, रहीम ने गंगा और यमुना दोनों की महिमा के वर्णन अपने छंदों में किये हैं। निम्नलिखित छंद में ब्रह्म ने गंगा का माहात्म्य-वर्णन किया है :—

जानी मुकुन्द महा महिमा उपमा कह आपु समान करी है
पारहू लो दसहूँ दिसहूँ जसहूँ रसहूँ तिहु लोक भरी है
ब्रह्म भने हो बड़ाई कहा करु गंग वेउ ते बड़ी ए घरी है
और को जानिबे जोगु तुमे हरु जानतु है जिहं सीस धरी हैं ॥^१

तानसेन ने निम्नलिखित पंक्तियों में गंगा की स्तुति करते हुए कहा है, तीनों लोकों, पशुपत्नी, मनुष्यों को पवित्र करने वाली तथा भक्तों को मोक्ष का वरदान देने वाली गंगा शिवजी की जटा के मध्य में विराजमान है :—

ईस सीस मध विराजत त्रि लोक पावन किए जीव जंतु खग मृग सुर नर मुनि मानी
तानसेन प्रभु तेरो अस्तुत करता दाता भक्त जनन की मुक्ति की वरदानी ॥^२

गंग ने भी नीति-उपदेश के प्रसंग में गंग-तरंग की महिमा का बखान किया है :—

गंग तरंग प्रवाह चले तहँ कूप को नीर पियो न पियो।
आइ हृदे रघुनाथ बसे तब और को नाम लियो न लियो ॥^३

विशाल हृदय रहीम ने गंगा की प्रशंसा की है और उसके पौराणिक महत्व को नीचे लिखे दोहे में स्पष्ट किया है :—

अच्युत चरन तरंगिनी शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो मुरसरी कीजौ इंदव भाल ॥^४

यमुना-माहात्म्य का वर्णन कवि गंग ने नीचे लिखे छन्द में किया है जिसमें कवि ने प्रकट किया है कि यमुना-स्नान करने वालों को नरक नहीं जाना पड़ता वरन् वह स्वर्ग प्राप्त करता है :—

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या २५

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १५

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९७

४ देखिये, रहीम-रत्नावली, दोहावली, दोहा-संख्या १

जैसे नीकी औषधि ते रोग न रहत तन दारिद्र रहत नाहि पारस के पाये ते
तम न रहत जैसे अरुन के उदय होत पाप न रहत जैसे हरि गुन गाये ते
पितृ मिलैं ब्रह्म में न कवहूँ नरक परैं कहै कवि गंग एक साधु पूत जाये ते
नन्द नन्द दर्श होत चित अति हर्ष होत देखिए न यमलोक यमुना के नहाये ते ॥^१

इस प्रकार गंगा और यमुना के माहात्म्य का वर्णन कर इन कवियों ने अपनी
उज्ज्वल भारतीयता का परिचय दिया है ।

तीर्थ-स्थानों की महत्ता विश्व की सभी जातियों ने स्वीकार की है क्योंकि तीर्थों
में ईश्वर की सर्वव्यापकता का आभास तो मिलता ही है, साथ ही विद्वानों तथा सन्तों के
दर्शन भी वहाँ होते हैं । इस्लाम-धर्म के विश्वासानुसार मुसलमान मक्का-मदीने जाकर
अपने सब कुकृत्यों से छुटकारा पा जाते हैं । ईसाई येरुशलम जाकर शैतान से सदा के
लिये अपना पिंड छुड़ा लेते हैं, बौद्ध-भिक्षु लुम्बिनि वन, बोधगया, सारनाथ, राजगृह,
कुशीनगर (कसिया) और जैन-भिक्षु वैशाली के दर्शन कर अपने आपको धर्मान्वित
करते हैं । 'तीर्थ' शब्द की व्युत्पत्ति ही इस आशय की पुष्टि करती है 'तरन्ति जनाः येभ्यः
तानि तीर्थानि' । तीर्थाटन की यह भावना भारतीय विश्वास के अन्तर्गत ही है । प्रयाग
तीर्थराज कहलाता है, ग्रहण पर काशी-स्नान अनूठा प्रभाव रखता है, मकर-संक्रांति और कुम्भ
के अवसर पर हरिद्वार में असंख्य तीर्थ यात्रियों की भीड़ लगती है । प्रति वर्ष न जाने कितने
लोग जगन्नाथपुरी और बदरिकाश्रम की यात्रा कर अपने जीवन को कृतकृत्य समझते हैं । इन
भारतीय तीर्थों की महिमा अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों ने भी गाई है । तीर्थ-यात्रा
तानसेन के जीवन की सर्वोत्कृष्ट साधना थी । उनके विचार से तीर्थाटन की प्रवृत्ति उन्हीं
लोगों में जाग्रत होती है जिन पर ईश्वर की असीम कृपा रहती है । वे भगवान से विनीत
शब्दों में प्रार्थना करते हैं :—

ब्रह्मगत अपरम्पार न पाऊँ

पृथ्वी पार पताल धरा औ गगन लौं धाऊँ

जो लौं न होय सुदृष्टि तुम्हारी मन इच्छा फल ही पाऊँ

तीरथ प्रयाग सरस्वती त्रवेणी सब तीरथ होकर गुरु द्वार जाऊँ

भागीरथी गौतमी श्री गंगा तानसेन गावे हरिद्वार चाऊँ ॥^२

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९१

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७८

तानसेन ने कई हिन्दू-तीर्थों की यात्रा की थी जिसका परिचय उक्त पद से मिल जाता है। भारतीय संस्कारों के अनुरूप ही उनके हृदय में अपने गुरु के प्रति असीम भक्ति का पता चलता है।

कवि ब्रह्म ने 'प्रयागराज' की महत्ता का निम्नलिखित छंद में वर्णन किया है :—

ए मेरे तीरथ ए मेरे देव सु ए मेरे मात पिता मेरे एई
श्रुति हे मुख के मुख जाने नहीं तपु जानु पनों नहिं जानन देई
बावन के पद पावन घाते हैं ताते में दिव्य तरंग निसेई
ब्रह्म भनै अपनो अपुनावत आपही पार लगावत ही लेई ॥^१

गंग ने 'त्रिवेणी' का माहात्म्य-वर्णन कई स्थलों पर किया है। एक स्थान पर रहीम के व्यक्तित्व को गौरव प्रदान करने के लिये त्रिवेणी से उसका रूपक बाँधा है। दूसरे स्थल पर नखशिख प्रसंग में प्रयागराज की महत्ता दी गई है।

रहीम को भी भारत के तीर्थ-स्थानों की महिमा ज्ञात थी और वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि इन स्थानों में ईश्वरीय सत्ता की आभा का प्रकाश भी रहता है। इसे उन्होंने अपने दोहों में इंगित किया है। 'चित्रकूट' की महत्ता रहीम ने निम्नलिखित दोहे में वर्णित की है :—

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध नरेस
जा पर विपदा पड़त है सो आवत येहि देस ॥^२

नरहरि ने कुछ छंदों में काशी, जगन्नाथपुरी की महत्ता को दिखाते हुए इंगित किया है कि इन तीर्थ-स्थानों में ईश्वरीय सत्ता का आभास तो मिलता ही है, साथ ही कई महापुरुषों और सन्यासियों के वहाँ दर्शन भी होते हैं। अतएव तीर्थाटन की यही महत्ता भारतीय विश्वास की परिचायक है। वस्तुतः तीर्थों का सर्वकालीन और सार्वभौमिक महत्त्व इस ओर भी संकेत करता है कि सिद्ध महात्माओं का प्रभाव अनुष्ण तथा शाश्वत होने के साथ पवित्र स्थानों के संसर्ग से सर्वदा बना रहता है। अकबर के पूर्व कुछ मुसल्मान शासकों ने तीर्थ-यात्रा पर कर द्वारा नियन्त्रण कर रखा था। परन्तु परिस्थितियाँ बदलीं और जैसा पीछे कहा जा चुका है अकबर के उदार शासन में

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या २४

२ देखिये, रहीम-रत्नावली, दोहा संख्या ५४

ए गण राजा महाराजा गजानन जे° विद्या जगदीश
सप्त स्वर सों गाऊं बजाऊं सब राग रागिनी पुत्र वधून सहित छतीश
बाईस सुरत इकईस मूरछना उनचास कोट तान आवे जगदीश
तानसेन को दीजे छ राग छतीश रागिनी ताल लय सो होय कंठ प्रवेश ॥^१

अकबरी-दरबार के हिन्दी-कवियों की रचनाओं में काव्य-गुणों के साथ-साथ संगीत-सरसता का भी गुण पाया जाता है। इन कवियों के समय में वल्लभ-संप्रदाय, निबार्क-संप्रदाय आदि अनेक साधुर्य-प्रेमोपासक भक्ति-पंथ प्रचलित थे जिनमें मन-निग्रह की की आध्यात्मिक साधना में संगीत को अपनाया गया था। इन संप्रदायों के कवियों ने गेय पदों के रूप में कीर्तन लिखे थे और वे ताल और स्वर के साथ गाये जाते थे। इन संप्रदायों का तत्कालीन प्रभाव इन कवियों पर भी पड़ा। दूसरे स्वयं अकबर ने अपने दरबार में उच्चकटि के संगीतियों को सम्मानित किया था जिनकी कला का प्रभाव इन कवियों की रचनाओं पर पड़े बिना न रह सका।

प्रस्तुत कवियों में संगीत की दृष्टि से तानसेन का सर्वोच्च स्थान था। तानसेन इस कला के केवल कलाकार ही न थे वरन् आचार्य भी थे। उनके द्वारा विरचित 'संगीत-सार' नामक पुस्तक से जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है उनके संगीत-कला के शास्त्रीय ज्ञान तथा पांडित्य का परिचय मिलता है। संगीत सम्बन्धी ज्ञान के विषय में कवि स्वयं अपने मुख से कहता है :—

खरज साधे गाऊं मैं श्रवणन सुनहु सुनाऊं
वेद पढ़ाऊं जोइ कहे सोइ उचराऊं
भैरव मालकोश हिन्दोल दीपक श्री राग मेघ सुर ही ले आऊं
तानसेन कहे सुनो हो सुधर नर यह विद्या पार नहिं पाऊं ॥^२

उपर्युक्त भैरव, मालकोश, हिंदोल, दीपक, श्री, मेघ इन छः रागों के अतिरिक्त सभी रागनियों को भी वे विधिपूर्वक अपने मौखिक गान द्वारा प्रदर्शित कर सकते थे। 'दीपक' राग का तो कवि ने विशेष रूप से गान किया था जिसका उल्लेख आज भी किवदंती रूप में होता है। तानसेन ने स्वयं कई रागों का आविष्कार किया था।

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ११

२ " " " " " " पद संख्या १५७

‘अवतारवाद’ भारतीय धार्मिक विश्वास की एक बड़ी विशेषता है। प्रस्तुत ग्रंथ के प्रायः सभी कवियों की इस अवतारवाद में आस्था थी। तदनुरूप यह विचार-धारा उनकी रचनाओं में भी व्यक्त हुई है। नरहरि ने परब्रह्म के विविध अवतारों-राम, कृष्ण, नृसिंह, बावन आदि के स्वरूपों का गुणगान एक ही छंद में कर उनके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है :—

माधव केसव कृष्ण विष्णु वयकुंठ दमोदर
हरि मुकुन्द गोविंद अमर अविगच्छ अगोचर
नारायण नरसिंह.....सुत विट्ठल बलि गंजन
प्रभु मुरारि वनमालि गोपि जीवनि जुग रंजन
सारंग संघ गद्र चक्र धन पठ गुन तसकर हनन
जै राम राम भगवंतहिं तकहिं नरहरि तक वसनन ॥^१

तानसेन का वल्लभ-संप्रदाय से विशेष संपर्क था जिसका उल्लेख उनकी जीवनी में किया जा चुका है किन्तु तानसेन ने जहाँ कृष्ण का गुणगान कई छंदों में किया है वहाँ राम के अवतार का भी वर्णन उनकी रचनाओं में आया है। वे भगवान राम में अपनी भक्ति की प्रगाढ़ता का परिचय निम्नलिखित पद से कराते हैं :—

अब मैं राम राम कहि टेरों
मेरे मन लागी उनही सो सीतापति पद हेरों
चरन सरोज श्रवन मन मेरो धुज अंकुश मुख केरों
तानसेन प्रभु तुम बहोनायक इन तरवन पर फेरों ॥^२

कवि गंग के एक सवैये में ईश्वर के बावनावतार का समस्यापूर्ति के प्रसंग में वर्णन मिलता है :—

एक समय प्रभु भावन बावन संत उपावन देह धरी
बलि को छल के प्रभु राज लियो तिहुं लोक कि तीनहि पैड करी

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११७

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ३ ६

तिनके कर दंड हुतो सो बढ्यो भुवदान दियो लियो माँग हरी

कवि गंग कहै ये अचंभ लखो बिन पल्लव पेड़ बढ़ी लकरी ॥^१

उपर्युक्त छंद कवि ने संभवतः 'बिन पल्लव पेड़ बढ़ी लकरी' की समस्या-पूर्ति में उच्चरित किया था और बावनावतार की चिरसंचित विचारधारा ने यहाँ पर उसकी सहायता की थी।

रहीम ने राम, कृष्ण का तो गुण-गान किया ही है। अपने एक बरवै में सशोपदेश देते हुए उन्होंने ईश्वर के 'नृसिंह' अवतार का भी वर्णन किया है:—

भजि नर हर नारायन तजि बकवाद

प्रगट खंभ ते राख्यो जिन प्रह्लाद ॥^२

इस प्रकार ईश्वर के विभिन्न अवतारों के वर्णन करके इन कवियों ने सगुण और साकार ब्रह्मवाद का समर्थन किया है। ईश्वर के साकार और निराकार दोनों रूप इन कवियों को मान्य थे। नरहरि ने अपनी रचनाओं में भगवान के साकार रूप का गान हृदयग्राही रूप में किया है। 'ब्रह्म' ने निराकार ईश्वर की साधना को कठिन बताया है। वे उसके साकार स्वरूप की उपासना ही श्रेयस्कर मानते हैं, वैसे उनकी आस्था निराकार रूप में भी थी:—

प्राण चढ़ाय कै जोग करो काहै करो व्रत पुंज विशाला

देह तपाय तपाय पचागिन काहै सहो बन बैठि कसाला

ब्रह्म विचारत जो हिय में सोइ रूप धरै नर को यहि काला

जाय लखो किन वा नंदराय के आंगने खेलत नंद को लाला ॥^३

उन्होंने निम्नलिखित सवैये में ईश्वर के निराकार और सर्वव्यापक रूप का वर्णन किया है:—

तुम ही करता तुम ही भरता तुम ही नभ ऊपर तेज तपे हो

ब्रह्म भनै जु जहान की जीभ जहाँ सुत दास भलो गज पै

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १८८

२ रहीम-रत्नावली, बरवै, छंद संख्या ९२

३ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४

कौनऊं भांति किनूरु न काऊ के मोसों कहो ऐते काहि चपै हो
ऐसी कहा तुम कीनो है नाथ जु ऐसे बड़े तुम ऐसे छिपे हो॥^१

तानसेन की साकारोपासना का वर्णन पहले के दिये गये राम और कृष्ण के भक्ति-गान सम्बंधी पदों में आ चुका है। तानसेन ने कई पदों में ईश्वर के साकार और निराकार दोनों रूपों की उपासना की है :—

रूप निरंजन अंजन रहत ताहि वरनबे को उदित भए छहो शास्त्र अठारहों पुरान
ताको भेद नहिं पावत शिव सनकादिक ब्रह्मा नारद शेष रटत केउ ब्रह्मा शिव
धर व्यापक कोट कोट ब्रह्मांड रचत देख लैहो बुधवान
आदि मध्य अंत के ही त्रइ लोक चराचर वाही को इच्छा ते करत विनान
तानसेन के प्रभु सब जग व्याप रहो पूरन ब्रह्म अविनाशी निरंकार अविनाशी भगवान ॥^२

‘अनहद’ नाद का गान भी कवि ने ईश्वर की ‘निराकार’ भावना से प्रेरित होकर किया है :—

अनहद शब्द उपजो मो घट में ताको ध्यान धरूँ अष्टयाम
खरज रिषभ गान्धार मध्यम पंचम धैवत निषाद पावै ज्योति अभिराम
धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदारथ पाए जस प्रगटी नाद ब्रह्म सहस रूप आनन्द धाम
धन धन ज्योति स्वरूप अचरज कर औ परसै तानसेन कंठ ठाम ॥

गंग के भक्ति-काव्य में कृष्ण का गुणगान ही प्रधान है जिसे पहले दिखाया जा चुका है।

रहीम के छंदों में भी ईश्वर के साकार स्वरूप का वर्णन हुआ है जिनका उल्लेख पहले ‘अवतारवाद’ के प्रसंग में हो चुका है। रहीम के बरवों में नंद-नंदन कृष्ण का गुणगान हुआ है :—

भज रे मन नंद नंदन विपति विदार ।

गोपी जन मन रंजन परम उदार ॥^४

१ देखिये, ब्रह्म के छंद प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ३

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ४८

३ ” ” ” ” पद संख्या ३७

४ देखिये, रहीम-रत्नावली, बरवै, छंद संख्या ३३

इस प्रकार इन सभी कवियों की रचनाओं में साकार तथा निराकार दोनों प्रकार की उपासना के परिचय मिलते हैं। इनमें से ब्रह्म और तानसेन का तो वल्लभ-संप्रदाय से विशेष संपर्क था जिसे उनके जीवन-चरित में दिखाया जा चुका है। उन्होंने इस उपासना-पद्धति द्वारा हिन्दू-धर्म में अपने विश्वास का पूरा परिचय दिया है।

वैदिक, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्म सनातन आर्य-धर्म के ही पूरक हैं और इन सब में एक आर्य-संस्कृति की ही धारा प्रवाहित है। वैदिक काल में प्रतिमा-पूजन की पद्धति भारतवर्ष में प्रचलित थी अथवा नहीं यह विवादग्रस्त प्रश्न है किन्तु यह अधिकांश लोग मानते हैं कि रामायण तथा महाभारत के रचनाकाल में प्रतिमा-पूजन भारतीय परंपरा की अंग बन चुकी थी। हिन्दू-धार्मिक निष्ठा के अन्तर्गत प्रतिमा-पूजन तथा पूजा की अनेक विधियाँ प्राचीन काल से प्रचलित रही हैं। प्रस्तुत कवियों में से कुछ के काव्य में धार्मिक निष्ठा के इन अंशों का भी वर्णन मिलता है।

धौलागढ़ की रानी की उपासना के वर्णन में तानसेन ने प्रतिमा-पूजन की समर्थन करते हुए पूजा की विधि का निम्नलिखित प्रकार से वर्णन किया है :—

जै जै कर पूजो धौलागढ़ की रानी ने
पान सोपारी ध्वजा नारियल पहले भेंट भवानी ने
तेल फुलेल अरगजा अंबर ले चढ़ावत वाक् वानी ने
तानसेन यह प्रसाद मांगत दीजै बुधि औ वानी ने ॥^१

देवतादि की पूजा का रहीम ने सांकेतिक निर्देश किया है :—

पुरुष पूजै देवरा तिय पूजै रघुनाथ
कह रहीम दोउन बनै पड़ो बैल को साथ ॥^२

शुभ-अशुभ शकुन आदि का पुराणों में सविस्तार वर्णन है। 'मुहूर्त-चिंतामणि' आदि फलित ज्योतिष-ग्रन्थों में इस विषय का महत्वपूर्ण ढंग से उल्लेख आया है। शकुन-अपशुकुन का विचार अति प्राचीन न होने पर भी भारतीय विश्वासों में विशेष रूप से घर कर गया है। प्रस्तुत कवियों में नरहरि मुगल शासक हुमायूँ के दरबार में उपस्थित थे

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७९

२ देखिये, रहीम-रत्नावली, दोहावली, दोहा संख्या ११४

जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। हुमायूँ को ज्योतिष-विद्या से अत्यधिक रुचि थी। संभव है उन्होंने के संपर्क से नरहरि में इसके प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई हो। नरहरि ने शुभ-अशुभ शकुनों पर विचार किया है। दो-तीन स्थलों पर उनके ये उदाहरण मिलते हैं :—

चौरासी चौसठि चौबीस षोडस गुनि
पुनि बारह पुनि रुद्र दसम नव अष्ट सत्त पुनि
षर पंचम पुनि चारि तीनि दुइ एक संत षिनु
सत्रह दंड प्रमान होहि दुपहर असाढ़ दिनु
घड़ी चढ़ी जब ही तब तन नर छाया गुनि लिजिये
महि मध्य देस नरहरि निरख सोचहि विधि देव संग निजिये ॥^१

किसी प्रदेश के विजय के अवसर पर शुभ शकुन का विधान कवि ने इस प्रकार किया था :—

संख भेरि मृदंग सुभु गीत वेद धुनि
गो सब छवन विप्र जु अति सुत पेषि पुनि
धौत वस्त्र लिए रजक वेस विहसित सिंगार तन
फल अछत दधि पुहुप मंद नृप देषि सुद्ध मन
पूरन घट छत्र तुरंग गज सिद्ध अलगो भय कहिय
सुभ सगुन निरषि नरहरि कहिय सो विजउ करत नव निधि लहिय ॥^२

रहीम की भी फलित-ज्योतिष में पूर्ण आस्था थी और उन्होंने अपनी इस श्रद्धा का प्रदर्शन 'खेटकौतुक जातकम्' नामक ज्योतिष-ग्रंथ लिख कर किया है। ग्रंथ में ग्रह, नक्षत्र आदि के फलों पर विचार बिल्कुल भारतीय दृष्टि से हुए हैं। यह रचना भारतीय जीवन में उनकी आस्था की पोषक है।

पर्व तथा जनोत्सव का सम्बन्ध धार्मिक विश्वासों, ऐतिहासिक महापुरुषों की पुण्य स्मृति तथा ऋतु-कालानुसार विशेष अवसरों से रहता है और इस रूप में इनको भारतीय जीवन के अंतर्गत विशेष स्थान प्रदान किया गया है। राम, कृष्ण आदि सभी ऐतिहासिक महापुरुष थे किन्तु इनमें ईश्वरीय अंश विशेष रूप में वर्तमान था और

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४८

जनता ने उन्हें अवतार की कोटि में माना। यह ठीक ही है कि महापुरुषों में ईश्वर के विशिष्ट गुणों का समावेश रहता है और उन्हीं से प्रेरित होकर वे आदर्श का संस्थापन करते हैं। राम, कृष्ण को भक्तों ने ईश्वर का अवतार माना, निर्गुण-संतों ने उनमें एक विशेष व्यक्तित्व का आभास पाया। कवि और अन्य लोग उन्हें महापुरुष के रूप में प्रस्तुत करने का अब भी प्रयास करते रहते हैं जिनमें साधारण मनुष्य के लिये उन महापुरुषों के आदर्श तक पहुँचने के लिये एक आशा निहित रहती है। बहुत से पर्व तथा उत्सव इन्हीं महापुरुषों के व्यक्तित्व तथा कार्यों के स्मरण-हेतु एवं नवीन हृदयों में आशा तथा नवीन स्फूर्ति के संचार की दृष्टि से मनाये जाते हैं। प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में कई पवों तथा जनोत्सवों के परिचय मिलते हैं।

नरहरि ने 'बारहमासा' के प्रसंग में फाग-पर्व का वर्णन किया है :—

रास विलास बसु सुर पूरित खेलत फिरत नृपति प्रजटागुन
बाजहिं पंच सद बहु भांतिन सज्जन समीप सुषि न सुषतागुन
नरहरि निरषि होलिका पूजहिं सब जग मुदित मोर परमागुन
वै जदुनंदन भेग सषा सब पिय दिन वृथा फागु भई फागुन ॥^१

विजय-दर्शमी अथवा दुर्गा-पूजा सारे भारत की जनता के आनन्दोल्लास का पर्व माना जाता है। तानसेन ने निम्नलिखित पद में इसी पर्व का प्रभावपूर्ण ढंग से वर्णन किया है :—

आनंद भयो आज आयो विजय घर घर मंगल चार
अनेक गज तुरंग साजे नौबत नगारे बाजे गज तुरंग साजे सवार
तन बीतन धन शिखर नाना विधि बाजत सुरपति के द्वार
ब्रह्मा वेद पढ़े नारद मुनि गावे राजा रामचन्द्र जी के द्वार
तानसेन कहै सुनो साह अकबर दशहरा सुफल भई तिथि, वार ॥^२

तानसेन के निम्नलिखित पद में 'होली' पर्व के उल्लास का वर्णन है :—

चलो तुमहू देखो कैसी मची होरी गावत रंग महल में नारी
एक गावत एक मृदंग बजावत एक नाचत दै दै करतारी

१ देखिये, नरहरि के विविध का बारहमासा छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १११

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ११५

अवीर गुलाल कैशर पिचकारी तक तक मारत गावत है सब गारी
तानसेन प्रभु खेल रच्यो है फगुवा लीन्हों है भारी ॥^१

‘मदन-महोत्सव’ का वर्णन वात्स्यायन के ‘कामसूत्र’ में विस्तारपूर्वक मिलता है। श्रीभद्रभागवत् में भी इसका वर्णन है। कालिदास ने ‘अभिज्ञान शाकुंतलम्’ के छठे अंक तथा हर्ष ने ‘रत्नावली’ के पहले अंक में इसकी चर्चा की है। इसी मदनमहोत्सव के उल्लास का सजीव चित्र तानसेन ने अपने निम्नलिखित पद में प्रस्तुत किया है :—

घर घर ते ब्रज बनिता जो बन निकली आज कंचन थार भर भर नग नोछावर करत लाल की
सप्त सुर ले गावत कंठ कोकला लाजत उपजत अति रसाल गमक तान ताल की
मदन महोत्सव साज समाज गोपीन वृन्द मिल चहत चाल मराल की
तानसेन प्रभु रस बस कर लीने तिरछी चितवन मदन गोपाल की ॥^२

उस काल के उत्सवों की एक झलक तानसेन के एक अन्य पद में मिलती है :—

सब समूह करिहै तू नर नारी रहसन ले चले करन लाड़ले के मंगन की
सहनाइए कर लिए औ टकोरन वीण रवाव गारन की झांझ झनकारन की
बाजत ए धूमधाम धावत याके अनेक दल गज दल पयदल अश्व दल संगन की
तानसेन सब नगर नर नारी प्रफुलित भए गुणी जन गावत छिरकत अतर गुलाब

सुवास आवत सुगंधन की ॥^३

तत्कालीन रहन-सहन और सामाजिक व्यवहार की भावना के अनुरूप ही तानसेन ने ‘ईद’ के अवसर पर मुबारकवाद का भी गान किया है :—

ईद मुबारक होवै जुग जुग नित तुम को महरबान
सकल विद्या गुण निधान अति ही आनंद देत गुणीन को आदर मान
युग युग जीवो कोटि वरष लों देवो करो नित दान
तानसेन कहे सुनो शाह अकबर चहुं चक राज करो मरदन मरदान ॥^३

‘श्रावणी’ पर्व विशेष महत्त्व का होता है। इस अवसर पर बहन भाई को राखी बांधकर अपनी रक्षा का भार उस पर दे देती है। मूल में रक्षा का भाव ही इसमें निहित

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १५२

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १५६

३ " " " " पद संख्या १५८

है। गंग के एक कविता में इस राखी-पर्व की महत्ता का उल्लेख हुआ है जिसमें एक वीर-वाला ने बूंदीपति जुम्मारसिंह को राखी भेजकर अपनी रक्षा की याचना की है :—

बैठे दरीखाने बीच साह के समूह दल दोनों दीन बीच आन दई एक राखी है
रोस कर वचन कहे हैं भुव पालन ते आवन को बंधन बंधे न सत्य भाखी है
भनै कवि गंग भट्ट सोर महि मंडल में हाडावंस वीर ने कृपान खोल राखी है
ठोकि भुजदंड पे प्रचंड सो जुम्मारसिंह बूंदीपति राखी सो तुम्हारे हाथ राखी है ॥^१

रहीम ने उद्दीपन रूप में होली-पूजन तथा समारोह का निम्नलिखित दोहे में संकेत किया है :—

होरी पूजत सजनी जुर नर नारी
हरि बिन जानहु जिय में दई दवारी ॥^२

सावन-तीज स्त्री-समाज का महत्वपूर्ण पर्व है। इस अवसर पर आनंदोल्लास में भूले आदि का विशेष आयोजन रहता है। रहीम ने एक बरवै में इसी तीज का वर्णन विरह के उद्दीपन रूप में किया है :—

घन घुमड़े चहुं ओरन चमकत बीच
पिय प्यारी मिलि भूलत सावन तीज ॥^३

इस प्रकार इन कवियों ने पर्वों तथा जनोत्सवों के वर्णन कर तत्कालीन भारतीय जीवन का सम्यक् परिचय कराया है। आइने-अकबरी तथा अन्य ऐतिहासिक सूत्रों से पता चलता है कि अकबर हिन्दू तथा मुसल्मान पर्वों को दरबार में विधि-पूर्वक मनाता था और वह स्वयं उसमें सक्रिय भाग लेता था। एक अवसर पर अपनी प्रिय माँ 'मरियम-मकानी' की मृत्यु का शोक होते हुए भी दशहरा-पर्व के समुपस्थित होने पर उसने स्वयं और सब दरबारियों से शोक का परिहार करने का आदेश देकर उनका शोक-पहनावा उतरवा दिया था और इस आनन्दोत्सव पर सब को नये कपड़े बांटे थे।^४ ऐसे शासक को पाकर दरबारी कवियों द्वारा पर्वों का मुक्तकंठ से गान स्वाभाविक ही था।

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १४२

२ रहीम-रत्नावली, बरवै, छंद संख्या ६४

३ " " छंद संख्या ११

४ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ १२४५, १२४६

भारतीय आस्था के अन्तर्गत दान की प्रथा बहुत प्राचीन है ॥ विश्व के सभी प्रदेशों में इस प्रथा का प्रचलन है किन्तु यहाँ की दान-विधि अपने ढंग की अनुपम है । विशेष-विशेष अवसरों पर विशेष प्रकार की वस्तुओं के दान अब भी प्रचलित हैं । महाराजा हरिश्चन्द्र, कर्ण, दधीचि आदि भारत के अद्वितीय दानी माने जाते हैं । 'धनात् धर्मम्' कह कर भी धन की वास्तविक उपयोगिता दान ही बताई गई है ।

नरहरि ने गजपति मुकुन्द देव के तुलादान का मनोरम वर्णन किया है । स्वर्ण, मणि, मोती आदि के समूह, सहस्रों गाय, अश्व, गज, रथ, ग्राम, वस्त्र आदि के दान देकर राजा लोग अपने पुरुषार्थ-चतुष्टय का परिचय देते थे :—

कनक तुला मनि मोत्ति दान दिन कहि जो ग्रंथ गन
सत्त सहस गो लछि देत विधि सहित सुद्ध मन
अस्व रथ गज वसन ग्राम गनि कहउ कौन कवि
बहुरि प्रगट कलि करन सत्त हरिचंद प्रात रवि
जस ह्दय भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित संभारिय
गजपति मुकुन्द दिव देव कहं कहउ कवितु केहि विधि करिय ॥^१

गंग, तानसेन आदि ने दान-वर्णन द्वारा उसकी महत्ता प्रदर्शित की है । रहीम के दान सम्बन्धी दोहे बहुत प्रचलित हैं :—

देनहार कोउ और है भेजत सो दिन रैन
लोग भग्म हम पै करै यातै नीचे नैन ॥^२
नाद रीफि तन देत मृग नर धन हेत समेत
ते रहीम पशु से अधिक रीफेहु कछू न देत ॥^३

उक्त दोहों में दानियों के विनम्र तथा मृदुस्वभाव के भी संकेत मिलते हैं जो भारतीय जीवन की विशेषता है । वस्तुतः अदृश्य दयालुता की भावना का प्रत्यक्ष रूप दान ही है । यह ठीक है कि कभी-कभी ख्याति और मान-प्राप्ति के लिये लोग दान-रत

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९५

२ रहीम रत्नावली, दोहावली, दोहा संख्या १००

३ " " " " ११०

होते हैं। परन्तु बहुत से व्यक्तियों की प्रवृत्ति इस ओर सहायुभूति, दया तथा त्याग के भाव से ही प्रेरित होती है। भारतीय जीवन में दान का इसीलिये विशेष महत्व है।

‘संस्कृत-आचार्यों ने ‘आचारः परमोधर्मः’ कह कर रीति आदि के पालन पर जोर दिया है। किसी शुभ अवसर पर मंगलाचार के आयोजन का वर्णन तानसेन ने निम्न-लिखित पद में किया है :—

ए री आली आज शुभ दिन गावहु मंगलचार
चोक पुरावो बजाओ रिम्कावो बंधावो बंधनवार
गुणी गन्धर्व अपसरा किन्नर वीणरवाब बजे करतार
धन घड़ी धन पल महरत तानसेन प्रभु पर बलिहार ॥^१

आचारों के कुछ संकेत इस वर्ग के अन्य कवियों के छंदों में भी मिलते हैं जिनसे भारतीय परम्परा में उनके विश्वास का पता चलता है।

अतिथि-सत्कार प्राचीन काल से ही भारतीय आस्था का एक अंग रहा है। जब सारे देश का सम्राट् ही अतिथि बन कर आ जाये तो फिर प्रसन्नता का क्या ठिकाना। तानसेन ने निम्नलिखित पद में अपनी इसी प्रसन्नता का वर्णन किया है :—

ए आयो मेरे ग्रह छत्रपति अकबर मन भायो करम जगायो
पाछलो पुण्य मेरो प्रकट भयो याते अर्थ धर्म काम मोक्ष मन चायो चारों फल पायो
काहू की न इच्छा रही तेरे दरस देखे पाप तज धर्मराज अचल कर पढ़ायो
तानसेन कहे यह सुनो छत्रपति अकबर जीवन जनम सुफल कर पायो ॥^२

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में तत्कालीन रहन-सहन तथा वेश-भूषा के भी कुछ वर्णन मिलते हैं। अकबर के समय का पहनावा था—सिर पर लटपटी पाग, तन पर घुटने तक या उससे कुछ नीचे जामा और पैरों में पाजामा, कमर में पटुका और कभी-कभी दुपट्टा भी रहता था जिसके छोर बाँधे कन्धे से आगे पीछे लटकते रहते थे। प्राचीन चित्रों के आधार पर अन्वेषकों ने अकबरकालीन उक्त पहनावे का उल्लेख किया है और इस पहनावे के स्वरूप और उद्गम को भारतीय ही बताया है। चाकदार या घेरदार जामा हिन्दू पहनावा था। इसी का नाम ‘चोल’ भी था जिसका उल्लेख चोल या चोलना

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७६

के रूप में सूरदास और नंददास की रचनाओं में मिलता है। इस चोले पर जो पटुका या कमर-बंधका बांधा जाता था वह भी यहीं का रिवाज था। इसका पटुका 'पट्टक' नाम भारतीय ही है। पाजामा भी कोई बाहरी चीज नहीं कही जा सकती। इसका पुराना नाम 'सूथना' था जिस नान का प्रयोग आज भी बड़े बूढ़े पाजामा के लिये करते हैं। सूथना 'सूत्र-नद्ध' शब्द का ही एक विकसित रूप है। स्त्रियों के पहनावे के लिये भी इसका प्रचार था जिसका उल्लेख सूरदास के एक पद में हुआ है। 'लटपटी पाग' भी भारतीय ही है यद्यपि समय-समय पर इसका स्वरूप परिष्कृत होता रहा है। राजपूत शैली के कई चित्रों से इसका पता चलता है।^१

प्रस्तुत कवियों में तानसेन ने लटपटी-पाग का वर्णन किया है :—

लटपटि पाग खुल रही।पेचन सों.....॥^२

स्त्रियों में लंहगा, चुनरी, पचरंगी तथा मोती-ज़री किनारी की धोती पहनने का रिवाज था। आभूषणों में हार, हमेल, वीरी, बेसरि आदि भारतीय आभूषणों के उल्लेख इन कवियों ने किये हैं। हाथों में ताबीज, गले में छुरा आदि पहनने की प्रथा सम्भवतः विदेशी भावना के प्रभावस्वरूप भारतीय वेश-भूषा की अंग बन गई थी।

भारतीय विश्वास और आचरण के अन्तर्गत षड्रिपु-काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर और लोभ के निवारण का बहुत बड़ा महत्त्व है। पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि में इनका निराकरण आवश्यक है। ये षड्रिपु मानव के सिद्धि-पथ में घोर विघ्न डालते हैं।

नरहरि ने उपर्युक्त षड्रिपुओं के परित्याग का उल्लेख निम्नलिखित छप्पय में एक रूपक द्वारा किया है :—

जगु जलनिधि जल मोह व्रस्ना तरंग धर
तट दुहु दिसि मद मान लोभ अज्ञान भवंर भर
काम क्रोध अति जंतु गहिव कर वर छलि बोरहिं
मन विलास वह पवन कलुष बवन्दर झकझोरहिं

१ अकबरी काल का पहनावा, रायकृष्णदास

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १२२

लै विषय सत्रु तेहि मांझ पर कहि नरहरि^१ केहि संभरइ
पुरुषोत्तम परम कृपाल बिन एहि अवतथ को उद्धरइ ॥^१

ब्रह्म ने इन्हीं मानसिक-विकारों की निवृत्ति का उपाय रूपक द्वारा निम्नलिखित
दंग से व्यक्त किया है :—

काम कबूतर तामस तीतर ज्ञान गुल्लेलन मार गिराये
पाखंड के पर दूर किये अरु मोह के अस्थि निकासि ढराये
संजम काटि मसालो विचार कै साधु समाज ते ताहि हिलाये
ब्रह्म हुतासन सेकि के बावरे वैष्णव होत कवाव के खाये ॥^२

रहीम ने भी इन षड्रिपुओं में क्रोध, अहंकार, गर्व आदि के परित्याग के वर्णन
निम्नलिखित दोहों में किये हैं :—

रहिमन कवहुँ बड़ेन को नाहिँ गर्व को लेस
भार धरै संसार को तउ कहावत सेस ॥^३
रहिमन गली है सांकरी दूजो न ठहराहि
आपु अहै तो हरि नहीं हरि तो आपु न आहि ॥^४

रहीम ने क्रोध-निवारण के साथ मिष्ट-भाषण के सुन्दर परिणाम की ओर इंगित
किया है :—

रहिमन रिस को छाड़ि कै करौ गरीबी भेस
मीठो बोलो नै चलो सबै तुम्हारो देस ॥^५

भारतीय आस्था के अंतर्गत नैतिक उच्चता का भी विशिष्ट स्थान है। भार-
तीय साहित्य की वास्तविक उपादेयता लोक-कल्याण एवं आत्म-निर्माण में ही निहित
है और इस रूप में यह भारतीय विश्वास का एक अंग है। प्रस्तुत सभी कवियों

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद
संख्या ९१

२ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९३

३ रहीम-रत्नावली, दोहा संख्या १७१

४ " " दोहा संख्या १११

५ " " दोहा संख्या २२६

ने नीति-उपदेश सम्बंधी विषयों को अपने काव्य का मुख्य विषय रखा है, जिनका परिचय इनके काव्य-विवेचन के प्रसंग में पहले दिया जा चुका है।

इस प्रकार इन कवियों की रचना-पद्धति में भारतीय सामाजिक जीवन और विश्वास की क्लृप्त स्पष्ट रूप में मिलती है। अकबर, रहीम जैसे व्यक्तियों ने भी अपनी आस्था को भारतीय जीवन और विश्वासों के रूप में ही देखा। अकबर ने भारतीय जीवन को प्रमुख रखते हुए उसमें फ़ारस, मध्य-एशिया के जीवन सम्बंधी बातों का सम्मिश्रण कर दिया था। सीकरी का स्थापत्य, तानसेन का संगीत, दरबार की चित्रकला, दीने-इलाही, उसके आचार-विचार, रहन-सहन, उक्त पहनावे के परिवर्तन में यही विशेषता दिखाई पड़ती है। किन्तु उस समय के हिन्दू अथवा स्वयं अकबर के उत्तराधिकारी ही उसके दृष्टिकोण को न समझ सके और वह उसी के साथ समाप्त हो गई।

ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख

राज्याश्रित कवियों की उपयोगिता के सम्बंध में यहां कुछ विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। शासकों के व्यस्त और क्रान्तिमय जीवन में सरसता एवं मधुरता के संचारार्थ अनेक दरबारी कवि उनके समीप बने रहते थे। सरस और मनोरम उक्तियों द्वारा आश्रयदाता का मन-बहलाव इनका लक्ष्य होता था किन्तु इसके अतिरिक्त समय मिलने पर स्वतंत्र रूप में सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति उनका लक्ष्य रहता था। संस्कृत-साहित्य में ऐसे अनेक दरबारी कवियों का उल्लेख मिलता है जिनकी रचनाओं में काव्य-कलापूर्ण से प्रस्फुटित हुई है। हिन्दी के महाकवि चन्द बरदायी का पृथ्वीराज के दरबार में उपस्थित रहना प्रसिद्ध ही है। राजा के कष्टों में दुःखानुभूति और उसके सुखों में आनन्दानुभूति इनका प्रधान उद्देश्य था। चंद ने अनेक ऐतिहासिक-घटनाओं के उल्लेख भी अपनी रचनाओं में किये हैं। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब ये कवि राजा के साथ 'युद्ध-क्षेत्र' में अवसर पड़ने पर तलवार उठाकर अपने शौर्य का परिचय भी देते थे। साथ ही कभी 'युद्ध-स्थल' पर अपनी वीरोत्तेजक कविताओं द्वारा योद्धाओं को प्रोत्साहित करते देखे जाते थे और शासक की विजय पर उसका यशगान और पराजय में उसके प्रति समवेदना, सहानुभूति और आशा का संचार करते थे। किन्तु इस सब के अतिरिक्त भी दरबारी कवियों का कोई गुरुतर महत्व था। शासक के राजकीय-जीवन में कभी-कभी ऐसी समस्याएँ भी आ जाती थीं जिसका सुलझाना सब के लिये संभव नहीं होता, यह कार्य सुकवियों द्वारा जितनी सुचारता और समुचित रूप में संपन्न हो पाता है

उतना किसी अन्य द्वारा नहीं। ओरछा-नरेश इन्द्रजीत सिंह ने महाकवि केशवदास का आवश्यक कार्य निमित्त राजा वीरवल के पास भेजा था। कवि नरहरि की जीवनी में पहले निर्देश किया जा चुका है कि सम्राट अकबर ने उनको जगन्नाथपुरी के राज मुकुन्ददेव के पास हसनखा खजांची के साथ अवसर विशेष पर सन्नि-प्रस्ताव के सम्बन्ध में भेजा था। अकबर ने नरहरि को उनकी नीति तथा सभा-चातुरी के कारण ही यह गुरुतर भार सौंपा था। अपनी स्वच्छन्द गति के कारण कवियों की विभिन्न स्थान में पहुँच रही है। इस प्रकार वे अनेक लोगों से परिचित रहते हैं और उनके इस परिचय का लाभ उनका आश्रयदाता अवसर-विशेष पर उठाता था।

किन्तु कवियों का सारा कार्य-व्यापार केवल दरबार तक ही सीमित नहीं रहता। वे अपने बाहर के समाज के भी प्रमुख अंग होते हैं। इनका समाज के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध रहता है और स्थान-विशेष में पहुँचने पर अथवा आमन्त्रित होने पर वहाँ इन्हें उचित मान मिलता है। जब साधारण कवि का समाज में मान रहता है तो फिर वे लोग तो राजकीय कवि ठहरे। इस सम्मिलन से उनके द्वारा सामाजिक विशेषताओं का प्रभाव राजकीय सत्ता पर और उन्हीं के द्वारा राजकीय कार्यों की पुष्टि समाज में होती है। राज्य और समाज के मध्य वे एक सुसम्बन्ध का संस्थापन करते हैं और इसी कारण उनकी रचनाओं में राजनीतिक तथा सामाजिक घटनाओं का चित्रण हो जाना स्वाभाविक ही है। अतएव अपने आश्रयदाता का यशगान, अनेक सामन्तों द्वारा सम्मान पाने पर उनके गौरव का बखान, अवसर-विशेष पर राजनीतिक घटनाओं के उल्लेख तथा सामाजिक विशेषताओं के वर्णन उनके काव्य की प्रमुख विशेषता रहती है।

अबुल्फ़ज़ल, बदाउनी, निजामुद्दीन आदि अकबरकालीन इतिहासकारों ने अपने पूर्व की और समकालीन घटनाओं के रोचक ढंग से वर्णन किये हैं। संभव है दरबार से सम्बन्ध रहने के कारण उनके कथन में कहीं-कहीं पर कुछ तथ्यों के सत्य-असत्य का निरूपण न हुआ हो फिर भी उनसे वास्तविक घटना का संकेत तो मिलता ही है। इन घटनाओं के तथ्यातथ्य का निर्णय तत्कालीन कवियों द्वारा अपनी रचनाओं में वर्णित घटनाओं तथा चित्रकारों के विभिन्न चित्रों के सूक्ष्म निरीक्षण से बहुत कुछ सरल हो जाता है और उन ऐतिहासिक घटनाओं की संपुष्टि भी हो जाती है। दरबार के इतिहासकार अबुल्फ़ज़ल के वर्णनों से स्पष्ट है कि कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ सभी राजलक्षर के साथ

चलते थे । जब अवकाश रहता तो उदासी का समा दूर करने के लिये तानपूरे के तार खुल जाते, उसकी झंकार लोगों के हृदयों को आह्लादित करती, भावों का स्वर-संयोजन आवश्यकतानुसार उसमें तीव्रता लाता और चित्रकारों की तूलिका अवसर विशेष के सौंदर्य-संघटन में अपने को कृतकृत्य समझती । कवियों की वाणी वीरपुंगवों को उत्साहित और उत्तेजित करती और फिर वह विजय अथवा पराजय कवियों की वाणी में लिपिबद्ध होती । अतएव इतिहास-निर्माण में इन कवियों, चित्रकारों तथा संगीतज्ञों की परोक्ष-वाणी विशेष सहायक है । अकबरी दरबार में हिन्दी-कवियों द्वारा ज्ञात ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि होती है तथा कुछ इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर नया प्रकाश पड़ता है जो अभी तक इतिहासकारों की दृष्टि से ओझल हैं ।

नरहरि

अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों में कवि नरहरि ही एक ऐसे कवि थे जिनकी पहुँच कई दरबारों में थी और जहाँ से उन्हें उचित सम्मान प्राप्त हुआ था । उन्होंने कई शासकों का युग देखा था । उनके वर्णनों से स्पष्ट है कि वे दिल्ली-नरेश हुमायूँ, अकबर, रीवा-नरेश वीरभान, उनके पुत्र राजा रामचन्द्र, दिल्ली-शासक शेरशाह, जगन्नाथपुरी के राजा मुकुन्द देव आदि के दरबारों में उपस्थित रहे थे । उनके ये वर्णन ऐतिहासिक घटनाओं के सजीव चित्र सामने प्रस्तुत कर देते हैं ।

बाबर और राणा सांगा का युद्ध इतिहासप्रसिद्ध घटना है । सांगा पराजित हुआ । गुजरात,^१ गोर,^२ काबुल^३ आदि प्रदेशों पर हुमायूँ की विजय हुई इतिहाससम्मत इन घटनाओं के उल्लेख नरहरि ने निम्नलिखित सवैया में दिये हैं :—

में अपु बल गंजि विराहि भुइत सांगा दल दिध अगाउं
बहुरि गंजि गुजरात बहादुर इत काबिल उत गोर लोयाउं
नरहरि जुरत पठान जहाँ लगु जो निज सोर मुनो ए कहाउं
इमि धाउं जिमि सिंघन गनि पर अस जंपत मन माम्क हुमाउं ॥^४

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग ४, पृष्ठ २३

२ " " पृष्ठ ३०

३ " " पृष्ठ ४०

४ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५

उपर्युक्त सवैये में हुमायूँ की मानसिक दशा के भावपूर्ण वर्णन के साथ-साथ कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण कर दिया है।

निम्नलिखित सवैये में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के आतंक तथा उस पर हुमायूँ की विजय का वर्णन आया है^१ :—

जेइ मालव मेवात लिएउ वागर बिचि करि
जेइ वेदर निग्गएउ दुवन षंडेउ सो षग्ग अरि
वीर नगर गुण गरुड दंड भंडहि गढ़ छंडहि
जेहि निरन्तर नरंग संग नूमी भरु भंडहि
नरहरि निरषि देस तरइ सो जेहि उर सिंधल षलभलै
बहादुर भुजंगम साहि भौ गरुड हुमाउं निग्गलै॥^२

हुमायूँ अपनी राजनीतिक परिस्थितियों को सुदृढ़ भी न कर पाया था कि शासन की बागडोर उसके हाथ से छिन गई। शेरशाह से १७ मई, सन् १५४०, कन्नौज में उसे हार खानी पड़ी थी। संभवतः हुमायूँ की उसी डाँवाडोल परिस्थिति का दिग्दर्शन कवि नरहरि ने निम्नलिखित सवैये में कराया है^३ :—

जित्ति जगत्तु सब कियो अप्पु बस हुतो समोसन मुष जब ताउं
सोइ छत्रपत्ति बब्बर सुव नन्दन इह अघ हम सुना अगाउं
नरहरि वान धनुष सोइ अस जु न गोप्पि निरषि सँके इक ठाउं
विधि विरुध कछु सूम्हि परत नहि कहा करे बरिवंड हुमाउं॥^४

जहाँ इतिहास में हुमायूँ की पराजय का वर्णन है वहाँ अफगान-वंश के अंतिम बादशाह सिकंदर शाह सूर पर उसकी विजय का भी वर्णन हुआ है। नरहरि ने हुमायूँ की वीरता का वर्णन करते हुए इस घटना का उल्लेख किया है^५ :—

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग ४, पृष्ठ २३

२ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११

३ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग ४, पृष्ठ ३५

४ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १

५ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग ४, पृष्ठ ६७, ६८

पूरब हद्द पछिम पहार दोउ धन किए विधि जानि अगाउ
इत सुमेरु उत चढ़त लंक हय मारि तेग नरपति सब नाउं
हिन्द ते षेदि पठान षगवर दल दलमलि दरियाथ बहाउं
गजिहिं बहुरि नित्ति दिल्लीपति इमि इंडोल रच्यो साहि हुमाउं ॥^१

ऐसा ज्ञात होता है कि कवि हुमायूँ की विपत्तावस्था में साथ छूट जाने पर राजा-
श्रय से हीन होकर कहीं और चला गया था और हुमायूँ की इस विजय को सुनकर फिर
दिल्लीपति के पास पहुँच गया था ।

शेख सलीम^२ तथा मुइनुद्दीन^३ चिश्ती अपने काल के प्रभावशाली संत थे ।
अकबर उनके दर्शनार्थ फतेहपुर सीकरी तथा अजमेर गया था । नरहरि ने उन शेखों के
उल्लेख निम्नलिखित छन्द में किये हैं :—

या सेष सकलेम कुतुरख्वानी हाजिर
अबू महम्मद सषो कर मुना अब्दुलकादिर
या कादिर हाजा तिहु कुम हाकिम सदानि
सेष मुइदी पीर वली इलाह गिलानि
इसनी हुसनी हुकुम तुव गोयद सुमादर दकस^४
सब दस्तगीर नरहरि निरषि गोसालम फिरियादिरस ॥^५

बहुत काल तक अकबर निःसंतान रहा था । इस कारण वह प्रायः चिन्तित रहा
करता था । सूफियों से विशेष प्रभावित रहने के कारण वह पुत्रेच्छा हेतु सूफी-संत शेख
चिश्ती के दरगाह पर सन् १५७० में अजमेर गया था ।^५ नरहरि ने भी शेख से अकबर
के लिये प्रार्थना की थी :—

षोज मोनदी पीर सुनहु विनती करे नरहरि
नरहरि विनती क्या करे हिंदु तुरक समेत
पाय पयादे जगतगुर जानत हो केहि हेत

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८

२ अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ ५३९

३ " " पृष्ठ ५४०

४ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ३७

५ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ् इंडिया, भाग-४, पृष्ठ १०१

जानत हो केहि हेत चेति उत्तम जस लिज्जे
उचित पुत्र फलु वेगि साहि अकबर कहं दिज्जे
चिरंजीव पितु सहित पुहुमि राषे करतरहरि ॥१

कवि की उपर्युक्त प्रार्थना सम्राट अकबर के प्रति उसकी अग्राध प्रेम-भावना की द्योतक है। अकबर की भारतीयता ने ही कवि को ऐसा करने के लिये बाध्य कर दिया था।

चित्तौर-गढ़ की विजय अकबरकालीन इतिहास की एक प्रमुख विशेषता थी।^२ अबुलफजल ने इस अनुपम किले की दुर्गमता और विशालता का चित्ताकर्षक वर्णन किया है। अन्य इतिहासकारों ने भी इस दुर्ग की अजेयता की प्रशंसा की है। चित्तौरगढ़-विजय के समारोह के अवसर पर नरहरि लश्कर के साथ थे क्योंकि इतिहास से ज्ञात होता है कि अकबर इस विजय के पश्चात् सीधे शेख चिस्ती के दर्शनार्थ अजमेर पैदल ही गया था और नरहरि ने भी उसके साथ जाकर उक्त शेख से अकबर के लिये प्रार्थना की थी जिसको पहले बताया जा चुका है। अतएव नरहरि का चित्तौरगढ़-विजय के अवसर पर उपस्थित रहना उचित ही जान पड़ता है।

निम्नलिखित छप्पय में नरहरि ने इस गढ़ के विजय का सजीव वर्णन किया है :-

° सोरह सय पचिस संवत् कुज द्वादसी चइत बदि
सन् नव सय पचहत्तरि तेरीष सावन जदि
उत हिन्दू गढ़पति भिरौ भ्रमु छाड़ि षंड पन
इत काविलपति कोपि बढेउ दल सज्जि षगवन
नव रस अपुधन नरहरि निरषि बहुरि भुवन भारथ किएउ
संक बंध अकबर साहि कि चंपि जोर चित्तौर लिएउ ॥^३

नरहरि की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वे जगन्नाथपुरी में बहुत काल तक रहे थे। उनके जीवन-चरित में पहले कहा जा चुका है कि हुमायूँ की पराजय के अनंतर वे भगवद्भजन में अपने दिवस बिताने के लिये तीर्थ-स्थानों में चले गये थे। यही काल उनके जगन्नाथपुरी-वास का भी माना जा सकता है। क्योंकि निम्नलिखित छप्पय में उन्होंने अकबर के समकालीन जगन्नाथपुरी के राजा मुकुंददेव के जन्म का वर्णन किया है

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत प्रबन्धग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद ९

२ दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग ४, पृष्ठ ९८

३ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३

और इन्हीं मुकुंददेव के पास अकबर का सन्धि-प्रस्ताव लेकर नरहरि अकबर के कहने पर जगन्नाथपुरी गये थे। इससे भी निश्चित होता है कि अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व ही से जगन्नाथपुरी के राजा से इनका परिचय था।

राजा मुकुंददेव के जन्म का वर्णन नरहरि ने निम्नलिखित छप्पय में किया है :—

धन्य धरनि धन देस नगर कुल धनि सो जाति वर
 धन्यसर्व भूपाल जननी धनि धनि जो गर्भ धर
 धनि जुग मंह कलिजुग धनि सो संवत् समत्थ धनि
 धनि सो वर्षु रितु मास पाषु स्वै सैल पाषु धनि
 धनि तिथि वन षतु स्वै दिवस धनि कहि नरहरि विधि निर्मएउ
 धनि पहर लगन स्वै महतु धनि सो जेइ मुकुंद गजपति भएउ ॥^१

उपर्युक्त छप्पय से ऐसा ज्ञात होता है कि जगन्नाथपुरी के राजा से ये अत्यधिक प्रभावित थे और अपनी सहृदयता प्रकट करने के लिये उन्होंने मुकुंददेव की जन्मतिथि के शुभफल पर विचार किया था।

नरहरि शेरशाह के पुत्र सलीम शाह^२ के राज्य-शासन के अन्तिम काल तक दरबार में उपस्थित रहे थे किन्तु उसकी मृत्यु के अनन्तर वे अपने जीवन का शेष काल बिताने के लिये तीर्थादि स्थानों में चले गये थे किन्तु उनकी राज-भक्ति का स्मरण कर हुमायूँ ने उनका आवाहन किया था। उसी दशा और अपनी ग्लानि का वर्णन कवि ने एक छप्पय में किया है :—

जेहि सरन मोहि थप्पि मानु धनु षिति षिताबु दिय
 तिनहु ते अधिक सलेम साहि सब विध संतोष किय
 तिनके मरत नहि मुएउ नहि न ग्रह तजि तपु किन्हेउ
 फेरि परवस परेउ बहुरि अदामिहि चितु दिन्हेउ
 बहुरि कि वहि संग विछुरत नरहरि मनु कतहु न रहत
 पुरुषोत्तम परम क्रिपाल विन लाज दर दर फिरत ॥^३

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७

२ दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग ४, पृष्ठ ५८

३ देखिये, नरहरि के विविध विषयक फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९६

इस छप्पय से स्पष्ट है कि कवि को शासकों की ओर से काफी मान, धन, पृथ्वी तथा खिताब आदि प्राप्त हुए थे, किन्तु उसके जीवन में ऐसा भी समय आया कि उनके अभाव में उसे दर-दर की ठोकर खानी पड़ी।

कवि के उपर्युक्त छप्पयों से अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ आदि मुगल बादशाहों की सहृदयता और दानशीलता का सुस्पष्ट परिचय मिल जाता है।

गौस मुहम्मद अकबरकालीन प्रसिद्ध सूफी संत थे^१ जिसकी कीर्ति काफी दूर-दूर तक फैली हुई थी। गौस मुहम्मद के इसी व्यक्तित्व का निर्देश कवि नरहरि ने अपने निम्न-लिखित छप्पय में किया है :—

नग पंग सूर असुर सिद्ध मुनि गन अनन्त गनि
नर नृपति गढ़ पत्ति तुरक हिंदू समर्थ भनि
न कोई सुधिर पेष्पिअै अवनि अस रसो पंच दिन
कहि नरहरि सबु तज्जि गधु नहि करिअ अद्ध षिन
गुरु गौस महम्मद सिष्पवै पेम्मु जो पर भष्पर हिलै
जलि गलि जगतु मस मंतु भौ सो सिमिटि सिमिटि मट्टिहि मिलै ॥^२

अब्दुरहीम खानखाना के गुणों का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है :—

बाबर हुमाउं गाजी सी पति करत दोउ मन वच करम अटलं स्वामि तकवर
एकन उत्थपि एकत्थ पत जगत हित अनष जरत रिपु फिर चहुं चकवर
गुनि निरगुनी हिंदू तुरक सेवत दलन हरि अवहिं तहिं एक टकवर
परम प्रवीन षानिषाना सो उजीर जाके न्याहि बसुइ विलसत साहि अकबर ॥^३

कवि नरहरि ने अपनी रचनाओं में वीरबल, दौलतखाँ, वाजिदखाँ, सैयद मुबारक आदि के भी उल्लेख किये हैं।

कवि अपने आश्रयदाता के गुणों का विवेचन संवादों द्वारा भी करते थे जिनमें वाद-विवाद की प्रधानता है और फिर विशिष्ट व्यक्तियों से उसका निर्णय करा कर उनकी श्रेष्ठता स्थापित की जाती थी। केशव कृत 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' तथा 'वीरसिंह-देव-चरित' में भी यही शैली वर्णित है। नरहरि ने उसी शैली पर वादों में अपने चरित-

१ आदने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ५३९, ४५७

२ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या २७

नायकों की दानशीलता, न्यायकारिता और सदाचारिता का परिचय दिया है। इनमें जगन्नाथपुरी के राजा मुकुन्द गजपति का भी उल्लेख हुआ है।^१

तानसेन

सम्राट् अकबर गुणियों का पारखी था। गुणी तानसेन को उसने 'नवरत्न' में उचित स्थान दिया था। तानसेन ने उसी के फलस्वरूप इतिहास में वर्णित अकबर की वीरता, उदारता और कला-प्रेम का निम्नलिखित पद में सजीव चित्र खींचा है :—

तू असमान को दूजो रच्यो नाहिन गुन समर्थ आयो है धर्मराज गरीब निवाज
तुम सम और कला कौन महागान गुन निधान दाता विधाता रच पच विरंच ज्ञान समाज
मरन पोषन दुःख दरिद्र हरण षट् दर्शन निवास सकल साज
तानसेन कहे प्रभु हिंदु सुल्तान भक्त उधारन भगवान प्रकट कियो सकल गुन साज ॥^२

अकबर के राज्य की सर्वव्यापकता तथा उसके आंतक का प्रभाव-वर्णन तानसेन के निम्नलिखित छन्द में हुआ है :—

ए आयो आयो रे बलवंत शाह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप औ अष्ट दिस नर नरेंद्र घर घर थर थर डर
निश दिन कर एक छिन पावे वरण न पावे लंगी नगर
जहां तहां जीतत फिरत सुनियत है जलालदीन महम्मद को लश्कर
शाह हुमायूँ को नन्दन चन्दन एक तेग जोधा तकवर
तानसेन को निहाल कीजै दीजो कोटिन जरजरी नजर कमर ॥^३

सम्राट् अकबर अपने सामंतों तथा नवरत्नों के घर जाने में अपनी मानि-हानि नहीं समझता था। इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि तानसेन के 'ए आयो आयो मेरे ग्रह छत्रपति अकबर मन भायो करम जगायो' पद से होती है।^४

तानसेन ने अकबर के राज्य की सीमा^५ का संकेत निम्नलिखित पद में किया है :—

काशी कश्मीर कामरु करनाटक बूंदी बुंदेलखंड
मालवा मुलतान मेवाड़ खुरासान बल्ख बुखार गोलकुंड

१ देखिए, नरहरि के वादु, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८०

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १४१

३ " " पद संख्या १४६

४ " " " पद संख्या १४५

५ प. शार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृष्ठ ३६०

बीजापुर बंग दब दकसान सम श्याम० भरत सम डंड
कहत तानसेन सुनो हुमायूँ के नंदन जलालदीन अकबर जाके डर डरात ब्रह्मंड ॥^१

तानसेन ने दशहरा, ईद, मदनमहोत्सव, होली आदि के भी वर्णन किये हैं जो कवियों के सामाजिक जीवन और विश्वास की समग्रो के अंतर्गत दिये जा चुके हैं। इन वर्णनों से स्पष्ट है कि अकबरी दरबार का इन त्योहारों को सुचारु रूप से मानने में काफी योग्य रहता था।

गंग

कवि गंग ने अब्दुरहीम खानखाना के दक्षिण-भारत के आक्रमण के प्रसंग-वर्णन में कई स्थानों के विजय के उल्लेख किये हैं :—

धमक निसान सुनि धमक तुरान चित चमक किरान मुलतान थहराना जू
मारु मरदान कामरु के करवान आदि मेवार के राम हिंदुवान आनमाना जू
पूर भगान पछमाध पलटान उतरान गुजरात देस दछन दवाना जू
ओरवान हवसान हेहलान रूम साम खेल मेल खुरासान चढ़े खानखाना जू ॥^२

उपर्युक्त छंद में मुलतान, आसाम, गुजरात, खुरासान आदि प्रदेशों की विजय का वर्णन हुआ है।

कवि गंग ने खानखाना की दक्षिण चढ़ाई का उल्लेख 'कलमलि सकल दखिखन मुलक पट्टन पट्टन पट्ट किय' आदि शब्दों में भी किया है। खानखाना अकबर और जहांगीर दोनों के शासनकाल में रहे थे। उन्होंने कई युद्ध किये थे और उपर्युक्त सभी प्रदेशों को जीत कर राज्य की सीमा को बढ़ाया था। अतएव कवि गंग के छंद इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि में पूर्ण योग्य देते हैं।

दानशाह अकबर का तीसरा पुत्र था। २२ वर्ष की अवस्था में अकबर ने इसे अब्दुरहीम खानखाना और बीकानेर के राजा रामसिंह को देखरेख में दक्षिण-प्रदेश का प्रधान सेनापति बना कर भेजा था। कवियों तथा इतिहासकारों ने दानशाह की अनुपम वीरता की प्रशंसा मुक्तकंठ से की है इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि अकबर ने दक्षिण का सेनापति दानशाह को न रखकर, प्रधान सेनापति के पद पर खानखाना को

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १४९

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५२

नियुक्त किया और मुराद भी उसके साथ गया किन्तु इन लोगों को सुल्ताना चाँद-बीबी द्वारा जो बीजापुर नरेश की उपाधि और संपत्ति की उत्तराधिकारिणी थी, रुद्ध में पीछे हटना पड़ा। सन् १५६८ में मुराद की मृत्यु पर अकबर ने दानियाल को पुनः उसी मोर्चे पर खानखाना के साथ नियुक्त किया। फज्रस्वरूप चाँद सुल्ताना की पराजय हुई और उसे आत्महत्या करनी पड़ी।^१ कवि गंग ने दानियाल की वीरता और चाँद बीबी का इसी मानसिक अवस्था का निर्देश निम्नलिखित छंद में किया है।

अकबरसाह जू के महाबली दानसाह काहू पर तेग बांधी तेज भौंहे तककवै
सिंहल के दीप कहू दीप न लगतु गंग दहे रिपु घर ही प्रताप ही के अककवै
सोने सी सदन छाड़ि लौने सी वदन गोरी रावन की मंदोदरी बन बन बककवै
दक्खिन की ओर तेरी चादर की चाह सुनी चाहि भाजी चाँद बीबी चौकि भाजै चककवै ॥^२

‘चाँदबीबी चौकि भाजै चककवै’ की उक्ति से कवि ने चाँदबीबी की मानसिक स्थिति के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा उस समय की वस्तु-स्थिति की ओर भी संकेत किया है।

इतिहास में राणाप्रताप की राजकीय-परिस्थिति का पूरा परिचय मिलता है उनके पास कभी राज्य-वैभव का अपार सुख वर्तमान रहता तो दूसरे ही क्षण उन्हें वन-वन की धूल छाननी पड़ती थी।^३ कवि गंग ने उनकी उस परिस्थिति का वर्णन निम्नलिखित छप्पय में किया है।

गुज्जरेश गम्भीर नीर नीकर निष्करियो
अति अथाह दाऊद बुन्दा बुन्दन उबवरियो
घाम घूंट रघुराय जाम जलधर हर लिन्निव
हिन्दू तुरक तलाव को न कर्दम बस किन्निव
कवि गंग अकबर अकि भनि नृप मियान सब बस करिय
राणा प्रताप रयणांक मंस छण डुबवत छण उछछरिय ॥^४

१ दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, भाग ४, पृष्ठ १४५; १४७

२ देखिये, गंग २ छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११५

३ ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ़ मुस्लिम रूल इन् इंडिया, पृष्ठ ३४४, ; ४५

४ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५८

अपने पूर्वजों की भांति शाहजहां ने भी कवियों के प्रति अपनी उदारता का परिचय दिया था। खुर्रम को 'शाहजहां' की उपाधि उसे जहांगीर के शासन-काल में ही मिल गई थी, जिसे गंग की जीवनी के प्रसंग में पहले कहा जा चुका है और कवियों ने इस अवसर पर उसके गुणों की प्रशंसा की थी। गंग ने भी ऐसे ही अवसर पर शाहजहां की प्रशंसा निम्नलिखित छंद में की है :—

नाउ लिए घर ते निकस्यो कवि गंग कहै साहजान तिहारो
आइ के देख्यो है कल्पतरु अरु कामदुधा मनि चितति भारो
आज हमारी भई परिपूरन आस सबै कबहू नहि वारो
लोभ गयो सिगरो चित ते अब ये भयो दारिद छेदन वारो ॥^१

अकबर के सेनापति रामदास कछवाहा^२ का परिचय कवि गंग ने कई छंदों में दिया है। निम्नलिखित छंद उनकी वीरतासम्मत ही है :—

ऐसे राहे काहे कीने कछवाहे रामदास स्यारन की टारै होत बैरिन के रावरनि
गुज्जर गुज्जसिंह गज्जन के कुम्भ बैठे छोटे छौना छेके फिरैं छरहरे छावरनि
उरभि उग्भि गिरि स्नाख रहे स्नाखरनि वेलिन में बाल सृग बांधे विउ बावरनि
कहै कवि गंग बन वीथिन वरनि परे सूने कै कै छाडे दूनी जंगली जनावरनि ॥^३

एक दूसरे कवित्त में कवि गंग ने 'कूरम कुलीन कुल ऊदावत राम से कोन गुन गुनी धों विमल जस भाए है' आदि शब्दों में उनकी सहृदयता तथा दान-शीलता का भी उल्लेख किया है।

बूंदीपति जुझारसिंह^४ को एक वीरवाला ने हांडावंश के वीर द्वारा अपनी रक्षा करने के लिये राखी भेजी थी। इस ऐतिहासिक घटना का उल्लेख कवि गंग ने एक छंद में किया है जिसे कवियों की सामाजिक-जीवन और विश्वास की सामग्री के अन्तर्गत दिया जा चुका है।

कीरत सिंह कुमार^५, राजा जगन्नाथ आमेर^६ आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के उल्लेख भी कवि गंग के छंदों में आये हैं।

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३०

२ मआसिरुल उमरा, भाग १, पृष्ठ ३३५-३३८

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग छंद संख्या १८८

४ मआसिरुल-उमरा, भाग १, पृष्ठ १८४-१८७

५ " " " पृष्ठ १०३-१०४

६ " " " पृष्ठ १४९-१५

सोइ सब विधि रहि रहौ रहौ रमि रवनि संघ महं
सुनि मुदूढ लोह लंगर निलज हीव अप्पु उत्तम वरन
रहु छार दूरि केहि काज लागि सो गंग छंडि चित्तिहि चरन ॥४॥

हौं अपुबल तोहि गहउँ सरन रक्खौत रयनि दिन
भंजन गढ़न समथ न कोई सरहि औ सार बिन
तुं होहि जाहि दिन पंचकर हिन्दुषु सुनहि सुद्ध मति
जेहि छंडो स्वै स्यार जेहि आउ सौ छत्रपति
इमि कहइ लोह कंचन सुनहि कनौ अवनि उदिम भवन
रहु भरम भंजि नरहरि निरषि सो मोहि सनमुख बोले कवन ॥५॥

हौं सब विधि सुभ करन हरन मनु मोहिते सब रस
जाति जिवन धन धर्म कनौ जग जुगुति अप्पुबल
मोहि बिल्लुरत बन बसेउ सूर पंडित जे पंडु सुत
कहु उदिम किन्ह किएउ तब जो तुम्ह तिन्ह के हत्थ हुत
सो मन सुवर्न निजु नाउँ मोहि लोह न सखिरि किज्जअ
सरहि न अपुन नरहरि निरषि मोहि कारन सबु दिज्जअ ॥६॥

कहै लोह सुन कनक बचन पंडवनि गहेउ वनु
मोहि न समय संभो न भभरि भज्जेउ जिरजोधनु
तोहि विष्ट नर धुगति हौ जो हत्थहं अरि दावन
गुन सरूप जे कहे उर हैं उरप्पेहु किन रावन
लघु जेहि न देउ जय पतु हटि कट्टि कुट्ट तोहि वित्थरउं
रहु भरम मांकि तेहि धरनि तर सो हौं समत्थु कहु केहि डरउं ॥७॥

तुव भरोस जिय ठएउ गएउ रावन जिरजोधन
मोहि न समय संभरेइ सेइ पौरुष गनंत गन
हौं सो तेजु हरि अस निमिषि परिहरउ पार्थ जब
गोप्य रषि नहि सकेउ अनुजन के हत्थ तब
गुरुवत दत्तवर बुद्धि गुन हौं जहं तहं कहं सब्ब रस
कहि कनक लोह देवहि प्रगष्ट सो बिन धरम पुरुष पतंग जस ॥८॥

३११

जो करिवर सतु रहेउ ततौ हरिचंद शुभ छिएउ
 तुव मदंध जहु प्रबल सकल मैत्रिन उठेउ
 गढ़ पषान छिति पान दुहुके जस कज्ज लोह हित
 हौ अन्यत्र पुत जउ कोउ व कुछ कहइ चितै अप्पु चित
 महु मोह लोभु अविवेक तिह तुं कनक अप्पन किएउ
 कृतघन सो कहि नरहरि निरपि केदिके संघ न निर्वहेउ ॥९॥

मै हरिचंदु नृप लिएउ दिएउ पुनि प्रगट उच्च पदु
 दुख दरिद्र सरव मध्य हरन कह हौ प्रसिद्ध जहु
 मोहि लागि भौ भारत्यु रहे निरदोष सुद नव
 तुव करतर दिज साप गएउ जदुवंश मूह सव
 उप्पजहि जेहि तेहि षनहि कृतनि निदरहु लज्जि मन
 कहि कनक लोह मुख जिम्भ रस सो हौं अनिद निदरहि जन ॥१०॥

मोहि जो सुद्रिढ़ करि गहइ तेहि वनिज चहउं चित मंह
 तै दैहि कलुष दुख देइ मै त सुख सुजस मित कहं
 मोहि जोडिये सो सूर तोहि रणै सो कृपिन भनि
 तोहि छुडै समरत्यु मोहिव छुडै सो तुछि गनि

.....
 हौं अजहु लोह रणउ सरन सो वादि बकत बोलहि कनक ॥११॥

वादि बकत मोहि कहइ लहइ लघु मोल लेउ तोहि
 कुकज कज्ज करि सहित विनय संतोषि नवहि मोहि
 तु जेहिके कंठ पग परहि तेहिब बहु विपत्ति दुष्प मन
 हौं सिंगार सुचि सुखद मोहिव पहिरहि तक्षपन
 सेवक जो स्वामि कहं निंदरइ अनप कनक हमि उच्चरै
 षट षोट सो मोहि तोहि जानिअै जो दहन दुखल दै निवकरै ॥१२॥

प्रगट स्वैअ मन सूर सकल संपति समत्य स्वै
 दाहन दुष तह कहिअ जंइ न साहिबु नसाहि वै
 चलहि न्याअ तिह निकट विविध वरवीर धीर जहं
 विधि दिहेउ जय पतु रिमिअ रहे रहे देखि अप्पु मंह

३१२

कस पंथ सार कंचनउ चित कहि नरहरि जग जसु भरिअ
फुरमान साहि असलेम की होइ हुकुम सो सिर धरिअ ॥१३॥

(२) बाढु तेल तंबोल का

अपु सरूप सजि भगगरहि ऐकु तंबोल अरु तेल्लु
छत्रपति अकबर साहि सुनु सो कवि कौतुक छिति पेलु ॥१॥

प्रथम तेलु इमि कहइ निपट नीःफल तंबोल सुनु
जनम समय मोहि चहहि नृपति जन जुवति जानि गुनु
करौं वरकेस सुदेस लेस राखौं न व्याधि कर
रोग जो सब परिहरउं भोग मोहि कहहि सु सुखकर
तोहि गनउ न त्रिन वर अरु सुनहि सो कत बोलहि अरु मुढ्ढ सहि
मोहि चहही नृपति भुअपति सब सो कत तबोल बुलन चहहि ॥२॥

तब तमोल इमि कहइ मुढ किन रहसि अपु रस
मै समस्थ धरो सस्थ करौं नरपति अपु बस
गुन बिहून तते कहिय करहि सरिवरि जो भोरि तुअ
देव पितर नर काज मोहि बिन जन्म कौन हुअ
सहजहुं तबोल निज नाउ मोहि कहि नरहरि मन सम्भरसि
लघुपति सस्थ कुछ त्वै न सो यह समुझि कत भगगरसि ॥३॥

तब सनेह इमि कहै नेहु किजिअ न तोर अस
दसन संग करि रंगु संगु नहि करत अपु रस
हौं सब विधि समरस्थ मोरि कत करहि सरब्वर
असुर देव नर चहहि दीप जगमगउ घर घर
सहजहि सनेहु निज नाउं मोहि कहि नरहरि देखलहि नयन
पुज्जियै आनि बख्यह कहं प्रथम तेलु बोलिअ वयन ॥४॥

तब तंबोल इमि कहइ सहज सिंगार मुढ दलु
षिति पिताब मन मान सकल संपति समुझि फलु
गुन अनेक रस रंग त्रिदस जानहि विचित्र वर
सुरतहु समय पवित्र गहइ मुख मुखहर मारि नर

करओ पडि मोहि लोहि साहि सबन हितहि^१ते मनहि मन
कोल्हु पेराइ पितानि करि सो सनेह कहियत कवन ॥५॥

तरकि तेलु तव कहइ गहहि दोष मुद्ध कत
ऊष चंपि रसु लिओ स्वादमान बन ते लोकहित
नष पुट तजि मरहि बिना बसना सो फेरि बस
हौं अगिनि परत गुन करत धरत विजन विचित्र बस
वर व्याह काज सब पर चढ़ौं तन रोस न निजु नाउ मोहि
गनि कहइ कौन नरहरि निरषि सो जाति भेद दल नाऊं तोहि ॥६॥

जाति भेद छल नाऊ तेल निदरहि नत्थि अब
सिसु कुमार जुआ विस्य चढत चढ्ढेउ पिताव सब
अगिनि परत केहु कलुष रहौं बसि बसन संचि सुष
अरु मेठौ बचन भरम्मु सुषद सुम्भौ सो साहि सुष
सुभ सगुन चहहिनर नृपति मोहि तेलु नाउ असगुन कहत
जानहि न निपट हारौं जितौं सो वादि वादु केहि गुन गुनत ॥७॥

इहि विधि तेलु तमोलु भुक्ति भग्गरेउ बहुत दिन
कवि विनोद सम माहि करहि त्रिन वज्र अद्द पिन
दोउ प्रसिद्ध वर भेष इहै उजकि थकि ससंकि तन
केहिते न्याउ निबरइ कौन समरस्थ सुद्ध मन
सर्वग्य नाम नरहरि निरषि दुवउ द्वार प्रति संवरहि
साहिन मनि अकबरसाहि सुने सो होइ हुकुमु सिर पर धरहि ॥८॥

(तेल तंबोल का वादु समाप्त)

वादु मंगन दानि का

सुनु मंगन हौं कहउ दानि सहजहि दयाल होइ
देषि विचारि चहु जुगंह निठुर भिछुक ते नत्थि कोह
हरि मांगत लघु भयेउ दानु दीएउ तो बढ्यौ
बंधेउ । कोई अपराध राषि भूतल गहि गढ्यौ
सिवि पलहि तुचा दिहेउ करन जीवभूत वाहन दिएउ
भिछुछुक क लोभ जमहुते कट्टिन सो लेत नहिन धरकत दिएउ ॥९॥

तब मंगन हंसि कहेउ इह दोष मूढकत
 लै अपजस बलि भरत रहत हरि संग रंग रत
 सिवि दिधीचि हरिचंदु करन दुरि जात यक्क दिन
 भए ते अमर तिहुँ लोक नामु लिज्जिये प्रात छिन
 नरहरि रन राषि रावन कृपन न दिय दानु चित्तहं गुनिय
 तेहि दोष रमायुन पहर दुइ सो रामचरित अजहुं न सुनिय ॥७३॥

देव चरित निंदरहि उरहि दै यहि न भेटि गुन
 झूठ कहत तेहि पाप पेट कवन अघात सुन
 घामु सीत जलु सहहि छार बाहिर बहु बोल्लहि
 देहु देहु कर जोरि कहत जहं तहं कहं डोल्लहि
 त्रिन तूल तै अति लघु पवन तोहि लैन उड़त मंगन भरम
 दिज्जिय सरापु जैह कह अजहुं सो भीष मांगु औरैहुँ जनम ॥७४॥

जडु जो भीष लघु कहइ भीष देह जाति पांति वर
 जब जानेउ दिज्जियै भीष मागहि नृपति नर
 स्वस्ति बोलि तुव पिता व्याहि दुलहिनि घर आनिय
 भीषहुँ ते सुते भएउ भीष केहि भांति बषानिय
 वित्त चहहि भीष देव पितर न कोउ भीष तेहि उद्धरे
 पुज्जिअरै विप्र सोइ भीष रत जो तीनि भुवन तोरे तरे ॥ ७५ ॥

हाथ लिये जिउ फिरहि दहहि जेहि तेहि कुबोलु कहि
 हृदय कंपु सुष स्वास हरि मानहि न बोल सहि
 तन पहिरहि पर बसन असन पर घर कर गज्जहि
 बिन कारन झगगरहि करत अघातु न लज्जहि
 इहि संक न सम्मुख कहि सकौ सो दिन दस लुउविहउं छलु
 है रामचंद्र चहुं चक्क मनि तेहि समीप उठि न्याय चलु ॥ ७६ ॥

नाम सुनत सुत भएउ उठहि चलु चलिअ वेगि तहं
 महादानि नृप रामु समुक्ति सकुचिहिं सो चित्त महं
 कत सो न्याउं निवै देत निमुदिन मनमानै
 सर नरहरि सब साहि धर्म जसु जगतु बषानै

उठि चलहि तित्थ पथ गंग तट इह संदेहु निवरै जहं
तपु करहि जथ्य द्विज परम गुर सो कहियइ केसव भट्ट पहं ॥ ७७ ॥

कहि मंगन भलि बात निरषि नरहरि जप तजेहि
भट्ट ध्यान लवलीन कहय केहि विधि बुझाइ तेहि
चलु कासिहि ऋग्गरइ जहाँ सिव सदा विस्वंबर
सोइ भीछुक सोइ दानि दुहि के रस रसिकु दिगंबर
करि मुक्ति सकल मुर तोषि यहि होइ सतुष्ट सिव देह वर
निवरहिं ऋगरु है हारि जिति सो कहिहि सहज सरवग्यहर ॥ ७८ ॥

कहेउ जो कासिहि चलन आजु बुझौ सो मंत्र तोहि
है निश्चय सर्वग्य ऐकु कुसंसउ जो एउ मोहि
सोइ भिछुक सोइ दानि कहेउ अपुहित सो संभु कहं
केहक सीलु छाड़िहै न्याउ निविरिहि नत्थि तहं
हौं कहों सुनहि तहं ऋगरिय प्रभु समान सब घट रहित
चलु जगनाथ दर न्याय कह सो महापात्र नरहरि सहित ॥ ७९ ॥

नाउ सुनत सुष भएउ कहेउ उठ उठहि वेग तहं
एक पंथु दुइ काज न्याउ औ देत अन्न कहं
मिलिहहि बहु भुवपति नृपति गजपति पुनि देषव
यह मंतु दुंह जिय रषियउ आनि मिलेउ सुष संग जहं
चलु गुपत वेगि नरहरि निरषि जग जीवनि जगनाथ पहं ॥ ८० ॥

चला चहहि जगदीस दर प्रगट भए यहु काम
दानि मंगनहि पान दै विदा करिय नृप राम
विदा करिय नृप राम नामु सुमिरत सुष लहहि
तजि संसार समुद्र परम पुरषारथु सद्धहि
वेगि रजाइसि होइ जाइ तहं न्याउ निवरहि
कहि नरहरि मोहि साथ मिले दोउ चला चहहि ॥ ८१ ॥

(वादु समाप्त मंगन दानि का)

वाढु नेन कान का

कोउ कहे खवन सेअति सुवर कोउ कहे नेनु सुनाम
कहि नरहरि दोउ अगगरहिं सुन छत्रपति राम ॥१॥

कमल नयन हरि कहि खल हिय वंछित विचित्र वर
रूप लाइसव नयन मग पिषियइ षोंट पर
पिषि तथ्य सुरलोक चरन चितहि विचित्र मह
नयनहीन धितराष्ट्र मुएउ सुनि दोष सुष तहं
जग जीति नयन नरहरि निरषि कतबक रहि सरिवर खवन
जगु अंधधंधु केहि विधि तरइ होइ परबस भोजन गवन ॥२॥

खवन सुनिय हरि भगति सुनत समुक्ति यसु धर्म अति
सुनत मुकुति पद लहिय सुनत ह्वै सुद्रिढ सुद्रमति
सुनत परिछित तरेउ सुनत उपजत अनंत सुष
सुनि सुनि वेद पुरान केहु न परिहरेउ विध दुष
एहि अथ खवन पहिरिय कव अजहुं स्याम किज्जिय नयन
दिषि देषित पहि परधनु धनिय निजु नरहरि बोल्लहि वयन ॥३॥

काम कुटिल बहु छिद्र लोभ कंचन करि किन्हेउ
विधि सरोष ऐहि दोष सेस कहँखवन न दिन्हेउ
रामचंद जसु सुनत रीक्ति तव सीसु डोलाइहि
होइ बीतिहि महि प्रलउ तव जो त्रिभुवन पछिताइहि
किमि होहि खवन लोयन सरिस हिअ दहहिं सुनि दोउ वयन
सचि कृस्न स्याम सुंदर तनह अजहुं स्याम उदित नयन ॥ ४ ॥

प्रगट फनपति लहेउ खवन राषे उत धर्म पर
बिन खवनन सब फुठ गनिय पाहन कुकंठ पर
जो पइ खवन नहिं होत सुनत किमि रंग मंत्रमय
हहि अति तीन सुजान हरिनु ससि संपुषिष्टि सय
कलि कलुष सुनत मूदि खवन दुष समान पिषि नयन
नरहरि निरषि अंतर हतेउ कवि विचारि बोल्लहि वयन ॥ ५ ॥

खवन नयन सम दुवउ कहेउ नृषामचंद मुष
 तेहि न अधिक मगरेउ न्याउ निवरेउ समुक्ति सुष
 कवि कौतुक पथु भिन्न सुनहुं समझहु हो पंच जन
 वज्र ते तिनु तिनु वज्र भवै कुल्लु कहै अप्पु मन
 हठि लरेउ लोह कंचन तवहि मंगन दानि प्रसिद्ध पुनि
 कोउ कहउव कुल्लु नरहरि निरषि करउ कवितु हरि हेतु गुनि ॥ ६ ॥

लज्जा और भूष

लज्जा कहै न मंगिऐ भूष कहे तूं मंगू
 इह मगरो अति कठिन हे नरहरि बने न संगू
 नरहरि बने न संगू नंगु नाहीं ऐहि भीतन
 लाज रहे चुप च्याइ भूष आतुर अतिइ तन
 जहाँ गयो इह न्याउ सुनत सो भूपति भज्या
 कवल नैन जगदीस करो जैसे रहे लज्जा ॥ ७ ॥

बारह-मासा

अभ्रहि पथिक पेषि धन आगम राग मलार सुणत मन बाढ़
 अद्रा नृपति पूजा ग्रह संचित जंपित प्रेम परसपर गाढ़
 नरहरि बुंद बिंदु विनोद वसुंधर हरि विनु सधि विरहानल डाढ़
 पथु जोवहि जिय जाति जितहिं तित सब कह मिलनु अवधु आसाढ़ ॥ १०४ ॥

विज्जु तरक्कि चक्कि पपीहा चंहक्किठ स्याम सुहर्ष सुहावन
 भुम्मि हरित्त सरित्त भरित्त दिगत्त रहित्त जित्त तित्त आवन
 नरहरि स्वामि समीप जहां लागि रचहिं हिडोल सषी सुष गावन
 वेआदर बिलपत्तिइ न कह विन बिठ्ठल विलपति हे सावन ॥ १०५ ॥

जल जंगल महिम गान सूक्त दादुर मोर रोर घन सादव
 जदपि मधो मेष मरि मंडि बुक्ति विरह विरह विकल बिन कादव
 नरहरि निरषि जरत जोवन वन प्रगटित प्रेम वृथा बिन जादव
 अवतकि परती विकल अज सुंदरि दुम्भर नयन भवति भरि भादव ॥ १०६ ॥

सोभित कास अकास दसों दिसि चंद को मोद सरोवर सार
 जगि जप्पन्न प्रप्पन्न प्रजा सब साध समुद्र विविद्धि विचार

नरहरि प्यास जनाति दुहू कर पंष्पि पिऊ पिउ पीउ पुकार
मोनहू ते नरिंद मनोरथ उओ भागवंत अगस्ति कुवार ॥१०७॥

उत्तम पान धान दिगअंवर फूलिलय कंज मंज वग चातिक
षेलहि जूअ अनूप जुआ जन सविरि समीप राति दिन घातिक
नरहारि हसतु होउ हठि ताचति हो ठगी दै तम कुंद रस घातिक
इह मन मुधा जपति जदुपति गोत्र गिनंत अंत करि कातिक ॥१०८॥

उदित त भीत भरि जोवन मन मदंध चंद चढ़ि न गहन
सवनि समीप सुचित मधुर धुनि चोच चहाति चितु चढ़ि नगरन
नरहरि हानु दुसह उर अंतर तिनवन गिरि कंदरप हरित गहन
इहै सोच सषि पोच मन्न मह डरो अनाथ नाथ विन अगहन ॥१०९॥

जे दिन धीन रे तिहूँ ते बढित ते सब सुष्पत नभ न तूस
भूषन भोग भवन्त कुतूहल तेरे तरुनि अनेग जसूस
नरहरि एकक बिहून बिटल विन सब विष तुल्य राति कह ऊस
सोच समुद्र परति पद पद दुख पावइ पथु न पदुमिनि पूस ॥११०॥

रास विलास वेसु सुर पूरित षेलत फिरत नृपति प्रजटागुन
बाजहिं पँच सह बहु भातिन सज्जन समीप सुषिन सुषतागुन
नरहरि निरषि होलिका पूजहि सब जग मुदित मोर परमागुन
वै जदुनंदन भेग सषा सब पिया विनु वृथा फागु भइ फागुन ॥१११॥

सज्जिय सपन्न प्रपन्न रथ नव पल्ल ढाल दल केत
पिक चातिक अलि मोर सन्द धुनि फुलित विपिनि विछ वानेत
नरहरि लाल गुलाल कुसुम सरि संत बसंत सच्च सब लेत
आयो रिचुपति विरह बधुन बधि लाग पुकारि चतुर्भुज चेत ॥११२॥

मलय कपूर अगर वर कुंकुम मृगमद तिलक अनुपम साष
सब विपरीति भीति घर अंगन सुनु सखि एकह कतक अभिलाष
नरहरि इमि मनमथु सज्जि दलु घेरित विघन जोरि कवन राष
मिछु जदुनाथ अनाथ नाथ कउ विरह विरुद्ध मुध वैसाष ॥ ११३ ॥

विरह उदंड प्रचंड मंड रवि तपत पवन्न दिग दिग-टेढ़
छीजत धीर सैरीर सरोदक प्रजुलि सिषिर भभरि षहेढ़

नरहरि ह्रिदय हंस उदुन चहे नाह छूटातु प्रभु प्रेम लसेद
रुदति परति करति अति आरति आवन कहे हो जदुपति जेठ ॥ ११४ ॥

विविध विषयक फुटकर छन्द

रिषि अतंक तकि सरन बघेले की आयो परि समुद्र सकल सुत सथ्ये
तुव समथ चितेउ सो चित मंह जस मुंह चंदु सुरत रहथ्ये
नरहरि अमीय वचन बस किन्हेउ विषु छप्पो कोप मध्य तेहि अर्थे
देषि विभाग अनुराग दयो विधि भागु तो रामनरिंद के मथ्ये ॥ १ ॥

गुर तजन कहि तजननि विषम बंधन मोहि अति
सुष संतोष गुन दत्त दुषुत परवस विरुध मति
जनमु तनरु उरु कालु रिपुन कलि कोप दिष गनि
हानि अवसरन किअ लाभ सत संघ सुद्ध मनि
सोइ सुद्ध जो इंद्रिजित रह प्रभु गोविन्द उप्पम कियउ
जस विमल दानि नरहरि निरषि सो गजपति एककय दुंद दियउ ॥ २ ॥

सहि कुअवनि व्यापकत व्योम निर्भयत धर्म पथ
सुष सुतंत्र मिति जलधि परम पातक असत्य कथ
तह वजीदषां जानु अदिन जाच कुल धुजानिय
अजित कामु अंतकु असील अछर थिर मानिय
अलि रसिक अवनि मोहन कहिय नरहरि इमि करि उच्चवइ
गुन दान धर्म कहं एकक तहं साहिव गोविंद उपन कवइ ॥ ३ ॥

त्रिविध ठट्ट चौदंत विहरिहि आइहि अब सिरहीन उहाउं
कहि नरहरि दहि लाज समकीउ तहं सिंघ हत को न सहाउं
पटकि पूंछि गरराइ गुंजरिहि धारइ सरोस सेर सिर दाउं
मेरे जान उलटि परिहिं मंडनि पटइ अजहूँ दलमल न हुंमाउं ॥ ४ ॥

मे अपु बल गंजि विराहि भुइत सांगा दल दिध अगाउं
बहुनि गंजि गुजरात बढादुर इत काबिल उत गोर लोयाउं
नरहरि जुरत पठान जहाँ लगु जो निज सोर सुनो ए कहाउं
इमि धाउं जिमि सिंघम गनि पर अस जंपत मय मारु हुमाउं ॥ ५ ॥

नरहरि प्यास जनाति दुहू कर पंष्पि पिऊ पिउ पीउ पुकार
मोनहू ते नरिंद मनोरथ उओ भागवंत अगस्ति कुवार ॥१०७॥

उत्तम पान धान दिगअंवर फूलिलय कंज मंज वग चातिक
षेलहि जूअ अनूप जुआ जन सविरि समीप राति दिन घातिक
नरहारि हसतु होउ हठि ताचति हो ठगी दै तम कुंद रस घातिक
इह मन मुधा जपति जदुपति गोत्र गिनंत अंत करि कातिक ॥१०८॥

उदित त भीत भरि जोवन मन मदंध चंद चढ़ि न गहन
सवनि समीप सुचित मधुर धुनि चोच चहाति चितु चढ़ि नगरन
नरहरि हानु दुसह उर अंतर तिनवन गिरि कंदरप हरित गहन
इहै सोच सषि पोच मन्न मह डरो अनाथ नाथ विन अगहन ॥१०९॥

जे दिन धीन रे तिहूँ ते बड़ित ते सब सुषपत नभ न तूस
भूषन भोग भवन्त कुतूहल तेरे तरुनि अनेग जसूस
नरहरि एकक बिहून बिटल विन सब विष तुल्य राति कह ऊस
सोच समुद्र परति पद पद दुख पावइ पथु न पदुमिनि पूस ॥११०॥

रास तिलास वेसु सुर पूरित षेलत फिरत नृपति प्रजटागुन
बाजहिं पँच सद् बहु भातिन सज्जन समीप सुषिन सुषतागुन
नरहरि निरषि होलिका पूजहि सब जग मुदित मोर परमागुन
वै जदुनंदन भेग सषा सब पिया विनु वृथा फागु भइ फागुन ॥१११॥

सज्जिय सपन्न प्रपन्न रथ नव पल्ल ढाल दल केत
पिक चातिक अलि मोर सन्द धुनि फुलित विपिनि त्रिछ वानेत
नरहरि लाल गुलाल कुसुम सरि संत बसंत सच्च सब लेत
आयो रिचुपति विरह बधुन बधि लाग पुकारि चतुर्भुज चेत ॥११२॥

मलय कपूर अगर वर कुंकुम मृगमद तिलक अनुपम साष
सब विपरीति भीति घर अंगन सुनु सखि एकह कतक अभिलाष
नरहरि इमि मनमथु सज्जि दलु घेरित विघन जोरि कवन राष
मिछु जदुनाथ अनाथ नाथ कउ विरह विरुद्ध मुध वैसाष ॥ ११३ ॥

विरह उदंड प्रचंड मंड रवि तपत पवन्न दिग दिग टेढ़
छीजत धीर सैरीर सरोदक प्रजुलि सिषिर भभरि षहेढ़

नरहरि ह्रिदय हंस उदुन चहे नाह छूटातु प्रभु प्रेम लसेद
रुदति परति करति अति आरति आवन कहे हो जदुपति जेठ ॥ ११४ ॥

विविध विषयक फुटकर छन्द

रिषि अतंक तकि सरन वषेले की आयो परि समुद्र सकल सुत सथ्ये
तुव समथ चितेउ सो चित मंह जस मुंह चंदु सुरत रहथ्ये
नरहरि अमीय वचन बस किन्हेउ विषु छप्पो कोप मध्य तेहि अर्थे
देषि विभाग अनुराग दयो विधि भागु तो रामनरिंद के मथ्ये ॥ १ ॥

गुर तजन कहि तजननि विषम बंधन मोहि अति
सुष संतोष गुन दस दुषुत परवस विरुध मति
जनमु तनरु उरु कालु रिपुन कलि कोप दिष गनि
हानि अवसरन किअ लाभ सत संघ सुद्ध मनि
सोइ सुद्ध जो इंद्रिजित रह प्रभु गोविन्द उप्पम कियउ
जस विमल दानि नरहरि निरषि सो गजपति एककय दुंद दियउ ॥ २ ॥

सहि कुअवनि व्यापकत व्योम निर्भयत धर्म पथ
सुष सुतंत्र मिति जलधि परम पातक असत्य कथ
तह वजीदषां जानु अदिन जाच कुल धुजानिय
अजित कामु अंतकु असील अछर थिर मानिय
अलि रसिक अवनि मोहन कहिय नरहरि इमि करि उच्चवइ
गुन दान धर्म कहं एकक तहं साहिव गोविंद उपन कवइ ॥ ३ ॥

त्रिविध ठट्ट चौदंत विहरिहि आइहि अब सिरहीन उहाउं
कहि नरहरि दहि लाज समकीउ तहं सिंघ हत को न सहाउं
पटकि पूंछि गरराइ गुंजरिहि धारइ सरोस सेर सिर दाउं
मेरे जान उलटि परिहिं मंडनि पटइ अजहूँ दलमल न हुंमाउं ॥ ४ ॥

मे अपु बल गंजि विराहि भुइत सांगा दल दिष अगाउं
बहुरि गंजि गुजरात बढादुर इत काबिल उत गोर लोयाउं
नरहरि जुरत पठान जहाँ लगु जो निज सोर सुनो ए कहाउं
इमि धाउं जिमि सिंघम गनि पर अस जंपत मय मारु हुमाउं ॥ ५ ॥

जे हथ रिनहि केहरि गल गज्जत ते हथरि मृग कुदत कुदाउं
जो लगि बाजु भरपि न भुक्कत के लगि पंछि डर उड़ाउं
कहि नरहरि असपत्ति गजपत्ति हिलि मिलि वर बोल्लति तव ताउं
जब लगि नहि चंचल चढ़ि धावत सबल सरहि बरिवंड हुमाउं ॥ ६ ॥

जित्ति जगतु सब कियो अपु वस हुतो समोसन मुष जब ताउं
सोइ छत्रपति बबर सुवनंदन इह अघ हम सुना अगाउं
नरहरि बान धनुष सोइ अस जू न गोपि निरषि सके इक ठाउं
विधि विरुध कुछु सुम्भि परत नहि कहा करे बरिवंड हुमाउं ॥ ७ ॥

पूरव हद्द पछिम पहार दोउ धन किए विधि जानि अगाउं
इत सुमेरु उत चढत लंक हय मारि तंग नरपति सब नाउं
हिंद ते पेदि पठान षग वर दल दलमलि दरियाय बहाउं
गज्जिहि बहुरि जिति दिल्लीपति इमि हिंडोल रच्यो साहि हुमाउं ॥ ८ ॥

षोज मोनदी पीर सुनहु विनती करे नरहरि
नरहरि विनती क्या करे हिंदु तुरक समेत
पाय पयादे जगतु गुर जानत हो केहि हेत
जानत हो केहि हेत चेति उत्तम जस लिज्जै
उचित पुत्र फलु वेगि साहि अकबर कहं दिज्जै
चिरजीव पितु साहित पुहुमि राषै करतरहरि
षोज मोनदी पीर सुनहु विनती करै नरहरि ॥ ९ ॥

छत्रपति अकबर साहि सुनहु विनती करै नरहरि
नरहरि विनती क्या करै जो जलनि सुतहि विषु देइ
वारि जो खेति हठि चरे साधू परधनु लेइ
साधू पर धनु लेइ नाउ करिया गहिबोरै
स्वै पहरु स्वै चोर प्रीति प्रीतम हठि तोरै
रच्छक भच्छक होय कोन समरथ करै धरहरि ॥ १० ॥

जैइ मालव मेवात लिएउ वागर विचि करि
जैइ बेहर निगगहेउ दुवन पंडेउ सो षग अरि

३२१

वीर ! नगर गुण गरव दंड भंडहि ० घट छंडहि
जेहि भिरंत रनरङ्ग संग भूमी भर भंडहि
नरहरि निरखि देस तरह सो जेहि डर सिंगल पलभलै
बहादुर भुजंगम साहि भौ गरुहु हुमाउं निगलै ॥११॥

बाबर हुमाउ गाजी सी पति करत दोउ मन वच करम अटल स्वामि तकवर
एकन उत्थपि एकथपत जगत हित अनप जरत रिपु फिर चहुं चकवर
गुनि निरगुनी हिंदू तुरक सेवत दलन हरि अबहि तहि एक टकवर
परम प्रवीन पानिपाना सो उजीर जाके न्याहि वसुह विलसत साहि अकवर ॥१२॥

असपति नर गजपति भुअपति सेवहि चरन परिहरि भुअ अकवर
रूठै जिन्ह पर तै फिरत हैं सघन वन सहे दुपु कहत कि होते ढक अवर
नरहरि सो को जो रिमावे छत्रपति कह परम प्रवीन जिमि संघउ सुअकवर
सो धनि धनिक गुनी सुकवि समथ सोइ क्रिपा की कटाछ जाहि परे साहि अकवर ॥१३॥

जीतो हय चढ़त मतखंड भुजवर अय बहु बोहित विविधि दल सज्जित
जलनिधि बाधैं हेत तति आँसरित गही प्रवल हुमाउं साहि देखो इमि रज्जित
नरहरि जमुन कपति जलकंप मिसि इह दुपु देखि में प्रथम पेम तज्जित
अति डर सो तिही देखावन चली है जनु नदिन अपुअ लंकपति भज्जित ॥१४॥

कुटिल कुरूप कुजाति कुंवदसि कंसदासि दासिहु ते सुवरि
देखत मन अति विक्रित चक्रित रहे गति देखत काहु ते न उधरि
नरहरि जानि जानि सो मानि तिविक्रम जानिव प्रभु दयाल इह दुवरि
तव वनि ठनि आइ सकल जुअति अब त्रिभुवन गर्बु गवावति कुंवरि ॥१५॥

वर बघेल निरलोभ धम्म रत सेवत चरन साहि सुप रत्ती
यह सो लोभ असरन्न सरन्न किय मारि भुअरि लेत भुइ अत्ती
नरहरि एक बात सकुचत हों परसत पुरसोतम पगसत्ती
हों अपने नृप रामचन्द पर वारों में कोटि कोटि गजपत्ती ॥१६॥

धन्य धरनि धरनि देखु नगर कुल धनि सो जाति वर
धन्य सर्व भूपाल जननि धनि जो गर्भ धर
धनि जुग मह कलिजुग धनि सो संवत् समथ भनि
धनि सो वषु रितु मास पाषु स्वै सैल पाषु धनि

धनि तिथि वनषतु स्वै दिवस धनि कहि नरहरि विधि निर्मएउ
धनि पहरू लगन स्वै महतु धनि सों जेहं मकुंद गजपति भएऊ ॥१७॥

गर्भ परत अवतरत करत बालक विनोद रसै पुनि जोवन
मद मत्त तंत्र इन्द्रिन्ह अनंग वस भएउ न अप्पन
विषय हेत जुहु फिरत बहुरि चपेउ विधप्यवै जएउ
जन्म गुन गुनत अन्त कुछु थिर रहेउ न कोउ
नरपति नवलु रहिहिं एकक चहुँ जुग जसु
सो अजर अमर नरहरि निरपि जो पिअत भक्ति भगवन्त रसु ॥१८॥

अथ जघ कट्टियहि घुरषियहि मंत्रि घर
विप्र जनि रंडियहि चोर रषियहि जोरि कर
साधु लोग कंह धका चुगुल कंह आदर किज्जअ
बहुत प्रीति मसघरहि दानु विस्वा कहं दिज्जअ
न्योतियहि सासुसारे समुर मात पितु भुषैन मरै
कूटिये वियाही दासि घर सो कलि विनोद नरहरि करै ॥१९॥

पगु अमग नहि धरिय डरिय नहि चलत धम्म पथ
नहि संपति मदु करिय निरपि हय अस्व गयंद रथ
प्रेम नेम नहि टरिय अमृतु बोल्लिअ न जिम्भ रस
नहि हरिहि न निंदरिय परिअ नहिं पर प्रपंच वस
गुन दान खग स्वामित्त सत नरहरि समय न चुक्किए
गुरुजनु हरिषि हामि सिष्यवै सो जिअ लागि जसु नहिं मुक्किए ॥२०॥

सकति सनेहु जे करहि मानु वेचहि जे लोम्भ कहं
पित्र वियोग सुख चहहिं तजहिं संकरे स्वामि कंह
नृपति मित्रु करि गनहि पेल दुज्जन संघ पेल्लहिं
मनु बंधहि पर रवनि संपमुष अंगुरि मेल्लहिं
चुक्कहि ते समय नरहरि निरपि जड़ आगे गुंन विस्थरहि
पछिताहि ते नरहरि भगति विन सो दलपति दोसति पानयहिं ॥२१॥

नारि सो धिकु जेहि पुरुष न रिम्मे पुरुषु सो धिकु जिवन अपकारी
बचनु सो धिकु जो बोलि पलटिय दानि सो धिकु जो करकस भारी

प्रभु सो धिकु जो कृत गुन मेष्ट जथा सकति वोल्ता कहि गारी
नरु सो धिकु कुजीवन धिकु नरहरि जिन्ह केवल हरिभक्ति विसारी ॥२२॥

सिंधि सगुन न चंद बल नहि चाहत धन रिद्धि
बधन पट मुंह संवरत जहं साहसु तहं सिद्धि
जहं साहसु तहं सिद्धि सुनत तब विक्रम पाहीं
आई वरसत लिषत तेहु भरि नाही
यह अचिरिजु सक बंध कहत नरहरि खिचि रिंधि
केहि पटतर अब देउ साहि अकर नृप 'सिंधि' ॥२३॥

तरिवर अंध सभुमियन कत भूलहि सुन अंध
तुअ पाउस गिनु जानि केसेइ रहै अलि संघ
केसेइ रहै अलि संघ जब तुंफल फलेह रंग मंह
तिन पवहि परवेसु फिरहि दिसि विदिस दुष्प मंह
नरहरि कबहुं न दीप कोत मीत रस चरवर
तुं भिवेक परिहरि कहहि किन अंध के तरिवर ॥२४॥

नग पंगग सुर अमुर सिद्ध मुनिगन अनंत गनि
नर नृपति गढपति तुरक हिंदू समर्थ भनि
न कोइ सुथिर पोषिअै अवनि अस रसो पंच दिन
कहि नरहरि सब तजित गंधु नहि करिअ अद्ध भिन
गुरु गौस महम्मद निष्पवै पेम्मु जो परमपूर हिलै
जलि गलि जगतु भसमतु भौ सो सिमिट सिमिट मट्टिहि मिलै ॥२५॥

उरग वनि जुमुख गएउ भएउ नहि पुहुमि अनफल
प्रजा दुखित दलमलित गएउ फटि फूट पठान दल
दत्त सत्त गरु वरा रहेउ धन धर्म कित्ति नित्ति
मउर सोर चहुं ओर बहुरि सवरेउ सुगुलपति
जगदीस देखावहि दिष्पिअै कहि नरहरि निमु दिनु पुष्क
सेरन बिन साहि सलेम बिन सो अकल विकल हिंदू तुष्क ॥२६॥

नरहरि दानि दरिद्र बस तऊ सो मंगन जोग
जो सलिता जल सूषि गो कुआं पने सब लोग ॥२७॥

नरहरि कृपिन न मागिऐ जेपे दुखित तन होन
देहै दानु कुबोलु कहि जरै उपर जस लोन ॥३०॥

कोटिन कादहि कोटि कोटि देत बोलो नहीं
कोटि लागि चित छोरी पै हियो न धरक्को रामया ॥३१॥

असपत्ति नर गजपत्ति हुतेउ भुअपत्ति अनेग तब
तै तवै समर संवरेउ भरेउ जसु जगत जिति अब
तोहि जाचहि गुनि सकल कोउ न उधरउ भुमि महं
नपत प्रात सम तकत जियत जलु जलधि अंत कहं
वोहित कपं भुजिमि पिषिअ मंगन गति नरहरि भनै
अस समुझि साहि सेरन प्रगट अैसे अब अत्र दिन्हैहि बनै ॥३२॥

कबहुंक काजु साजु सुष संपति कबहुंक विपति विषम दुष पैऐ
लिपे लिलाट पट्ट विधि अरखट मिटही न कोटि जतन धरि धैऐ
नरहरि नर नरपति सुणहुं अब विन हरिभक्ति अंत पछितैऐ
वित के घटे घटतु नहि नर साहसु स्तय घटे घटि जैऐ ॥३३॥

फनपति गय घरभरहि जलधि उछुलहि छंडि कुमु
उडिरज परिहरि भुअन भऐ ते सुर सकल संभु सम
निमु दिन विछुहि चक्रि कवल सकुचहि रवि झरहि
धूम समुझि अरि त्रिपति मभरि भजहि तन कंपहि
नचहि मऊर नरहारि निरपि सो द्वरंग अनवन वरन
दलु चलत अकव्वर साहि कौ को गिरिवन धन असरन सरन ॥३४॥

गोवा गिरि गढु लियेउ वीर विरसिंह अप्पुवर
पुनि भौ उधरन वीर वीर गनपति उनंत कर
पुनि भौ डुंगुर साहि साहि कीरति तिसुनन्दन
पुनि बसहि कल्यान मान छत्रपति जगवंदन
तेहि तनय साहि विक्रम भएउ नरहरि नहि दुर्जउ सरिसु
भगिवंत थपि तो वर तिलक सेरन साहि नव निधि वरसु ॥३५॥

सज्जिता संव सागर समूह भरि पूरित सकल सरोवर सध
ते सब छंडि हरि जपत पिउ पिउ तुव पयसा सर हित गुन गध

३२५

नरहरि तेहि पोषहि न पेम करि प्रगटिहि पवनु भिसुन कहु गध
कहं धन कहं चातिक वर वारिधि वर वारिद वरसहु किन अघ ॥३६॥

या सेष सलेम कुतुखानी हाजिर
अबूमहम्मद राषी कर मुना अबदुल कादिर
या कादिर हाजा तिहु कुम हाकिम सम दानि
सेद मोइदी पीर वली इलाह गिलानि
हसनी हुसेनी हुकुम तुव गोयष सु मादर दकस
सब दस्तगीर नरहरि निरधि गोसालम फिरिया दिरस ॥३७॥
तरिवर चहुं पथ मझ्झ के कत उपजेहि धन छाह
जो धन छाहत फलेइ कत सुफल निकट बहु तांह
सुफल निकट बहु तांह पथिक जाचक झकझोरहि
पुहुप पत्रफल साख आपु स्वारथ तकि तोरहि
इहि आपन कृत समुझि सहहु उर पर सब करवर
कहि नरहरि गुन विदित भएहु चहु पथ के तरिवर ॥३८॥

कवहुं घामु हिमु कवहुं कवहुं जलु चलि सुपथ कहं छंडि सदनह
तजि सुपट्ट पहिरति तर वक्कल पग कंटक कुल्लु सोच हदनह
नरहरि फिरति निकुंज साम संघ जिनके रूप अचिरज्ज मदनह
तदिन दुष नहि गनति सीय मन जब देषति रघुनन्द वदनह ॥ ४० ॥

करत विनोदु स्याम स्यामा संघ दोउ मन मुरित रूप गुन भाजन
अंग अंग प्रगि रङ्ग रङ्ग मंह छवि उषम धन विंदु विराजन
नरहरि यह विपरीति मुरत रत राधे के चरन उच्चत अति लाजन
उछरि उछरि वेनी परति पिट्टि पर मारत मनहुं मनमथ ताजन ॥४१॥

सत सतगुन संचेरेउ पुट्टिमि धन धर्म विरञ्चौ
जसु त्रिभुवन जगमगेउ पुन्य पौषष सुपु सज्जौ
कीन्देउ कुलनि कलंक कानि कीरति गुन बढौ
पांय परसि पति लागि दरसि दुजन दुष उढौ
महिमा ..रौजु सुभ काम जई कहि नरहरि सब दुष गौ
जगदीश उचित फल फल पुत्र दिय सो जई धरपुत्त सुपुत्त भौ ॥ ४२ ॥

पर प्रपंच पर दर्श पर स्त्री निसु दिन फिरत रहत निजु नत्ते
 अप्पटि पाग लप्पटि वात निप्पटि अवसि करत निज नत्ते
 नरहरि हसत सुकत वर बोल्लत गावत जोवन अधर धरि दत्ते
 तव ते समुक्ति सकुचि विरधप्पन किए ते काज जोवन मद मत्ते ॥४५॥

चरण कवल केलि कू सील गति बाल फूली फिरै बोलि मानो कुंदन कनक की
 नरहरि सुकवि सुगंध सुष सपिन के मधुर मधुर मधु वानक वनक की
 आबु वनमाल धरो माथे रघुनाथ जू के हाथ निसनाथ करो जाई तो जनक की
 दूटत पनाक पानि पान पान लागी सीता सुषनि धरक मई धाक ही धनुष की ॥४६॥

तनु धनु जीवन जोवन चो चपल अति आपुहिं वकि न चित बहु सुचि दप्पन
 जेहि लति जपु तपु करत सकल तगु ते कत अनृत करत कत जप्पन
 नरहरि हरि भजु मन रसि वचसि क्रम भ्रमन भ्रमसि अरै भाई जगु सप्पन
 ग्रह सुत धित बहु विविधि विषय रस आपो मोचे देखहु नहिन कछु अप्पन ॥४७॥

चीरासी चौमट्टि चरन चौबोष षोडस गुनि
 पुनि बारह पुनि रुद्र दसम / नव अष्ट सत्त पुनि
 षट पंच पुनि वारि तीनि दुइ एक संन पिनु
 सत्रह दंड प्रमान होहि दुपहर अपाढ़ दिनु
 घरी चढ़ी जवहीं तव तन नर छाया गुनि लिज्जियै
 महि मध्य देस नरहरि निरपि सो यहि विधि देव संग निज्जियै ॥ ४८ ॥

चैत तीनि वैसाषि चरन दुइ जेठ एकु है सुन्न अपाढ़
 सावन एकु कहुरि भादों दुइ तीनि कुवार क्रमहि क्रमि बाढ़
 कातिक चारि पाच पुनि अगहन है षट् पूस दुपहरी छाँह
 नरहरि चारि चरन पुनि फागुन पंच बहुरि षट पेष्णि माँह ॥ ४९ ॥

सेरन साहि सलेम पुहुमि एक छत्र राजु किअ
 तिन मोहि कह करि कृपा मानु धनु पिति पिताबु दिअ
 तिन्ह के मरत नहि मुएउ लाज गहि बनन सिधाएउ
 तिन्हकि सुतन परि विपति तहाँ केहु काम न आएउ
 एहि लाज गहेउ जगदीस दरु नरहरि चल तन चित सुष
 फिरि फेरि बोलावहि साह मोहि सो आनि दिखावउ कौन मुष ॥ ५० ॥

तब विचारि कवि कहै फिरउ पर कज्ज० दुष्प सहि
 देह जोर है उतन प्रान मृत कहौं सम सो सत्य कहि
 तुमोहि जो देहि कुछ दधु देउं सुरपुर सुधर्म जसु
 जिवनु मृतक जहु हुतेउ ज्वाय लिअ प्यय पेम्प रसु
 नृप हौं हिते जानि कोइ नहि विन कवित चितइ सुमिर
 वैहुं दीनि न कवि कोउ अमर किअ सो कविन दानि किहौं अमर ॥ ७१ ॥^१

रहति गौरि अरधंग गंग जट मुकुट मध्यवस
 सति लिलाट जगमगत भगत भय हरत मिष्णु अस
 तिल्लि नयन मुख पंच संच संगंत गीत रस
 उमरसुल्ल लिऐ हत्थ तत्थ तिहु पुर प्रसिद्ध हस
 तिहु लोक त्रिगुन नरहरि निरषि भेद रहित बरौं चरन
 हरहर जै सिव जै संभु जै सो जै जै सिव संकर सरन ॥ ८२ ॥

जो पय दिगंबर भएहु धरेहु कत धनुष सुल्लकर
 जो पय भसम लय अंग संग सुंदरि बल यहु कत
 जो० पै सुंदरिय संग कामु जारिहु तो कउन मत
 सर्वग्य नाम नरहरि निरषि हठि मसान सज्जहु सयन
 हह अनप संभु केहि सन कहो सो सब विरुद्ध पोषिय नयन ॥ ८३ ॥

दानौ दल छल प्रबल सुपेधि करि भाजै सुर सकल भ्रमित भय भरहरि
 अब सब मिलि तेहि जपत जालपा माइ तुही आबु सकल सबकै गुन तरहरि
 दीनन अभय पद राषति जगत महि जय जय प्रगटित गुन फरहरि
 सोइ देवी हमको राषति जहां तहाँ मिलि आयो जन सरन चरन तकि नरहरि ॥ ८४ ॥

सेर साहि मुअ जोर प्रग वर में गलघटा मारि मुह मोरी
 न हविसु कवि जोगिन गुन गावत नाचत भूत सार मन होरी
 फूल्यो फर्यो अकास नषत तह इहु किसान करै मति चोरी
 एक आति छै गीध उडै ले ऋषत मनहु पर..... ॥ ८५ ॥

तन सिंगार सुर रवान अरवान अद्भुत नरिंद मन
 रीद्र सकल सूरि बन कसन ढपत्ति बंधु जन

३२८

उचित मुगल दल हास चर चिचित थौ विभत्स जहं
 भय भुली भुवपत्ति सांत इसलाम संघ कहं
 दुपरा न अमन पुर रिपुन कहं कहि नरहरि जपतु लिय
 नव रस विभिज्जय इक इक्क कहं वीर अकवर साहि दिय ॥८६॥

टेसु इमि किमि पुंज जिवनु सकल लगै केहि काम
 फूलत ही मन गव्व भो कियो अपु सुष स्याम
 कियो अपु सुष स्याम काम बूमै कछु बातन
 निपटन निर्गुन जानि न्याय परि करैउ सो पातन
 नरहरि तै दुम आन फूलै जे नवहि सुदेसु
 तू ही जाहि जग हंसे अजहुं बूमहि ने टेसु ॥८५॥

नरहरि तजहि विषादु उरु करि धन पुत्र नेहा
 पछितैहो दिन छने सुमुरि पीछे लै सनेहा ॥८६॥

नरहरि सुपसंगी परे जो दुष में चीन्हि
 सौनो सज्जन कसन को विपत्ति कसौटी कीन्हि ॥८७॥

पर....अनु स्वान चील्ह जंबुक उल्लूक मनि
 स्यामा तीतर मरद भरूरि मुरगा मयूर गनि
 चलत वाय लिज्जिय हिंस सुनत वहि प्रसन्न मन
 पुर प्रवेस दाहिनेउ होत सुभ काज धर्म धन
 देषिए लाल लो वाद रस म्रगु संतत दाहिन चहिय
 सुभ सगुन निरषि नरहरि कहिय विजौं करत नव निधि लहिय ॥८८॥

संख भेरि वीना मृदंग सुभु गीत वेद धुनि
 गो सब छत्रन विप्र जुअति सुत सहित देषि पुनि
 धौत वस्त्र लिए रजक वैस विहसित सिंगार तन
 फल अछत दधि पुहुप मन्द नृप देषि सुद्ध मन
 पूरन घट छत्र तुरंग गज सिद्ध अचल गो मय कहिय
 सुभ सगुन निरषि नरहरि कहिय सो विजउ करत नवनिधि लहिय ॥८९॥

३२६

पसु वंधेउ आवत अग्नि प्रज्वलित । कनक मनि
 आइ लेउ कोउ कहइ सुतिइ समुदित रोदंतनि
पान पकवान मलय माटी सुगंध सब
 रस गोर सजत माल मुकुट देखियै दरस जव
 बह मधुर पवन लै संध चल मित्र उदय सुनि केहु कहिय
 सुभ सगुन निरपि नरहरि कहिय विजौ करत नवनिधि लहिय ॥६०॥

प्रात पहर बेल्ले करार सुभ कहिय पुर्व गनि
 अग्नि कोन रिपु मरन पथिक आवंइ दहिन मनि
 चित संतोष नैरित्य मेघ वरपै पच्छिम पर
 वेह कृपति सरोप नसै धन रहै जो उत्तर
 जगु जलनिधि जल मोह तरल वसना तरंग धर
 तटदुहु दिसि मद मान लोभ अज्ञान भँवर भर
 काम क्रोध अति जंतु गहिय करवर छलि बोरहि
 मन विलास बह पवन कलुप बवंडर झकझोरहि
 लै विषय सत्तु तेहि मांस पर कहि नहरि केहि अकरंड
 पुरसोतम परम कृपाल विनयेहि अवस्थ को उद्धरइ
 पुत्र कलत्र भाइ सज्जन धन जेहि लागि दुष्प सहे नर जथ
 तवि डंबर संवर आडंबर चलयो अकेल बजावत हथ
 हरि पद विषुप देस दिशि चितित संचित कोटि भए गुन गथ
 नरहरि पान प्रयान करतंह गोमत कोन पंच पग सथ ॥६१॥

नरहरि जप तप नेम व्रत सबु सबही ते होइ
 प्रीति निवाहन एक रस नहि समरथ कलि कोइ ॥६२॥

आहि करत नहि प्रान गै इह अचिरज बड़ आहि
 तब सो सत्त अथ अष्ट भे विछुर सेरन साहि ॥६३॥

नरहरि दानि दलिद्र वष तउ सो मंगन जोग
 जो सलिता जलु सूषिगो कुवा पने सब लोग
 कुवा खनै सब लोग सकल तन व्रपति बुझवे
 सो दम भारत तनै निरपि मंगन जसु गावे

३३०

सीतल धरम सुगन्ध सत्तु राखै करतर हरि
हम जादिल दरियाय मिटै न छहुँ रितु नरहरि ॥६४॥^१

कनक तुला मनि मोत्ति दान दिन कहि जो ग्रंथ गन
सत्त सहस गो लछि देत विधि सहित सुद्ध मन
अस्व रथ गजरथ वसन ग्राम गनि कहउ कौन कवि
बहुरि प्रगट कलि करन सत हरिचंद प्रात रवि
जस हस्थ भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित संभरिय
गजपति मुकुन्द दिनदेव कह कहउ कुपितु केहि विध करिय ॥६५॥

जेहि सरण मोहि थपि मानु धनु खिति। पितावु दिय
तिनहु ते अधिक सलेम साहि सब विधि संतोष दिय
तिनके मरत नहि मुएउ नहि न ग्रह तजि तपु किन्हेउ
फेरि परवस परेउ बहुरि अदामिहि चित दिन्हेउ
बहुरि कि वहि संग विछुरत नरहरि मनु कतहु न रहत
पुरुषोत्तम परम कृपाल बिन लाज मरत दर दर फिरत ॥६६॥

सोरह सय पचिस संवत कुज द्वादसी चइत वदि
सन नवसय पचहतरि पचीस तेरीष सावान जदि
उत हिंदू गढ़पति भिरौ प्रभु छंडि षंड पन
इत काबिल पत्ति कोपि बढेउ दल सज्जि षग बन
नवरस अपुधन नरहरि निरषि बहुरि भुवन भारथ किएउ
सक बंध अकबर साहि कि चंपि जोरि चित्तौर लिएउ ॥१०३॥

कोट की ओट सवाति राति दिन एहि अगम न रहि आपु सभार
उमत्ति हीन याकी मति ओछी ना उठि गयो न आइ हकार

१ इस छप्पय की अन्तिम चार पंक्तियों का पाठ-भेद उक्त प्रति में ही मिलता है—

कुवा खनै सब लोग निपटनि करै जल आवै
ऊसरि पनि पनि भनै कहो को तृष्णा बुझावै
इहै कृपिन की रीति देखि गगन छपै नरहरि
दाता सहज मुसील देव दीननि नरहरि ॥

भुर से साहि कहे नरहरि कवि वह मगरा जगदीस निवार
तरिवर टूट विहंगम फंस गयउ धिक वधिक जिन जार पसार ॥११५॥

तुअ दरसन तम दलित तलित पंकज सुहर
अति प्रगास बहु चक्कु चक चक्किय अनंद कर
विप्र करत धरक राम संचरतु सर्व धन
सुरनर मुनि गर नाग जज्ञ जस जपत एक मन
.....॥११६॥

माधव केसव कृस्न विस्नु बयकुंठ दमोदर
हरि मकुंद गोविंद अमर अविगछ अगोचर
नारायन नरसिंह सुत्त विठ्ठल बलि गंजन
प्रभु मुरारि वनमालि गोपि जीवनि जुग रंजन
सारंग संप गद्र चक्र धन पढ गुन तस कट हनन
जै राम नाम भगवंतहि तकहि नरहरि तक्क वसनन ॥११७॥

यश लागि बलि बावनहि लोक तीनिहुं समप्य दिय
जेहि यश कारन करन कनक कर कछु न लोम्भ किय
यश कारन हरिचंद नीच धर नीर समप्पेहु
यश कारन जयदेव शोश कंकालहि अरप्पेहु
यश अमर सदा नरहरि चलत यशहि परम पद पाइये
भुवनाह अकबर शाह कहुं रिस करि यश न गवाइये ॥११८॥

जहं सुधर्म सुत नृपति हत्थ जेहि गदा वृकोदर
बंकु नकुल सहदेव सत्थ अरुजुन सौ धनुंधर
सानथि सहित गोविंद तबहिं परि विपति पंच दिन
वन बघेल इह जानि कै रहु निर्दियन अहु धिन
लैहै सुदेस परदेस जस कहि नरहरि चितहु चरन
नृप रामचंद विलसिहि बसहु सो पुनि साहिन रषिहि सरन ॥११९॥

बसुह माल देउ नत्थि देत नाना बिलंब कछु
नगन कोट गिरि अगम माव नहि सहहि भूप तुछु

उदसखि सधिधान गनु गोन गुजरात दुन्द नित
जऐ उगठा सुप साहि दानि नृप नाम विप्र चित
ऐहि सोच विप्र व्याकुल फिरहिं कहि नरहरि चारिउ वरन
पौष्यै मुकुन्द दिव देव कहं सौ समभिभू कलिजुग करन ॥ १२१ ॥

गउन को गनवु हनत फनपति मुख पवन्न टिल्लत जहाजहिं
इंदुर डर विलार जस भाजत स्यार तमकि पात मृगराजहिं
स्वान चरष जस मारि विडाल तकय नुरन धावै विन साजहिं
नरहरि कृग करै रघुनंदन मारै तमकि गरगिया बाजहिं ॥ १२२ ॥

दोउ हाथ जनम पास रेषा निर्मल जसु गंग जुनु पानी
विधि इव हानु दयो साइत को नरहरि गोरि निरंतर जानी
जोग जनय जगतु जैहि सरहतु गैया गाय गोप की रानी
पूजे को कुलरव निपत्तर राम सिराय नछत्र भवानी ॥ १२३ ॥

कनक तुला मन मुदित दान दिन कहि जो ग्रंथ गन
सत सहस्र गो लछि देत विधि सहित सुद मन
अस्व रथ गज रथ वसन ग्राम गनि कहइ कौन कवि
बहुरि प्रगटि कलि करन कथ हरिचंद प्रात रवि
तेहि अथ्य मुकुति अरु भुगुति छौ कहि नरहरि तह सचरिय
दुर्गावति मात समथ्य कौ कहु केहि विधि पटतर करिय ॥ १२४ ॥

सर सर हंस न होत बाज गजराज न घर घर
तर तर सुफन न होत नारि पतिव्रता न नर नर
तन तन मुमत्ति न होत मलयगिरि होत न वन वन
फनि फनि मन नहि होत मुक्त जल होत न घन घन
रन रन मूर न होत हे जन जन होत न भक्ति हरि
नरहरि निरपि कवित्त कहि सब नर होइ न इक सरि ॥ १२५ ॥

को सिपवत कुल दधू अलज्ज गहि कंज रंग गितु
हयनि को सिपवत चुत मुकता सग्वर चितु
सिधन को सिपवत हनत गजकुंभ तित छिन
संज्जन को सिपवत दत अरु सील सुलछिन

लिष्यौ सिष्यौ नरहरि निरषि कुल सुभाव कोउ पिष्यवै
ग्यान धरम अकबर साहि कै कहौ तौ कौन नर सिष्यवै ॥ १२६ ॥

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहि मारि सकत कोइ
हम संतत तिनु चरहि वचन उच्चरहि दीन होइ
अमरित पय नित खवहि वच्छ महि थंमन जावहि
हिंदुहि मधुर न देहि कटुक तुरकहि न पियावहि
कह कवि नरहरि अकबर सुनो विनवति गउ जोरे करन
अपराध कौन मोहि मारियत सुएहु चाम सेवइ चरन ॥ १२७ ॥

नेक बख्त दिल पाक सखी जवां मर्द शेर नर
अवल अली खुदाय दिया विसिआर मुल्क जर
खालिक बहुवेश हुकुम आलिया जो आलिब
दौलत बख्त बुलंद जंग दुश्मन पर गालिब
अवसाफ तुरा गोयद सकल कवि नरहरि गुफतम चुनी
बादशह बरोबर बादशाह दिगर न दीदम दर दुनी ॥ १२८ ॥

चोटी गहि द्रोपदी निम्नोरिवे को ठाढी कीन्ही कोप्पि कह्यो सुमिरि सहाय कौन करिहै
लैन पावै उससि उसास न दुसासन पै दीन है पुकारी कहूँ दीनबंधु हरि है
गुरजन पुरजन देखत तमासो सब नरहरि कोउ न करत धरहरिहै
देसे में अनाथन की ओर कौन सुध लैहै मोर पक्ष धरिहै सो मोर पक्ष धरिहै ॥ १२९ ॥^१

नरहरि सम्बन्धी फुटकर छंद

नरहरि कवि सों गऊ की विनती सुनि सांवी गुन खलन पै कै मति अकससी
अकबर जारी परवाने किये मारिवे को चागिहुँ महीपन जखानी बात हकसी
व्यापि गयो हुकुम दिल्लीपति को हिंद भरि वाजिबी विचारि मन आनि कै करकसी
जीवन कसाइन को गाइन को देत भयो गाइन का मौत ले कसाइन को बकसी ॥ १३० ॥^१

१ उक्त छंद संख्या १२५-१३० तक पं० गंगाप्रसाद भट्ट द्वारा पं० शिवादीन भट्ट के सौजन्य से प्राप्त 'नरहरि के छप्पय और कवित्त' नामक अप्रकाशित ग्रन्थ की प्रतिलिपि से उद्धृत किये गये हैं ।

श्री गरुडाय नमः^१

प्रथमहि लीजै नाम परम शिद्धि पाइऐ ।
 गनपति गौरि मनाइऐ मंगल गाइऐ ।
 लै शरद को नाम शो विधिहि मनाइऐ ।
 शुर नर मुनिगन देव तो जगपति पाइऐ ।
 भूपति भीषम राउ शो कुंदनपुर बसै ।
 ताकी कन्या रुक्मिणी मोहे तिरदशे ।
 भइ है विआहन जाग तो रुकुम हकारिया ।
 लोग कुटुंब बैठाइ तो मंत्र विचारिआ ।
 घर वर कुल शंबंध जहाँ जश पाइऐ ।
 तेहि वर अह अश कन्या अवश विआइऐ ।
 भीयरानी वौ शाधुन आश मत कीजिए ।

अश कहि रुकुम रिशानेउ निंदरि गोपाल ही ।
 बहुरि नाम जन लेहु देहु शिशुपाल ही ।
 दैत्य वंश शिशुपाल जाति कुल आगरा ।
 तिन्हहि छाड़ि कत देहु अहिर नट नागरा ।
 वंश हित जमुन तीर शो धेनु चरावही ।
 घर घर माखन खाही शो वैनु बजावही ।
 अश कहि लगन लिखाहि शो विप्र पठाएउ ।
 दल समेत शिशुपाल ही वेगि बोलाएउ ।
 लिखि पातिहि वो हाथ शो कछु न विचारिआ ।
 राजन सहित बरात इहां पगु धारिआ ।
 तिलक को शात पठाइ तो मंडप छाइआ ।
 मातु पिता वो साधुन अति दुख पाइआ ।

छंद

दुख पाइया पितु मातु शाधुन रुकुम मुढन बुझाइऐ
 मनि देह मरकट हाथ मुख आग पाछ न सुझाइऐ

१ काशीराज पुस्तकालय की प्राचीन हस्तलिखित प्रति नरहरि कृत 'रुक्मिणी-मंगल' से उद्धृत

गुन छय कन्या रतन रुक्मिणी असुव कह कृत दीजिए
 ऐहि जोग जादव नाथ नरहरि रुकुम वैर न कीजिए
 पाती लगन लिखाए सो विप्र पग ऐउ
 गये चंदेरीहि शाजि बरात बनाऐउ
 देखि शाज दल धोख शो अति शुख कीन्हेउ
 पाती नेवत शंदेश ब्रीपन्ह कह दीन्हेउ
 लेहि नेवत अति हेतु शो सऐन बनावही
 शव देशन के भूप चंदेरी आवही
 जराशंधु दे आदि ब्रीपति दल गाजही
 हिलि मिलि करहि अरुंद शो बशी दल बल शाजही
 हरि शो मानहि वैर अशुर कुल घात की
 मनो दुलह शिशुपाल शो भुपु बरात की
 चले निशान बजाए तो धावन धाइआ
 आई निकट बरात रुकुम शुख पाइआ ॥

छंद

शुख कीन्ह रुकुम बरात आवत हाट बाट बनाइआ
 दल शाजि न आपन भाइ चारिउ आगे लेन पठाइआ
 मिलि मेटि कहेउ की पाव धारिअ आगे होइ ब्रीप लीन्हेऊ
 जेहि जोग जश जन वंश नरहरि आनि तश तेहि दीन्हेऊ ॥

रुकुम नृपन 'के हेतु' शुशाशर जोवइ
 एह शुनि रुकुमनि विफल जनमि मुख जोवइ
 राखु कुंअरि शुकुमारि शो दुरि दुरि रोवइ
 लाज न काहुनि कहे शो जन वीगोवइ
 कित कीन्हेउ व्रत नेम शो शीतन शाधेउ
 पारवती वो शंकर कित अवराधेउ
 वर मांगेउ जदुनाथ शो वेदन विंदइ
 देव गढ़त कपि भएउ विधातहि निंदइ
 भरइ की लाख उपाइ मनहि मन कल्पइ
 जश आवा के आगि हृदे अति तलफइ

३३६

कर मीजे पछिताइ बहुत दुख पावइ
विपति मोरि इह जाइ को प्रभुहि सुनावइ

छंद

विपति इह को कहि सुनावै ताप दुख जो मैं शहौ
हे निकट लगन निदेश प्रीतम दुख कठिन काशौ कहौ
तजि लाज एक उपाइ अजहु करो जो विधि बनि आवई
लिखि देए ताशु शदेश नरहरि प्रभुहि जाइ सुनावई

बैठि एकांतहि रुकुमिनि विप्र बोलऐउ
देव न मान निहोर शदेश बुझाऐउ
जदुपति कह कर मुदरी पाती दीन्हैउ
शजल नऐन पगु लागि शो विनती कीन्हैउ
चले विप्र वर वो शगुन शुभ पाऐउ
हृदै धरेउ हरि ध्यान द्वारिका आऐउ
कनक रतन मनि मंदिर विप्र भुलानेउ
आपन जीवन जन्म शुफल करि मानेउ
आऐउ शीह दुआर तो प्रभुहि जनाऐउ
कुंदनपुर शो विप्र लिखा लै आऐउ
शुनि पाती तब जदुपति निकट बुलाऐउ
बुझि कुशल दम धोख शो नित बैठाऐउ
तवहि ज पाती दीन शो बात जनाऐउ ॥

छंद

हरत कमल हरि तिस्राइ भेद केउ न जानइ
वान्हे लीखी पाती पति छाती हरि ह्रिदे अनुमानइ
जहाँ जहाँ त्रीप भेख कीन्हो तहाँ तहाँ हो शंग रही
अब डरत असुर के नाम नरहरि बात देख शाची कही ॥

शो शती की जदुनाथ स्वामी जदुनंदना
लिखति दाशि पर नाम शो अशुर निकंदना

नाथ तुम्हारे कुशल कुशल अब लेखिहि
 इहो कुशल तब ही इव रन जब देखिहि
 शुनि गुन रूप चर नियत अब लगि दीन्हेउ
 तुम्ह कारन व्रत नेम आगु लगि कीन्हेउ
 अब शो मिथ्या होत है अति दुख पाएउ
 लाज छाडि एहि शंकट विप्र पठाएउ
 लागहु वेगि गोहानि शाजि दल धावहु
 गाह गहत है बाध शो आनि छड़ावहु
 बहुत जुरे हैं जंबुक विलग मन लावहु
 हरखि शिह बलि आपन लेइ शिधावहु
 भाइ रुकुम हठ परेउ देन मोहि चाहइ
 तुम्ह आछत जदुनाथ अशुर मोहि व्याहइ ॥

छन्द

व्याहे अशुर मोह रुकुम के हित मातु पितु दुख पावई
 इह बात शुनि शब नगर रोवै अशुर काहु न भावई
 नर नारि दो ।दिज शजन परिजन जह शोत इश बहावई
 कर तोरि करहि भरोश नरहरि स्याम शंकट मोहई ॥

शुदि आठे वैशाल शो लगन लिखाइहै
 तिशरे दिन मोहि व्याहि अशुर ले जाइहै
 बाहर नगर गौरि को पूजन जाइहों
 नाथ तुम्हारे चरन कमल मन लाइहों
 तहाँ शो हरि ले जाहु शाजि दल धावहु
 गाह गहत है बाध शो आनि छड़ावहु
 छन छन मगन होत है ऐहि दुख शागरा
 कर गहि आइ उबारु अहो ब्रीज नागरा
 मै जो ढिठाइ कीन्ह शो विलग न मानवा
 हरि थोरे में लिखा बहूत करि जानवा
 पाती बाँधि गोविंद शस्थ करि जानेउ
 राम रूप वै शीअ समुक्ति मुशकानेउ ॥

३३८

छंद

मुशुकान ग्यान प्रवीन सुन्दरि प्रीति उर मह आइआ
 भरो शजल शुन्दर कमल लोचन ते बहुत दुख पाइआ
 अब असुर मारि प्रहारि व्याहो बहुरि विरहन देखई
 भनि देउ भाग शोहाग नरहरि शुफल जीवन लेखई ॥
 ऐहि जीवन जदुनाथ विलंब न कीन्हैउ
 पवन वेग रथ साजिहुं आएशु दीन्हैउ
 बलि शो कहा बुझाई कि शब ही जनावहु
 तुम्ह दल लेह पाछे शो कुंदनपुर आवहु
 चली शैन जदुनाथ विलंब न लाऐउ
 ऐहि विधि जगत क्रीपाल नगर निश्चरानेउ
 इहां रुक्मिनी कलपे नाथ न आएउ
 की प्रभु कीन्ह विलंब की दिज न सिधाएउ
 बाई आख शो फरकित सगुन जनाएउ
 प्रभु के शंग दिज होत शो तेहि आएउ
 चीते रही दिज को मुख पुछन न पारही
 कहाँ रहे जदुनाथ शो हृदै विचारही ॥

छन्द

हिय विचारे मुख निहारे शकुचि मन ही मे रहै
 दुख शुख जो मिलन विओग अब दहु विप्र मोशो का कहै
 दिज कहा शैन बुझाय सुन्दर पाइ पति शुख पाइआ
 जनु रंग पाऐउ रतन रुकुमनि प्रगट जदुपति आइआ ॥

सुनि रुकुमिनि के विपती क्रीपानिधि आइआ
 पाइ लगि जनु रंक परम निधि पाइआ
 नगर लोग नर नारि सोहे खन आइआ
 देखि रूप बलि जाहि परम शुख पाइआ
 हरि रुकुमिनी के व्याह सो विधिहि मनाइआ
 नृप भौखम तब शुनैउ की जदुपति आइआ

आऐउ भीखम निकट शो माथ, नवाइआ
 रहेउ दोउ कर जोरि चरन चित दीन्हैउ
 मोर जन्म हरि आहू क्रीतारथ कीन्हैउ
 रुकुमहि दुख न लाइ सो हरि परितोखउ
 कहेउ मरम सब भेद गोन्विदहि तोखेउ
 हरि पुनि कीन्ह शंतोख बहुत शुख मानेउ
 जराशिधु शिशुपाल काल वश जानेउ ॥

छन्द

जानेउ कि दानव दलन आऐउ तंत मंत न शुम्भाई
 ऐहि श्याम को छल छन्द चेटक रुकुम मुढन बुम्भाई
 जानि है तव मुड परि है जराशीधु जनाइआ
 मीह भेद काहु कीन्ह नरहरि प्रगट जदुपति आइआ ॥

नींद न परेउ अशुर दल थरहर डोलेउ
 भोर होत शिशुपाल रुकुम शो बोलेउ
 मिलि बैठे भूपति लगे विचारना
 बिनु नेवते इह स्याम आऐ केहि कारना
 जरासीधु अश कहेउ रुकुम दुख पाइहै
 अश जानित है जदुपति तुम्हहि शताइहै
 घर तेहि आवा होत तो पकरि मगावता

.....

तव अस उतर रुकुम दै तुम्हहि देखाइहौ
 जुझि जीत जादव कहं बाँधि लै आइहौ
 जरासीधु अश कहेउ रुकुम हठ छाडहु
 शव राजन घर आनि शो कहि मांडहु
 शावधान पै होहु बहुत जनि माखहु
 जनु तुम रुकुमिनि जीतेहु रुकुमिनि राखहु
 वाह सठाइ कहत हौं जनि अनुरागहु
 रुकुमिनि हरन होत है जागहु जागहु

३४०

रेखा खाँचि कहत हौ हरि लै जाइहै
तब जानब बेवशार स्याम मुख लाइहै ॥

छन्द

लाइहै जब स्याम मात वहि आपुहि राखिहौ
करि को पत की उतारि दीन्है भलेहि बहु विधि भाषिहौ
रुकुम जौ तुम्ह बाँधि त्यावहु मतौ निशि दिन हर्खही
जो आजु व्रत शिशइ नरहरि कालि कह कित राखही ॥

मंगल

उठे रुकुम बल बोलि शो मन्दिर आपेउ
लोग कुटुम्ब दल परिजन निकट बोलाऐउ
कान लागि मन्त्री शो अशमत कीन्हैउ
दल चतुरंग शवारहु आपेसु दीन्हैउ
बाहर नगर गौरि को मंडप घेरहु
हाट बाट चहु वोर दोहाइ फेरहु
होइ न पवन शचार शो जुगुति बनावहु
रुकुमिनि गौरि पुजाइ वेगि लै आवहु
शुनि आपेशु दल जोरि जो अनवन भातिन
नरहरि आइ ठाठ भये पातिन पातिन
हाट बाट मगुपंथ घेरि दल शाजेउ
चली रुकुमिनी पूजन बाज न बाजेउ ॥

छन्द

बाजेउ जो बाजन शर्व विधि शव रंग बहुत विशेषई
तंह प्रगट शुर मुनि शिष्य नरहरि पुष्प ब्रीष्टि जो लेखई
केसर कपुर मिलाइ कुमकुम अगर परमल लाइआ
हरि हेतु राजकुमारि नरहरि गौरि पूजन आइआ ॥

लै शिशुगल को नाम शखी ऐक गाऐउ
मोह चढ़ाइ रिशाइ शो करि बहराऐउ
शखिन के बीच रुकुमिनी त्रिभुवन मोहइ
छीर शीधु ते निशरि लछ्मि शोहइ

३४१

आइ गौरि के मंडप जुगुति वनतऐउ
 करि पूजा शोडश विधि वचन सुनाऐउ
 मै तुव शेवा कीन्ह रात दिन जागेउ
 अर्थ धर्म अरु मोक्ष कर नहिं मागेउ
 जीअ भीतर जटुनाथ आजु लागि राखेउ
 अब शो संकट परेउ प्रगट करि भाखेउ
 करहु शुफल सब काज शो गौरि मनाऐउ
 वर मांगौ जटुनाथ क्रीपा करि पावउ ॥

छंद

पावा क्रीपा करि श्याम सुंदर जेहि पर न चित दे रही
 हठ परेउ पापी रुकुम मोशों शत्रै शंकट मै शही
 जेहि जागि जप तप नेम कीन्हो दरश बिनु तन छीजही
 वर वेगि मै जटुनाथ पावौ गौरि गहर न कीजही

मंगल

गौरि विहंशि कै कहेउ की तैं वर पाऐउ
 आऐउ व्याह सोहाग तिहु पुर गाऐउ
 पैहो भाग सोहाग इहां प्रभु आइहै
 सहित अशुर शिशुपाल रोइ घर जाइहै
 ऐह शुनि पाऐन परी बहुत शुख पाऐउ
 जै जै करहि शखी शव मंगल गाऐउ
 देहि अशीश नारि नर शंत शमानिआ
 वेगि गौरि वर मिले शो राजकुमारिआ
 लै कै वारि शखी शव बाहेर आऐउ
 त्रिभुवन नाथ रुकुमिनी देख न पाऐउ
 चढ़ी शो मंदिर धार इनहि छन निरखइ
 विथुरी जुथ भ्रगी जनु चहु दिशि चितवइ ॥

छंद

चितवै शो जंह तंह भ्रगी जनु तनु काम छवि बहु शोहई
 मंजीर नुपुर कलित कंकन देखि मुनि मन मोहई

३४२

शब शखी लीहै शो कनक थार विलोकि अति शुख पाइआ
वर बेख नरहरि रुकुमिनी के मनहि मन अति भाइआ ॥

मंगल

शोहै अलक वदन पर नह शुति ठारइ
नरहरि प्रान नाथ को पंथ निहारइ
लोग कहै चलु वेगि विलंब न लाइआ
इह गति देखि धुजा तव पट तर पाइआ
धुजहि के साथ गयो मन तुरित शिधाऐउ
इत डांडी उत अंबर फरकि जनाऐउ
रहै न पावै रुकुमिनी चलै न पारही
कहां रहे करतार सो ह्रीदे विचारही
तेहि छन शारंगपानि सो आइ तुलानेउ
हरि पुनि देखी रुकुमिनी अति हरखानेउ
देखेउ तन की हैतु एक करि मानेउ
गहि रुकुमिनी की वाह शो रथहि बैठाऐउ
जनु त्रिभुवन की शोभा जदुपति पाऐउ ॥

छंद

पायो जो शोभ शंतोख मन माह अतिहि शब देखहि खरी
जनु जुय जंजुक मध्य नरहरि शिव आपन बलि हरी
शशि दूरि तजै शो तिमिर पशरै अंधु धुधन सुम्ई
लै चलै रथहि चढाइ रुकुमिनी एक ऐकहि बुझई ॥

मंगल

ठाढे असुर वीर शब कोउ न डोलइ
देहि गारिहि अहारि शो वान चलावइ
हरि शन्मुख कोउ वीर निकट नहि आवइ
तब हरि हाथ धनुक ले ये लिपटानेउ
हरि लै चलेउ रुकुमिनिहि करुन शभारेउ
रुकुमिनि हरन होत है लोग पुकारेउ

३४३

पहिरि शंजोए रूकुम तब पाछे धाएउ
 जराशींधु तब बांह धरी शमम्हाएउ
 मै जो कहा रह कुटिल लाज पति धोइहै
 हमहि तुम्हहि शिशुबालहि सबहिं विगोइहै
 इह जादव तिहु लोक शोक वन विगोइहै
 मानि ताशु शिशुबाल धाह दै रोइहै
 लाखन मह अश कहि कै रूकुम नेवारउ
 औशे शत्रह वैर जुम्ह मै हानेउ
 रूकुम महा हठ परे न कहा नहि मानह
 औशे शुमति गोविंदहि लघु करि जानइ ॥

छंद

जानै गोविंदहि तुछ करि कै शाजि रथ तब धाएऊ
 देखेउ रूकुमिनी रथहि बैठी पग हिय गति अरानेऊ
 दुहु मोघ जादव घोर ठाढे अनी बहु विधि देखई
 करि कोप धावा तवहि शनमुख शकल बल तिन्ह लेखई ॥

मंगल

दीहेशि निअर होइ हांक कहां अब जाइशी
 अरे आदि के चोर कि हेत छपाइशी
 क्रोध भए तुमद अध आपुन शभारइ
 रूकुम लाज पति लागि हरिहि परचारइ
 अश कहि वान पवारेशि हरि रथ मांपेउ
 प्रगट जुध तब देखि रूकुमिनी कांपेउ
 शकुचि दइव शे जीय आपु कहं मांगइ
 स्वाम मनोहर गात वान जनि लागइ
 हरि रूकुमिनि मुख देखि धीरज तब दीन्हेउ
 नाग फाश शर शधि शो शन्मुख कीन्हेउ
 नाग फाश शन लैके पाछे धाएउ
 रथ के खंभ लगाइ रूकुम वो रंजाएउ ॥

३४४

छन्द

बांधा जो रथहि लगाइ दानव ठाठ दोउ दल देखई
तह प्रगट शुर नर शिध मुनिवर पुष्प ब्रीशठी विशेषई
बल बोलि शनमुख रुकुम धाव आगे आई बधाइआ
वर वेख नरहरि रुकुम के मन शबहि चेटक लाइआ

मंगल

गहि कर वर तब केश जो लगे नेवारइ
हरि शनमुख तब रुकुमिनि पगु शिर धारइ
भाइ भाइ कै रुकुमिनि प्रभु पद लागेउ
देखि क्रीपालु भगतु वश आगि अनुरागेउ
हरि रुकुमिनी मुख देखि छाडि तब दीन्हेउ
मोछ गोछ शिर मुंडि विरूपी कीन्हेउ
जादव के शंग चले प्रभु चेटक लाऐउ
हरि रुकुमिनि लै शंग दवारिका आएउ
कीन्हो गंधप व्याह शुजस जग छाऐउ
महापातु कवि नरहरि मङ्गल गाऐउ
जो यह मंगल गावै गाइ सुनावइ
व्याह काज कल्यान परम पद पावइ
रुकुमिनि हरन शुनै जो हीदै विचारइ
आप तरै भव शागर कुल निस्तारइ ॥

छन्द

तारै जो कुल शब भाति अपने कहै सुनै जो गावई
कल्यान काज विवाह मंगल शर्वदा सुख पावई
इह कथा परम पुनीत समुक्त तरत नर करि चित लाइआ
नरहरि महा जो पात शब विधि परम पद शो पाइआ ॥

शुभमस्तु

इति श्री रुकुमीनी-मङ्गल नरहरि भाट विरचित शमाप्तं शुभमस्तु इति ।

ब्रह्म की रचनाएँ

. भक्ति

जो तुम छत्र की छांह चलावत तो न कहूँ कछु मैं रिधि पाई
जो तू धराधर भीख मगावत तो न कहूँ कछु आप दयाई
ब्रह्म भनै विनती इतनी छोरुं नहीं हरि तो सरनाई
दीनदयाल दया करि माधव मोहि कहाँ सब तोहि बड़ाई ॥१॥

जो हरि न्यारो तो न्यारो नहीं जो हरि न्यारो तो बोलत को है
जो सपनान्तर में वह सोवत सोवत में वह डोलत को है
ब्रह्म भनै जो पै दूर रहै या लगी अखियाँ पल खोलत को है
जो हरि नाहिं दुरे घट में तो दुरी बतियां कहो खोलत को है ॥२॥

तुम ही करता तुम ही भरता तुम ही नभ ऊपर तेज तपै हो
ब्रह्म भनै जु जहान कि जीभ जहां सुत दास भलो गज पैहो
कौनउ भांति कनेउं न काऊ के मोसों कहो ऐते काहि चपै हो
ऐसौ कहा कीनो है नाथ जु ऐसे बड़े तुम ऐसे छिपे हो ॥३॥

प्राख चढ़ाय के जोग करो कहा काहे करो व्रत पुंज विसाला
देह तपाय तपाय पचागिन काहे सहो वन बैठि कसाला
ब्रह्म विचारत जो हिय में सोइ रूप धरै नर को इहि काला
जाय लखो किन वा नन्दराय के आंगने खेलत नन्द को लाला ॥४॥

ए तो बड़ो प्रभु आने ही आवतु काहे रे तू उर आनतु नाहिन
ब्रह्म भनै पहिचाने महामुखु काहे रे तू पहिचानतु नाहिन
केतिक बेर कह्यो तो कहा भयो जो पै कहे कह्यो मानतु नाहिन
वारहि बार बलाइ सिखावत जानहि गो जो पै जानत नाहिन ॥५॥

कोने गहे हो हुतो कहि कोन को माधो कहों पर पीरक प्यारे
को समरथ अनाथ के नाथ अनाथ को किहि पास पुकारे
ब्रह्म को नाऊं धर्यो सोइ ले उघरो जैसे हे तुम और उधारे
बिंदु ते एतो बड़ोइ कियो अब बोलत क्यों नहीं बोलन हारे ॥६॥

१ याज्ञिक-संग्रहालय तथा कांकरीली के हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथों से प्राप्त। इनमें छंदोभंग दूर करने के लिये वर्णों में कही-कहीं पर परिवर्तन कर दिया गया है।

गेह सो भागे बने भनि ब्रह्म सु क्यों निबहै मन सों तनु भागत
गाठी के गांठि दई सब अंगनि नींद परे न महादुख जागत
जिती रिस ही होइ ती अब नाहिं दयानिधि देखत हों अनुरागत
जानत हों अब छोड़हुगे हरि बंधन मोकहं ढीले हैं लागत ॥७॥

चतुरानन हू चतुरानन हूँपरि पायो न भेदु न वेदन गायो
हारि हिए हरु तों पटके करु हारि रहै हरि हीऐ न आयो
ब्रह्म भनै मुनि मौन के मन सारत नेक मनो न मनायो
कितो बड़ो भाग जसोमति को करतारु दे दे करतारु नचायो ॥८॥

जबते जनम्यो खनीहि रम्यो तु रह्यो रति से हरि सो नहिं चीन्हो
लोभहि लोभ दियो मन दाम सो दामहु को दुखु देह को दीन्हो
ब्रह्म भनै बितए दिन पाछै के नाथ को नाउं न लीन्हों
खैवैई को भयो खातहि खात कितोइ इक अन्नु अपावन कीन्हो ॥९॥

जो जपु के तपु के वपु खोयो पे तो तनु एठि के पैठि मढ़ी मों
दानु दियो अभिमानु कियो जहु लीन मयो मन मध्य हठी मों
ब्रह्म भने बिनु वारिक राइ वई हठु के सठ चाउ कढ़ी मों
काम सुधासु सुवायु सुपूत सों रामु न जान्यो तो छार छठी मों ॥१०॥

दूरि रहै सब ही सब कोऊ नहीं परसे एसो भेखु बनायों
जलहूँ थलहूँ तलहूँ नभहूँ तुम एक हो एक भलो घर छाियो
एतो बड़ो सु कहाइ के नाथ जु है सु कहां जहां आपु छपायो
देख्यो सबै सब देखे तुम्हे नहिं ब्रह्म लुके जनु है कित पायो ॥११॥

दूसरो आहि न दूसरो देखिए दूसरो मानिए एक विसारे
यहै अवलोकै सोई पर काम ये ब्रह्म विवेक विचारे विचारे
ऐसे ही नाथ निरंतर साथ रहे तन में मन में मनु मारे
ज्यों पानी में पावक को प्रतिबिंबु न आगि जरै न बुझै जलु डारे ॥१२॥

निगम कहत नाथ निपट निकट आहि खोजै खोजै पाइए न कालो भागे जाहुगे
ब्रह्म भने जटर रहट घट घट फिरे फेर फार कीन कैसे को लोयो अघाहुगे

जो पै जन जान्ये होइ तुम न जनेवे जोग मोसों क्यों कहत नाथ तुमही जनाहुगे
में न जाने जगदीस तुम न जनायो मोहि होहूँ पछितानो जानु तुम पछताहुगे ॥१३॥

पुत्र कलत्र की पाँसि गरे पुनि पाहन मोह जंजीर जर्यो हों
लोभ के हाथ हथेरि बंधी जुग जोरि वहीं तहीं जाइ अर्यो हों
ब्रह्म भने रखवारे दुखौ सुख दे ग्रिह कूपनि रुद्ध कर्यो हों
क्रिपा करि मोहि छुड़ाइये नाथ जी कर्म नरिंद की फंद पर्यो हों ॥१४॥

जुवती मुख जोइबो सोइबो सांझु ही खाइ पर्यो अरु भोर ही खैहै
ब्रह्म भनै अति बागो बनाइ वनै तन त्यों तरनीहू बनेहै
योहीं घरी घर ही वितई घर गायो तें नेकु गोविन्द न गैहै
कालि को दोस गो राति गई अरु आजु को दोस गो रातिउ जैहै ॥१५॥

जो जग को करता हरिता गिरि सागर ताहि करै अनतोषें
ओपु रहै रहिहैं पुनि आप भरे सुतो सागर सातक सोखें
ब्रह्म कहाँ है सु कोधों है कैसो है काहूँ न जान्यो न काहूँ के धोषें
तुचाँ पट भीने की ओट दए पै सोइ दरसावतु नैन मरोषैं ॥१६॥

निधि दीनी सुनी सो तुम सीस सुदामह को समुझी सोउ साँची
पोथिनु के लिखि देखे बिना जड़ जाने न कीरति ज्यों जग मांची
ब्रह्म वहै प्रति द्वार नच्यो तिह के दर क्यों कमला अब नाची
दीन के नाथ दयाल भली करि रेख में लोगनि में हुती खांची ॥१७॥

बालपन बेरी जिह खयाल ही खिलाए खेल इह ब्रह्म भूल रहे तीनो तात मात हो
जोवन के आए जुअतीनि संगु जुट्यो देख्यो मन में कहतु दिन एइ हो बहात हो
ब्रह्म भनै कच तुच पलित गलित अति अब पछितानै कहा हेत पछतात हो
बहुत बुरी है होति सुनि सब ही के नाथ यहै दुख मोहि तोहि अनजानै जात हो ॥१८॥

विभीषन भाई ते मीत भयो वनु भाजि सरन गही रनधीर की
लंका के अंक लगाय निसंक तोहै मनो मीन गही ढिग नीर की
ब्रह्म भनै एसो होहूँ हन्यो पग रावन रोर कहाँ कहूँ पीर की
मोहू कहा गढ़ु दीनो न जा गढ़ ढाधै की देव अजो रघुवीर की ॥१९॥

मांगे ते मांगन मास कहूँ को न जाइ महीं फिरि कै अनपाए
मांगत मांगत मांगनई रह्यो पायो कहा हरि मोहि मगाए
दाम नचीहों हों रामतिहारी सों चाहों चेराई भली मेरे भाए
ब्रह्म भनै अब दीजै दयाल कहा गुन है कबु संतु सताए ॥२०॥

में तो सुन्यो है तुं मांगै ते देतु है देहि कहाँ अब स्फाषैं
अबहू ते कह्यो सुलह्यो निवह्यो पुर एषनि लाखन ही अभिलाषें
ब्रह्म सबै रस चाखे है नेकु जो ते पद पंकज कों रसु चाषें
सोइ है आपुनि ऐ परमेसुर जो अपनो करिकै नहिं राषैं ॥२१॥

है गय हरि हिरन्य हितू जन कौ जननी जन जातक जाया
केसी निकंदन केसो न जान्यो तो कीनी कलेसमई सब काया
ब्रह्म भनै धनस्याम बिना तऊ घामु है जो रे धनी घर छाया
सांची है सांची है सांची कहों यह भूठी है भूठी है भूठी है माया ॥२२॥

गंग-स्तुति

ए मेरे तीरथ ए मेरे देव सु ए मेरे मात पिता मेरे एई
श्रुति हे मुख के मुख जाने नहीं तपु जानु पनों नहि जानन देई
बावन के पद पावन घाते हैं ताते में दिव्य तरंग निसेई
ब्रह्म भनै अपनो अपुनावत आपहिं पार लगाइ हों वेई ॥२४॥

जानी मुकुंद महा महिमा उपमा कह आपु समान करी हे
पारहु लों दसहूँ दिसहूँ जसहूँ रसहुँ तिहुँ लोक भरी है
ब्रह्म भनै हो बड़ाई कहा करुं भंग वेऊ ते बड़ी ए घरी है
और को जानिवे जोगु तुमें हर जानतु है जिहिं सीस धरी है ॥२५॥

रूप-सौंदर्य

आजि एक ऐसो अचरज को तमासो देख्यौ पन्नग के माथे उथौ पूरन पून्यो की ससि
सारंग है मीन कीर कोकिला के कलरव सुपक सुरंग बिंब सुन्दर सरस असि
तिन पर बिंब संभु कनक की आभा धरै तिन पर बिन्दला बने हैं यों धने हैं मसि
गिरजा को वाहन सो कदली विरख पर कदली कमल पर ब्रह्म कवि यह कसि ॥२६॥

एक समै हरि सो रति भानि के मात गई सरिता मधि खोरनि
मंजन लाइ झन्डाइ फुलैल सो तीर खरी कच लागि निचोरनि

यों कवि ब्रह्म बनी उपमा जल के कनुका चुवै वार के छोरनि
मानहु चंदहि चूसत नाग अमी निकस्यो बहि पूछ की ओरनि ॥२७॥

काहू के आंऊ न जाऊं सखी अपने घर बैठिये लाख लहों री
मो पति मोहन ते कछु घाटि है काहे को यह उपहास सहों री
ब्रह्म भनै कोऊ केतो कही कहते की कहा कछु जीभ गहों री
जो चितए चित आइ परै तो कहा इन नैननि मूँदि रहों री ॥२८॥

सेज तें ठाढ़ी भई उठि बाल लई उल्टी अंगराय जम्हाई
रोम की राजी विराजी विसाल मिटी त्रिवली अरु पीठ खिलाई
बैनी परी पग ऊपर पाछे ते ब्रह्म यहै उपमा उर आई
लोक त्रिलोक के जीतिवे कारन सोने की काम कमान चढ़ाई ॥२९॥

रूप की रासि विलासिनि स्याम की सागर ते गुन की गहिरी है
काम की कामनी काहै जु कामिनी कामहूँ ते छवि वाम हरी है
ब्रह्म भने कहिवे को भली सुनिवे कहु सारदहू बहिरी है
लोग कहैं गहनो पहिरे अलि हों कहूँ तू कहने पहरी है ॥३०॥

आई अन्हैव को आंगन मध्य लसी मिलि छोरनि बैनी कछोरनि
ब्रह्म भनै चिकनी अलकैं उपमान बने त्रिनु एक सपोरनि
बूँद परै जु ढरे मुख ते छवि को वरने कवि वारि निचोरनि
भोगी के नंद ज्यों चूसत इन्दु अमी निकस्यो बहि पूछ की ओरनि ॥३१॥

एक समय वृषभान सुता परभात हो काम की केलि बनाई
नैनन की लखि आरति कीरति कीरति मोतिन माल सुहाई
बेदी जराव लिलाट दिये गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई
ब्रह्म भनै रिपु जानि गह्यो रवि कों मुसकैं जनु राहु चढ़ाई ॥३२॥

एक समय वृषभान सुता सुख सेजहुँ ते उठि बाहर आई
कंचुकी हाव उतारि धर्यो निरखे हिय मध्य की कोमलताई
तिहि औसर लालन आई गए उपमा कवि ब्रह्म कही नहि जाई
कंचन कुंभ के भंजन को मुक्ति भंजन चंद कलकत भाई ॥३३॥

कनएन सुरा बिंदुली दिये भाल सो नेक न मो मन ते टहलै
मनु इंदु के बीच में कीच अमी अलि बालक आय पर्यो चहलै
कवि ब्रह्म भनै बुधरी अलकै अपने बल काढ़न को कहलै
जुरि बैठे मयंक के कूल दुहूँ दिसि कोऊ न पैठि सकै पहलै ॥३४॥

गोरे से गात फुलेल चुचात भरी अंगिया रंग केसरि बोरे
वेनी बढी अरु छोटी सी आपु छई छवि सो गुदना मुख गोरे
नैननि की अरुनाई कहां कहां अंजन दे द्विग खंजन जोरे
ब्रह्म भनै यह को ही लिया जु चली गई आंगन आंग मरोरे ॥३५॥

वेनी फुलेल चुचात खरी पट भीजत सीस ते रूप अन्हैयत
आनन वीरि गरे लरपौत सो या छवि की ललसो ललचैयत
ब्रह्म कहै सब छोड़ि के काहे न प्यारी के रूप को देखन जैयत
कानन से तो कटाच्छ लगे कलधौत कटोरन दूध अचैयत ॥३६॥

मेरी सि आखिन मेरी सो ज्यो करि जो तु विलोके हियो गहि गाढ़ौ
आयो री आयो चितै किन देखे वहै चित चोर चितौत है ठाढ़ौ
ब्रह्म भनै मन लाल को भो घर बाहिर बैरि को वारिध बाढ़ौ
यहौ मुख देखि कहै घरिहाई री लाज करी अरु घूंघट काढ़ौ ॥३७॥

वै चलिगे न चली री अली ओ डगै पै डगी चितु तों न डग्यौ री
हों परि पीय कै प्रेम पगी सु कहा पल ब्रह्म सो प्रेम पग्यौ री
कित गौ कित जाऊं रहौ कित री तित ही मेरे लोचन लाल लग्यौ री
गो ठगु पै न ठगौरी गई ठगु हौंही ठगी ठगु मैं न ठग्यौ री ॥३८॥

आजु मदन वदन विराजत जोन्ह कलंक सरह ससी
निज अंग निरखि नितंविनि नैन सुन्याइ किए नंद लाल बसी
मोती को माल दिए भनि ब्रह्म रोमावलि संगम सोभा असी
सुह मानों मयंक मयूष के में अध को अधियारे की धार धसी ॥३९॥

जहीं सुनै कान्हहि धावै तहीं अनुराग रहे नहिं रोकत ही
उड़ि जाहि जितै तित साथ रहै सखि हाथ न आवत मो कत ही
क्यों रहै धीरजु ब्रह्म भनै हरि लोचन बान विलोकत ही
अरी मार की मूरति नंदकुमार सुमार करी अवलोकत ही ॥४०॥

मात पिता पति पेखत ही अहो को प्रति लोभ नही पुलकी
नंदलला यहि मेंन मलाकनि कौने धों काम कला तुलकी
ब्रह्म भनै कहि काही न लागी ठगोरी हो मूरति मंजुल की
सखी मोही न मोहन के मुख देखि सु ऐसी धो गोकुल को कुल की ॥४१॥

जैसे न सीस चलै न पलौं सुलै त्यों रुचि रूप सुधा रसु पीजै
ब्रह्म कहै मुख सों मुख कौ रुख लै सुख ही दुख ही दुख दीजै
अरी डर डारि ये लाज विडारि ये आपु ही टारिये लालन लीजै
यह जिय आवत मोहन आगेहि बैठ्यौ रहै अरु देखिबो कीजै ॥४२॥

बैठी अन्हाय बनाइ विरंचि सु सुंदरता वरषै वरषा सी
कंज सै आनन खंजन लोचन कोऊ कहै कटि आहि मृषा सी
ब्रह्म भनै नंदलाल विलोकति लागि रही लट लागि त्रिषा सी
झनै दुकूल में झाँई झलामलै देह दिपै दुति दीपसिषा सी ॥४३॥

एक समै मन मोहन जू सजि बीन बजावत बैन रसालहि
चित्त गयौ चलि मोहन को त्रिषभानसुता उर मोतिन मालहि
सो छैवि ब्रह्म लपेटत यों कर लै कर सो कर कंज/सनालहि
ईस के सीस कुसुम के पुंज मनो पहिरावत व्यालनी व्यालहि ॥४४॥

चंदन सी चंद सी ही सीरी घनसार सी ही सुमन सी भई मौन भान सी
ब्रह्म भने पेधत पियूष सी ही सारी परसत प्रानन सो पावत सब सुख को निधान सी
कहां लागि कहों हुती आप ही जु आपु ही सी बिछुरै ते भई विपरीति आहि आनु सी
हों तो जान्यो बनि के मदन वान वारि है मैं याही को बनाई हिये लगी बनि वान सी ॥४५॥

नन्द के लालन सों विपरीति करै ललना पिय रंग रिझावै
काम कलोल ते लोल कपोलनि चूमत स्याम महा सचु पावै
ब्रह्म सुवेसरि को मुक्ता पिय लोचन के ढिग यों छवि पावै
मनो सरदिंदु अमी लिये बिंदु चकोर की चौंच में चारो चुगावै ॥४६॥

लखि भूलत ना वह भांति अजों कर लागि गयौ उर हरन को
मुक्ता फल टूट परै भुव में तिथ नैन नये जु निहारन को
कर के विनती कटि सी निहुरी उपमा कवि ब्रह्म विचारन को
सुर पेजु सुमेरु के अंग धरयो निहुरयो ससि लेत है तारन को ॥४७॥

नेकु अन्हाय कै चौकी लसै पै सो चके मन मोहन चितु चलाए
 ब्रह्म भनै विनु भूखन अंजन आनन छाजति छाह बिछाए
 मानौ सरोज सिवार सवारत राखै है लालन जू मन भाए
 वारिद से वर वारिज बेरी जवै पट वार जब निवार बराए ॥४८॥
 पठइ सब सखि सिखाइ सखी खिम्ई रति राधिके नन्द-लला
 ब्रह्म भने बदनै दुति यों मिटि अंजनु गोजनु नैन पला
 कर की करकी बलया बल से सित सेज परी परिके अचला
 सु गिरी मानों अंग ते गंग के संगम संकि ससंकि कलंक कला ॥४९॥

विप्रलंभ-शृङ्गार

ज्यों नंदलालु चित्तें चलिगे संगही चलि चेटकु सो कछु कीनो
 नेकु जो देखों दिखाई जु मोहि सुदेखे हियो हरिजू हरि लीनो
 ब्रह्म भने तलफें दोउ नैन विसेखहिं नीर ते न्यारे के मीनो
 गइ गड़ि आखिनि में सजनी बडडी अखियानि बढो दुख दीनो ॥५०॥

कालि के कान्ह गये मथुरा मनो बीत गये जुग वासर से
 विरहागिन काम लगाइ दई है दसो दिस देखि वही दरसे
 कवि ब्रह्म भनै मोहि जानि पड़ै सखि स्याम घटानल सो परसे
 विरही वर बार ही बार उठे दृग नीर किधौं घन धौं बरसै ॥५१॥

अरी ए छतियां तोहिं पूछौं मतो पिय कै विछुरै विछुर्यौ सहिहै
 घटिहै तो नहीं फटिहै तो नहीं लटिहै तो नहीं तन ही दहिहै
 परिचाह करैगी तो चाह न पावैगी चाहैगी तू कि नहीं चहिहै
 कवि ब्रह्म कहै कवि ये जु सिधारत हौं न कहौ तोहि को कहिहै ॥५२॥

मोहन नंद कुमार वियोग ते ऐसे उपाइ करै तै भली धन
 ब्रह्म भनै ते सियानी सखी जै कहावती ही है हित् हम जीधन
 कर मोर पखौवन के बिजना बरजे को लगै ते बंधे पर वीधन
 चंदन चंद सरोज समीर अही इहि आगि के एई हैं ईधन ॥५३॥

सब ही कहिये सब ही सुनिये सब देखि सबै कछु कीजतु है
 कवि ब्रह्म भनै रहै प्रान-पिया विनु प्रानन कौनु पतीजतु है

इतने दुखते न फटी छतियाँ अलि पाहनहू तोँ जु पसीजतु है
जिन रूसत रूसत ही जिय सो तिन के विछुरे अब जीजतु है ॥५४॥

सीतलता सुत अंग पियूष पियूष में अंग समुजल कातो
राधिका कान्ह वियोग अगिन्न गगन्न वर्यो सुभयो रंग रातो
ब्रह्म भनै यों जलनिधि जात जु पै नहि होतो ततो बरि जातो
तो तनु तेज तप्यो तरुनी तातै लागतु तोहि तमीवति तातो ॥५५॥

कामहू कुमुद बंद कल हंस कोकिला कुलाहल करत कोक केकी छेकि लयो हों
ब्रह्म भनै सीतल समीर धीर तीर वार धीरो न धरत देत छाती ही में छयो हों
एते सब चेरे मेरे तबहूँ ते तेरे साथ तिनहि विछुरि अब चेरो करि दयो हों
कैसे नीके रहो नीके रहै नीके लागतु हो जो पे ऐसे रूप को वियोग विधि ठयो हों ॥५६॥

तन में न सुधि विधु बदनी विरहमई मानों मन भावन विछुरि दिन द्वै गयो
अंगन की आगि ते अंगीठी डीठी मीठी भई मानों रवि किरनि करेननि ते छवै गयो
ननद के डर गई गोरस चढाइवे को विनु वारै चूल्हे वारि इंधनु सबै गयो
जो लों दूध फरते कराही में करन लागी तो लों सब दोहनी में ओठि खोवा हवै गयो ॥५७॥

मानवती त्रिषभानसुता मुख मोन न मानै मनावै हरी
ब्रह्म भनै मनमोहन को मनु मोहति यों मनो चित्त धरी
गल हाथ दए सिर नाइ निरखति द्रिष्ट चकोर ज्यों कान्ह करी
अरविंद विछाय विरुधहि निंदत मानहु इंदुहि निंद परी ॥५८॥

उपदेश और शिक्षा

पेट ते आयो तु पेट को धावत हार्यो न हेरत घामरु छांही
पेट दियो जिहि पेट भरे सोइ ब्रह्म भनै तिहि ओरु न जाहीं
पेट पर्यो सिख देतहि देत रे पापिउ पेटहि पेट समाहीं
पेट के काज फिरै दिन राति सु पेटहु से परमेसुर नाहीं ॥५९॥

हे गय जीरनहूँ गए हेरे ते हारि न मानी बहारि पराहीं
बनिता बनिता रसु जीरनु में तूं तऊं बनि के निरखे परछाहीं
पायो सो जीरन ब्रह्म भयो पहिरे पट जीरन हवै फट जाहीं
जीरनु के तनु जीरनु तू है अजों मन तोहि अजरन नाहीं ॥६०॥

या घर में हरि सो बिसरे सु तू वारि दे वाघर वार ते बोरे
छानि बरेडि ओ पाट पछीति मयारि कहा किहि काम के कोरे
दाम के काम फिरै दिन राति न सूके कहीं सब स्वारथु दोरे
ब्रह्म भने संग ही रहै मीत सुमीत न जान्यो कहां तोहि भोरे ॥६१॥

बीच ही मिल्यो है साथ हाथ ही भयो असाथ दारा सुत मीत बंधु दीन भलो भाखिए
हाटकर हाथी कौन के भए हैं साथी लाख बेर लाख पाए तऊ अभिलाखिए
ब्रह्म भनै नाथ ही को नीको नातो नीकी विधि विषया विरचि के पियूष रस चाखिए
साथ ही रहत साथ छाड़े न छुटत साथ साथ आवे साथि जाइ सोइ साथ राखिए ॥६२॥

खायबो सोयबो बारहि बार चमार के चामहु ते जल पीबो
दाम के काम को लीबो दिवान सों काहु को लै करि काहु को दीबो
ब्रह्म भने जगदीसु न जान्यो सु ऐसहिं भांति बिना सुख जीबो
भोर ते सांफ लो सांफ ते भोर लों काल्हि कियो सोई आजहुँ कीबो ॥६३॥

इक छत्र की छांह विनोद करै इक धान के काज फिरै जु दुखारी
एक त्रिया बहु पुत्र रमै एक छोटी सों कंत बम्बी बहो नारी
एक चंचल तेज तुरंग चढ़ै इक मांगत भीख फिरै जु दुखारी
ब्रह्म भनै गिर मेर टरै पर कर्म की रेख टरै नहिं टारी ॥६४॥

जब दांत न थे तब दूध दियो अब दांत भए कहा अन्न न दैहै
जीव बसेहि जल में औ थल में तिनकी सुधि लेइ सौ तेरिहु लैहै
जान को देत अजान को देत जहान को देत सो तोहूँ कूँ दैहै
काहे को सोच करै मन मूरख सोच करै कछु हाथ न ऐहै ॥६५॥

नमै तुरी बहु तेज नमै दाता धन देतो
नमै अंब बहु फर्यौ नमै जलधर बरसेतो
नमै सुकवि जन सुद्ध नमै कुलवंती नारी
नमै सिंह गज हनत नमै गज बैल सम्हारी
कुंदन इमि कसियो नमै वचन ब्रह्म सच्चा भनै
पर सूखा काठ अजान नर टूट पड़े पर नाहिं नमै ॥६६॥

गाढ़े के किवार देइ सूनो घर भांनि लेइ दीपक बुझाइ ओर ठट्ठ ठानियतु है
पर दारा पर देखि पर द्रोह पर रुचि अपनो परायो नाहि पहिचानियतु है

ब्रह्म भने जानि बूझि जानत है जानै नहीं जान तु है जिह्म जाने जग जानिअतु है
देखे सब सुनै सब ताही सों दुवावे सबु ऐसे बावरे को नाथ बुरो मानियतु है ॥६७॥

छानि बरेडो रूपाछप छीत मयारि कहा कहि काज कि कोरे
जामहि साथी न सूफे पनो तरुनी सुख स्वारथ को दिन दोरे
ब्रह्म भने संग ही रहै मीति सुमीत न खाने कहा तोहि मोरे
जामे रहै हरितो विसरे ऐसे वारिद वा घर वारहि बोरे ॥६८॥
जो कहो जीवै कै है दिन ओर तो काहू देयो लिखि कै लिखि दैहै
जीओ तो सांचो नहीं करिबो सच सांची कहो यह यहै है
ब्रह्म भने मरिबो अरु जीबो जु मेटि है ताहि जमो पछितैहै
आजहू केसों न कैसे कहूँ कहो काल सो कालि कलेवर जैहै ॥६९॥

ग्यान सो डुलावै वाउ मुक्ति पलौटे पाउ यहै है सुभाउ आउ मेरे कहै लागिण
सुमिति सुपेती सेती गर सूनी गर लागि पलंग पुराने पर पौढ़े अनुराणिण
ब्रह्म दास ब्रह्म माया सपनो सो देखत है बूझैसुं समुक्ति देखि भ्रमहू सो भाणिण
घरी इक सोई जागि जागे ते जग जंजार सोई नीद सोइए न सोइए न जाणिण ॥७०॥

पेट पर्यो परि सूप पर्यो पलना परिपाल कबहूँ परिहै
काम जर्यो अरु क्रोध जर्यो मद लोभ जर्यो तनहू जरिहै
मूओ हुतो मरिबे को ही आयो है ब्रह्म भनै बहुरो मरिहै
करुनागय सो कर जोरें नहीं ततो कीनी कहा ते कहा करिहै ॥७१॥

ग्रीष्म-ऋतु

उछरि उछरि भेकी छपटे उरग पर उरग पै केकिन के लपटैं लहकि है
केकिन के सुरति हिये की न कछू है भये एकी करी केहरि न बोलत बहकि है
कहै कवि ब्रह्म वारि हँरत हरिन फिरै वेहर बहत बड़े जोर सों जहकि है
तरनि के तावनि तवा सी भई भूमि रही दसहु दिसान में दवारि सी दहकि है ॥७२॥

खंडिता-नायिका

भली भई भोरहूँ आए हो मेरे भलो हो जानी भली है भलाई
ब्रह्म भने चलि देखो धों चालिये है हरिजू उहि चालि चलाई
याही ते फूलत फूल गिरैं सिर फूलिये डार हलाई
को ललना जिहि लाल किए द्विग लाल कहाँ गई ओठ ललाई ॥७३॥

समस्या-पूर्ति

मूरति जासु वसी मन में सुकुमारी अहै जु सती शुचि नारी
जाकर सील त्रिगारन को हठ कैसे सहै विधि रूप तमारी
सीसि नवावत ही भये रुष्ट क्यों दुष्ट दियो चह पातक भारी
ब्रह्म भने जु उठाकर द्वै यहि कारन गात जरै चिनगारी ॥७४॥

सुर छिपे अदरी बदरी अरु चंद छिपै है अमावस आये
पानी की बूंद पतंग छिपै अरु मीन छिपै इच्छा जल पाये
भोर भये पर चोर छिपै अरु मोर छिपै रितु फागुन आये
ओट करो सत धूँधट की पर चंचल नैन छिपै न छिपाये ॥७५॥

दूत दया मनो मूरख ब्राह्मन नारि निरंकुश कायथ भोरो
स्वार कुवीर कुलच्छन पोहियो आकरो वानियों चाकर खोरो
वैद्य प्रसिद्ध अनाथ सभासद कूद कलावंत काटनो घोरो
ब्रह्म भनै सुन शाह अकबर बारहौ बांधि समुद्र में बोरो ॥७६॥

एक समै पति लंक को रावन आनि हरी सिय राम की रानी
कोपि चढ़ै दशरथ के नंदन अंजनि पूत भयो अगवानी
बांधि लंगोट कंगूर चढ़यो अरु लंक जरी धरती अकुलानी
जाय समुद्र में पूछु बुझी इहि कारन प्रात भभात है पानी ॥७७॥

टूटे पर ईस ताकी मिखी गुड़ कंद करो ताको लै प्रभाव देव देविन चढ़ाइये
फूटि के कपास पत राखत है आलम की ताके होत वस्त्र कहां लों गिनाइये
सड़े जव सन ताके स्वेत वर्न कागज के तापर कुरान औ पुरानहू लिखाइये
कहै कवि ब्रह्म सुनो अकबर बादसाह टूटे फूटे सड़े ताको या विधि सराइये ॥७८॥

विविध

देह तलपि रहों लागि चित डरों मकरध्वज रोगनि ते
ब्रह्म भनै एइ लाज जरी जह बीच परे हरि भोगनि ते
पल मापतु ओसु घटे जुग सों तव रैन परे जु संजोगनि ते
कवहुँ यक चित न लाल रम्यो दुचिती न मिटे इन लोगनि ते ॥७९॥

जा मुख को सुरपति फनपति स्वर्ग पताल रसातल भूमै
जा मुख को सिव साधि समाधि अराधि हुतासन धूम में धूमै

जा मुख को चतुराननहू भजि ब्रह्म घटे घटहूँ घट घूँमै
सो मुख नंद की नारि जसोमति चापि कपोल दुहूँकर चूमै ॥८०॥

यह रंत्तिय छत्तिय वत्ति रहति गई गति मत्ति सुरति टरी
बिन संपत्ति पति नहीं विलपति सगुणपति गोपनि मति हरी
कवि ब्रह्म मदति गिरति परति जरति अग्निन के पुंज परी
ब्रजपति बिना रति पत्ति रिदू पति रत्ति के पत्ति विपत्ति करी ॥८१॥

या दिन में कछु यादि न आवतु वा दिन को कछु संबर हरे
तू अपनी गति नीकेहि जानतु हे जग चीर अडंबर हरे
ब्रह्म भनै कहूँ तो तोहि पठावतु काधे धरे जर कंबर हरे
गात सुहात पटंबर अंबर अंत की बेर दिगंबर हरे ॥८२॥

रैनि दिना दम सो कामु हे काहू सो लै करि काहू को दीबो
ब्रह्म भनै जगदीसु न जान्यो न जानियो जी करि जो लगि जीबो
भोर ते राति लों राति ते भोर लों कालि कियो सु तो आज ही कीबो
खाइबो सोइबो बारही बार चमार के चामहि ज्यों जल पीबो ॥८३॥

पति कोऊ कहै पित कोऊ कहै सुत कोऊ कहै तिहूँ ताप तयो हों
प्रभु कोऊ कहै जन कोऊ कहै सु कहो तुम ही तुम काहि दयो हों
ब्रह्म भनै जित ही कित ही तित ही तित हाथ की गेंद भयो हों
पालौ तिहारो कियो तुम ही इन बीच के लोगनि बांटे लयो हों ॥८४॥

कर बोले करही सुने खवन सुने नहिं ताहि
कही पहेली वीरबल सुनिये अकबर साहि ॥८५॥

राधी तो गलती नहीं बिन राधी गल जाहि
कही पहेली वीरबल सुनिये अकबर साहि ॥८६॥

सीय स्वयंबर स्त्री रघुनाथजू चांप चढ़ावन को पगु धारे
ताहि विलोकन को बनिता कवि ब्रह्म भनै सब रूप उज्यारे
यो उसके भुकि मांकि भरोखन बाढ़ी तहां मुख जोति अपारे
सोहत मानौ जराय के मन्दिर सों बंधी चंद की बंदन बारे ॥८७॥

पेट में पोढ़ि के पोढ़े मही पर पालन पोढ़ि के बाल कहाए
 आई जवै तरुनाई लिया संग सेज पै पौढ़ के रंग मचाए
 छीर समुद्र के पौढ़नहार को ब्रह्म कबो चित ते नहिं ध्याए
 पौढ़त पौढ़त पौढ़त ही सो चिता पर पौढ़न के दिन आए ॥८८॥

गर्भ चढ़े पुनि रूप चढ़े पलना पै चढ़े चढ़े गोद धना के
 हाथी चढ़े फिर अस्व चढ़े चढ़े जोग/धना के
 बैरी औ मित्र के चित चढ़े कवि ब्रह्म भनै दिन बीते पना के
 ईस क्रिपालु को जान्यो नहीं अब कांधे चले चढ़ि जना के ॥८९॥

ऐ लागे सबै हों न लागतु काहू को लोगनि आनि लगाइ लयो हों
 ब्रह्म भनै सुत दारा विषै मोहिं दीन कियो इन ही को दयो हों
 जैसे ही तैसे न जानत हों जुग केके कै खोजि निहारि लयो हों
 जात चल्यो ठहरात न नेकु घूर बघूरे को पातु भयो हों ॥९०॥

पांय पनहिंनि बांधि गोड़नि इजार बांधि कटि पटुका लै बाध्यो हरष हठ्यो हिया
 बारनि यो बार बांधि सीस ही सो पाणि बांधि पेट पीठ कसि बांधो गाढ़ो केर के बिया
 कानन को मुद्रा गठि मुद्रिका अंगूरी बांधि ब्रह्म भनै मन बांध्यो कन कन सों लिया
 एते पर मनु मान्यो जान्यो न जगतपति अंध कूप ओंधो पर्यो हाथ लिए द्वे दिया ॥९१॥

मेरे हये व्रतु संत सो संगु सु आनहि भूलिहु मंगन लाइल्यो
 तुमहूँ पुनि क्यों न करो मेरे नाथ कि एकि यहै अपराधी रलाइल्यो
 षोठो खरो जन चैरनि में जनु ब्रह्म चले न तऊ तो चलाइ ल्यो
 आपुनी ओर चलाइ ले मोहि अरे वरवीर हों तेरी बलाइल्यो ॥९२॥

काम कबूतर तामस तीतर ग्यान गुल्लेलन मार गिराये
 पाखंड के पर दूर किये अरु मोह के अस्थि निकासि ढराये
 संजम काटि मसालो विचार को साधु समाज ते ताहि हिलाये
 ब्रह्म हुतासन सेकि के बावरे वैष्णव होत कबाब के खाये ॥९३॥

जोहित ज्यान्यो नहीं जगदीस कह्यो चढ़े तोरी नहीं जम जेलहि
 ब्रह्म भने मनि दूर के क्रूर तू घूरि कै क्यारिन वार सकेलहि
 दूसरो पेड़ो न हूँ न आहि रे पेड़े को पाइ पहारन पेलहि
 खेलत खेलत खेलहिगो अब खेल मुखेलु जु खेल न खेलहि ॥९४॥

खेलत संग कुमारिन के सुकुमारि कछू सकुची मन माहीं
 काम कला प्रगटी अंग अंग विलोकि विलोकि हंसे परछाहीं
 ब्रह्म भनै न रहै उर अंचल लै छिन ही छिन चंपति बाहीं
 डारति है शिव के सिर अम्बर मानी दिगम्बर राखत नाहीं ॥६५॥

जब मेरो दाहिनो नयन फरकि उठ्यो उठि अकुलाई करि तब ही ते नूकि सी
 बात के सुनत गात अति राते भये तातो भयो तनु मानो आगि दीनी फूँकि सी
 ब्रज भयो वारिधि सो वास भयो बड़वा सो ब्रह्म के वियोग ते विदी सी उठी हूँकि सी
 हाय हाय हाय रे बलाय कहुँ कहाँ हूँ कूर अकरूर ते तो छाती दीनी छोंकि सी ॥६६॥

नंद नंद अनंदित है जलपे कलपे अति ही गति गातन की
 पद पानि मिले द्विग आनंद सों छवि छीन लई जल जातन की
 ब्रह्म भने चुचकारि कहे मोहि लागति है तुतरानन की
 छगना मगना अंगना बिहरो बलि जाइ बया इन बातनि की ॥६७॥

नवनीति लिए निरखे कर सों नव नीरज सी अखियाँ जुगराती
 नव पल्लव से करके अधरा नव कुंद कली मुख में मृदु दांती
 नूतन श्याम तमाल सखी सुलखें छवि होति हिए ते नहाती
 मोहन मूरति नन्द लाला की बलाई लगे द्विज ब्रह्म की छाती ॥६८॥

सेजहिं ते उठि नारि चली मन मोहन जू हंसि चीर गह्यो
 प्रगट्यो रवि कान्ह विहान भयो मुख मोरि के यों मृगनैनी कह्यो
 बैनी दुहू कुच बीच रही उपमा कवि ब्रह्म यहै निबह्यो
 जनमेजय के मनो जग्य समै दुरि तच्छिक मेरु की संधि रह्यो ॥६९॥

राति अराति भई सजनी सुनि पावक ज्यों विधि बूढ़ बढ़ी है
 कान्हि बिना करुना बिनु माई री जानति जोन्ह जु सीस चढ़ी है
 ब्रह्म भनै निघटै न घटीक यहो किषों ऊधो सो जोग पढ़ी है
 जीवन ज्यों जसु ज्यों बलि को अलि वामन ज्यों यह रैन बढ़ी है ॥१००॥

तानसेन की रचनाएँ

तानसेन कृत संगीत-सार^१

सुर मुनि को परनाम कर सुगम कियो संगीत
 तानसेन रस सहित हित जाने गायन प्रीत ॥ १ ॥
 गीत वाद्य अरु निरत को कहो नाम संगीत
 तानसेन मन सहस गनि भरत मतहिं मन भीत ॥ २ ॥
 द्वै प्रकार संगीत है मारग देशी जान
 मारग ब्रह्मादिक के कहो देशी देशि समान ॥ ३ ॥
 गीत वाद्य अरु नृत्य के रस स्वैस गुन सोय
 तानसेन उपजत नहीं सो संगीत न होय ॥ ४ ॥

अथ नाद लक्षण

छै प्रकार को नाद है राखै सुर नर मुनि जान
 तानसेन सो कहत है बहु विधि तिनहिं वषान ॥ ५ ॥
 येक नाद जो मुक्ति दउ दूजा रंजक जानि
 तानसेन मन गुन कहै सुंदर नादि वषानि ॥ ६ ॥
 अनहद बाजत आपु ही आहत दीयो बजाय
 तानसेन संगीत मत इनको कहौ सुभाय ॥ ७ ॥
 नाद अनाहत को सदा सुर मुनि करै जो ध्यान
 गुरु प्रसाद सों मुक्ति दे वह जानों परमान ॥ ८ ॥
 पवन अग्नि संयोग ते प्रगट अनाहत आदि
 तानसेन संगीत मत कह्यो सुरन ब्रह्म नादि ॥ ९ ॥
 जिव टारत है चित्त के चित टारत है अग्नि
 टारत अग्नि सो वाय को ब्रह्मन ग्रंथि है मग्नि ॥ १० ॥
 ता छिन ऊरध चलत है ब्रह्म ग्रंथि की वाय
 सुल्लभ धुनि हिय नाभ धू गरे मध्यम कह याह ॥ ११ ॥

१ रीवां-दरबार पुस्तकालय की प्राचीन हस्तलिखित प्रति से उद्धृत। इसमें जहाँ-तहाँ साधारण छंदोभंग सम्बन्धी त्रुटियों को दूर कर दिया गया है।

होत अपुष्ट जो सीस में विक्रान्तिहि सुख, आया
 पंच स्थान जो फिरत हैं तानसेन सो भाय ॥ १२ ॥
 कहौ जो उत्पत्ति नाद को सास्त्र कहै परमान
 तानसेन संगीत मत जानहु चतुर सुज्ञान ॥ १३ ॥
 गीत वाद्य अरु निरत को कह्यो ज्यों आतम नाद
 तानसेन संगीत मत जामें उपजत स्वाद ॥ १४ ॥
 तीनों मत सिव नाद को कह्यो जो मुनिन प्रमान
 ताहि हिये मह जानि ले तानसेन सुभ ग्यान ॥ १५ ॥

.....
 तानसेन बस गान है और कहत है वाद ॥ १६ ॥^१
 नाद सुविद्या वर लहै सुरस्वत्ति को परसाद
 काव्य लास तरु नाद है फलित भयो सो नाद ॥ १७ ॥
 सुर नर खग म्रिग मुदित है सुने सब्द जो नाद
 तानसेन सब नाद कहि केहि न भरत मरजाद ॥ १८ ॥
 नाद उदधि के पार को केतिक करी उपाय
 मंजन के भय सरस्वती तूंबी उर गहि लाय ॥ १९ ॥
 वीन विदित सुर ताल में निपुन पुरुष है सोय
 बिना परिस्त्रम जात है मोक्ष पंथ को सोय ॥ २० ॥
 इडा पिगला सुखमना तीनों नारी नाम
 तानसेन संगीत मत जानो आवै काम ॥ २१ ॥
 इडा वाम कहि पिगला दक्षिण मन में जान
 हृदय रहत है सुखमना ब्रह्म ग्रंथ ज्यों मान ॥ २२ ॥
 इति नाद लछन

अथ इडादि लछन

ता ऊपर जिन प्राण जो चढ़ो रहत है निच
 अर्द्ध उर्द्ध को चित है जो नट वारहि चित ॥ २३ ॥
 इति इडा पिगला सुषुमना

१ इस दोहे की प्रथम पंक्ति उक्त प्रति में नहीं है।

अथ ब्रह्म ग्रंथि

द्रवै अंगुल आधार पर है अंगुल पिंग नीच
 षडै सुने वर जो कोऊ अंगुल तेहि तेहि बीच ॥ २४ ॥
 सूक्ष्म सिखा जो अग्नि की ताहि रहत जो जान
 ता ऊपर नव अंग ले चतुर रहै तेहि मान ॥ २५ ॥
 ब्रह्म ग्रंथि को कह्यो सब सुर मुनि कहो निरंध
 तामें अंगुल चारि जो तरी रहत है कंध ॥ २६ ॥

अथ शुद्ध तान विवेक

खाडव वोडव भेद जब सुद्ध मूर्छना होय
 उपजत परज कि मूर्छना सुद्ध तान कहि सोय ॥ २७ ॥
 सकल सुरन तो जो छुटै जोरि प ध नि स्वर चारि
 षर्ज ग्राम की मूर्छना ताको लेहु विचारि ॥ २८ ॥
 पाडव अरु गंधार जो मध्यम पंचम जानि
 धैवत और निखाद को तानसेन सु बखानि ॥ २९ ॥
 अर्चिक कहिये एक स्वर ग्रथिक द्वै स्वर जानि
 ग्रामिक कहो सु त्रै स्वरै मंद्र सुर अंत बखानि ॥ ३० ॥
 मध्यम हृदय में होत है गरे होत डी आइ
 सुष ते निकसत तार को व्योरो सरिगम पाइ ॥ ३१ ॥

सोरठा

स रि ग म प ध नी नाम द्वितिय भेद याते कहत
 सुर तीनी को काम तानसेन यह मत सुने ॥ ३२ ॥

अथ ग्राम लछन

स्वर समूह को ग्राम कहि तानसेन परवीन
 जाके आये मूर्छना रहत सदा लवलीन ॥ ३४ ॥
 एक मूर्छना सो मिले खाडव येकइस तान
 सप्त स्वरन स रि ग म छुटे या खाडव परिमान ॥ ३५ ॥

अथ सुरतान

सुद्ध तान उनचास है खाडव की यह वान
कह्या मते संगीत को तानसेन सुषवान ॥३६॥

अथ वोडव लछन

सप्त सुति द्वै रिद्धि सम येऊ उपजे ज्ञान
पर्ज ग्राम ओडव वहै इकइस वह परमान ॥३७॥
मध्यम ग्राम कि मूर्छना तिय द्वै सठ प्रति हीन
वोडव चउदह तान है तानसेन परवीन ॥३८॥
तानै वोडव की कही येकइस चौदह जान
तानसेन जो कहत है कहि संगीत मत मान ॥३९॥
पाडव वोडव दुहन के होत चौरासी तान
तानसेन संगीत मत कह्यो अनेक प्रमान ॥४०॥

अथ कूटतान लछन

अस पूरन पूरन दोउ कह्यो करम ते हीन
कह्यो मूर्छना निकट जेहि तानसेन है लीन ॥ ४१ ॥
पूरन सुर आरोपि जह पूरन कूट पुजाहि
तानसेन संगीत मत सुरव्या कही सराहि ॥ ४२ ॥
पच हजार चालीस है संपूरन की तान
मत संगीत करि कै कहै सब सुर कोसा ग्यान ॥ ४३ ॥
येक एक जो तान में छप्पन छप्पन मान
कह्यो मता संगीत यक मुक्तो करि कै ग्यान ॥ ४४ ॥
दोय लाख व्यासी सहस दोय सै अउ चालीस
त्राटि तान परिमान यह कह्यो सुरन सो ईस ॥ ४५ ॥

अथ खाडव संख्या दोहा

कही सात सो बीस है पाडव की जो वान
इन तानन में कह्यो है अरतालिस परिमान ॥ ४६ ॥
चौतिस हजार पाँच सै साठि पाडव तान
संख्या कहि संगीत मत तानसेन सुर जान ॥ ४७ ॥

अथ ओडव भेद

ओडव एक सैं बीस है तान कह्यो सो जान
 तानसेन संगीत मत यह युक्तो करि ग्यान ॥ ४९ ॥
 चौ हजार औ आठ सैं संख्या जानो लोइ
 आदिहि सुर मुनि भाष्यौ मत यह संगीत को होय ॥ ५० ॥

अथ स्वर अंतर वर्णन दोहा

सुर अंतर की तान ज्यों चौबिस कही बषान
 बतिस बतिस एक मैं रहे कूट तान ले जान ॥ ५१ ॥
 ताको संख्या कहत हौं सात सैं अड़तालिस
 तानसेन संगीत मत कह्यो है सुर मुनि ईस ॥ ५० ॥
 स्वामि उपजत तान षट एक एक चौबीस
 ताकी संख्या या कही ऐक से चौआलीस ॥ ५३ ॥

अथ ग्रंथिक

जाते जाते तान द्वै सुर है सोरह ताल
 यक यक मैं संख्या कही बतिस बतिस मान ॥ ५४ ॥
 अर्चक अर्चक तान जो एक तामें कू साट
 तानसेन संख्या ते वै करि राषत पाट ॥ ५५ ॥

अथ साधारण लछन दोहा

सुर साधारण चारि है जात साधारन दोय
 तानसेन संगति मत कह्यो है पंडित लोय ॥ ५६ ॥

अथ स्वर साधारण

साधारन स्वर काकली अन्तर मध्यम जान
 तानसेन संगीत मत चौथे पर्जहि मान ॥ ५७ ॥

अथ साधारण लछन

निषद दोय श्रुति पर्जकहु गहत काकली होय
 तानसेन संगीत मत कह्यो है सुर मुनि लोय ॥ ५८ ॥
 विविध सुर गहै गंगाधर जब मध्यम को है भांति
 तानसेन संगीत मत अंतर अंतर काति ॥ ५९ ॥

३६५

लै निषाद स्तुति षर्ज की षत्र बचे ज्यों अंत
कह्यो षरज साधारनहि तानसेन सुर जंत ॥६०॥

साधारन मध्यम कछू सूछम स्तुति है जाहि
बहुरि असंग्रह होत है तानसेन जो ताहि ॥६१॥

अथ स्वर साधारण दोहा

कह्यो जोतिस सधारनहि कह्यो राग सम ग्यान
तानसेन संगीत मत पंडित करहि बषान ॥६२॥

अथ जात साधारण

वादी संवादी कह्यो और विवादी ग्यान
तानसेन संगीत मत अनुवादिहूँ बखान ॥६३॥

वादी अनुवादिहि कहि वैवादी रिपु होय
अनुवादी जो मित्र सम जानि लेहु नर लोय ॥६४॥

वाद करै ते कह्यो है वादी ताको नाम
वार वार कह्यो कहे जानो आवै काम ॥६५॥

अर्थिन कै गावै सुरन जस संपूरन होय
तानसेन संगीत मत विवि अस्थाई सोय ॥६६॥

अथ वादि चार वरन दोहा

अस्थाई आदिक कहो मिलि अवरोहि अरोहि
संवादि मत तानसेन इनको कहो गिरोहि ॥६७॥

गाये ते ये कठोर जल वर्न चारि जो होत
तानसेन संगीत मत इन चारिहु को गोत ॥६८॥

अथ अवरोहि अरोहि लछन

अवरोहि सुख बढ़त ही उतरत स्वर आरोहि
तानसेन संगीत मत कही है बहु विधि जोहि ॥६९॥

अथ ग्राम लछन

स्वर्ग लोक में ग्राम जो प्रगट भए है तीन
द्वै स्वर राख्यो भूमि में धक सुर राख्यो बीन ॥७०॥

३६६

गंधारै नाम ताको कह्यो सुर मुनि राख्यो जाहि
 षर्ज ग्राम मध्यम कह्यो भूष्य गावतो ताहि ॥७१॥

अथ लछन दोहा

सुर समूह को ग्राम कहि मूर्छनादि जा संग
 तानसेन संगीत मत जामें उपजत रंग ॥७२॥

अथ राग लछन

जो धुनि सुनि सुर वरन कहं वहनौ होत विशेष
 जन चित हरन सुनिय कहै तान राग सुन सेष ॥७३॥

अथ राग लछन चारि अंग दोहा

राग अंग जो भाषई किया अंग जो जान
 तानसेन संगीत मत बहरि ऊपजहि मान ॥७४॥

अथ राग अंग

राग अंग वाको कह्यो धा पा परै देखाय
 तानसेन संगीत मत सुनहि सु खवनै भाय ॥७५॥

अथ भाषा अंग दोहा

भाषा अंग वाको कह्यो जो गावे भाषाहि
 तानसेन जो सब कह्यो है संगीत मत भाहि ॥७६॥

अथ क्रिया अंग

दे हुलास हर्षित कही येहै क्रिया ज्यों अंग
 तानसेन संगीत मत जा करि गावै रंग ॥७७॥

अथ उपसंग अंग लछन

कछ कछ छप्पा जो करै कहिये वाहि उपंग
 तानसेन संगीत मत कह्यो जै इनके अंग ॥७८॥

अथ सुति विवेक

तित्रा अरु कामोदनी मंद्रा जाहि विचारि
 छाडोती कहि षर्ज जुत तानसेन सुति चारि ॥७९॥

दयावंती अरु रंजनी रति का सुति है तीनि

रिपभ लगे जे तितक है तानसेन परवीनि ॥८०॥

रुद्रै क्रोधा हे यहै सुति गंधार की होय
 तानसेन संगीत मत जानै गायन लोय ॥८१॥
 काह यो सुति जो वरलिका की प्रसारिनि जानि
 प्रीति सुमर्जनि चारि अति मध्यम की यह मानि ॥८२॥
 कहीं मंद तीरोहिनी रंभा सुति हे तीनि
 ये तो धैवत की कही सुर मुनि राषो बीनि ॥८४॥
 द्वै सुति उग्रा छात्रनी लगी निषाद सो जान
 तानसेन संगीत मत सुति को यह परमान ॥८५॥

अथ श्रुति लछन

करत उचार जो होत है सुछम के अनुमान
 तानसेन संगीत मत सुति को यह परमान ॥८६॥

अथ मूरछना विवेक दोहा

उत्तर मंद्रा रंजनिहु उत्तरा येता नाम
 सुद्ध पर्ज में संक्रता जानो आवै काम ॥८७॥
 कहिये यो रवि हर्षिका सप्त मूर्छना होय
 येतो मध्यम ग्राम को जानै गायन लोय ॥८८॥
 सो वीरी अरु हरन ति केवलो इता नाम
 सुद्ध मध्य अरु मारुनी जानो आवै काम ॥८९॥
 चक्रता अविस्तता उता कही मूर्छना सात
 पर्ज ग्राम सो ये रहै जानो धी र ग वात ॥९०॥
 मंदा कहौ विलास अस सुमुखी चित्रा जान
 चित्रावति अरु सिष्य जो ताको हित ज्यो मान ॥९१॥
 आलापै ज्यो मूर्छना ग्राम गंधार कि लेष
 तानसेन ज्यों कहि कछो मत संगीत को देष ॥९२॥

अथ तेरह लछन

तेरह लछन को कछो जामे होत प्रकार
 तानसेन संगीत मत जानि लेहु यह सार ॥९३॥

ग्रह औ अंस सो न महै मंद मध्य अवतार
 अलप बहत मारग कह्यो अंतर है यह सार ॥ ६४ ॥
 अधन्यास सन्यास है न्यास कह्यो विनास
 तानसेन संगीत मत कह्यो ए तेरह आस ॥ ६५ ॥

अथ लछन विवेक

गावै को उचार ज्यों ग्रह सो कहिबो ताहि
 ता उपर विस्तार है सोई आस जो आपाहि ॥ ९६ ॥
 आन्यासे सुर जानि पुनि वैनन्यांस सुर जाय
 विन्यासे सुर जोरि वो तानसेन उपजाय ॥ ९७ ॥
 मध्य हृदय में होत है गरे होत है बुद्ध
 दनिय पर्ज जो तार है तानसेन की सुद्ध ॥ ९८ ॥
 करि विस्तार पूरन कह्यो भावत करि मानि
 द्वै सुर मध्यांतर कह्यो मारग सगुनि ये जानि ॥ ९९ ॥
 करि विस्तार पूरन कह्यो न्यास लहत सुर जान
 तानसेन संगीत मत जो जिय में पहिचानि ॥ १०० ॥
 परज रिषभ गंधार सर मध्यम पंचम जानि
 तानसेन धैवत कही बहिरि निषादहि मानि ॥ १०१ ॥

अलंकार प्रस्तार

सरि सरि गरि गरि गम गम गम पम पध पधनी निसा
 अथ छता भेस सरि रि गम मपध धनी निसा ॥ १०२ ॥

सुर उचार दोहा

जानो पर्ज मयुर ते चात्रिक रिष महिमान
 तानसेन संगीत मत कह्यो जो जिय में जान ॥ १०३ ॥
 सप्त सुर नव उरो कह्यो सरिगम पधनि नाम
 द्वितिय भेद ज्यों कह्यो है सुरवर्तिन को काम ॥ १०७ ॥

अथ सप्त सुर दोहा

कंठ स्थान ते षर्ज है रिषभ सीस ते जानि
 नासिक ते गांधार है मध्यम उर ते मानि ॥ १०८ ॥
 पंचम सुर है नाभि ते धैवत भाल स्थान
 तानसेन संगीत मत जानो यह परमान ॥ १०९ ॥
 कहै है सुर अस्थान जे जेते निषाद अस्थान
 तानसेन संगीत मत इहै तान सो जान ॥ ११० ॥

अथ द्वितीय भेद लछन

षर्ज गंधार जो सुर कह्यो तासु कंठ अस्थान
 कह्यो है मत व्याकरण ते तानसेन सुभ गान ॥ १११ ॥
 धैवत निषाद है दसन ते बाढ़े न मध्यम जान
 पंचमहू को कह्यो है मत व्याकरण को मान ॥ ११२ ॥
 रिषभ सीस ते जानिये करिकै देषो मान
 तानसेन संगीत मत सो जानो परमान ॥ ११३ ॥

अथ सुर जाति दोहा

षर्ज मध्यम पंचम कह्यो विप्र परन जो होइ
 तानसेन संगीत मत कह्यो है सुर मुनि लोइ ॥ ११४ ॥
 रिषभ धैवत छत्रि कह्यो है तानसेन सो भाति
 कह्योहि निषाद गंधार जब वै सुर है वैश्य जाति ॥ ११५ ॥
 काकली है जू अंत सुर यह सुर है जो सुद्र
 तानसेन होतो रहै मंत संगीत समुद्र ॥ ११६ ॥
 छ प्रकार अलाप है राग रूप कहि जान
 तानसेन जो कहत है यह संगीत मत मान ॥ ११७ ॥

अथ राग अलाप

कटिता रूप कछपने अंत सहित है चारि
 अल्पन के अस्थान है तानसेन सो चारि ॥ ११८ ॥
 स्यानु पल छन परज मध्यम सुर थाई कहिये जाहि
 अलापो सुर चालि सो थिर है कटिता आहि ॥ ११९ ॥

चौथे सुर आलापि कै चौथोहि पर आहि
 द्वितिय भेद रूपक कह्यो तानसेन सो गाय ॥ १२० ॥
 अथ द्रगन के मध्य सुर अर्थहि करत नेवास
 तानसेन संगीत मत आलाप को छपन जासु ॥ १२१ ॥
 द्वितिय षर्ज आलापि कै फिर अस्थाइ होइ
 तानसेन संगीत मत अंतर जानहु सोइ ॥ १२२ ॥
 राग आलापहि रूपक आलि तही सो जानि
 प्रीति ग्रहनिका भंजनी दुइ अकार सो मानि ॥ १२३ ॥

अथ लछन

प्रति ग्रहनीकी यह कह्यो जो विधान को गान
 तानसेन संगीत मत जानहु रथ सुजान ॥ १२४ ॥
 द्वै प्रकार हैं मंजनी थाई रूपक मान
 तानसेन तोसो कहो है संगीत मत मान ॥ १२५ ॥
 जैसो रूपक करि षत्र को तैसो गावै जानि
 अस्थाई मंजनि कहो तानसेन सु वषानि ॥ १२६ ॥

अथ रूपक दोहा

वह जो मान वा वरन है सरन किय अस भाति
 कह्यो जो रूपक मंजन तानसेन वह जाति ॥ १२७ ॥
 गुप्त सरिष वस योग ते उपजे है सब राग
 मोद वटे तिनके सुने उपजत है अनुराग ॥ १२८ ॥
 त्रित्य समे मुख पंच ते उपजे पायौ राग
 गिरिजा के मुख सो छटौ भयो राग बहु भाग ॥ १२९ ॥
 प्रथमहि सूर्यो जाति मुख स्त्री रागहि उपजाइ
 वामदेव मुख दूसरे कहो वसंत बनाइ ॥ १३० ॥
 तीजै मुख सो अधर है सो भैरो को टोर
 चौथो सुष तत पुरुष है ताते पंचम ओर ॥ १३१ ॥

३७१

मेव राग प्रगट्यो बहुर पंचम मुख ईसान
नट नारायन छटे मयो गिरिजा मुखहि प्रमान ॥१३२॥

एक समै पूछन लगी पार्वती सुठ देव
रागनि को विधि सो कहो मोखों कछु यह भेव ॥१३३॥

समय कहो अरु रितु कहो ओर रूप अनुहार
होइ प्रसन्न मोखो कहो जिय में दया विचार ॥१३४॥

तव सिव जू लागे कहन वंक वंक मुसुकाइ
सुभ स्त्री राम बस मुनि भेख को जो गनाइ ॥
पहिले कही विभास को भूपाली पुनि रोह
करनाटी बड हंसिका माल स्त्री अनि जोह ॥

पट मंजरी वर्नानि ते ये छह पंचम तीय
नित्तिहि ताके संग रहैं उपजावै सुष जीय ॥

बेलावल अरु भैरवी मलारी येही भाइ
• स्याम गुर्जरी ओर है बंगालीह गनाइ ॥१३६॥

मालमिरि धनामिरी मेव रागनी अंत
देस कार अरु पंचमा भैरव ललित बसंत ॥

कोस कबहु रोगु न करी साचे री सुष भाइ
देखी अरु पट भंजनी बहुरि गुन करी गाइ ॥

राम करी अरु सोरठी बहुरि भैरवी होइ
एक प्रहर पर्य वैगटी अरु टोडिका होइ ॥

प्रहर मेजा कामोदी कुडाइ का नाग सन्धिक गान
देश सुमंकर अभरन बहरो कहै सुजान ॥

अब सुनि तिय ये प्रहर को तिन का करो बखान
मालव अरु स्त्री राग पुनि सब रागन को ग्यान ॥

केदारी कर्नाटियो आभिरि एहि दाइ
बसारग पुनि उदंस है की. कामोद गनाइ ॥

चौथे पहर अर्ध रात्रि सोरठ कान्हर आई
 खंभावति पुनि षरज को जैजैवंति गाइ ॥
 कलिंग सोहनी विदित निसा कौसिक अति सुषदाइ
 तानसेन संगीत मत समुक्ति पुसी है जाइ ॥

अथ प्रबंधाध्याय प्रकरण

ताल राग को मूल है वाद्य ताल को अंग
 वाद्य ताल दोऊ मिले त्रित्यत उठत तरंग ॥

अथ वाद्य भेद नामानी

तत को पहिले कहत है वितत दूसरो ठान
 तीजे धन चौथे सिवर तानसेन परमान ॥
 तार लगे सब साज के सो ततही तुम मान
 चरम मढ्यो जाको मुख रवि ततलुक है बखान ॥
 कंस ताल के आदि दै धन जीय जानहु मीत
 तानसेन संगीत रस बाजत सिखर सुनीत ॥

तत नाम दोहा

वीन योन करव वहे सुर मंडल सारंगी
 चार तात तंदूर पुन तानसेन ऊपंगी ॥
 अम्रित कुंडली चंग ओ अवक्त ओर अनेक
 तानसेन संगीत मत जाने बुद्धि विवेक ॥

अथ वितत नाम

मान मृदंग ढोलकी दुदुंभी दारा बंजरि जान
 चंग लोहरे अनेक है तानसेन उर मान ॥

अथ धन नाम

कास ताल औ क्कांक पुनि कहे गुनी कठ तार
 बाजत नीके तानसेन यह धन समुक्त विचार ॥

अथ सिखर नाम

वेनु बांसुरी नाद है सुर नाई करनाल
 तुरही त्रिसिंघ सिखर है औ मुरचंग रसाल ॥

अथ वाद्य नाम

वीना वेनु करतार सारंगी रबाब आछो उपगहुतार सर मंडली सोहाई है
 अम्रित की कुंडली तमूरा टोली म्रिदंग दुं दुभी यदारा डफ पंजरी बनाई है
 मांझ साज सिपर नरसिंघा मुरचंग तैसी तुरुही नफीरी मुरवौ दे मन भाई है
 ताल के तरंगन सो कहै तानसेन काय नूर रंग बहगुन वारे गाई है ॥

वाद्य भेद के नाम कहि सुन हो चतुर सुजान
 सिव को भाषित है सबै मत संगीत प्रमान
 वाद्य भेद संछेप ते बरनन किए विचार
 ताल नाम बरनन करो जिय में निश्चय धार ॥

इति वाद्य प्रकरण

अथ संगीत रत्नाकर मतानुसारेन तालाध्याय प्रारम्भ

सिव असक्ति संयोग ते प्रगट भये सब तार
 मारग देस द्वै कही तानसेन उरधार ॥
 नृत्य समै पाँच ते उपजे मारग तार
 • देखी गिरिजा ने कही तानसेन निरधार ॥
 रत्नाकर संगीत मत अतिहि विकट मतिमान
 तानसेन यह भरत मत ओर कहे हनुमान ॥
 सोमेस्वर बलिनाथ मत रागार्नाव मन मान
 ओर बहुत अनेक मत तानसेन परमान

अथ ताल अंग

प्रथम ताल अंग कहत हों जानहु चतुर सुजान
 तानसेन संगीत मत सुर गुनी खेवान ॥
 सप्त अंग सब तार के भिन्न तुम जान
 तानसेन संगीत मत कछो जो जिय में जान ॥
 प्रथम अनु छिति दुतिय त्रितीय कहुँ दविराम
 चौथे लघु विराम पंच तानसेन अभिराम ॥
 षष्ठम् गुरु सप्तम् पुलित यह सब तार के अंग
 तानसेन संगीत मत गावत उचत तरंग ॥

लघु को चौथो भागु है ताकी तुम अनुठान
तानसेन संगीत मत द्वै दुत लघु प्रमान ॥
छ लघु गुरु द्वै होत है गुरु लघु पुलितहि जान
तानसेन संगीत मत कह्यो जो ग्रंथप्रमान ॥

अथ अणु

दुत दुत विराम लघु औ गुरु पुलित विचार
तानसेन संगीत मत कह्यो जो उर में धार ॥

अथ मात्रा उचार दोहा

तीतुर अनु को कहत है दुतहि नकुल उच्चार
वअ जाल लघु को कहत इक कलधा सुविचार ॥
अथ उत्पन्न सब कहत हौ मत संगीत विचार
भिन्न भिन्न वरनन करो तानसेन परकार ॥
पवन ते अनु उत्पन्न भो दुत उत्पन्न भय नीर
तानसेन दविराम ही प्रगटे सलिल समीर ।'
बड़वानल तै लघु भयौ व्योम तै गुरु प्रगटाय
प्रिथी पुलित उत्पन्न कहि तानसेन मन भाय ॥
अब सब केर स्वामी कहौ मत संगीतहि मान
तानसेन यह मरत मत जिय में नीके जान ॥

अथ स्वामी

अनु कोसिसि है देवता दुत को महेश बषान
सिखी बहुत दविराम है तानसेन यह जान ॥
लघु की साखा प्रमान है दविरामै गुन ठान
गौरी सिव गुरु देवता तानसेन परमान ॥
गनपति पुलित को देव है जानहु चतुर सुजान
तानसेन संगीत मत ताको करत बखान ॥
अनु दुत सूछम धात कर परन लघु कर धात
इस्त भ्रमन गुरु धात है द्वै कर पुलित समात ॥

अथ स्वर रूप वर्णन

अर्द्ध चंद्र अकार अनु बिंदु दुत ही लेख
लंब कर लघु होत है मत संगीतहि देख ॥

अर्ध वक्र गुरु होत है पुलितहि खिंगाकार
तानसेन संगीत मत कह्यो जो जिय में धार ॥

अथ संगीत रत्नाकर मतानुसारेण मागर देशी ताल नाम

पंच ताल मा एक देसी व मुखते प्रगटाय
तानसेन संगीत मत सब ही कह्यो गिनाय ॥

चच्चुट पहले कहत है चाचपुटा ही पुन जान
तानसेन संगीत मत कह्यो ग्रंथ परमान ॥

अथ देशी ताल नामादि

ताल द्विताल पुन त्रितीय चतुरथे होय
पंचमनि सकलील सिंह विक्रम कहिये सोय ॥

रतिलीलहि सिंहलील है कंदरप त्रि विक्रम
रंग स्त्री रंग औ चर्चरी तानसेन मुख धाम ॥

प्रत्य गयति लग्न कहि हंसलील गंजलील
बनों भिन्न भिन्न कहि तानसेन सुनु सील ॥

राज ताल स्वर्ण ताल सिंह विक्रिडीत मनु जान
दरपन भी सुत बर्नहि तानसेन परमान ॥

जय वनमाली ताल है हंसनाद सिंहनाद
कुक्क तुरंग लिलताल है सरषा लील है स्वाद ॥

सिंह नंदन त्रिभंग पुनि रंगा भर गाव मंठ
.....मुदित तानसेन कर कंठ ॥

कोकिल प्रीय निसार को राजविद्याधर जान
तानसेन जय मंगला विजया नन्द बषान ॥

मल्लि कूमोद क्रीड़ा विजय मकरंद कीरत नाम
स्त्री कीर्ति अति ताल पुन तानसेन अभिराम ॥

विजय विंदुमाली में नन्दन मढ़ी कामंठ
दीप कंठ की विषम पुन तानसेन स्त्री कंठ ॥

अभिनंदन अनंग पुनि नांदी मल्ली ताल
तानसेन पुन रन कही पुनह खंड कंकाल ॥

विषम लघु सेखर कहै चतुर्धान काल
कटुक राका कुमुद पुन तानसेन चतुस्ताल ॥

प्रतापसेखर भूपताल लहि गजरूपा पुन होय
चतुर्मुखी रति तान है मदन ताल है सोय
प्रति मंठ वा प्रति मंठ है पारवती लोचन लोय
लीला करन यति ललित है तानसेन है सोय ॥

राग वर्द्धन षट ताल हंस अंतर क्रीडा मान
उत्सव विलोकित वर्नपति तानसेन सिंह जान ॥

करन सार सांच उहे चंदू कला लाय जोय
रंक धर ताल द्वन्द्व कत तानसेन यह होय ॥

कुमुद कुविद कलध्वनि गोरी ताल समेत
राजमृगांक ताल हे मग्न ताल पुन लेत
रामचंद्र प्रसिद्ध है विपुला पूज मन मान
तानसेन संगीत मत कह्यो जो जीय में जान ॥

इंद्र लोक कुंडलि कहै पतत कुंडली कार
तानसेन संगीत कह जिय में लेहु विचार ॥

विद्युति लवन तारिका रूपडे कामडो पाय
तानसेन ऊदव पुनि कनक मेरु चलताय ॥

कनक मेरु वा चक्र पुन चक्रमंठ उल ताल
संक संयोग चतुरस्त्र है हे तानसेन रसताल ॥

विद्याधर मंठ त्रितिय है चतुरमंठ स्त्री विधु
गध नारायन नर्तक तानसेन परधीधु ॥

मंठ तालंग पुनि सरस मंठ प्रति मंठ
कीने मंठ रवि मंठ कहि तानसेन हरि मंठ ॥

जनक मंठ जय मंठ कहै प्रिय मंठ स्त्री मंठ विसो रज पवानो
रंग धन गीर्वाण कल्याण कमल रवि साल औ वध्वभ मानो
कलाय विचित्र मुद्रीत गभीर स्त्रीरंग सुभिन नक वर्नहि जानो
संकीर्ण कलींग विलोकीय राज पए सब मंठ के नाम बखानो ॥

इंद्र ताल कु रनं पची कछप ताल बखान
तानसेन कहे सरस्वती कंठाभरन प्रमान ॥

नारद सारद तुंवर किन्नर ताल विचार
तानसेन यह तरन को काह न पावे पार ॥

इति श्री संगीत रत्नाकर मृत्तानुसारेण देशी ताल नामादि
अथ कलावंत द्वादश तालमाह

एक ताल द्वै ताल पुनि त्रितीय चतुर्थ होय
त्रेवट अठताली कहै सूफी कता लोय ॥

मठ ताली धमारी की रूप मधी मानं थान
शब्दसेन वरनन करे जानहु चतुर सुजान ॥

अथ गमक लछन

कह्यो गमक सुरकंद को खवन चित्त सुख देत
मत संगीत को होत जब तानसेन करि लेत ॥

डमरू धनि सी कय होय दुत चोथाइ मान
तीरिय गमक सो कहो है तानसेन खुत जान ॥

त्रयो अंस दुति होत जब ताको लीजै जानि
कहो गमक असफुरित वह तानसेन विग्यानि ॥

अधि दुत की सीधता पीत गमक जो होय
द्रुत के वेग जो कंप हो नील गमक है सोयु ॥

लघु के लगे ज्यों कंप हो यक गमक अदोलित जान
 तानसेन ज्यों कहत है मत संगीत को मान ॥
 क्रम ते आगम सुर वरन चित्रित यहि आदि
 तानसेन ज्यों कहो है हुलसित गमक सुभाय ॥
 पुलत सभी जो कंप है प्रलविक सो नाम
 तानसेन संगीत मत जानो आवै काम ॥
 हिद पे सुर उपज इकौ हिय हंकार गंभीर
 हुंफित गमक सो कहो है तानसेन सुरवीर ॥
 सुख मदे सुर होत जो मुदित गमकह जान
 तानसेन ज्यों कहत है यह संगीत मत मान ॥
 सकल गमक कै भेद जो एक ठोर जब गाय
 निश्चित गमक सो जानिय तानसेन उपजाय ॥

अथ संगीत रत्नाकर मतानुसारेण तालाध्याय प्रारंभ

अथ मार्ग ताल उदाहरण

सीव के पायो वदन ते भी भिन्न मै ताल
 तानसेन संगीत मत गावत अति ही रसाल ॥

अथ चचपुट ताल उदाहरण

प्रथम दोय गुरु पुन लघु पुलित मे जोय
 तानसेन चचपुट कहे व बिरला कोय ॥ इति चचपुट ताल
 प्रथम गुरु द्वै लघु पुनै अंत गुरु जो होय
 तानसेन संगीत मत चाचपुट है सोय ॥

पुलित लघु द्वै गुरु पुनै लघु पुलित पुन होय
 षष्ट पिता पुत्र कही तानसेन मत जोय ॥ इति षट पिता पुत्र
 प्रथम पुलित त्रिगुरु कहे अ पुलित को जान
 संपकेष्टा कहत है तानसेन परमान ॥ इति संपकेष्टा

अथ देशी ताल उदाहरण

लघु दुत लघु दो दुत लघु पुन होय
 तानसेन संगीत मत ब्रह्म ताल हों सोय ॥ इति ब्रह्म ताल

द्वै दुत लघु दुत लघु पुनै द्वै दुत त्री लघु होय
 अंतर मिलि के जहां पुन रुद्र ताल को जोय ॥ इति रुद्र ताल
 त्रीदुत एक लघु द्वै दुतै लघु द्वै दुत जोय
 बिध्म ताल है तासो कहै बूमो विरला होय ॥ इति विध्य ताल
 द्वै दुत द्वै लघु दुत पुनि अंत लघु पुनि कोय
 तानसेन संगीत मत कछप तालहि जोय ॥ इति कछप ताल
 दोय पुलित द्वै गुरु लघु निसंक ताल को जोय
 तानसेन संगीत मत बूमै विरला कोय ॥ इति निसंक ताल
 प्रथम दोय दुत होत है अंत सगुरु ज्यों होय
 तानसेन दर्पन कहै जानो बुद्धि विलोय ॥ इति दर्पण ताल
 तीन गुरु लघु पुनि तहै लघु गुरु पुलित प्रमान
 सिंह विक्रम कहात है तानसेन मन मान ॥ इति सिंह विक्रम ताल
 दोय दुत लघु द्वै द्वै गुरु ताल कंदर्प जोय
 तानसेन संगीत मत जाने कवि गन लोय ॥ इति कंदर्प ताल
 प्रथम लघु दुत द्वै पुलित अंत गुरु को लेष
 वीर विक्रम तानसेन जानहु बुद्धि विशेष ॥ इति वीरविक्रम ताल
 प्रथम चारि दुत होत है गुरु एक है अंत
 रंग ताल ताको कहै तानसेन बुधिमंत ॥ इति रंग ताल
 द्वै लघु पुन गुरु लघु पुलित ताल कहत श्रीरंग
 तानसेन वे चतुर नर गावतु उक्त तरंग ॥ इति श्री रंग ताल
 षोडस दुत सब अंत एक एक जब होय
 तानसेन चर्चरी कहै जाने बुद्धि विलोय ॥ इति चर्चरी ताल
 गुरु गुरु गुरु जह होत है एक लघु बहरी जान
 प्रत्यंग ताल ताको कहै तानसेन परमान ॥ इति प्रत्यंग ताल
 पहिले दुत बरनन करै अंत लघु पुन धार
 पति लगन ताके कहै तानसेन विचार ॥ इति पति लगन ताल

लघु लघु लघु लघु होत है अंत लघु विस्वाम
गजलील ताको कहै तानसेन अभिराम ॥ इति गज लील ताल
द्वै गुरु पुन गुरु लघु और पुलते है अवसान
रंग प्रदीप ताको कहै तानसेन परमान ॥ इति रंग प्रदीप ताल
गुरु पुलित द्वै द्रुत गुरु लघु पुलिते उरधार
राज ताल तह होत है तानसेन के तार ॥ इति राज ताल
गुरु लघु द्वै द्रुत पुनि अग गुरु ज्यों होय
चतुर सुवरनी कहत है तानसेन उर जोय ॥ इति चतुर स्वर्ण ताल
लघु गुरु द्वै द्रुत अंत पुलित पुन जोय
तानसेन जय ताल कहिक कै विरला कोय ॥ इति जय ताल
च्यार द्रुत पुन रोक लघु द्वै द्रुत गुरु बखान
वनमाली ताको कहै तानसेन परमान ॥ इति वनमाली तान
लघु पुलित द्वै द्रुत कहै अंत पुलित तही लेख
तानसेन संगीत मत हंस नाद ही देख ॥ इति हंस नाद ताल
एक लघु गुरु लघु पुन द्वै गुरु जान
सिंह नाद ताको कहै तानसेन परमान ॥ इति सिंह नाद ताल
प्रथम द्वै द्रुत द्वै लघु कुडुक ताल विचार
तानसेन बखान करै लै हिदे में धार ॥ इति कुडुल ताल
प्रथम द्रुत द्रुत विराम पुन द्वै द्रुत अंत ज्यों होय
..... ॥^१ इति तुरंग लोल ताल
प्रथम दोय लघु चतुर्द्रुत द्वै लघु अंत विचार
सरम लील ताको कहै तानसेन निरधार ॥ इति शरम लीला ताल
द्वै गुरु लघु पुलित लघु गुरु दुरित है देख
द्वै गुरु लघु पुलित पुनि सिंह नंद तही लेख ॥ इति सिंह नंद ताल

१ इस दोहे की दूसरी पंक्ति उक्त प्रति में नहीं है ।

प्रथम दोय लघु द्वि गुरु त्रिभंगी वतराय
तानसेन संगीत मत नीके गान कराय ॥

द्वै गुरु द्वै लघु पुलित पुन रंगाभरण बखान
तानसेन नवमात्र है जानहु चतुर सुजान ॥ इति रंगाभरण ताल

दोय लघु पुन गुरु कहे चतुर लघु विराम
तानसेन वामंठ कहे सुनहु ग्रंथ प्रमान ॥ इति वामंठ ताल

प्रथम गुरु द्वै लघु पुन तीन लघु विराम
मुद्रित मंठा कहत है तानसेन अभिराम ॥ इति मुद्रित मंठ ताल

च्यारि लघु ओर गुरु कहे दोय लघु पुन जान
तानसेन मंठों कहे जानहु चतुर सुजान ॥ इति मंठ ताल

प्रथम लघु गुरु है ताहे द्वै दुत पुनहि विचार
राज विद्याधर कहत हे तानसेन निरधार ॥ इति राज विद्याधर ताल

दोय लघु पुन एक गुरु द्वै लघु एक गुरु होय

• जप मंगल ताको कहै तानसेन सर जोय ॥ इति जप मंगल ताल

प्रथम दोय लघु च्यार दुत मल्लिकामोद बखान
तानसेन संगीत मत जानहु ग्रंथ प्रमान ॥ इति मल्लिकामोद ताल

आदी गुरु लघु कहत है गुरु लघु गुरु पुन जोय
तानसेन जयस्त्री कहे महाबुद्धि विलोय ॥ इति जयश्री ताल

द्वै दुत द्वै लघु कह तेइ मकरंद उरही धार
तानसेन संगीत मत जानौ बुद्धि विचार ॥ इति मकरंद ताल

आदी लघु पुलित गुरु लघु पुलित उधार
तानसेन कीर्तन करै मन मे निरपि विचार ॥ इति कीर्तन ताल

दोय लघु द्वै गुरु पुनि कीर्ति स्त्री बखान
तानसेन उर धारि को करहु याको ध्यान ॥ इति श्री कीर्त ताल

प्रथम पुलित पुन गुरु कहे पुलित लघु ज्यो होय
विजय ताल ताको कहे तानसेन उर जोय ॥ इति विजय ताल

आदी गुरु दुत चतुर पुन अंत गुरु ही लेष
 तानसेन संगीत मत बिंदु मालि तेहि/ देष ॥ इति बिंदुमाली ताल
 आदि द्वै लघु दुत कही अंत दुत ही विराम
 तानसेन मन मानी हो नाम कहत याही साम ॥ इति साम ताल
 आदि लघु द्वै दुत पुन अंत पुलित परमान
 नंदन ताको कहत है तानसेन मन मान ॥ इति नन्दन ताल
 प्रथम दोय दुत द्वै लघु द्वै गुरु अंत ही होय
 तानसेन दीपक कहे बूभे विरला कोय ॥ इति दीपक ताल
 आदी गुरु लघु पुन अंत गुरु ज्यों होय
 ठेकी ताल ताको कहे तानसेन है सोय ॥ इति ठेकी ताल
 आदी तीन दुत दुत विराम च्यार दुत अंतहि विराम
 विषम ताल ताको कहे तानसेन अभिराम ॥ इति विषम ताल
 एक लघु पुनि बहे द्वै लघु पुलित ही होय
 अनंग ताल यह कहत है तानसेन उर सोय ॥ इति अनङ्ग ताल
 आदी लघु द्वै दुत कहे गुरु अंत में जोय
 नदी पल सब कह तेइ तानसेन वेलोय ॥ इति नंदी ताल
 च्यार लघु पुन दुरत हे अंत दुरतहि विराम
 मल्लताल संगीत मत तानसेन अभिराम ॥ इति मल्लताल
 आदि च्यार दुत गुरु लघु कहे पूर्ण कंकाल
 तानसेन सवनन करे अति ही रसिक रसाल ॥ इति पूर्ण कंकाल ताल
 द्वै दुत द्वै गुरु कहो ते कहियत खंड कंकाल
 तानसेन सुभ जानहि अंतहि मह रसाल ॥ इति खंड कंकाल ताल
 द्वै गुरु एक लघु होत है सम कंकाल बखान
 तानसेन संगीत मत जानहु ग्रंथ प्रमान ॥ इति सम कंकाल ताल
 एक लघु द्वै गुरु इह विषम कह कंकाल विचार
 तानसेन संगीत मत अनंद सुनत विसाल ॥ इति विषम कंकाल ताल

च्यार लघु एक गुरु कहे लघु कंडुअ तही साल
 तानसेन संगीत सब करन करत प्रतिपाल ॥ इति कुंडुक ताल
 आदी लघु द्वै दुत कहे लघु गुरु ज्यों होय
 कुमुद ताल त होत हे तानसेन कहे सोय ॥ इति कुमुद ताल
 तीन लघु जहां होत हे तीन गुरु पुन लेष
 कहत बसंती ताल यह तानसेन उर देष ॥ इति बसंत ताल
 द्वै लघु लघु सेखर कहे तानसेन मन मान
 अब प्राता यसोख कहो जानहु चतुर सुजान ॥ इति लघु शेखर ताल
 आदी पुलित दुति विराम द्वै लघु अंत विचार
 ॥^१ इति प्रताप शेखर ताल
 आदि दुत पुनि दुत विराम अंत लघु परमान
 तानसेन रूपताल कहे जानहु बुद्धि निधान ॥ इति रूपताल
 तीन गुरु औ एक लघु पुलिन गुरु द्वै होय
 अंत दोय दुत तानसेन पार्वती लोयन जोय ॥ इति पार्वती लोचन ताल
 च्यार द्रुत करन पती ललित ही करो बखान
 द्वि दुत लघु गुरु कहे तानसेन मन मान ॥ इति करणपति लीला ताल
 द्वै लघु गुरु लघु गुरु ललित प्रीया को विचार
 तानसेन संगीत मत जिय में निश्चय धार ॥ इति ललित प्रीया ताल
 चतुर लघु द्वि गुरु जहा छि लघु द्वि गुरु जोय
 जनक ताल कहत तानसेन जाने विरला कोय ॥ इति जनक ताल
 द्वि दुत लघु पुलित है स्त्री नंदना हे जान
 तानसेन संगीत मत कहि मत ग्रन्थ प्रमान ॥ इति स्त्री नंदन ताल
 होय दुरत लघु पुलित हे वर्द्धन ताल बखान
 तानसेन संगीत मत जानव चतुर सुजान ॥ इति वर्द्धन ताल
 षट् दुत खंड ताल हे जी दुत अंबर क्रीड
 लघु विराम हे सो कहे तानसेन मन ब्रीड ॥ इति खंड ताल इति अंबर क्रीड़ा ताल

१ इस दोहे की दूसरी पंक्ति उक्त प्रति में नहीं है ।

आदी लघु त्रीदुत गही द्वी लघु वहरो देख

सारस ताल रस होत है तानसेन उर लेख ॥ इति सारस ताल

अथ चचपुट लक्षण दो

द्वै गुरु लघु चचपुट में कहे सब तात

षट कला पट संग हो सिख मुख सधो जात ॥

गुरु एक लघु जुग गुरु बहु वाम मुष होत

पीय वसन षट कलंक हे चाचपुट ही उद्योत ॥

तीन गुरु दु दुत कहे तत्पुरुष होते होत

षट मात्रा पट स्याम कही जिन जिय बुद्धि उद्योत ॥

लघु दुत लघु द्वै दुत लघु त्री दुत लघु पुन होय

ब्रह्म ताल गोपाल यह मात्रा सप्त स्वर कोय ॥ इति ब्रह्म ताल

द्वै दुत लघु दुत लघु पुन द्वै दुत त्री लघु होय

गुरु अंत में होत हे रुद्र ताल हे सोय ॥ इति रुद्र ताल

त्री दुत एक लघु द्वै दुत लघु एक दुत द्वै होय

अंत लघु द्वै दुत लघु एक दुत द्वै होय ॥

द्वै दुत द्वै लघु लघु दुत लघु होय

कछप ताल कहीये सोय ॥ इति कछप ताल

दोय लघु तीन दुत जहाँ देख

ताल मलीकामोद सुलेख ॥ इति मलीकामोद ताल

लघु जुग तीन गुरु जहां होय

विजयानन्द कहत सब कोय ॥

इति विजयानन्द ताल

गुरु लघु गुरु लघु पुन गुरु एक

विजय स्त्री यह ताल विवेक ॥

इति विजय श्री ताल

अथ विषम ताल दो

तीने दुत दविराम कहे सुनिये नायक गोपाल

और गुरु पुलित लघु महा विषम यह ताल ॥

३८५

अथ आनन्द ताल

दोय दुरत और लघु दुत तीन पुलित गुरु एक
महानन्द यह ताल को जानहु चतुर विवेक ॥
द्वे दुत म एक गुरु त हानि हार
कामोद ताल को तहा विचार ॥ इति कामोद ताल
आदि गुरु पुन तीन दुत विराम
उम्भोवड ताल गहा अभिराम ॥ इति उम्भोवड ताल
दुत लघु दुत लघु दुत लघु दीज्ये
द्वे लघु दुत लघु द्वे दुत लघु लीज्ये ॥
एक दुत द्वे लघु द्वे दुत लघु दुत लघु द्वे होय
जात शेखर ताल यह जानत विरला कोय ॥ इति जात शेखर ताल
लघु गुरु द्वे लघु गुरु द्वय दुत द्वे गुरु पुन होय
सिंहनाद ताल यह बूझे विरला कोय ॥ इति सिंहनाद ताल

अथ राज नारायण ताल

दोय दुरत और लघु गुरु अंत को मान
राज नारायण नायक ही सात मात्रा सब जान ॥
द्वे लघु गुरु लघु पुलित अन्त स्त्री नन्द
सप्त मात्रा पिंड है कही ए नन्द नन्द ॥

अथ चंपक ताल

च्यार लघु पुन द्वे गुरु मात्रा छे लघु पुन ज्यों होय
दस मात्रा ताकी कही चंपक ताल है सोय ॥
तालाध्यायी हौं कहत हो ज्यों विचारि कै लेहु
मात्रा सब जिय समुक्ति के ताल सोधि के देहु ॥

अथ भरत मतानुसारेण ताल

अथ ब्रह्म ताल

लघु दुरत लघु द्वि दुरत लघु पुन तीन दुरत लघु वीर
स सप्त मात्रा ब्रह्मन की बनी सुनी रसिक करन धीर ॥
इति ब्रह्म ताल

अथ कोकिला ताल

दोय लघु गुरु लघु अरु पुलत कोकिला ताल
आठ मात्रा यी उहे गावत जीत रसाल ॥

अथ राजविद्याधर ताल दो

द्वे लघु गुरु पुनि दुरत जु विद्याधर होई
पांच मात्रा तिनकी गिनि बूझ लेहो सब कोई ॥

अथ जय श्री ताल

लघु गुरु गुरु लघु गुरु दुरत वीराम में बोल
ताही कहत तम जयासिरी गुनी जन कहत अमोल ॥

अथ श्री कीरत ताल

द्वे लघु द्वे गुरु द्वे लघु स्त्री कर करत इह नाम
अष्ट मात्रा संगीत मत रसिकन को यह धाम ॥

अथ विंद माली ताल

आदि अन्त गुरु जानिए च्यार दुरत हे मध्य
मात्रा षर निज सोधि के विंदमाली ए बध्य ॥

अथ नन्दन ताल

एक लघु द्वे दुरत पुन एक पुलत को सेत नंदन जान
पंच मात्रा पिंड कहत संगीत मत परमान ॥

अथ मुसक ताल

द्वे लघु पाछे द्वे दुरत अन्त विराम
सवा तीन मात्रा कहि यह मुष्टक है नाम ॥

अथ लदि छन ताल

दुरत गुरुक गुरु अन्त देह उदीछन ताल
च्यार मात्रा जानिये ओर व यसोधो काल ॥

अथ चित्र मुख ताल दो

एक गुरु दो लघु पुनह पुलत ज्यों होय
ताको कवि जन कहत है चित्रमुख सब कोय ॥

अथ मदन ताल दोहा

दोय दुरत पुन गुरु धरो तीन मात्रा धार
कहत ताल मदन को भरत संगीत विचार ॥

अथ लीला ताल

दुरत लछ पाछे पुलत कहि यह लीला ताल बखानि
मात्रा साढ़े चार जो रसिकन मन में जानि ॥

अथ कर्ण ताल

च्यार दुरत यामे रहे कर्न ताल यह जानि
रसिक संभु सब देत है निस्चै मन में आनि ॥

अथ गारुडी ताल दोहा

च्यार दुरत एक विराम दुरत मात्रा साढ़े दोय
कहत मत संगीत जे गारुडी ताल सब लोय ॥

अथ राज नार यण

दोय दुरत लघु गुरु कह लघु गुरु कहो निदान
राज नारायन नाम कही सात मात्रा जान ॥

अथ ललित ताल

द्वे लघु गुरु लघु गुरु वधु ललित जु मात्रा आत
आनु रसिक इह संगीत मत कानन राग सुहात ॥

अथ श्री नंद ताल

एक गुरु द्वे लघु पुन लत एक स्त्री नन्द
सात मात्रा पिंड है कही राग अनंद कंद ॥

अथ वद्धन ताल

दोय दुरत इक पुलत कहि वरधन मात्रा च्यार
भरत प्रसंगहि ते यह कहत है सब नर नार ॥

अथ अनंग ताल

एक गुरु अरु एक पुलत लघु एक गुरु पुन होय
अनंग ताल ताको कहो चतुर कवि जन सोय ॥

अथ भीषम ताल

दोय लघु दुत सप्त है द्वि लघु पुन ज्यों होय
नाम भीषम ताल यह जानत विरला कोय ॥

अथ अभंग ताल

इक लघु इक पुलत जो हिई जानो ताल रथ भंग
च्यार मात्रा भरत मत गनिये याके संग ॥

अथ षट ताल

षट दुरत पुन दोय लघु एक गुरु तुम जान
षट ताल जाको कहे मात्रा सात बखान ॥

अथ चंदक ताल

प्रथम तीन गुरु धारी के तिन पुलत पुनि लेत
मात्रा याही जानिये चंद कला की रेल ॥

अथ रत्ना ताल

चार दुत चार लघु पुलत पंच यह जानीन
रच्छा ताल मन में धरे रच्छक करे निधीन ॥

अथ सिंह ताल

लघु को पाछे देवे दुरत मात्रा कहिये दोय
सिंह ताल ताहि कहे जानत कवि बिरला कोय ॥

अथ सारस ताल

लघु के पाछे तीन दुरत पुन द्वै लघु ज्यों अंत
मात्रा साढ़े चार है सारस ताल कहंत ॥

अथ सुवध ताल

दुरत विराम आदि लघु मात्रा पौने दोय
चतुर संगीत कहत हो सुवधत ताल जो होय ॥

अथ विष्णु ताल

तीन लघु एक गुरु तीन लघु द्वै गुरु चतुर लघु जान
एक लघु पुलत पंच मनि यो विष्णु ताल परमान ॥

अथ रुद्र ताल

लघु दुत गुरु पुन चार लघु तिन दुत एक लघु जान
एकादस ताल यह रुद्र बखानों चतुर सुजान ॥

इति श्री तालाध्याय भरत मते कथिता संपूर्ण शुभमस्तु
लिष्ये श्री लाल हटे सिंह सावन बदि बुधवार संवत् १८८८

तानसेन के पद^१

वन्दना एवं स्तुति

जै सारदा भवानी विद्यादानी महा वाक्वानी तोहि ध्यावै
सुर नर मुनि मानी तोहि कु त्रिभुवन जानी जो जाकी मन इच्छा सोइ सो पुजावै
मंगला बुध दानी ग्यान की निधानी वीना पुस्तक धारिनी प्रथम तोहि गावै
तानसेन तेरी अस्तुत कहाँ लौं बखाने सप्त स्वर तीन ग्राम राग रंग लय अच्छर आवै ॥१॥
महावाग् वादिनी सनमुख हूजै अवहूजै हो
याही ते त्रिभुवन मानी याते तु भवानी जो जाके मन इच्छा सोई सो पूजै हो
रिद्ध सिद्ध तुवही पाइये मात जब तुव चरन छूजै हो
तानसेन यह प्रसाद मांगत जहां तहां जुरत फुरत तहां तहां रंग रंग को कर तूजै हो ॥२॥
सरस्वती सुप्रसन्न हो मोको वाक्वानी
षड्ज रिषम गान्धार इनइन स्मरन साधे तव रागरंग गुरुप्रसाद आवत तानसानी

१ राग सागरोद्भव संगीत-राग-कल्पद्रुम-भाग १, २ से उद्धृत ।

रूप की निधानी इन्द्रानी सिंहालानी महिषा सुरमर्दिनी जगज्जननी गुन निधानी
तानसेन मांगे तान ताल स्वर स्त्री दुर्गे भवानी कीजिये दया मोहे दीन जानी ॥३॥

जो कोई ध्यावै सरस्वती चरन सरन को ताको देत विद्या वाक्वानी

अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों फल की दानी

वाक्य वादिनी तू ही माता आदि ज्योति रूप निधानी इन्द्रानी

सिवानी मंगला ग्यान रूपा सारदा वरदानी

तानसेन सेवक यह मांगे तान ताल रंग दे दयाकर मोहे दीन जानी ॥४॥

तेरे तो सरस्वती घट घट पूर रही नाम धरायो वाक्वानी

जल थल मध पात जालपा भवानी याते कहियत तोकों सर्वानी

कोट कटानी म्रिनानी सात द्वीप प्रमानी ऐसी नग्न कोट रानी

बानि सेवक को प्रसाद दीजै भवानी दयानी कंठ पाठ ताल स्वर दे महारानी ॥५॥

ग्यानवन्त को रस अगम बुध देनी तू सब ही अंगन मानी हंसवाहिनी

गिरा महा वाक्य बानी

जोह तोहे ध्यावै मन इच्छा फल पावै साधत कंठ प्रान करत बखानी

तोसी नुही औ नाही विद्यादानी जे साधे अराधे त्रिलोक जग जानी

तानसेन को दीजै रागरंग वरवानी जोलों गंगा धरन ध्रुव पवन पानी ॥६॥

माता जालपा भवानी जाके नगर लोक नरलोक भुवलोक इन्द्रलोक त्रिभुवन

मानी सर्वानी सकल जगत जानी औ दरिद्र भय हरनी महारानी

जे मन वच करम कर तुमको ध्यावै तिनको बुध दानी ऐसी प्रसिद्ध महावाक्वानी

असुरन दल मलन अंबे आदिसक्ति सुर नर रटत रहत गुनी ग्यानी

तानसेन सों मनमानी करम करतू दयाकर दयानी तान ताल अञ्छर दे सारदा भवानी ॥७॥

अथ गणेश-वन्दना-भैरव चौताल

लम्बोदर गजानन गिरिजा सुत गनेस एक रदन प्रसन्न वदन अरुन वेस

नर नारी गुनी गन्धर्व किन्नर यच्छ तुम्बर मिलि ब्रह्मा विष्णु आरत पुजावत महेश

अष्टसिद्धि नवसिद्धि मूषक वाहन विद्यापति तोहि सुमिरत तिनको नित सेव

तानसेन के प्रभु तुमहीकु ध्यावै अविधन रूप विनायक रूप स्वरूप आदेस ॥८॥

तुम हो गनपत देव बुध दाता सीस धरे गज संड

जेई जेई ध्यावै तेई तेई फल पावै चन्दन लेप किये भुजदंड

सिद्धेस्वरी नाम तुम्हारो कहियत जे विद्याधर तीन लोक मह सात दीप नवखंड
तानसेन तुमको नित सुमिरत सुर नर मुनि गुनी गन्धर्व पांडित ॥१॥

साधो विद्याधर गुननिधान गुनदाता सरस्वती माता को कर आदेस
नमो नमो रिद्धि सिद्धि के स्वामी सकल विद्या प्रवेस
जो इनको ध्यावै मन इच्छा फल पावै दूर होत तन ते कलेस
तानसेन प्रभु तुमहि को ध्यावै ब्रह्मा विस्तु महेश ॥१०॥

ए गन राजा महाराजा गजानन जै विद्या जगदीस
सप्त स्वर सों गाऊं बताऊं सब राग रागिनी पुत्र बधून सहित छतीस
बाइस सुरत इकईस मूरछना उनचास कोट तान आवै जगदीस
तानसेन को दीजै छ राग छतीस रागिनी ताल लय संगीतमय सो
होय कठ प्रवेस ॥११॥

एक दन्त वंत लम्बोदर कीरत जाहि विराजै
गनेस गौरी सुत महामुनि महिमा सागर गुरु गननाथ अविघ्न राजै
हेरम्ब गनदीभक्त तुही महातुर उग्र तन बट चन्द्रमा सीस विनायक जगत के सिरताजै
तानसेन को प्रकास दीजै सकल बुध नवनिध के सदा दायक नायक जगत के सारे
काजै ॥१२॥

एक दन्त गज वदन विनायक विघ्न विनासन हे सुखदाई
लम्बोदर गजानन जग वन्दन सिवसुत दुन्दोराज सब वरदाई
गौरीसुत गनेस मूर्ध्नि वाहन फरसाधर संकरसुवन रिद्धि सिद्ध नवनिद्ध दाई
तानसेन तेरी अस्तुत करत काटे कलेस प्रथम वन्दन करत द्वन्द्व मिट जाई ॥१३॥

महा गनेस कहत सुख चैन
मेरुतहूँ न छाड़े भावै साह किरान लागे विचकैन
नाम लेत कटत पाप अनधन लच्छुमी दैन
तानसेन सेवक पै क्रिया करौ ज्यों कल्पत्रिच्छ कामधेन ॥१४॥

अथ गंगा जी वन्दना, भैरव चौताल

ईस सीस मय विराजत त्रई लोक पावन किए जीव जन्तु खग मृग सुर नर मुनि मानी
तानसेन प्रभु तेरे अस्तुत करता दाता भक्त जनन की मुक्ति की वरदानी ॥१५॥

अथ महादेव वन्दना, भैरव चौताल

महादेव आदि देव देवादि देव महेश्वर ईश्वर हर
नीलकण्ठ गिरिजापति कैलाशवासी शिव शंकर भोलानाथ गंगाधर
रूप बहु रूप भयानक बाधाम्बर अम्बर खपर त्रिशूल कर
तानसेन के प्रभु दीजै नाद विद्या संगत सौं गाऊं बजाऊं वीना कर धर ॥१६॥

हौ ऊंकार महादेव शंकर तुम सकल कला पूरन करत आस
निहचैही धरत ध्यान सुमरन रमन मान देखत दर्शन गई त्रास
हरे दुख दन्द सोहत जहां गंग रुंड माल गले सोहे बाधाम्बर वास
हर हर करत हरे पाप मिटे सकल दुख सन्ताप लहै मन हुल्लास
तानसेन सेवा ध्यान कर मन इच्छा फल पावै होय कैलास निवास ॥१७॥

महादेव देव देवन प्रति सूर ईश्वर शंकर पार्वती पति दुख हरन
वामदेव आदि देव जटा जूट धुरजटी डमरू बाजत डिम डिम सब सुख करन
रूप बहु रूप भूतनाथ भुवनेश्वर भोलानाथ गौर वरन
तानसेन के प्रभु रीकत तुरत ही देत मन इच्छा करे काज असरन सरन ॥१८॥

महादेव आदि देव महेश्वर ईश्वर हर
सम्भु सितकण्ठ कपरदी ईश विरूप डमरू कर त्रिपुरारि त्रिलोचन गंगाधर
नील कण्ठ भस्म भूषन त्रिषभ वाहन पारवती वर
जटा जूट बहुरूप शिव जो गंड वर धर तानसेन को दीजै सुख सम्पत वर ॥१९॥

आदि देव महेश्वर गौरी ईश विरूप आछे गंग जटा जूट
यह अनुचर वन्दन कर मांगत तेरे पाद प्रसाद ते पाऊं राग विस्तार तान उनचास कूट
तो समान औ नाही अविगत अविनाशी है रहे या भुव लोक मध अटूट
भोलानाथ भस्म भूषन गंगा शिखर डिम डिम डमरू बाजै तानसेन सेवक को दीजै
अन धन दूध पूत अखूट ॥२०॥

कानन मुद्रा मुंडमाला गरे भस्म विराजे अंग
कर त्रिशूल चन्द्रमा लिलाट पारवती अरधंग
त्रिषभ वाहन सीस जटा सोहत जटाजूट गंग तरंग
त्रिलोचन त्रिशूल खपर डमरू लिए तानसेन तान आबुत रंग ॥२१॥

३६२

महादेव देवन पति ईश सुरेश नील कंठ शिव पंचानन पारवती पति दुख हरन
 वामदेव महादेव जटाजूट गंग शिखर डिम डिम डमरू बाजत पुनि रीम्न सुख करन
 त्रिषभ वाहन जटाजूट गंग सिख बहुरूप द्रुम द्रुम डमरू बाजै त्रिशूल धरन
 तानसेन शिवशंकर दया कीजे भोलानाथ जगत पोषन भरन ॥२२॥

नमो रट शंकर देवा मने त्रिषभ वाहन तपसी प्रबल ईश्वर महायोग ईसान
 गंगाधर जटाजूट ललाट शशि सोहै हरिध्यान
 नीलकंठ उर सेष कपाल माला विभूति भूषन गरल पान
 गौरी अरधंग डमरू कर पिनाक पान
 धन धन धन महादेव गुनसागर आगर गावत तानसेन विनान ॥२३॥

सोहत काम न उत्तम रूप पहरत संवार चीर ओप वदाय कुन्दन अंग
 टिके को कियो अदोत ताते तिमिर फटो सरन परे पाछे सीस फूल युत असमान खवन
 कुंडल कवरी अचक कटाच्छ आपजोत बन रहो दोऊ अंगनग
 द्विग अंजन दिए अजन वस कर लिए कर दर्पन हार सुख देत सुख पै ये अन निरखे उड़ जात
 वरनन गुनी गावै मानिक हीरा कपोल मुक्त लर मुक्त माल भुज मिनाल कर कमल
 वाजू वंद फुंदन लटाकि लटकि अलि युग संग
 रामकिरन उपज्यो नवल विचित्र कंचुकी मधु अतंग अधर सुन्दर बवली तेरे वा टरनन
 भनन ठनन
 अम्रित नाम औरन लीप पीला रस लेत अपजात तानसेन के प्रभु साह अकबर सों बन रहे
 जैसे पारवती महादेव अरधंग ॥२४॥

अथ सूरज वन्दना, रव चौताल

जे सूरज जगच्चच्छु जगवन्दन जगत्राता जगत् करता जगन्नाथ
 आदित्य सवितर अरक खग पुषर गभस्तीमान् भानु दिवाकर जगकारज होय तेरे हाथ
 ग्यान ध्यान जप तप तीरथ व्रत संयम नेम धर्म कर्म सब उदै होय सनाथ
 तानसेन पै प्रभु क्रिपा कीजिए रागरंग स्वरन सों निसिदिन गाऊ तेरो गाथ ॥२५॥

अथ शिवा वर्णन

कराल वदनी काली त्रिशूल खपर सोहै चंडी असुर सिंघारन कारन
 महिषासुरमर्दनी इन्द्रानी महेश्वरी भेनकात्मजा उमा कात्यायनी गौरी तीरन

नारायणी निर ग्रन्था काश्मीर अस्थानी सिवा रुद्राणी अपरम्भारन
नग्न कोट रानी महिमा तुम जग जननी तानसेन निसिदिन सुमरत संकट निवारन ॥२६॥

अथ अनन्त देवता, राग भैरव, ताल चौताल

प्रभाकर भास्कर दिनकर दिवाकर भानु प्रगटे विहान

तेरे उदै ते पाप ताप छुटै कर्म धर्म प्रेम नेम होय गुरुग्यान औ ध्यान
जगमगात जगत पर जगच्चच्छु ज्योति रूप कस्यप सुत जगत के प्रान
तानसेन के प्रभु उदै जगत कपाट खुलत दीजिए विद्या क्रिपानिधान ॥२७॥

अथ त्रिवेणी-वर्णन

चंद्रवदनी भ्रिगनयनी तानधमार का गंग पुतरी कालिन्दी इह विधि डोरे बनाय कीजै तिरवेनी
छुटी पोते कन्ठ दीपक मुख को जोत होत तामै गुप्त प्रगट सरस्वती मिलिएन नैनी
सुन्दर रूप अनूप सोभा त्रिभुवन पाप ताप हरनी करत सुख चैनी
तानसेन को करो निरमल तू दाता भक्त जनन को बैकुण्ठ की नैसैनी ॥२८॥

अथ श्री भगवान-वर्णन

प्रथम उठ मोरही राधेकिस्न कहो मन जासों होवै सब सिद्ध काज
इह लौक परलोक के स्वामी ध्यान धरी ब्रजराज
पतित उद्धारन जन प्रति पालन दीन दयाल नाम लेत जाय दुख भाज
तानसेन प्रभु को सुमरो प्रातहि जगमें रहै तेरो लाज ॥२९॥

मोहन स्त्रिष्टि के आधार तन को अब राख लीजिए गोपाल

नैन प्रान सुख दीजै तनते दुख दूर कीजै इतनी विनती मेरी सुन लीजिए हाल
पतित पावन करुनासिन्धु दीन दुख भंजन अनेक रूप लीलाधारी भक्त वत्सल
युग युग भये क्रिपाल

मदन मोहन मधुसूदन मुरारी गज सुदामा द्रोपदी सहायकारी तानसेन प्रभु भक्त प्रतिपाल ॥३०॥

गोविन्द गोपाल गरुड़गामी गोपीनाथ गोवरधन धारी गोप मन रंजन
वंशीधारी गिरिधारी कुन्ज बिहारी बहु रूपधारी कंसारि मुरारी गर्वप्रहारी दुष्ट गंजन
मधुसूदन माधव मथुरापति मुक्तेश्वर मत भावन दुख भंजन
वासुदेव विट्ठल वनवारी बद्रीनाथ बौध रूप विस्तु तानसेन भक्त मन रंजन ॥३१॥

ए ईश्वर मोही की जातत गत जो बीतत बिना देखे तुअ दरस
एक निमिस पै नाहन निरखत में सांघ अकुलात केछू न सोहात मनु नैन देऊ जात तरस

भवमंजन मनरंजन कष्टत दुख द्वन्द्व क्रन्द एसा जग में व्याप रहो सरस
तुंही आदि तुंही अन्त तारन तरन तानसेन तुंही अरस परस ॥३२॥

पाक महम्मद अल्ला रसूल तेरो ही नूर जहूर

धन धन परवर्दिगार गुन्हैगार तुवकन तुंही जग रम रहयो भरपूर
बैचुन बैच गुन वै शुबै वै नमुन अव्वल आखर तुंही निकट तुही दूर
जित देखू तित तुंही व्याप रहो जल थल धरनी आकास तानसेन तुंही हजूर ॥३३॥

हजरत अली की सुदिष्ट भली मोपर जो दुख जाय सब तनते भाज
हों सेवक तिहारो तुमजात पाक करीम करम कीजै राख लीजै यह जगत में मेरी लाज
बैचुन बैच गुन वै सुमेवै नमुन पाक जगत रियाज न्याज
तानसेन ख रहमान करीम रहीम विनती सुनिए आवाज ॥३४॥

महम्मद नववी हबीब अलह के साह मर्दान

अली वली मरद कुफर दारिद्र हरन हजरत हसन बुजरक इमाम
सांसार के साहब हुसेन सैयद साहजादे जैन लावदीन दीन पर्न

महम्मद वाकर करतार कीने मन चितै करन काम

हजरत जाकर सादक साँची सीदक इमाम मुसि काजाम हजरत अली विन

मुसी रजा जाको दरस देखे जाय दारिद्र दान

हजरत तकी अलीन की हजरत हसन असगरी इमाम महम्मद मैदी साहब

जमान दे सुख संपत संतत राखो त्रिहुलोक भाम

ख्वाजा पीर निजामदीन औलिया तू सत्तार परवर दिगार

करीम रहीम दरीकई पीर रोसन गाजी धाम

हैदर रसूल गोस कुतुबदीन अल्लर फकीर तानसेन को दीजै राग रंग

तीन ग्राम ॥३५॥

भक्ति-प्रसंग

अब मैं राम राम कहि टेरों

मेरे मन लागी उनही सो सीय पति पद हेरों

चरन सरोज खवन मन मेरो धुज अंकुश मुख केरो

तानसेन प्रभु तुम बहोनायक इन तरवन पर। फेरों ॥३६॥

अनहद सब्द उपजो मो घट में ताको ध्यान धरूँ अष्टयाम
खरज रिषभ गान्धार मध्यम पंचम धैवत निषाद पावै ज्यो अति अभिराम

अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थ जब तब पाए प्रगटी नाद तब सहस रूप अनन्द धाम
धन धन ज्योति स्वरूप अचरज कर और परसे तानसेन कन्ठ ठाम ॥३७॥

प्यारे तूही ब्रह्मा तूही विष्णु तूही रुद्र तूही सक्ति तूही गनेस तूही सूर
तूही जल तूही थल तूही पवन तूही अकास तूही अधुरा तूही पूरा
तूही छैल तूही अलबेला तूही रोवत तूही हंसत तूही उठत बैठत चलत तूही द्वारा
तानसेन के प्रभु एकहि अनेक होय जग में व्याप रहो हजूरा ॥३८॥

प्रथम नाद सुरसुती गनपति बुधदाता
जाकी क्रिपा ते अन धन लछ्मी पालन करै सब जग वाता
जोड़ जोड़ आवत नन फल पावत सब गुनीयन करे देत विधाता
तानसेन प्रभु युग युग जीवो चरन कमल रंग राता ॥३९॥

वेदन दरद दरि करो हजरत मोरा अवर कहो सुवरन हजरत
इमाम काम मरसद सांचे हो तुम पीर

जो फल माँगे सो फल पाए राज पाठ सुख तरीर
तानसेन के प्रभु रहीम करम कीजे पाप न रहत सरीर ॥४०॥

प्यारे तूही ब्रह्म तूही विष्णु तूही रुद्र तूही गुरु तूही चेला
तूही जल तूही थल तूही प्रबल तूही अबल तूही सैरा तूही अलबेला
तूही ऊँच तूही नीच पाप पुन्य तूही बीच तूही सो मेला
तानसेन कहै प्रभु कहां लों बखानू तूही बहुत तूही अवेला ॥४१॥

मोहन में वारी वार डारी नार जिन करो कपट की बातें
रहत ग्यान ध्यान तिहारे नाम को सुमरन है दिन रातें
घड़ी पल छिन रही न जात मोपै करत रहत तेरी बातें
तानसेन प्रभु क्रिया करो मोपै नेक चितबो चहाते ॥४२॥

त्रिपुरारि गरीब निवाज निवारन समरथ पूरि रह्यो सब धाय धाय
जे, तुम्हें ध्यावै मन इच्छा फल पावै तिहारो ही गुन गाय गाय
सुर नर मुनि ध्यान धरतु हैं तिनहूँ के मन पाय पाय
तानसेन के प्रभु तिहारी अस्तुति करूं तिहारी ही मन भाय भाय ॥४३॥

मेरे मन माँह हरि नाम जिन रच्यो

अखिल धाम काम क्रोध तज लोभ बह्यो जात संसार

जिन रच्यो स्वर्ग म्रित्यु त्रौ पाताल निरंजन सोई साकार निस दिन जप ले स्त्री मुरार
दीनबन्धु दीनानाथ काटत दुख द्वंद्व फन्द ताहि घरी पल छिन न विसार
तानसेन कहे निरमल रहिए भजिए भगवान मनुष जनम नहीं बारम्बार ॥४४॥

तूही ब्रह्म तूही विस्तु तूही महादेव तूही गुरु तूही चेला
तूही सोना तूही सोनार तूही कसौटी कसनहार
तूही दीपक तूही मन्दिर तूही मेला तूही अकेला
तूही रैन तूही दिन तूही पर्वत तूही पाखान तूही जल
तूही बल तूही सों मेला
तानसेन के प्रभु तूही सबन में तूही छैला तूही अलबेला ॥४५॥

ऊंकार ब्रह्मा उचारो चारहु आनन तार करन सत प्रमान
सत स्वर तीन ग्राम इकइस मूर्च्छना बाइस सुरत उनचास कोट तान
आरोही अवरोही अस्थायी संचायी अंस न्यास ग्रह जान
ओड़व खाड़व सुर सम्पूरन तानसेन गुरु ग्यान उर आन ॥४६॥

तूही॥ एक आदि निरंजन निराकार नादरूप तेरो ही पसारी पूरो सब संसार
अलख अव्यक्त जग निस्तारन कर तूही एक पाक परवर अपरम्पार
जल थल धरनी धवल तूही पूरन सकल मही मंडल तेरो ही अधार
तानसेन को दुख दारिद्र दूर करो कर्ता हरता तू करतार ॥४७॥

रूप निरंजन अंजन रहत ताहि वरनवे को उदित भए छहो साख अठारहो पुरान
ताको भेद नहि पावत सिव सनकादिक ब्रह्मा नारन सेव रटत केउ ब्रह्मा सिव
षट व्यापक कोट कोट ब्रह्मांड रचत देख ले हों बुधवान
आदि मध्य अन्त वोही ब्रह्म लोक चराचर वाही को इच्छा ते करत विनान
तानसेन को प्रभु सब जग व्याप रहो पूरन ब्रह्म अविनासी निरंकार अविनासी भगवान ॥४८॥

उपदेश

धीरे धीरे धीरे मन धीरे ही सब कुछ होय
धीरे राज धीरे काज धीरे योग धीरे ध्यान धीरे सुख समाज जोय
धीरे तीरथ धीरे व्रत संयम धीरे ही करे सतसंग साध कै बैठ मनको धीरे राखोय
तानसेन कहै सुनो साह अकबर एती बड़ी राज एती बड़ी बादसाही धीरे ही ते पाई सोय ॥४९॥

ए मन तू जो अपनो सुख चाहत है घरी घरी पल पल छिन छिन सुमर ले सी राम नाम
जो जग जप तप नेम धर्म व्रत संजम ग्यान ध्यान गहै ढढ़ हरि चरनन विस्वाम
और उपाव नाहीं कलियुग में क्रिस्न क्रिस्न कंहत होय आराम
तानसेन प्रभु को चरन सरन गह ले जासों पावे वैकुण्ठ धाम ॥५०॥

ए मन जब लग नैन प्रान तब लग जीवत सब काहू को दिदार
जब लग जीजिए तब लग कीजिए राग रंग घरी घरी पल छिन छिन जात न लागे बार
सांच ही बोलत सांच ही तोलत साँच ही कीजिए वनज विहार
तानसेन के प्रभु सांच हो में रम रहे याते समस्त वृक्ष देखिए जग सपनो संसार ॥५१॥

रे मन जब लग पिण्ड प्रान तब लग जग नातो सब हीन सो व्यवहार
जब लग जिए तब लग हरि नाम लीजिए राग रंग कीजिए यह
तन मन नैन प्रान जात न लागै बार

बालापन तरुनापन औ त्रिद्व अवस्था पुनि पुनि जनम मरन होत संसार
तानसेन कर ले ध्यान विस्वम्भर को यही पूंजी यही जमा यही है सार ॥५२॥

यक ग्यान • भक्तन की सेवा कर रे जब तेरी भक्ताई सुमरन कर हरि को
कौन भरम भूलो भटकत फिरत अष्टयाम याद रख राम राम क्रिस्न को परब्रह्म परमेश्वर को
निरंजन औ निराकार अलख जोति भक्त वत्सल गिरिवरधर को
तानसेन के प्रभु को ध्यान धर निस दिन घड़ी घड़ी छिन छिन वा विस्वम्भर को ॥५३॥

मुरली-गान

ए आज बाँसरी बजाई वन मध कौन ढंग कौन रंग झुकि झुकि
सुनत खवन सुधि रही नहीं तन की भइ हौं बावरी विन्दावन दिसि हेरि झुकि झुकि
ब्रह्मा वेद पढ़त भूले सिव समाध मांह डोले सुर नर मुनि मोहे देवांगना देखे लुकि लुकि
सप्त स्वर तीन ग्राम इकइस मूरछना ले तानसेन प्रभु मुरली बजावत बोलत मौर कोकला
कुहुकि कुहुकि ॥५४॥

मुरली बजावे आप न गावे नैन न्यारे नचावे तियन के मन को रिक्तावै
दुर दुर आवे पनघट काहुके घटन दुरावै रसना प्रेम जनावे
मोहनी मूरत सांवरी सूरत देखत ही मन ललचावै
तानसेन के प्रभु तुम बहु नायक सैवहिन के मन भावै ॥५५॥

३६८

कान्हा ते अर्ध धर ऋगरो पसारो कैसे होय निरवारी
 यह सब धैरो करत हैं तेरी रस अनरस कौन मन्त्र पढ़ डारो
 मुरली बजाय कीनी बोरि लाज दई तज अपने में विसारो
 तानसेन के प्रभु कहत तुमहि सो तुम जितो हम हारो ॥५६॥

भोर भए भैरव गावत भर मुरली में स्त्री त्रिन्दावन मध बनवारी
 सत स्वर तीन ग्राम अकइस मूर्छना लाग ठाट उरपति रसधारी
 मधु माधवी भैरवी बंगाली वरारी सैन्धवी यह भैरव की संगनारी
 तानसेन के प्रभु तानन मानन मोह लीनो ब्रज नारी ॥५७॥

ए आजु भोर ही आए हैं कान्ह रे गुर्जरी के धाम
 सत सुर सो गावत तानत मुरली में गुर्जरी नाम
 उरपति रप लाग डाट आतक खातक स्वरान्तक

ओढ़व खाडव सो रिझावत वाम

तानसेन प्रभु नित प्रति आनन्द देत घर घर गोकुल नाम ॥५८॥

आज वन वन मुरली बजावत सूधी सूधी सुध तान के लिवैया
 कान्हे कमरिया हाथ लकुटिया टेढ़े ही टेढ़े आवत नन्द को कुंवर कन्हैया
 सांवरी सूरत माधुरी मूरत त्रिन्दावन के बसैया
 तानसेन प्रभु बनवारी गिरधारी ब्रजविहारी बलजू के भैया ॥५९॥

आज बजाई मुरली मनोहर सुध न रही कछु मो तन में
 हों यमुना जल भरन जात ही कान्हा ठाढ़ो री त्रिन्दावन में
 सुध न रही कछु ठगन की अगन में भूली काम काज सब धरम में
 तानसेन के प्रभु तुम बहुनायक मेरो मन मोह्यो आली मदन में ॥६०॥

दीजिए जी हमें ब्रज बसवो बांसरी न बजे बांसरी बजाय कान्ह हमें विदा दीजिए
 बांसरी की टेर सुनत रही न परत मोपै कान सुन सुन वन बसेरो कीजिए
 जैते उन सुर गाए तेते हम भेद लीने जहाँ राग तहां दाग रोम रोम छीजिए
 तानसेन के प्रभु मया कीनी मो पर अंग अंग चीर चीर सिन्दूर मांग दीजिए ॥६१॥

आज कान्ह त्रिन्दावन मुरली बजाई सुखदाई है
 स्वर्ग लोक तरलोक पताल लोक सब सुन धुन सुध विसराई है

सत सुर तीन ग्राम इकईस मुरछना बाईस सुरत उनचाग कोटि साम रंधन में छाई है
तानसेन के प्रभु रस बस कर लीने ब्रज बधु धर छोड़ स्याम जू पै आई है ॥६२॥

मुरलिया कैसे बाजे रस सानी नरजि धों करै अम्रित बानी
अति ही नाद प्रवाह ताल मूल जिय धारे एसोरस कहां ते उपजत एसी स्थानी
सप्त स्वर तिन ग्राम इकईस मूर्छना यह गावत सब जानी
तानसेन के प्रभु मुरली अधर धरे जाकी भई लोक राजधानी ॥६३॥

मुरली बजावो रिभावो मन मोहन मधुर मधुर स्वर तान
सप्त तीन इकईस बाईस लाग डाट और मान
ठाह भेद विलम्पत आतक खातक स्वरान्तक ओढव खाढव पूर्ण आन
तानसेन प्रभु संगीत गत ले त्रितत करत हो सुगान ॥६४॥

मुरली की धुन सुन चकित भई सब ब्रज की नारी सुध नर ही कछु आपन तन मन घर की
छक छक कर रीझ रीझ कर लेत बलाई कान्हर हरि की
एसें सुर ते बजावत जामें नीके सात सप्तक तान विरह भरी सुर की
जिनही सुन्यो तिनहू सुख पायो तानसेन प्रभु तान राधावर की ॥६५॥

रूप-माधुरी

तै कहूँ देखोरी वनमाली आली वंशी बजाय मन ले गयो
धुनि सुन कल न परत निस दिन उन बिन नैन तरसत चटक से के गयो
जब नहीं देखत छिन न सुहावत भावत नहीं गेह मेरे नैनन में अटक गयो
तानसेन नैनन की सूरत कोटि बार डारौ सांवरी सूरत जिय बस गयो ॥६६॥
वागे बनाए आए हो पिय लटक पाग की चटक अटवन मन
लटक लटक चलत चाल मटक मटक मुसक्यात अलसाने सरसाने नैनरी
नैना नींद न आवै निपट सौत नेक छवि छत्रतन

तानसेन के प्रभु तुम बहु नायक रस बस कर लीनी तन मन धन ॥६७॥

ते कहूँ देखोरी नन्द को नन्दन कान्ह मटकी पटक के सटक गयो
माखन चोर चोर मन लीनो कीन्हो नेकु न डर नट ज्यों उलट के सटक गयो
मारग रोक रहत खोरन में सांवरी सूरत माधुरी मूरत नैन दै अटक गयो
तानसेन के प्रभु तुम सब ही के नायक रस गोरस ले गटक गयो ॥६८॥

कहो जी तु कौन हो कहाँसे आए कहाँ कित हो जावोगे सबेरे
हम तुमको पहचानत नाहीं न मेरे घर आवत दरेरे
लाल पाग पीतांबर सोहत औ वनमाल गरेरे
तानसेन के प्रभु नेक जो ठाढ़े रहे सब सखियन मिल हेरे ॥६६॥

प्रथम मंजन अंजन कर कर पहर चीरचार

आली में दिल लेले कमल बहु तेहु आभूषन रूप सुधार कंठ माल रतन मुक्तन के हार
आही अति भायो दादरुद कटाच्छ सलामुन अलकेकन नाहत सेपिय प्यार
तानसेन गर तन जटित सोरहसिंगार बिअ नर लोक इन्द्र लोकहूँ नहीं नार ॥७०॥

एरो हो रीक देख मोर ही उठके प्यारी कजरा द्रिगदोउ कर सों लागे मलन
पुन या छवि सी ऐंडात जंभात नीर बही मानो ककुल मधते अलक सुत लागे चलन
चन्द्रवदनी म्रिगनैनी बिन देखे घरी पल कल न

तानसेन देखे रीक मगन भए सुन्दर नार अबलन ॥७१॥

बाजे नीकी धंघरिया ठुमकत चाल सहेली

अनुपम चाल चलत मतंग गत मानों पग परत पवेली

ज्यों जल में प्रतिबिम्ब देखियत चन्दकिरन तैसी जेहर बेली

ते रस बस कियो तानसेन प्रभु खानखाना पिय पाक अकेली ॥७२॥

कटाच्छ वार देत सर पल्लव वस्तर लाए अंजन सुधार

अंजन किए चाहत एक कर दर्पन लिए वदन निहार

कटि केहरि कदली जंघ सुक नासा पै वार

तानसेन कै प्रभु एसी प्यारी सुन्दर निरख बलिहार ॥७३॥

जाकी पचरंग किनारी सोई मेरे जान धनक भई बून्द समजल को औ बोलत कोकला नैन
पोहपन के हार छूट रम रहै सोई बगपंथ एसी लागी मेरे नैन सैन
यह छवि देख रीके तानसेन कै प्रभु एसी लागत मानो मूरत मैन ॥७४॥

सोहत भीने वार चन्द्र वदन धनक सी बनी ठगी सवन कुंड सीस फूल कपोल लोचन रतनारे
नेत्रकमल नासिका सुन्दर अधर विदुम दर्शन दारुम चिबुक सुन्दर सुधार कंठ कोकला के सब्द
सों प्यारे

भुज भाय ऐसे उतारे कुच कंचन के बनाए सांचे में डारे

उदर अलप लंक छीन कटिकेहरि कदली जंघ तानसेन एसी प्यारी पर सर्वस वार डारे ॥७५॥

सोहत बनी बाल भाल चन्द्र भुव धनुष नेत्र कमल खवन कुंडल सुंदर कपोल विलोकत रंभा रे
नासिका कीर विद्रुम अधर दाड़िम दसन चमक सुंदर विजरी सी चौधत स्वरन मानों कंठ
कोकला रे

ग्रीव कपोत कुच खाफल नाम कटि केहरि कदली खम्भ जांघ रचके धरे रे
तानसेन निरखि मैन रति लजित भई आवत गज मत चाल मन को हरे रे ॥७६॥

एक कर दर्पन एक कर कजरा अचरा गहै सुधारत

ललना एक काजल में दूर करन उठत भोर मुखकमल पर सीसफूल अति विराजत
नगन जड़त की उपमा जीय भइ पै मेरे जान वेऊ दूर रहे सकुचन लाजत
जे कहियत है मानो फुन दुरत हो तानसेन देखत दुख भाजत ॥७७॥

इन्दु से बदन नैन खंजन से कंठ कोकल वचन सुहाई
नास कीर अधर विद्रुम दाड़िम दसन दमकाई
सी फल उरोज ग्रीव कपोत बैनी नागन सी मुकी सुखदाई
कट केहरि कदली जंघ पद सरोज पद्म सी तानसेन एसी तैं बल बल जाई ॥७८॥

मन मोहन मनुमानी याते तू प्रवीन सयानी

सुन्दर वदन चन्द्रकला लजानी तोसी तुहीं तिया और नहीं त्रिहूँ लोक सानी
तानसेन चिर चिर जीवो एसी प्रीति रही जों लों जमुन गंग पानी ॥७९॥

रुम भुम भर आए री नैना तिहारे

विथुरी सी अलकै स्याम घन सी लागत.....

अरुन वरुन नैना तेरे तामें लाल डोरे ताप.....

कहै मिया तानसेन सुनो साह अकबर उपमा कहां लों दीजै बिन अंजन कजरारे ॥८०॥

तुअ मुख औ चन्द्रमा विरंचि तुलाकारी तोल्यो ओछो अकास गयो धुकि
धरनी रही निकाई को मारो मरोरी पला

याही ते ससी घटत बढ़त है देखि देखि तेरो वदन निर्मला

तो सम नाहिन पूजिये सब मिलि कलंकी नाम धरयो निसि भ्रमत फिरत न रहे अचला
तानसेन प्रभु सरस बस कर लीयो रूप आगरी रूप कला ॥८१॥

तेरे आली रूप पियके तन को खिलौनो निस दिन लिए रहत संग
कबहुँ वागो बनाय कबहुँ बीरो खवाय कबहुँ निरख रीझ दिन दिन बढ़त तरंग

तुंही तन तुंही मन तुंही कर रही पीथ मन अरधंग
तानसेन प्रभु प्रवीन के चित चढ़ी एसो जैसे ईस सीस बसत गंग ॥८२॥

दीदार पुर नूर एसो जाके दरस को परसत नैना मेरो
लुब्ध रहे ऐसे जैसे चन्द्र किरन पर चकोर
एक पल अन्तर रहत न सकौ रहौं तुव पायन समीप
तन मन धन जोवन वन क्री कोर
जाको अम्रित वचन खवन सुख होत मेरे प्रान लेत ऋकोर
एसो जोहै तानसेन प्रभु सो दिन दिन सो तन सो वकोर ॥८३॥

हारि हमेल सों नीकी लागत और गोरे हाथन चुरी हरी
कंठ पोति वदन जोति कानन वीरी और बेसर केसरकी
खोर तापर लटपटात लटकत लट सुथरी
भुज मिनाल खीफल से कुच कटि केहरी जव कजरी
चन्द्र वदनी सावक नयनी बोलत अम्रित बैन धजरी
तानसेन प्रभु रिभाय लायो सोलहु खिगार बत्तीस आभरन सजरी ॥८४॥

धौरी धूमर पीयरी काजर कहै कहै टेरे
मोर मुकुट सीस खवन कुण्डल कटि में पीताम्बर पहिरे
गवाल बाल सखा मण्डल में आवत ब्रज नेरे
तानसेन प्रभु मुख रज लपटानी जसुमति निरख मुख हेरे ॥८५॥

नैन सलाने री तेरे नैनन हो हरि बस कियो हरि

दीर्घ जमाल विमल विलोल.....

भौहैं धनुष औ चन्द्र सो वदन कंचन को तन तेरो कमल कलिसो उठो हियो

तानसेन प्रभु जान बूझ कर बोलवे को नेम लियो ॥८६॥

ऐरी तू अंग अंग रानी अतिही सयानी री तू पिय मनमानी री तू
सोलह कला समानी बोलत अम्रित वानी तेरो मुख देखे चन्द्र जोत हू लजानी री तू
कटि केहर कदली जंघा नासका पर कीर वारों खीफल उरोजन की छवि आनी री तू
तानसेन कहे प्रभु दोऊ चिरंजीवी रहो तेरो वेह नेह रहे जो लों गंग जमुन पानी री तू ॥८७॥

तेरे नयन सलाने री जिन मोहे स्याम सलाने

अति ही दीर्घ विमल विलोल कारे मारे पिय रस रिझये काने

वदन ज्योति चन्द्र हुते निर्मल कुच कठोर अति ठेगु बाने
तानसेन प्रभु सों रति मानी कंचन कसोटी कसीने ॥८८॥

ओढ़े सारी प्यारी केसर की रंग छिरकी छिरकी
चितवन में बस कीन्हों मोहन को याते फिरत थिरकी थिरकी
अबीर गुलाल लिए भर झोरी रंग को कमोरी सिर ठिरकी ठिरकी
तानसेन फगुवा लीन्हों याते डोलत हिरकी हिरकी ॥८९॥

अहो टेढ़ी पागरि नागरि नारि सीस धरे जैसे टेढ़ी पाग को राखे रहतु कि चिकनिया
डुरि डुरि मुरि मुरि बतिया करति अगली पछिलान सों दोउ करतारो मारति एकनि
सों नैन से नव बनिया

लाही को लंहगा पचरंग चूनरि कंठ छुरा औ ताबीच मनिया
तानसेन प्रभु रीझि चकित भए तुहीं सवनि में धनि धनिया ॥९०॥

मान-प्रसंग

तो कों प्यारे पठई किधों तू आपते आई मनावन

प्रानेसुर के मुख की बतियाँ ए न होवे री हो नीके जानत जैसी तू मोसों री लागी बनावन
या मुख को अनकान न करहीं अनमिल पिय से कहो न परत तेरी मों हेत नावन
कहा कहों राजा राम सों तोसों री पठावे हमरे ग्रह बनावन
तानसेन कहै आवत आपनी औरन को चित लावत मुह की बात कहलावन ॥९१॥

जिन करो मोसे झूठि बतियां तिहारी प्रतीत मोहि नेकु नहि आवत
वै तो लंगर कान्ह नहि छाड़े अपनी बान बहै सौतिन के ग्रिह जावत
मेरे प्रतच्छ आय लाखन सोहैं खवावत पग परस परस निज चूक छमा करावत
बार बार को रिसावन तानसेन ए मोहि नार्हीं सोहावत ॥९२॥

मारग के वागे राति के जागे छूटे बन्दन अरसात
जम्मात बहियां गहन आगै आवत सकुचन लागत
छियो छाड़ा अंचरा मोरी सुकिए में आनि सुकावत
लाख जो जतन करो तऊ न बोलिहों लाल ए तुम बातें कब के लावत
तानसेन प्रभु ख निरवन तुम महि खिजाए कहाँ पावत ॥९३॥

जो जो बचन कहत हों री तोसों तेह तेह बचन तू मान ले सयान
मेरे कहे तू उठ चल री ललना धरे ही रहेंगे तेरे जिय को गुमान

कल न लगे और तैं तेरी तेरे है जीवन प्रान
तानसेन तेरी कहां लौं अस्तुति करे क्यो तू जान हो रही अजान ॥६४॥

मन ही मन में तू रार रही घर आप अप बस करके
सबन ते दुराय विराय कर रही सो अरघट परधट नैन बताय देत
प्रानेसुर की प्रीति अति गुप्त कियो चाह तरी तेरे द्रगपाल ते अब जान जान लेत
जो लो न सीखाई तो लो आई नेह नजर जनम जनम हित समेत
तानसेन प्रभु के रंग रंगे जे अरन वरन सेत असेत ॥६५॥

री या तन को मत कर मान में नहीं चाहे मन मन करत हो मान
मानो मेरी मति मोहिनी मो मति मन में मानी मत करो मोहन सो मान
नुर मुर चितवत मनही मन मनभावन को माधो मुकुंद वै है मथुरापति मुरारि नंद दान
मान री मान मेनका सी माधुर्यता तानसेन प्रभु मनमोहन को मान ॥६६॥

है यह माननी कों अति ही हुलास जिय मनहू न माने पिय कैसेक मनाइये
बहोत ही सींह दई उठ चल फिर प्यारी वाके पाय पर धरी सीस नवाइये
माने न मनायो नेकु रच पच हारी कैसे कर वाको समझाइए
तानसेन प्रभु प्यारे आप नेकु चलिए बल पायन में सिर नाय विनती कराइए ॥६७॥

आज कहां तज बैठी है भूषन ए से अंग कछु अरसीले
बोलत बोल रुखाई लिए तुम काहे कुठंग किए अहसीले
क्यों न कहो दुख प्रान पिया सों अँसुअन रहे भर नैन लजीले
तानसेन सुख होवै जिनके तिनके मन भावन छैल छुबीले ॥६८॥

ए री अब लुक भज जावे सनमुख होवे पियारे सों सुरंग भरी कीजिये बतियां
मान सीख मेरी काहू की कुमत न लीजिए छाड़ यह दठ चल लिपट लाग पर गुलाल की छतियां
देख तू एसी फुलवारी सी हो रही कर अपवस सुन्दर में मनाय रही सखियां
कब के जोवत वार प्रानेसुर प्यारी जान बूझ के काहे को करत है तानसेन प्रभु सों
बतियां ॥६९॥

जोवन के जोर तोर कैसे समझाय राखूं मेरो कह्यो मान प्यारी आज तेरो दावरी
तन मन धन नोछावर करहूँ बीत गई रैन तासों छूट गयो चाव री
लाल यह मनावत तू नहीं मानत उठ री गंवार नार धने समझाव री
तानसेन कहे प्रभु सो तजो मान हात से गंवाय लाल फेर पछताव री ॥७०॥

समझ समझ आली प्रान जात प्यारे मोहन बिन
बहोर न यह रंग बहोर न यह रूप बहोर न रहे आली यह दिन
अजुरन जल घटत छिन छिन तेरो री मान बड़े चोगन
तानसेन के प्रभु तुम बहु नायक मान न कीने आली किन किन ॥१०१॥

° विरह-वर्णन

नींद न आवत पिय बिन देखे मोरी आली कैसे परे अब चैन
घरी घरी पल छिन यों ही बीत जात रहत मारग जोहत नैन
बिन देखे कल न परत है मानो मन मोहत है मैं
अब कब धों मिलहै प्रान प्यारी यह प्रभु तानसेन ॥१०२॥

कठिन माई पिय को री नेहरा गेहरा नहीं भावै रहों नित उदास
सबन समान मेरे जान आली अरध ऊरध दोऊ सांस
मोहे जगत रैन चैन नहीं नैनन ताते सुपनेहूँ में कहा सो भई सुपने नहीं आस
तानसेन प्रभु समझ समझ कियो भोग विलास ॥१०३॥

आज हरि लिए और अन हिली गइयां एक ही लकुट सों हाँकी
क्यों क्यों रोकी मोहन तुम सोई त्यों अनुराग हम पर देखत मुखांकी
हम जो मनावत कहूँ तुम मानत बतीयां गढ़ बाकी
बिन नहीं चरत बछुरा नहीं चोखत हम कहा जाने को हे कहाँ की
तानसेन प्रभु वेग दरस दीजे सब मन्तर पट आँकी ॥१०४॥

माइरी महा कठिन मिल बिछुरे की पीर
घड़ी घड़ी पल छिन जुग से बीतन लागै नैनन भर भर आवत नीर
जब से प्यारो भयो न्यारो कल ना परत मेरी वीर
तानसेन के प्रभु वेग आवन कीनो जियरा धरत नहीं धीर ॥१०५॥

मेरे मन बौराव राखो इन गोविन्द नैनन
हों पाछे पाछे पछताय रही वे तो स्वामी कहियत है मन बस कीनो मैंन
सूरत ठगोरी मोहे ठग जों चले सो पीर हरन चितए मो तन सूँचे इन नैनन
तानसेन को प्रभु सुख सागर सुनो वे देखे ही निहचे चैनन ॥१०६॥

तनकी तपत तब ही मिटेगी मेरी जब प्यारे को द्रिष्टि भर देखोगी
जब दरस पाऊं प्रान पीतम को जनम जीतब सुफल अपनी लेखोगी

अष्टयाम मोहि को ध्यान रहत बाको आली को लौं भेटोंगी
तानसेन प्रभु कौं आन मिलावे ताके पावन सीस टेकेंगी ॥१०७॥

ए सखी नन्द कुमार बालापन में मेरो मन हर लीनो
जिय अकुलात औ नैनन सो नीर जात मेरे हिय को दुख दीनो
सावरो सलोनी स्याम बाट रोक ठाढ़ो भयो मोको बुलाय पास अधरन को रस लीनो
नैन सों नैन मिलाय हृदय सो हृदय लगाय तानसेन वंसी बजाय जूड़ू सो कीनो ॥१०८॥

कौन दिसा है अजहूँ न आए सखी री हरि न आए
औ जो जान जिय ध्यान मेरे रसना नाम लियो री उनहीं सो मिलाए
मिग मद धनसार कुछ चन्दन नहीं लै लाए
एसी को क्रिपा करो करन के प्रभु तुम हमहू मंगल गाए
बल या चन्दन हृदयन्टकी इन्हों ले बतलाए
तानसेन प्रभु वेग दरस दीजै हमही मंगल नाए ॥१०९॥

बादर आए री लाल पिया बिन लागे डरपावन
एक तों अंधेरी कारी बिजुरी चमकत उमड़ धुमड़ बरसावन
जब ते पिया परदेस गवन कीनो तब ते विरह भयो भरे तन तावन
सावन आय अति भर लावत तानसेन न आए मन भावन ॥११०॥

इन अखियन मन में विरह की बेल बई
सींच सींच जल असुअन पानी री दिन दिन होत चाह नई
उलहन पातन नए सो बून्द पताल गई

तानसेन प्रभु तुमरे दरस बिन सब तन छीन भई ॥१११॥

आइए जु कैसे आवन पाए भलो हो आए मेरे नवल लाल
तुम हो चतुर सुजान बूझत सब गुन निधान महा जान मूरत हो अत रसाल
हमसो अवध बढ अनत विरम रहै ऐसी न कीजै दीन दयाल
तानसेन के प्रभु तुम बहुनायक दीजिए दरस कीजिए निहाल ॥११२॥

सपनेहू न बिछुरिये हो हरि सों मन यों बाछे

स्यामसुन्दर बहुनायक सुखदायक सबहिन को मोहि कवहूँ न पूछे री आछे

नन्दनन्दन जु अनत रस कीन्हों काम जरावत री सौति साल दूजे ताछे

तानसेन प्रभु के बिछुड़े जरद भई मोहि निहोरन आवे री जो कोऊ पाछे ॥११३॥

बादर उनह आए सो पिय बिन लागे डरपाए

ऐसी अंधियारी कारी डरपावनी लागत जिय को भार:

ते समै अवध बचन गए हरि न पाए

दादुर पिक मोर सोर करन लागे विरही तन लागे दुराए

तानसेन के प्रभु तुम नीके जानो भली लीनो सुध सो अजहू न आए ॥११४॥

नायिका

ए मेरे भाग जागे प्रिय भोर ही सुध लई

में इतनो भलो मनावत हूँ बलमा ही तुम पर बल गई

अधरन अंजन महावर भाल मति गति औरे भई

तानसेन के प्रभु ठाढ़े रहो बलैया लेइँ कह गई तिय नई ॥११५॥

मोसों ज्यों अवध बढ़ गए साँझ को यह आए भोर भए

ऐसो को चतुर सुधर नार जिन तुम विरमाए ऐसे सुख दए

अधरन अंजन कहूँ पीक पलक लीक और न सोचित हित बहु भाँतिन लए

तानसेन के प्रभु वहाँ ही पाँव धारो ए जहाँ किए नेह नए ॥११६॥

सु नजर भई अपने प्यारे को काहें कु चिन्ह दुरावत मोते तबहीं जानी चतुराई

रान जागि पगि पीतम संग मोसों छिपावत गात नैन उनींदे तेरे लेत जंभाई

सुन्दर भ्रिगनेनी बोलत पिक बैनी प्यारी रंग भरी मूरत मन समाई

तानसेन पिय बस कर लीनी धन धन महारानी सुखदाई ॥११७॥

मोसों जो अवध बढ़ गए साँझ के भोरहि आए

ऐसी कौन चतुर नार जहाँ तुम रस बस किए ऐसे नेह नए

अधरन अंजन भाल महावर तिन तिलक ठए

तानसेन प्रभु जावो जी जावो नई नार रंगए ॥११८॥

कौन सों रित मानी साँची कहो मन भावन

निसि के जागे अनुरागे आए हो झुकन लागी

तब भूम भूम आए हो मोहि रिक्तावन

बचन बनावत बन नहि आवत कहैं देत नैन बैन दरसावन

तानसेन के प्रभु वहाँ सिधारो जहाँ सारी रैन रहै रति रन जगावन ॥११९॥

अनत रितुमान् आए पिय मोरहि मरे
मोहि तो सुध भूल गई री मोहन मुख हरे
जिय की और सों मुंह की हमलों कहत है टेरे
तानसेन प्रभु ताहि पै सिधारिए तुअ मन रख्यो जिन तन नेरे ॥१२०॥

लाल अरसाने भोर ही आए
कौन वाम हित चित सों चाहै सगरी रैन जगाए
ढिग ढिग काजर फैल रहो है जावक अधिक सुहाए
तानसेन के प्रभु वहाँ ही सिधारो नवल तिया मन भाए ॥१२१॥

धन धन मेरो भाग भोर भए आए लालन सब निस कहां जागे प्यारे
आलसवंत जंभात जात मलीन गात सांची कहो वात नन्द दुलारे
लटपट पाग खुल रही पेचन सों अधरन पीक लीक धारे
तानसेन के प्रभु तुम बहु नायक सांचे बोल सांझ के तिहारे ॥१२२॥

वा दिन केवल बलि जैए री जा दिन पीतम तें होय मिलन
तन मन धन नोछावर करहुँ चरन कमल पावड़े बिछाउंगी नयन पलन
अनेक दिनन में प्यारे मोहि मिलिहै लेऊंगी बलिया दोउ करन
तानसेन के प्रभु सुधा की द्रिष्ट करि मोर सुकुटी हलन ॥१२३॥

सोहे खात तोतरात बात कहत अरसात आए भए प्रात डगमगात गात
एँडात जंभात धकधकात मुरछात धरधरात भरभरात
वहां ही जावो जहां नवल तिया संग जागे रात
याही तें मुसकात मेरो मन भनात बात कहत हंसात
मोहे न सोहात तहां ही सिधारिए जाको मन ललचात
तानसेन के प्रभु मीठे वचनन बतरात भूठी भूठी सोहैं खात
तेरो सों मैं तेरो सों मैं अब नहिं जात ॥१२४॥

परस्पर दम्पत मिल करत सिंगार एक अंगोछा ले मुख पोंछत एक सुधारत पेच पाग
सब निस जागे प्रेम रस रूप मधु छुके ताते मुक मुक गरे लाग लाग
लैं दर्पन आपस में निरखत प्यारी प्यारी ले बीन बजावत गावत राग
तानसेन प्रभु दोनों चिर जीव रहो देत दरस भक्तन को धन धन धन धन भाग ॥१२५॥

अति अलसाने में जाने प्रिय अनत रंगे जूरगे हो रंग राग के
रिक्त हित काहू पे रीक्त से वाद जानत रस के बरखाई आज भंवर काहू बाग के
दोष तिहारो नाहीं दोष काहू तिया को तुमें सिखाई सीख अनुराग के
तानसेन प्रभु तुम बहुनायक बात कहा बनावो सुधारो पेच पाग के ॥१२६॥

मोसों अवध बदि गए गुसाईं रहे कवन भांति
रैन दिना मग जोबत जात एसी कौन तीय जिहि रिक्काय कीनो मात
अंजन घर माल महावर नवल तिया ललचात
तानसेन प्रभु वहीं सिधारो जहां जागे सारी रात ॥१२७॥

सोवत उठि रैन रस लेत अति सुन्दर सोहत बदन प्यारी को
लै दर्पन मुख देखत अपने मन में सोच सकुच वही नैन होत लजी है नारी को
सुकमल बदनो मन हरनी मोहिनी मूरत पिय रस रस कर काम आतुर चित हारी को
तानसेन प्रभु संग रंग रात जागी पापी आलस जात गभात तिरछे नैन निहारी को ॥१२८॥

धन धन भाग सुहाग तेरो तू पिय के मन भाई
धन जीवन तेरो री चतुर सुघर नारि जे पिय तेरी करे सुख सों बड़ाई
धन जनम जीतय धन तरुनाई ते रस बस कर लिए पिय सुखदाई
धन धन तानसेन प्रभु को रिक्काय लीनी तुही सबन में देत दिखाई ॥१२९॥

लाल मया के बोलाई सो तन दुख पायो
जै मेरो हितु तिनके आनन्द भयो म्रिदंग बजायो मन भाए मंगल गायो
पिया की मया मो पै कहि न परत है सब तियन छांड मेरे ग्रिह आयो
तानसेन के प्रभु पलकन सों मग मारो जीवन जनम सुफल करायो ॥१३०॥

बरसाने तें आए अरसाने हम जाने जू लच्छन तिहारो पहंचाने
कहू कजर कहू पीक लीक अन गन स्वभाव न मोपै जात बखाने
नयनन नींद ध्यान मन ह्रिदय बसत तीय ताही के लगत गुन गाने
धन्य तेरो नेह तानसेन के प्रभु ऐसेनट नागरको छल कर नाच नचाने ॥१३१॥

धन भाग मेरो धन आवन धन धन पति प्रेम भयो
मन दरस देखत इन अखियन सो तन इन अंग संग ते विरह गयो अर
इन आनन्दन आनन्दी बांदी भइ हों इन चरनन रहन कहत गर बगर अगसर अगसर

जनम जीतवू सुफल सखी मदन मोहन मझा कीनी लीनी रस बस कर
तानसेन प्रभु सुख के मैन नैनन सैनन हाव भाव कटाच्छन सों मोह
लीनी जव मिट्यो दुख डर ॥१३२॥

यश-गान

सुभ नखत तखत बैठे राजत
छाजत है सब मूलक खलकेज विधना किए
सब छत्र धरे ते सब लागे सब सेवा करन
धन धन चक्रवर्ती नरेस अकबर
दुखहरन तानसेन ऐसे सुर पुरी नर नरेन्द्र नरन ॥१३३॥

अकबर प्राननाथ अनाथन को यह नाथ ए जापे अष्टसिद्ध नवनिध पाइये
परम दाता ग्याता सब ही को मन रंजन यह दुख भंजन कल्पत्रिच्छ प्रतच्छ धाइये
अन्तरयामी स्वामी जग काज करवे को ए रस नाल बनाइये
जलालदीन महम्मद ऐसे दाता किए तिहुँ लोक में यस गाइये ॥१३४॥

सफरगंज बखस सेष फरीद आलमपीर नींद ऐसे के लीजै
निवाज रहे जगमें लाज जाए तन ते रंज
जेइ जेइ मांगीए तेइ तेइ फल पाइये तन को करत दरिद्र भंज
तानसेन कहै एते ही मांगि ते तुक पै जो हो मद तन पुंज ॥१३५॥

इत भान उत साह अकबर दो दरस जो देखे सोई होत पवित्र
इन्दै रजनि मन्द सुख के वर पावै गुप्त आनन्द
वे तिमिरहरन ए दुख भंजन ताकि सोई फरियत साह दिनो मकरंद
वह सहस किरन प्रकास कीनो अतिबुध खेष्ट मयावर जगवन्द
तानसेन कहै कहाँ लो अस्तुत करे कारन हार विकार दुख दन्द ॥१३६॥

बेते रतन जगत में उते प्रगट किए प्रथमे कामवेनु सुर विधने बनाए
पुनि कीने विष वारुनी अमी औ सुधाकर चारो खान चिरावनी पर बाजीरथि रथ ते पाए
धनुष धन्वन्तर ठरन सुरन गज स्त्री मनि रम्भा छंद धार ध्रुपद गायन ले बसाए
तानसेन कहै कम्बु कंठ ते हुमाउं को नन्दन कल्पत्रिच्छ अकबर पारख पाए ॥१३७॥
आनपति महेस विद्यापति गनेस प्रियवी पति नरेस बलपति हनुमान
सरिता पति सागर गिरिवर पति सुमेर राजन पति इन्द्र धर्मन पति दान

वाजन पति म्रिदंग पत्रनपति • पान पछिनपति गरुड़ भक्तन पति कान
साहव पति साह दिल्लीपति पातसाह तानसेन पति अकबर अर्जुन पति बान ॥१३८॥

प्रथम ही आनन्द रच्यो नीकी घरी महूरत पंचो सब्द बजाए
देस देस के याचक जेते आवत तेते पावत गज तुरंग नग दान मुक्ता वरसाए
अष्टो धरन मध्य नाम ज्योति अरिन के भाखे को विधि ने बनाए
तानसेन कहै युग युग चिरंजीव रहो राजा राम तेरो यस तिहुं लोक छाए ॥१३९॥

जै गुनीजन गुरु पावै गावै नीकी तान गुन सो रिक्कावै
जब बजावै बीन अच्छी नीकी परमान सोच समझ तान
लेत ध्यान धरत जियन में जब सुर संगत पावै

दुरन मुरन सों वाको समझ आवै
सप्त तीन इकईस बाइस लाग डाट खुली मुंदी दरसावै
सप्त ध्यान संगीत मत करके तब तानसेन प्रभु को रिक्कावै ॥१४०॥

तू असमान को दूजो रच्यो नाइन गुन समर्थ आयो है धर्मराज गरीब निवाज
तुम सम और कौन महागान गुन निधान दाता विधाता रच पच विरंच ग्यान समाज
भरन पोषन दुख दारिद्र हरन पट दरसन निवास सकल साज
तानसेन कहै प्रभु हिंदू सुलतान भक्त उधारन भगवान ताने प्रगट कियो सकल गुन साज ॥१४१॥

ईद मुबारक होवै जुग जुग नित नित तुमको महरवान
सकल विद्या गुन निधान अति ही आनन्द करो देत गुनीन को आदर मान
युग युग जीवो कोटि वरष लों देवो करो नित दान
तानसेन कहै सुनो साह अकबर चहुं चक राज करो मरदन महामरदान ॥१४२॥

सुन्दर अति प्रवीन महा चतुर अचल राज करो रवि ससि जो लों भूमि पर
चिर चिरंजी रहो जौ लों ध्रुव धरन तरन पवन पानी राजन मनि राजा रामचन्द्र रघुवर
तो सो तुही औ दूजो नाहीं मेरे जान सब जग को विस्वम्भर
तानसेन तोरी अस्तुत कहाँ लौं बखाने भक्तवत्सल तोहै ध्यावत सुर नर मुनिवर ॥१४३॥

जल थल औ जहाँ तहाँ इत उत जित तित नित नित तुहीं भर रहो सहनसाह सतार सब
नोसों और नाहीं दूजो तोसो तुंही नरेस तुंही दीन तुंही गुनी तुंही धनी तेरे सब

भा मोपैं जप तप न संयम ना तीरथ व्रत लुवधो दरव
तानसेन को साहब दुखियन को दुख दूर करनहार भंजन गरीबन को गरव ॥१४४॥

ए आयो मेरे ग्रह छत्रपति अकबर मन आयो करम जगायो
पाछो पुन्य मेरो प्रगट भयो ताते अर्थ धर्म काम मोच्छ मन चायो चारो फल पायो
काहू की न इच्छा रही तेरे दरस देखै पाप तज धर्मराज अचल कर पठायो
तानसेन कहै यह सुनो छत्रपति अकबर जीवन जनम सुफल कर पायो ॥१४५॥

ए आयो आयो रे बलवंतसाह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप औ अष्ट दिसा नर नरेन्द्र धर धर धर धर डर
निस दिन कर एक छिन पावै वरन न पावै लंका नगर
जहाँ तहाँ जीतत फिरत सुनीयत है जलालदीन महम्मद को लस्कर
साह हुमायुं को नन्दन चन्दन एक तेग जोधा तकवर
तानसेन को निहाल कीजो दीजो कोटिन जरजरी नजर कमर ॥१४६॥

नवरंगी तेई अंग कीनी गुनी कवि साधे आराधे जो जाने अकबर
कौन विद्या अत पूरी नर एसो कौन को पूरी सरस्वती द्रिढ़ सब अंगी
विषम वाहन सीस जटाकर डमरू त्रिसूल खप्पर चन्द ललाट वाघाम्बर
गंग अरधंग बरी हिये मुंह माला सोहै त्रिद लोचन तुही है हर हर
औ सुर नर मुनि गुनी गन्धर्व ते तोहि जपत है दूसर तन सेत वलवाय भवर विस्तर
तापर हित निवाजनो बात तानसेन को देहु इच्छा भर ॥१४७॥

छत्रपति मान राजा तुम चिरंजीव रहो जो लो ध्रुव मेरु तारो
चहुँ देश ले गुनीजन आवत तुम पे धावत पावत मन इच्छा सब ही को जग उजियारो
तुम से जो नहीं और कासे जाय कहूँ दौर वही आजज कीरत करै मोपै रच्छा करनहारो
देख करोड़न गुनी जनन को अजाचक किये तानसेन प्रति पारो ॥१४८॥

कासी कास्मीर कामरु करनाटक बूंदी बुंदेलखण्ड
मालवा मुल्तान मेवाड़ खुरासान बलख बुखार गोलकुण्ड
बीजापुर बंग दव दक सान रुम स्याम मरत सम डण्ड
कहत तानसेन सुनो हुमायु के नन्दन जलालदीन अकबर जाके डरडरात ब्रह्मंड ॥१४९॥

प्रकृति

सघन बन छाया ठुम वेली माधो भुवन अति प्रकास वरन वरन पुष्प रंग लायो
 कोकला खंजन कीर कपोत अति आनन्दकारी चहुं ओर मर बरसायो
 सप्तसुर तीन ग्राम - इकेइस मूर्च्छना उक्त युक्त लाग डाट कर देखायो
 तानसेन कहै सुनो साह अकबर प्रथम राग भैरव गायो ॥१५०॥

होली-गान

स्त्री नन्द को नन्दन खेले जी हो हो होरा
 ग्वारवार सब संग सखाले बज की बीथन ही डोरा
 ताल पखावज आवज बाजत डोलक औ तंबोरा
 बीना रवाव मुरझ मुरली डफ मधुर मधुर ध्वनि थोरा
 कुंकम केसर चन्दन वन्दन अवीर गुलाल भर म्फोरा
 तानसेन प्रभु फाग रच्यो है खेलत किसोरी किसोरा ॥१५१॥

चलो तुम हूँ देखो कैसी मची होरी गावत रंग महल में नारी
 एक गावत एक म्रिदंग बजावत एक नाचत दे दे तारी
 अवीर गुलाल केसर पिचकारी तक तक मारत गावत है सब गारी
 तानसेन प्रभु खेल रच्यो फगुवा लीन्हों भारी ॥१५२॥

रैन विहाय गई भोर भयो होरी कहाँ खेले प्यारे
 कौन नवल तिय पिय विलम्बाए गिनत बीते मोहे सब निस तारे
 कहूँ कज्जर कहूँ पीक लीक अधरन अंजन माल महावर धारे
 तानसेन के प्रभु तुम बहुनायक सांझ के गए हो सिधारे ॥१५३॥

लंगर बट पार खेले होरी
 बट घाट कोऊ निकस न पावे पिचकारिन रंग बोरी
 मैं जु गई जमुना जल भरने गह मुख मीजी रोरी
 तानसेन प्रभु नन्द को डोरा वरज्यो न मानत गोरी ॥१५४॥

स्फुट

आनन्द भयो आज आयो विजय कर घर घर मंगल चार
 अनेक गज तुरंग साजु नौबत नगारे बाजे गज तुरंग साजे सवार
 तन बीतन घन शिखर नाना विध बाजत सुरपति के द्वार

ब्रह्मा वेद पढ़े नारद मुनि गावे राजा रामचन्द्रजी के बार

तानसेन कहे सुनो साह अकबर दसहरा सुफल भई तिथि बार ॥१५५॥

घर घर ते ब्रजवनिता जो बन निकसी आज कंचन थार भर भर नग नोछावर करन लाल की
सप्तसुर लै गावत कंठ कोकला लाजम उपजत अति रसाल गमक तान ताल की
मदन महोत्सव साज समाज गोपीन ब्रिन्द मिल चलत चाल मराल की
तानसेन प्रभु रस बस कर लीने तिरछी चितवन मदन गोपाल की ॥१५६॥

खरज साधे गाऊं मैं खवनन सुनहु सुनाऊं

वेद पढ़ाऊं जोई जोई कहै सोई सोई उचराऊं

भैरव माल कोस हिंदोल दीपक स्त्री राग मेघ सुर ही लै आऊं

तानसेन कहे सुनो हो सुघर नर यह विद्या पर नहीं पाऊं ॥१५७॥

सब समूह करिहै तू नर नारी रहसन लै चले करन लाड़ले के मंगन की
सहानाईए कर लिए औ टकेरन बीन रवाव गारन की भांभ भनकारन की
वाजत ए धूम धाम धावत याके अनेक दल गज दल पय दल अस्व दल सांगन की
तानसेन सब नगर नर नारी प्रफुलित भए गुनीजन गावत छिरकत अतर गुलाब

सुवास आवत सुगंधन की ॥१५८॥

नाद समुद्र अथाह सुनीयत है ताके सहल करन को लागै गुनीयन के मन

अकार को जहाज कीनो तीन ग्राम सप्त सुर लै लै ताल मूल तै बैठी सौदागर बन

इकईस मूरछना बाईस सुर तैतैहू मिलाय भए बन ठन

ओड़व खाड़त सम्पूरन को ध्यान विवादी अंगरेजी सन

अलाप की धमक सों उनंचास कोटि तान तुपक छूटन लागी तानसेन बजन ॥१५९॥

जै गुन विवेक कर साधै तै चतुर अति प्रवीन हूँ रहत नीका

तिनमें सुध संगत अति बहोत पइयत है तार तान की गहन ही का

सप्त सुर तीन ग्राम मूरछना अति कोटि तान ओड़व खाड़व सम्पूरन ही का

धादी समवादी अनवादी विवादी अंस न्यास तानसेन समझ जी का ॥१६०॥

नाद समुद्र परखन पायो सीखत पंडित कहायो धार धुरपद मार जुगन ठगायो

सप्त गुप्त सप्त प्रगट नायक गोपाल लायो ब्रह्म वेद उचरायो सारंग बौरायो गायन भाव

तेरी मार जगन ठगायो

जित तित सिष्टि गुनी ब्रह्म भेद रुद्र मुनि ते उपज के गाये पाषाण पित्रलाये
 कहै प्रभु तानसेन जिनही रच पच गाये तिनही रिक्ताये ॥१६१॥
 मैं तोहे पूछू गायन बजायन कौन गुरु ग्यानी संगी कौन मूर्च्छना कौन सुर कौन ग्राम विस्तार
 कौन मूल ताल कौन प्रथम उचार कौन गुरु के प्रकार
 कहां राम बसत कहां रंगत संगत कौन बाड़ी में पवन धार
 कहां तीख चीख नेम बरस उरपति रप लाग डाट आतक खातक ओड़व खाड़व सम्पूरन
 तानसेन तत वितत धन सिकर तार ॥१६२॥

जब करता करम करे तो सब कछु पावै नाद विद्या सुद्ध/संगत आवै
 जान बूझ भूलो फिरे रे क्यों न वोही नाम जा सुमरत ही सुर तान गावै
 ले नर मुनि गुनि पच पच हारे बिना कादर कोउ ना बतावै
 तानसेन प्रभु निशि वासर अब तेरो नाम ध्यावै ॥१६३॥

नाद अगाध सम्पूरन सोध साध समझ सोच ताल विस्तार ओंकार
 सुर संवार सप्त सलिल सुर सुर सौ संगत नाद विस्तार
 स्वराध्याय रागाध्याय तालाध्याय त्रित्याध्याय प्रकीर्ण प्रबन्ध भिदंगा-
 ध्याय सप्ताध्याय विचार

गुनी गन्धर्व सुर नर मुनि पच हारो केउ न पायो तानसेन अपरम्पार ॥१६४॥

भांति भांति के भरे घड़े ऐसी विधना कुंभार
 एकन उत मनवावत एकन मध मनावत एकन नेक सुनावत एकन राखो
 खाली कर मिकदार

एकन देत रीकत एकन लेत रीकत एकन को करोन दए एकन को हाथ
 पए मांगते भीख द्वार

एकन को नरक एकन को सरग देत तानसेन प्रभु रचो संसार ॥१६५॥

प्रथम नाद सुर साधे आराधे सोई गुनीयन में गावै
 सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मूर्च्छना तिनके व्यौरे तब कछु पावै
 आरोही अवरोही उलट पुलट के होत द्रुत मध विलम्बित आवै
 तानसेन के प्रभु महावाक् वादिनी प्रसाद तें गान कंठ करावै ॥१६६॥

साधो विद्याधर गुननिधान गुनदाता सरस्वती माता को कर अदेस
 नमोनमह रिद्धि सिद्धि के स्वामी सकल विद्या प्रवेश

ज्यों इनको ध्यावे मन, इच्छा फल पावे दूर होत तन के कलेस
तानसेन प्रभु तुम ही को ध्यावै ब्रह्मा विस्तु महेस ॥१६७॥

रंग जुगत सों गाय सुनावे ताल मूल सुर सुर संगत आवै
दुगन तिगन चौगन सो भेद बजावै जब लाग ठाट परमान देखावै
अपने मुख ते न गुनी कहनि ताल मूल को व्योरो न पावै
तानसेन कहै होवै गुनीजन छत्रपति अकबर को रिझावै ॥१६८॥

वा दिन केवल बलि जइए री जा दिन पीतम सों होय मिलन
तन मन धन सब वारुगीं इन चरन कमल ऊपर पांवड़े बिछाऊंगीं नैन पलन
कारन मोहन अपनो ही गरे डार लैहैं सरस रस ललित अधरन
कहै मियां तानसेन कव धौं मिले आय दरस परस इन संजोगन ॥१६९॥

नाद समुद्र अपरम्पार काहू न पायो पार अपार भेद
केते गुनी गन्धर्व यच्छ किन्नर रचि पचि हार रहे सुर नर मुनि गुनि चारों वेद
सप्त सुर सब्द ब्रह्म निरंजन निरंकार निरभय भेष रचि पचि कर थाके खेद
तानसेन जन आरत विनय करत धन धन नाद अलख अभेद ॥१७०॥

नाद गढ़ मन राजा राज सजत छहों राग उमराव बैठे दुरजन पर नीके रच्छा करत
नाना राग रागिनी छतीस तुपक भर भर घर सोई इकइस मूर्च्छना
गीत माल धार धोवा मारा पर मारा चतुरंग जम्बू राग जलवै पारसी छन्द रच्यो सत
जंजाल त्रैवट रामचंगी संगीत दास तानन गजवास ठांस भुमरागोला भरत
सप्त सुर सप्त पौर औड़व खाड़व किवाड़ आरोही अवरोही खाई बनाई
कौल तिलाना कोतवाल ध्रुवपद वजीर प्रबन्ध की निसानी आय लखे को धाय विद्या की
लराई लरत

तानसेन कहै ऐसो अगम अथाह जाको पार न पायो रचपच हारे कहू न लाग लसी कान
पकर पकर धरत ॥१७१॥

नगर नाद मध चक्र मत चौधर हाट बसायो
सुरदाटी अच्छर जिनस लेत सुधर न हाथ बिकायो
सुर कोतवाल सुरत लै प्यादा गमक गस्त फिरायो
सुनत भाव सब गुनियन मिल के तानसेन निरख संगायो ॥१७२॥

पार नहीं पाइए गुन सुमुद्र अथाह कौन विध तरीए कहा करिए कवन भांति जानिए
मन ग्यान नेत्रन असुर लागे सुर तान ताल कैतो के घट में आनिए
जब उठत है ध्यान अति प्रान डरो जाय चरन धरो धाय धाय कैसे कर ठानिए
कहे गुरु ग्यान तानसेन सुरसुती ध्यान धर अगस्तनो अचपानिए ॥१७३॥

यह लराई लगे रे गुनी ग्यानी सूर समसेर मजलिस मैदान

अलाप चारी तुरंग चढ़के धुरपद नंगी तलवार तारसी परिकर रसना

कटारी काढ़त जब सुख ग्यान

छवो राग उमराव नाद गढ़ को परीछक छतीस भार्या तुपक भर धरान

धारु वान घोवा माठा जम्बुसर दारु तानसेन यह प्रमान ॥१७४॥

चटक चित्र मित्रहू मिल तज मल नवल चित चढ़त रूप रंग भरत जगत मन हरत
प्रथम ही आभा मा दरत पुनि अरतन कुक करत बड़ी बड़ी वार परत
रस ढरत लटपटात थरथरात वे रुस भट्टहू वै लरत
एक मारत मरत एको दरत बसरत हैं रत रोर दारिद्र इनको दरत
वही ग्यान जी में धरत परसत संसार नित तार मन में याते फूल न परत
तानसेन कहत अकबर अल्ला भर के नाम गाए एव दरस नहीं सुरत निरत ॥१७५॥

एरी आली आज शुभ दिन गावहु मंगलचार

चोक पुरावो सिदंग बजावो रिक्तावो बन्धावो बान्धो बन्दनवार

गुनी गुनी गंधर्व अपसरा किन्नर वीन खाव बजे करतार

धन धरी धन पल महरत तानसेन प्रभु पर बलिहार ॥१७६॥

साके को विक्रम देवे को कुल करन वेद सम नाहीं ग्यान
बल को भीम पेज को परसुराम वाचा को युधिष्ठिर तेज प्रताप को भान
इन्द्रसेन राज मूरत को कामदेव मेरु समान
तानसेन कहे सुनो साह अकबर राजन में राजा गम नन्दन विरहभान ॥१७७॥

ब्रह्मगत अपरम्पार न पाऊं

प्रिथ्वी पार पताल ढरा औ गगन लों धाऊं

जो लों न होय सुद्रिष्टि तुम्हारी मन इच्छा फल ही पाऊं

तीरथ प्रयाग सरस्वती त्रवेनी सब तीरथ होकर गुरुद्वार जाऊं

भागीरथी गौतमी औ गंगा तानसेन गावै हरिद्वार चाऊं ॥१७८॥

नै जै कर पूजो धोलागढ़ की रानी ने
 पान सोपारी ध्वजा नारियल पहले भेंट भवानी ने
 तेल फुलेल अरगजा अम्बर ले चढ़ावत वाक् वानी ने
 तानसेन यह प्रसाद मांगत दीजै बुध और वानी ने
 ब्रह्मा वेद पढ़े तेरे द्वारे संकर दयान समानी ने
 वीरवल वंस ब्राह्मन कुल तारन तानसेन वरदानी ने ॥१७६॥

एरी गंवार ग्वार तू कहा जाने री गोपिन को मरम
 कान्धे कामरी औ हात लकुट लिये ताको जिय कहा होत नरम
 कटि सोहै पति बसन डारो फिरत याहीं ते जानी जात तेरे धरम
 तानसेन कहे सबरी को भूठो खायो ताके जिय कहा होत सरम ॥१८०॥

माइ री महा कठिन भई मिल बिछुरै की पीर
 घड़ी घड़ी पल छिन जुग से बीतन लागै नैनन भर भर आवत नीर
 जब से प्यारो भयो न्यारो कल ना परत मेरी वीर
 तानसेन के प्रभु वेग आवन कीनो जियरा धरत नहीं धीर ॥१८१॥

ए तुम सज सज दल चढ़त जब भूप पर भार होत थरथरात देस देस के
 गढ़पति सुन धाक धरहरात
 जाके चढ़े ते सुर रैन उड़त गगन छिप जात खल बन परत सिंहदू पै
 बाजत निसान जब सब्द धहरात
 देव दानो औ रावर ते भाज गए सब पातल लोक मठ पीठ कलमलात
 सहस सहस फुनकार कटि चूर चूर भयो थरहरात
 महाराजान्मनि राजा रामचन्द्र की असवारी होत अस्वदल गजदल

पयदल सुन सुन अकअकात धकधकात
 एसो सुरो पूरो तप तेज वोसो वोही दूजो नाही मेरे जान
 तानसेन गुनी जन को अजाच कीनो वाकी सूरत मूरत पर खलबल जात ॥१८२॥

गंग की रचनाएँ

रूप-सौंदर्य^१

कुंदन सी कोबरी कुमुद से कटाच्छ जाके नए करतार एक मोहिनी बनाई है
वेद तज्यो ब्रह्मा ओर सिव ने समाधि तजी देखे जाके जादोनाथ टकी सी लगाई है
रतीहूँ न रंभाहूँ न मेनका धिताचीहूँ न सारदा न सुरलोक तेऊ दूढि आई है
कहै कवि गंग एसी गोरी जो गवारि होति एसी अरुनाई तरुनाई कहाँ पाई है ॥१॥

दूँढि फिरयो प्रिकुटी वरुनी बन हेरि पहार पयोहर हार्यो
गंग गए ते गए न फिरे संग लोचन कान कहूँ चल चार्यो
मेलि रोमावलि बांसी गरे गहि नामि कुआंग हिरे महि डार्यो
तेरे महा ठग रूप अली त्रिवली में भुले मनु मार्यो ॥२॥

तनक हसनि तिहुँ लोक को है सुखसार तनक चितोनी तिहुँ भवन को भोग है
कहै कवि गंग बिनु देखे क्यों निमेष लागे मेरे जान कान्हू जू के सँति को वियोग है
कंटक ले उवै कंज भटके भ्रमत भ्रिग सोने सों सुगंध कहै बावरे वे लोगु है
सेनि की तियनि की निकाई बारि फेरि डारो राधे जू तिहारी रूप न्याइ लागे जोग है ॥३॥

केलि को स्नेह गाभौ तन कुंदन सी जोति जगै कमल वदन पर मोती को सो पानी है
चकवा से कुच कच बादर से छाई रहे तिन में दसन दामिनी सी चमकानी है
कहै कवि गंग और बातनि भली हो सही ऐसो हठ लालन सों तू ही मनमानी है
मेरी रानी मेरे पीछे मेरो बुरो मानि लीजो जैतौ अंग रूप तोमें तेतिक अयानी है ॥४॥
केलि कौल केहरी हरन हाथी हीर कीर हंस हेम हिमकर काहे को बिगार्यो है
कहै कवि गंग छति कारम प्रवाल दल व्याल मलि भिदुल भिनाल मीडि मार्यो है
नीकी नीकी निपट निकाई नीकी नीकी लागी नीकी नीकी नाइका निकुंज पांड धार्यो है
एतो कान्हू जू के नाई कान मूँ दि बैठ रही न्याइ ही विधाता माई रूप मेलि डार्यो है ॥५॥

को वरनै उपमा कवि गंग सुतोही में है गुन ऊरवसी के
जा दिन ते दरसे मुसुकानि सो कान्हू भए बस तेरी हंसी के
चंद से आनन में तिल राजत ऐसे विराजत दाँत मसी के
फूलन की फुलवारिन में मनो खेलत है लरका हवसी के ॥६॥

१ याज्ञिक-संग्रहालय तथा कांकरीलो के प्राचीन हस्तलिखित संग्रह ग्रंथों से उद्धृत।
• इनमें छंदोभंग दूर करने के लिये कहीं कहीं पुर वर्णों में परिवर्तन कर दिया गया है।

गरे तो गुलाल माल कूर न प्रवाल जाल पहरे ही लाल लाल चुनरी चुनाई के
 कुंकुम कपूर पान चंदन चमेली चोवा म्रिगमद वास आगे आगे आइ धाइ के
 कहै कवि गंग हों न जानति कितहिं गई मोह अरु मोहनहि मोहनी सी लाइ के
 कमल से बदन किसोरी कोऊ गोरी गोरी होरी की सी भरप भरखा झांकी आइ के ॥७॥
 चांद को कलंक दीनो धनुष को टेढ़ो कीनो बानहू को चूक म्रिग पसूही दिसीजिएं
 कीर हाटहू बिकात बिंवहू न कोउ खात हीरा तो हलाहल है ईख रस लीजिए
 पंकज को काटे भारी कोकला तो कीनी कारी सर्पन को विष दुख दामनी सुनीजिए
 कहै कवि गंग औरि अंगनि बसन छाए प्यारी जी के मुखहू को केन सोभा दीजिए ॥८॥
 डेल से ढरारे नैन वेल से कठिन कुच वैले के फुलैल मीजी अलवेली अलके
 सघन जघन जिमि कदली कै दल छवि करन की करे पहुप कवल रलके
 कहै कवि गंग दोष भाषै जीव दामिनी के दाख्यो कैसे दाने दांत दूनी जोति मलके
 सांवरी सलौनी ग्वारि वारिये गंगा गंवारि रति जोवन जमी सी आवें रोवै लाल ललके ॥९॥

दीरघ ढरारे तहां डोरे रतनारे लगै कारे तहां तारे अति भारै जै सुरंग है
 कहै गुनि गंग जनु दूध ही सो धोए पुनि काए विकसत सित असित दुरंग है
 पारद सरस चार थिर से थिरकि जात तिर में चलत मानो कूदत कुरंग हैं
 खैचे ना रहत अनुरागहू के वाग वर मानिनी के नैन कैधों मैन के तुरंग हैं ॥१०॥

पीन पयोधर खीन खरी कटि लोचन मीन प्रवीन तिया के
 सुकमार सिवार से वार बड़े दसनावरि मानो अनार बिया के
 गंग कहै खरे नीके खए खगि बैठि गए मुहरा अंगिया के
 विचारि रचे विधि ने मेरे जानि मनोरथ कान्ह तिहारे हिया कै ॥११॥

बांकी भौंहें सोहैं बांकी चितवन मन मोहै बाकों मोती बेसर अधर पर करको
 कहै कवि गंग तेरे उचकि उचकि कुच गति न रहत निरखत भराभर को
 आनन की उपमा तै सकल विकल भई भली सोभा लै रह्यो तिल कपोल पर को
 पंकज के बीच आली अलि गो समाइ तहां मानो री बिछुरि छोनां बैठ्यो मधुकर को ॥१२॥

नीचे निहारि ओ नागरी बावरी ऊँचे देखे असमान फटैगों
 इंदर लोक में होय कुलाहल सूरज चन्द को तेज घटैगो
 घटैगी तेज जबै रवि को तब रामहि राम जगत जपैगो
 गंग कहै मोहि यों डर लागत तेरे लिये करतार लटैगो ॥१३॥

वार वार बरने को बरन निकाई सुनि वारक बरनी फांसी मेरी दीठ फांसी से,
कहै कवि गंग तोहि मोहि रहै नंदलाल तू तो महा मोहिनी है मदन की असी सी
हांसी ओ चितोनि दोऊ चित में चहकि रही चितोनीन चितोन सी हंसी योन हंसी सी
तेरे प्यारे घर जात बरियो न घर जात तू तो घर बसी उरवसी उरवसी सी ॥१४॥

कचन की लकुट की लसत कसोटी लीक मोरनि की माल किधों अग वास लेनी है
कहे कवि गंग किधों वारी कारी कारिबिनी दामिनी सी कामिनी है मिलि छवि देनी है
सुंदर सिंगार सूर सुता की सी धार किधों जोवन नदी की धार के सिंवार सेनी है
करा चोली काम की कि सोभा करे स्याम की कि जिय ही की वैरिनि विराजमान वेनी है
॥१५॥

अंग तेरा केसर सो करिहा केसरी कैसी केसर की सर कैसे कहि सकै को तमें
कहे कवि गंग आछे छवि सो छबीले नैन नीलेऊ नलिन ऐसे वाही देखे हो तमें
अहे हे अहीरी तू धौ इही कछु जानति है काके भाग औतरी है तोसी तेरे गोत में
तरुनी तिलक नंदलाल त्यों तिलक ताकि तोपर हौं वारों तिल तिल के तिलोत्तमें ॥१६॥

गयंद की चुराई चाल मैदही को लंक चोर्यो मुख तेरे चंद चोर्यो नासा चोरी कीर की
मिगनि के नैन चोर्यो पिकनि के नैन चोर्यो ओंठ तेरे लाल चोर्यो दंत छवि हीर की
कहे कवि गंग बैनी नाग ते चुराई लाई भोह तो कमान पल अर्जुन के तीर की
जेते तुम लूटे ते पुकारत कन्हैया जू पे एतनि की चोरी कहा छपेगी अहीर की ॥१७॥

जेही देख्यो जेही सुन्यो ते ही अवरेख्यो रूप रूप रंग रीम्नि रीम्नि तेही तिन तोरयो है
कहे कवि गंग कान्ह आबु लों न काहू कछु मूठि ते न मेलि डार्यो गांठि ते न छोरयो है
गोरी गाइ धोरी बोलि पियरी पिछौरी ओंठि बूझै तोहि काको चित सेव चोरयो है
आइहैं ते आइ बिन ही बुलाए आइ ढोटा तोरी बांसुरी समुद्र विस धारयो है ॥१८॥

अंग ओप आंगी भीजी अंग अनुराग भीजे अधर तमोर भीजे विद्रुम से भलकै
गति भीजी आलस सहज सोहै मोहै भीजी लाज भीजी चितवनि प्रेम भीजी पलकै
आवौ लाल दौरि दुरि देखै मेरी पीठ पीछे जाके देखिवे को निसि ब्रौस लेत ललकै
वचन पियूष भीजे बुधि के विलास गंग रस भीजी आपुन फुलैल भीजी अलकै ॥१९॥

अधर मधूक ऐसे बदन अधिकानी छवि विधि मानो विधु कीन्हों रूप को उदधि कै
कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि पर्यो बदन छपाइ सखि मनि लीन्हों मधि कै

झारि गई गंग द्रग सर बोध गिरिधर आधी चितवनि में अधीन कीन्हो आधिक
वान बीध वधिक बधै को खोज लेत फेरि वधिक वधू ना खोज लीन्हो फेरि बधिकै ॥२०॥

औरन के गेहनि सनेह सब भूलि जैहो वही सो अधीन हूँ के वाही सों उनाहुगे
कहै कवि गंग मुख देखे मुख पैहो बलि लोचन विसाल देखे लाल ललचाहुगे
अंग की निकाई देखि अंग न समैहो पुनि बैस की निकाई देखि बस हूँ विकाहुगे
जो पै कहूँ एक बार औचक हू देखि पैहो एक बार बीस बार एकै घर जाहुगे ॥२१॥

चंपे कैसे चारु फल चमकत भुज मूल देखो धौं दुकूल कैसे रूप उफनात है
गंग कहै लोइन की अधिकै दमकै दुति कानन की ओर कों चकेर ललचात है
माते हाथी की सी गति राते सोने की सी दुति राते पाय देखियत कौल के से पात हैं
मूंगा से अधर दांत चमकत मोतिन से ऐसी ही गवारिन के घाले घर जात है ॥२२॥

जावक सुरंग में न इंगुर के रंग में न इन्द्र बधू अंग में न रंग औ निवास में
विंव फल विदुम विलोके बहु भांतिन के विले जान ऐसी छवि बन्धुज विसाल में
कहै कवि गंग लखि ललना अधर लाली लाल वारि डारो लाल भांति रंग लाल में
किंसुक रसाल में न कुसुम की लाल में न गुंजन गुलाल में न गुललाल लाल में ॥२३॥

मन पायनि पायल है गढ़ लंक ते दूर निसंक गयो
तहंहु रूप नदी त्रिवली तरि के करि साहस सागर पार भयो
कवि गंग भनै बटमार मनीज रुमावलि सो ठग संग ठयो
परि दोऊ सुमेरु के बीच मनोभव भेरी मुसाफिर लूटि लयो ॥२४॥

म्रिग नैनी की पीठ पै बेनी लसे सुख साज सनेह समोइ रही
सुचि चीकनी चारु चुभी चित में भरि भौन भरी खुसबोइ रही
कवि गंग जू यों उपमा जो कियो लखि सूरति ता सुति गोइ रही
मनो कंचन के कदली दल पै अति सावरी सांपिनि सोइ रही ॥२५॥

लाल गई ललना कहं लेन ही ताहि विलोक रही गहि मौन सो
वा मुख की दुति नील दुकूल में चाहत चँद उदो मनु हौन सो
गंग कहै लखि रीझिहो लाल जग मग जोति सवै तन सोन सो
प्यारी के रूप के पानिप में मन माइल मेरो विलाइ गो लोन सो ॥२६॥

सुन्दरि साजि सिंगार सुधारति सीत के गर्वहि गंजन को
गंग लिये कर सारसुती मनमोहन के मन रंजन को

ले करि कज्जलि अंगुलि लावति नैन लगावति अंजन को
मंहदी रुचि राजति ज्यों नख पै मनो गुंज चुगावति खजन को ॥२७॥

सांवरी सलोनी ससि वदनी सुरंग रूप सागर खां सोहे धारै सकल सिंगार सी
लाज मुख लांबी लटे लागो लचकोहों लांक सील सांची लघु वैस काची कोरी डार सो
कहै कवि गंग ऐसी सुंदरी न पावे कीई जो पै सेवै सौ सौ जुग बेनी औ बनारसी
आखिन ते इत उत न कीजै जनि एको छिन राति को रतनु कीजै ओस कीजै आरसी ॥२८॥

मोर को मुकुट मुकानि के वे अवतंस रोम रोम रूप मानो मनमथमई है
काछिनी रुचिर रुचि सोहे पीतपट सुचि चटकीली अंग अंग पीत छवि छई है
कहै कवि गंग बनी वानिक विविध भांति आभा तीनों लोक की सु एक ठौर भई है
मनि मनमोहन के कंठ में यों फलकति जानिये जुन्हैया जमुना में पैल गई है ॥२९॥

म्रिगहु ते सरस विराजत विसाल द्रिग राजत न ऐसी छवि कौलहू के दल में
गंग हरि धन तन मांहि लसै पीत पटु ठाढ़े दुम छांह देखि ह्वै गई बिकल में
चल चित चाय परै सोभा समुद्र बीच रही न संभार दसा औरै भई पल में
मन मेरो गरुओ गयो री बूढ़ि में न पायो नैन मेरे हरुए तिरत रूप जल में ॥३०॥

प्रेम-क्रीड़ा •

एक समे दुरि दंपति कुंजनि पौढ़े हुते पलिका सुख जी कै
स्यामा सुभाए ही आपनो हाथ उठाइ धर्यो उर ऊपर पी कै
आछी खरी पतरी अंगुरी कवि गंग कहै वै बनी कवि नीकै
काम सराफ कसौटी दे हाथ सुएँचि कसी मनो सोने की लीकै ॥३१॥

जो चितऊ तो रहे चित में चुभि याही ते भूलि न दीठ उठाऊँ
गुपाल परोस बसै बस माई हो को लागि आंचर आखि दुराऊँ
गंग कहै हरि हरि को मुख चंद विलोकत ही भरि आनन्द पाऊँ
देखि सखी बड़वानल लाज ते प्रेम समुद्र न बाढ़न पाऊँ ॥३२॥

बहुत ओस ते पिय मिले रहती कंठ लगाय
डरपति मन कवि गंग कहि मत सुपनो ह्वै जाय ॥३३॥

विप्रलंभ-शृङ्गार

अंजन मंजन तेल तंबोल तजे बिलखे बिनु हार हियौ है
बैदी ललाट न बेसरि नाक सिंगारिन को मनो मेट कियो है

गंग कहै नख तू सिख लों पुनि सेति के मान समेटि दियो है
तिहारे चलै बिनु मोहन लाल वै मानद्विगी जिनि जोग लियो है ॥३४॥

अरुनई कहूँ नाहिं हरद वरन भई चित्र की सी पूतरी मरोरि मारियत है
लूवरनि चोवर करेरी नाहिं मोरी नाहिं कोल की सी कली यों उमेठि डारियत है
कहै कवि गंग कान्ह मुगध हो मेरे जान अम्रित कि बेलि कहूँ विख डारियत है
धीरज न गहो घोस चारि मे उतेले भए नए बटपार एसी बाट पारियत है ॥३५॥

कालीदह कालिंदी कदंब कुंज ब्रिन्दावन खेलि खेलि विरह की बेलि बेरी बे गयो
तेसीए जु नैन में की सी मोहिनी है गोपी दुख देन आयो हतो सुतो दुख दे गयो
जानी है जु जाहु यहै मथुरा की परिपाटी जाटी भाटी कौन को हमारे हिये है गयो
कहै कवि गंग तन तव ही ते तल बैली वन धन मदन मदन वान छवै गयो ॥३६॥

काहै हमै दुख देति हीयो न पिछाहो लेति बालपनु बीते कोऊ वे सुमें बिलाति हैं
कहि कवि गंगु तू तो ऊड़नचिरैआ भई बसुले ले रहति किधों तू नाज खाति है
कोने आली डीठि घाली लाली न तनक तन ताली के पतोंआ यों व प्यारी पियराति है
आपनो जो आपु लेहै किधों काहू भेदु देहे बिन ही पिराने दूखै काहै सूखी जाति है ॥३७॥

कै कवहूँ विछुर्यो न हुतो विछुरे ते मित्यो बहुर्यो न बिसासी
एकहि बार दयो दुख डारि के नारि करी किस चंद कला सी
गंग कहै तन मैं दहै अति सूखे पिया बिनु लागति गांसी
गोकुल जारि उजारि जदूपति आप भए हरि वारिधवासी ॥३८॥

गुंजन की माल मोर पंख को मुकुट में जु मुरली की घोर तें मरोरे मारियति हों
कहि कवि गंग केहूँ कल न परति मोहि कलेउ के काल कालकूट सों पियति हों
ता दिन जु ताही छिन होत ही विदा जु मेरो हियो न विदरिगो तो हो ही बदियत हों
माईमा कहत मेरे मोहन को मुहुँ सूखे वह देखे बिनु नीके ही जियति हों ॥३९॥

जा दिन तें माधो मधुवन को सिधारे सखी ता दिन तें द्विगनि दवागनि सी दे गयो
कहि कवि गंग अव सब ब्रजवासिनु की सोभा औ सिंगार सुख संग लाई ले गयो
आछे भन भावने वे विविधि विछावने जे सकल मुहावने डरावने से के गयो
फूले फूले फूलनि में सेज के दुकूलनि में कालिंदी के कूलन विसासी बिस दे गयो ॥४०॥

जा दिन तें वह ढोटा आंखि भरि देख्यो आलि ता दिन ते यह देह दूनी है दगति है
कहि कवि गंग चित चोगनोक होत नित चोमासी नदी की न्याई अति उमगति है

रूप के सरोरो मारि मार के सरोरो जरि मरि सुरसाई से परी एसो जगति है
सांवरेऊ मानस को गोरी नीको लगे किधौ गोरी ही के लोइनहि लूहर लगति है ॥४१॥

डसन डसत आली वासर बितीत भयो हियो दहरात अति बात न सुहाति है
विरह अग्नि अति अंग अंग आंच बाढ़ी आंचर जो टप्यो त्यों त्यों छाती जरी जाति है
कह कह कुहु कुहु कोकिला के कुदकत कहा करौ गंग मेरी कछू न बसाति है
आवन गए है कहि अजहुं न आए लाल पहरक राति रही सोऊ पतराति है ॥४२॥

बात सुनो ब्रजनाह विषम विरह दाह दाहन के अम्बर लों अंगनि दहति है
कहि कवि गंगु अनयोसर असम सर सरनि की सोठा सोठें सुंदरि सहति है
चेरिनि की चेरी ताकी मोहू जो चिरैआ कै के डारे कोऊ त्रिन्दावन कान्ह यों कहति है
तिहारी ठगौरी वाकी नींद भूली भूख भूली आखिनि अनोखी छवि छिदए रहति है ॥४३॥

बाप की न मैया की न भैया की न भुजैया की कहैया न सुनैया की ए काम रसमाती हैं
कहि कवि गंगु मनमोहन मगन रूपु राति दिन सोचति न खेलति न खाती हैं
बारे ही ते विरहुनि बांसुरी की रिम्बारिईन की तताई के से हम पै सिराती हैं
भूली सी फिरति कान्ह काहूँ न तनक सुधि छातो मद पिएँ जैसे सातों सुधि जाती हैं ॥४४॥

भूतल ते तक्षप तलपहूँ ते भूतल तलपहूँ को कीजौ सोन सीतलहि तायो है
छकी सी घूमति कछति छकी सम बात कहै चकी सी चितौनी मनु मदन दृष्ट्यायो है
कहि कवि गंगु को न जतनु युवति जीते सोऊ गिरि दरिया की मूर मो ज्यायो है
तेरे हंसि हेरे हरि ऐसेने ही हाल होतु हाला में हलाइ मानो हलाहल प्यायो है ॥४५॥

मोहन हमारो मन बेच्यो है तिहारे हाथ कुले परित्यागिहैं वे तुमहि न त्यागिहैं
कहै कवि गंगु कान्ह समयो विचारि देखो आगिली पाछिली बातें सब सांची लागिहैं
कोरे लागी ननद उसीसै जागी उसी सास एहाँ वेहाँ योरानी जेठानों दोऊ आगिहैं
केहाँ बैठे मोको आनि घर ही में बेद ठानि घर बसै घर जाहि गुरुजन जागिहैं ॥४६॥

कालिंदी के कूल कुंजन की छाया मधि कोइल की कूकन करेजा जारियतु है
दौहिनी को नाम सुनै दूनो दुख होत दई बांसुरी की सुधि आए आँसू डारियतु है
कहै कवि गंग तुम दीनबंधु दीनानाथ एहो गोपीनाथ जनयों बिसारियतु है
गोधन की छाया में छिपाय राखै छाती तर मेह ते बचाय अब नेह मारियतु है ॥४७॥

खंजन से नैन तन तात तपनीय एन मेनखी हुलास मुख नैनन सुहात है
अलवेली अलकै सुआइ रही नैनन में दसन दागिन किति ज्यों ज्यों मुसकात है

चंचल चकित मानो चोकै झिगछोना ताको लाल मिलवै को खरी खरी अकुलात है
नैनहु न आवै नीद भूख नहिं भावै गंग पहर पहर राति कहर सी जात है ॥४८॥

गनक गनी है घरी खरी छुटपट परी खरी मरी डरी कहा पांख तो न लाइ है
कहै कवि गंग तेरो हितू है बसंत रितु देखि तो नमासो ह्यां सों जानहु न पाइ है
मंजरीन गुंजै भोर पिक बोले ठौर ठौर जैहै अमराइ लौं तो आगे कैसे जाइ है
आग सी लगी है वन देखि अकुलै है मन कोसक ते आली वनमाली फिरि आइ है ॥४९॥

जा दिन कंत विदेस चले सखि ता दिन ते बहु लागत जीको
अंग सिंगार अंगार से लागत माननि के मन लागत फीको
सेज समै कमला भइ व्याकुल सीस रह्यो लटको तरुनी को
गंग कहै सुन साह अकबर नैन के नीर में भीजत टीको ॥५०॥

जा दिन ते हेर्यो मनमोहन है आली सुनि ता दिन ते देहविन दूनो है दगतु है
कहै कवि गंग नित चित चटपटी होति पावस नदी की न्याइ नेहु उमगतु है
रूप की मरोरै मारै मारु के मरुरे मेरे मुरि मुसकानि पर मैनु सो जगतु है
सांवरेऊ मानस निगोरे नीके लागत कि गोरी ही की आखिनि को लूहर लगतु है ॥५१॥

जौ लौं रही रथ की रज देखति औ धुजा पटपीत की फाहर
तौ लौं रही सब ध्यान धरै जौ लौं प्रान गये द्रग पैठ है बाहर
गंग झुकी झुकिहू कै चली धरनी पै परी पिय कै हिय जाहर
कागद की पुतरी सी भई जल भीतर भीजि सवै इक ठाहर ॥५२॥

तोरि तोरि तामरस घोरि घोरि घनसार काठी सेज बोरि बोरि कहाँ लौं बखानिये
कहै कवि गंग तऊधुरी परै चंदमुखी चंद की किरनि चूर चंदन में सानिये
नीर ते उसीर ते समीर ते सिरानी नाहि जोहू जोए जरति जीयै ही भलै जानिये
ऐसी भांति कान्हू जूतपति तुम विनु वह तोहै न सिराइ जोपै हिमगिरि आनिये ॥५३॥

धीर न धरति धरी देखे विनु जाति मरी ऐसी कछु करी दीयो घाइनि में नोन है
सुधि बुधि टरी मानो खाइ ठग बरी जीभ खरी अरवरी न गहति क्योंहू मोन है
लाज परहरी खरी उघरी न डरी काहू कहै कवि गंग समुझहि सखी सो न है
कौन टेव परी साख्यो घरी कहै हरी पूछै सहचरी अरी हरी तेरो कौन है ॥५४॥

वाहि न सुहाति बात बात कहे सोहैं खाति वार वार गए कछु फेर सो करति है
गंग कहै विरह अनंग माती बाल वह कर के गहे ते वर हाथी जो अरति है
सखी तो तिहारी समुझाई समुक्ति नाहीं सोने की सुमेर भई टारी न टरति है
कहियै की दुती सुतो कहि आई प्यारे लाल और कहा दूती समसेर लै लरति है ॥५५॥

हा हा नेकु आइ लेहु बूड़े लेति तेरो नेहु केहु है दिखाई देहु डोरु ज्यों दगतु है
कहै कवि गंग कान्ह व्याकुल इतक मान काउ की कनाई कहाँ करेजे लगति है
कोइल अलग डार बोलत डहारी लागे डहडही जोन्ह जी में डाह सी लगति है

तुम बिनु सूनी राति कारी सांपु है खाति राति सेज देखि देखि छात उमगति है ॥५६॥

कामिनि तो केला होइ कोइल के घाले आली मोरनि के सुने बोल आँसू डारे मोर लों
कहि कवि गंग वाहि कछु न सुहाइ और वह तो वदन चाहे चंद ज्यों चकोर लों
सेज त्रिखभान सो तपति त्रिखभान जी को भानुजा के कूल में चोराइ राखी चोर लों
पेन तो न लाग्यो सखी जोन्ह लाग्यो दुख देन भौन लाग्यो रुरो होन गूजे मोर मोर लों ॥५७॥

काहू को कहू जो कान्ह होय जों हजार कान जाने ज्यों अकेलो जैसे ध्यो सो ताइयतु है
मीठे पर जोई खैये सोई सब सीठो लगे भूठो है सुहाग जो सो रुठे पाइयतु है
कहै कवि गंग ढिग आये ते ठकेलि दीजै कीजै कहा ठारे ठारे डुरि आइयतु है
भुकेहु न भुकि लेत आगे सो विहसि देत छीर उफनात जैसे नीर नाइयतु है ॥५८॥

बैठी ही सखिन मध्य पिय को गवन सुन्यो सुख के समूह में वियोग आग भरकी
गंग कहै त्रिविध सुगंध लै पवन बह्यो लागत ही ताके तन भई विथा जुरकी
प्यारी को परसि पौन गयौ मानसर पहं लागत ही और गति भई मानसर की
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो जल जरि गयो पंक सुख्यो भूमि दरकी ॥५९॥

तुम बिन सूनी राति कारी सांपिनी है खाति रीती सेज देखे वाकी छाती उमगति है
हा हा नेकु जाइ लेहु कह्यो है तिहारो नेह कोई है देखाइ देहु गोरी ज्यों जगति है
कहै कवि गंग कान्ह विकल इते ही मान नाज की कनाई जैसे करेजे खगति है
कोइल अलग डार बोलत उ हारी लागे डहडही जोन्ह जी में डांस सी लगति है ॥६०॥

कान्ह चले कहि आये कछुन कपी कदली दल ज्यों थहरानी
सोचत ही सब घौस गयो पुनि रात पुकारत राधिका रानी
आई न दास को ज्यों नित आवत आखिन में परि पैर परानी
गंग सु तो फेर फिरी नहि बूड़न के डर नींद डरानी ॥६१॥

छाड़ि देहु अड़वार सैतुक सिंगार हार कछो है नु कैसो राय वैसे ही ले आनिवी
कहै कवि गंग कौन तुम तै सलोनी है सोधे सो लपेटी अरु सीधे ही सो सानिवी
रोचना सो रूरी गात पोक कै से पागे आंठ नैना मोर कैसे काल कहां लो बखानिवी
रूप ही अनूप तुम ओज माने न्हाए जाए भूखन बनाए वीर वीरा खाए जानिवी ॥६२॥

पंद्रह बरिस बीते सोरह बरिस लागे सत्रह बरिस बैस उलटि चढ़ति है
जागति जभांति राति सुधि न पिया की जाति जैसे विन चकवाहि चकड़ रढ़ति है
कहै कवि गंग कछु कहिवे की वाते नाही छाती अति कठिन कुचनि ते कढ़ति है
सोने से सरीर स्याम विरह कि ज्वाला जरी नित नित प्रतिदिन नदी सी चढ़ति है ॥६३॥

जल ढारि सनीचर पंथ बधू विनवै कर जोरि सुपीपर सों
तरु देव गोसाईं बड़े तुम हो यह भागति दीन है सु पी परसों
आवन के दिन तीस कहै गति ओधि की ठीक तची परसों
भूल गए हरि दूरि विदेस किधों अटके कहूं पी पर सों ॥६४॥

मान

बैरनि बटावनी सी बैठन न जान कहै ऊमे ऊमे निसेनी यों ठाढ़े सूजियतु है
सांझ की मनावतहूं माझ की रयनि आई उरनि को छिनक छुदा सो छूजियतु है
कहि कवि गंग से ए सोऊ तो प्रसन्न होतु पाथरहू को जूकोउ कै कै पूजियतु है
मानस है मानस को कह्यो मानि मानु त्याजि एरी मेरी प्यारी तेरी चेरी छूजियतु है ॥६५॥

वे ही काम कीजियतु विरस विराग बैर ऐतौ रिस माई हाइ देखी है सुनो कहूं
तेरी अनुहारि मनुहारि कीन होई आली हारी मनावत हारी तू न टरी टेकहूं
कहै कवि गंग काहूं तीसरे के तिनु दीजै तोही बीसो बिसे खोरि कान्ह न बिसेकहूं
छाती हूं लगाये ताती राती होति राति दिन तेहु है ननैया को सो नेहु नाहिंन कहूं ॥६६॥

काहे को सतरि होति वे दिना सभांरि देखो सीरे सीरे कमल कहूं ते बीन लावती
कहै कवि गंग तेरा द्वितू तो हजार है है विरह की पीर बेर हों ही काम आवती
अनिल के डरनि टुकूल देत दिस दिस निस प्रति घसि घसि चंदन चढ़ावती
उनसों तो मान कीजै मोसो कत मौन हूजै रुठ करै राधका जौ होंही न जिआवती ॥६७॥

नकई बिछुरि मिलि तू न मिली प्रीतम सो गंग कवि कहै ये तो कियो मान ठान री
अथये नछत्र सति अथई न तेरी रिस तू न परसन परसन भयो भानरी

तू न खोली मुख खोलो कंज औ गुलाब मुख चली सीरी वाय तू न चली भो विहान री
राति सब घटी नाहीं करनी ना घटो तेरी दीपक मलीन ना मलीन तेरो मान री ॥६८॥

आदर अलाप छाड़ि आगे ते अनखि उठी तवै एक बोल मोहि आकरो सो आइगो
कहै कवि गंग कान्ह ताते देखो ताते रोस बाते द्रवै बनाइ कही हियो दुख पाइगो
आपुन पधारों बलि दूसरी विचारो जिनि हिले मिले नैक नैक सेक सो सुहाइगो
अचरा की एचा खैंची अँगिया की नोचा खोची छतिया की छुई छुवा छटि मान जाइगो

॥६९॥

बोली हारी कोयल बुलाइ हारे प्यारे लाल मारि हारयो मदन मनाइ हारे मानई
कहि कवि गंग ऐसे पिय सो वियोग मोही सखी सों उदैगु सब एक ही बआ गई
मानिनि मनायो नैक समुक्ति अयानी आली जो पै जी की ऐसी ही तु नीकी काहे को भई
कोऊ एक ऐसो होइ मेरो ज्यों लै तो में देह सीर सी सिराई राति जाति है दई दई ॥७०॥

नायिका

चाल न जानत चंचलता चुनरी चहूँ खूब बनी अति राती
चंदन खौर चुनाव की बेंदी नवेली तिया सब संग सगाती
सेज को नाम लिए सकुचे कवि गंग कहै न कही छवि जाती
सोने से गात सलोने से नैन अनूठे से ओठ अछूती सी छाती ॥७१॥

स्त्री नंदलाल गोपाल के कारन कीन्हों सिंगार सु राधे बनाई
कुंकुम आड सुकंचन देह दिये मुकताहल की मलकाई
सीस ते एक छुटी लट सुन्दर आनि कै यों कुच पै लपटाई
गंग कहै मानो चंद के बीच है संभु को पूजनि नागिनि आई ॥७२॥

नहिं नैनन चंचलता प्रगटी पुनि बैन न मैन समान धरयो
कवि गंग अजौ पग आतुरि है चित चातुरी नाहिं प्रवेस करयो
कबहूँ कबहूँ तन यों मलकै अरि जोवन सैसव मांझि दुरयो
जिमि ग्राह महा गहिरे जल में उछरै दुरि जात कलोल भरयो ॥७३॥

तुम जु पयानो प्रात करत हो प्यारै लाल वाके उस प्राननि प्रयानो सुनि दयो है
सुनि सुनि बचननि सहज म्रितक भई चलिबे को लालन जबहिं नाऊं लयो है
पान की सी वेलि मुरझानी बिनु पानी किधौं अम्रित को बिरवा तुसार ही को हयो है
चंपे को सो फूल झहरानो तनु गंग कहि कमल कली सो कुंभलाइ मुख गयो है ॥७४॥

बहिरहरे जल जैसे दुरी दूँ कुसुद कली ऐसे उरोजनि उर दर्द है दिखाई सी
गंग मनै सांभ सी सुहाई बैस पै सिआई लरिकाई तरुनाई मैन लखियाई सी
स्यामा को सलौनो तन तामे दिन चारि मांभ फिर्योई चहत मनमथ की दुहाई सी
सीसी के सलिल ज्यों सुमन की पराग ऐसे सिसुता में जोवन झलमलात झाई सी ॥७५॥

तब दुरि दुरि मरि भाजि भाजि जाति हुती अब काहि कान्ह के ही की नील घटावनी
तब तो पिय के नाम कान मूँदि बैठति ही अब तो निडर भई सौतिन डरावनी
कहै कवि गंग तब अति दुख पावति ही अब कछू गई काहू सकुच घटावनी
तब सतराति ही रिसाति जाही ताही सन अब तुम दोऊ एक हय की बटावनी ॥७६॥

कान्हहि देखि लजान लगी अब एकहि संग बड़ी भई एती
गंग नाबाल दसा समुझी अब के पछिताए कहां चित चेती
एऊ तो नान्हें ते नेक बड़े भए लावो के के धूँधुट कोन को देती
है कि नहीं पहिचानहु धों जिन के मुख तो हंसि माखन लेती ॥७७॥

भक्ति

मेरो चेरो मेरो घोरो मेरो घूरो मेरो घर मेरो मेरो कहत न रसना अघाति है
कहि कवि गंगु ओर ओरऊ जु आक वाक कहत कहत क्यों हूँ क्योंहुँ न रसाति है
चार्यो वैद चवाति पड़ति छत्रो दरसन नव रस निरूपति षट रस खाति है
देखो देखो पूरवि ले पाप को प्रताप यह राम नाम लेत जीभ ऐड़ी वेड़ी जाति है ॥७८॥

राधिका रमैया रंगभूमि को चवैया मारी भय को भजैया कवि गंगु उर लाइए
कंस को मरैया बलवंस को धरैया काली नाग को नथैया नाथ निसि दिन गाइए
अघ को हरैया सुख ब्रंदा को करैया तिहुँ लोक को तरैया जिनु विनु तनु ताइए
बलि को छलैया बलमद्रजू को भैया ऐसो देवकी को छैया छाड़ि और कौन ध्याइए ॥७९॥

अनजाने ठार जात जाति जाति पै घिघात पतरात कर तु फिरतु हो ही हीनता
कहू न लगाये मुख देखे एक रुखे सब सुनीये बखानु दुख दीन वन्द दीनता
मैं तो हूँ न मांगनु मंगावै मोहि औरनि गंग कवि कहै यहै कौन परवीनता
पूजे सब साखो छिमा करो अपराधी अब काटी किन माधो मेरे मन की मलीनता ॥८०॥

गर्भ में कबूल्यो भक्ति बाहर से भूल गयो कीन्ही ना भजन छन एक भगवान के
महल अटारी सुत सहेदर वित नारी निसि वास करत गुलामी बिना दाम के

धिन हरि भजे चतुराई भिग, जीव नर संग नहि जाति तेरो कौड़ीहू छदाम के
कहै कवि गंग नर देख ले विचार करि मूढ़ देहु आँख तब लाख कौन काम के ॥८१॥

जाके परताप ते अनेक दोष छीन होत कहै कवि गंग तप तेज की मलक ते
जाकेही असीसें सुख संपदा अचल होइ निकसत वचन जैसे विस्नु के हलक ते
तीन लोक जाहि माने ठाकुर ते बड़ों जाने गहि लिये पद मनो भिगु की ललक ते
केते ब्रह्म दोषी ब्रह्म दोष ही में छीन होत ब्राह्मन न मान्यो सुतो जायगो खलक ते ॥८२॥

मन्द मन्द गावै पार ब्रह्म नहि पावे जाय जमुधा खिलावे मेरो महा बलदाई है
वारेहि से बंका कंस की न माने संका गढ़ वार पार लंका बलभद्र जी को भाई है
कहै कवि गंग त्रिज बूड़त वचाय लीनो इन्द्र की घटाई जोमे फेरी आस धाई है
बच्छन के पाछे पर बाँधे मोर पच्छन के जमुना के कच्छन में नाचत कन्हाई है ॥८३॥

द्रोपदी की लाज काज द्वारका ते दौरि आए छूम छल छाड़ रखो अचंभो अथाइए
पेटहु में पेट मिलै राख्यो राजा परिछत हेर हेर हेर ही विरद सरनाइए
कहि कवि गंगु सब संसार जंजीर जेर जंजीरनि जरयो जुनु कैसे के छिड़ाइए
गिरि के धरन हार गैवर के रखपाल गरूर के असवार गरूर न लाइए ॥८४॥

पढ़्यो गुन्यो कीर न कुलीन हुतों हंस कुल छुयो गीध छुति हातो छाती छापे किए तो
तह्यो अजामेल हू से परम मलीन पापी सदा को सुरापी चरनोदक न पिए तो
गंगु कहै तारि केते आस में मुक्त कियो कालीनाग कहां ते तिलक मुद्रा दिए तो
दौरे हरि लोग ते हकार एक पायक्यों हाथी कहा हाथ तुलसी की माला लिए तो ॥८५॥
गाढ़े गहौ गहिर गुहारिऔ बिसारी कियो ऐ ही दीनबंधु अब दीन कहूं दलि गयो
स्ववन परत भनक पर डीठि धायो कमला को कंत अस्त्र-वस्त्र छाड़ि प्रभु वाहन बिचलि गयो
भनि कवि गंग ताके पाछे पछिराज धायो अतल वितल सुतल तलातलहू वितलि गयो
जो लो चक्रधारी चक्र चाहत चलाइवे को तो लो ग्राह ग्रीवा पे अगारू चक्र चलि
गयो ॥८६॥

दीनबंधु दीनानाथ द्रोपदी पुकार कहै वेदन विदित केषों विरद भुलानो है
दुखित प्रह्लाद जान संकट सहाय भये भक्त के प्रताप को न गिनो रंक रानो है
छाड़ि खगराज गजराज लाज काज धाए कहै कवि गंग केषों पौरुष पुरानो है
वेद भयो दूबरों कि नेह तज्यो दीनन सों चक्र भयो भातरो कि बाहन खुरानो है ॥८७॥

रहेगी न राज रजधानी न पवन पानी कहे वाक बानी जिमी आसमान जाइगो
संपत पताल सातोदीप की मसाल यह दुनिया को ख्याल चाँद सूर लो विलाइगो
जो कछू लिखी है सिष्ट करता ने आप ताहू सिष्ट करता जो सांस्क करता समाइगो
सदा सुख राम जस जानि कवि गंग कहे रहिवे के नाते राम नाम ठहराइगो ॥८८॥

कामनी कमलनैनी करै न रहसि कैलि कमला विसासनी विसेषि वामे दयो है
घर के रहत कोऊ घरि को न पूछे बात मानहुँ किंकिंधा बंधि सिंधु छोर छयो है
कहि कवि गंग तुम करनानिधान कान्ह कोटि जो हों एवदार और द्वार भयो है
तुमहि किये की लाज करै ही बनेगी राज गाहक ते गयो सो गुसाईहूँ ते गयो है ॥८९॥

जो कहो मीहन जू मथुरा में तो मंदिर में मढ़ई इक छाऊँ

जो कहो तो तुलसी तन माल तमालन बीच नचौँ अरु गाऊँ

स्वांग अनेक करौँ कवि गंग जु कैसुहु कान्ह तिहारो कहाऊँ

काल गहे कर डोलत मोहि कछू इक बेर खुशी कर पाऊँ ॥९०॥

यमुना-महिमा

रोग न रहत नेकु जैसे आछी औषध ते पाप न रहत जैसे हरि गुन गाए तें
तमु न रहतु जैसे अरुन उद्योत भए दारिद न रहे जैसे पारस के पाए तें
पितरउ भ्रमि भ्रमि नरक न परें जैसे गंगु कवि कहत सपूत कुल जाए तें
याही ते कालिदी सूर नन्दिनी वंदत लोग देखिए न जम लोक जमुना के न्हाए तें ॥९१॥

इक बार के न्हात पुजापन सों लिये जात जहाँ मन की गमना
सुनि के दुख दंद मिटे जिय के सनकादिक नारदहू समना
अब याते यहै व्रत धार वहै कवि गंग कहे सुनि रे मनना
जमुना जल नैन निहारत ही जम ना जम ना जम ना जम ना ॥९२॥

उपदेश-नीति

अकारन क्लेश करै ईर्ष्या में अंग जरै रंग देखि रीकै नहिं द्रिष्टि दोष खड़ो रहै
आप को ना करै काज पर को करै अकाज लोगन की छाड़ी लाज असूया में अड़ो है
मन बानी काया कूर औ कू सतावै सूर काम क्रोध हो हजूर विधना क्यों मड़ो है
कहत है कवि गंग साहिन के साहि सूर दुनिया में दुख एक दुर्जन को बड़ो है ॥९३॥

कहै ते समझ नाहिं समझाये समझै नहिं कवि लोग कहे काहि कै अवि सारसी
काक को कपूर जैसे मरकट को भूपन जैसे ब्राह्मन मक्का जैसे मीर को बनारसी

बहिरे के आगे तान गाए को सवार जैसे हिजरे के आगे नारि लागत अंगार सी
 कहै कवि गंग मन माहि तो विचारि देखो मूढ़ आगे विद्या जैसे अंध आगे आरसी ॥६४॥
 कुपात्र की प्रीतिहू कहा खादि बिन खेत जैसे प्रीति बिन मित्र वाकू चितहू न आनिये
 मति बिना मर्द औ नूर बिन नारी कहा अर्थ बिना कवि वाकू पसु ज्यों प्रमानिये
 तोपे बिना फौज कहाँ हस्ती बिन हौदा जैसे द्रव्य बिन देवे दान देव कर मानिये
 कहै कवि गंग सुनो साहिब के साहि सूर आदमी को तोल एक बोल में पिछानिये ॥६५॥

गंग कहै सुनि लीजो गुनी अरे मंगन बीच परो मत कोई
 बीच परो तो रहो चुप हूँ कर आखर इज्जत जात है खोई
 वामन के बलि के दरम्यान में आन भई जो भई गति जोई
 लेत हो कोई औ देत हो कोई पै सुक ने आख अनाहक खोई ॥६६॥

गंग तरंग प्रवाह चले तहं कूप को नीर पियो न पियो
 आइ हिंदै खुनाथ बसे तब और को नाम लियो न लियो
 कर्म संजोग सुपात्र मिले तो कुपात्र को दान दियो न दियो
 गंग कहै सुन साह अकबर मूरख मित्र कियो न कियो ॥६७॥

• गर्जहि अर्जुन हीत्र भये अरु गर्जहि गोविंद धेनु चरावे
 गर्जहि द्रोपदी दासि भई अरु गर्जहि भीम रसोई पकावे
 गर्ज बड़ी सब लोगन में अरु गर्ज बिना कोउ आवे न जावे
 गंग कहै सुन साह अकबर गर्ज से बीबी गुलाम रिक्तावे ॥६८॥

गुनी की रसना के बीच बसना फुलेलन को बोलै औ खोलै बिन कैसे कर जानिये
 जुरेंगे विरादरी महीपन की चारु जहाँ गुनी औ गंवार तहाँ कैसे पहचानिये
 मोती मोती एक रंग मोल भांति भांति कहै जौहरी के आए बिन कैसे कर मानिये
 कहै कवि गंग देखो भंवर कुरेवा दोऊ एक रंग डार बैठे जाति अनुमानिये ॥६९॥
 गोरे गोरे गालन सो कहाँ इतराती फिरै रंग तो पतिंग सो कालि उड़ि जायगो
 धूवाँ को सो धूंधरो सुउड़त न लागेवार नदी के किनारे रख कौ लौं ठहरायगो
 फूस की सी आग सो मुहाग धरी दोइ एक चोरीहू को माल कहा चौहरे बिकायगो
 कहै कवि गंग याते भूलि देख अंग प्यारी जीवन के गए मांस कूकरो न खायगो ॥७०॥

चंचल नारि सो प्रीति न कीजिये प्रीति किये दुख होत है भारी
 काल परे कछु आन वने कबु नारि की प्रीति है प्रेम कटारी

लोह के घाव दवा ते मिटे पर चित को घाव न जाय बिसारी
 गंग कहै सुन साह अकबर नारि की प्रीति अंगार ते छारी ॥१०१॥
 जट्ट न जानत भट्ट को भेद औ कुंभार का जानिहै भेद जगा को
 मूढ़ का जानिहै मूढ़ की बात में भील का जानिहै पाप लगा को
 प्रीति की रीति अतीत का जानिहै भेंस का जानिहै खेत सगा को
 गंग कहै सुन साह अकबर गिद्ध का जानिहै नीर गंगा को ॥१०२॥

जहाँ न चंदन होय तहाँ नहिं रहे भुजंगम
 जहाँ न तरवर होय तहाँ नहिं रहै विहंगम
 जहाँ न सत संतोष तहाँ आचार रहै किमि
 जहं नायिका समूह तहाँ व्रत सील रहै किमि
 परधान नहीं जिहिं राज में चोर साह नहिं अंतरौ
 वसिये न तहाँ कवि गंग कहि खरि गुर जहाँ पंटतरौ ॥१०३॥

ग्यान घटे कोउ मूढ़ कि संगति ध्यान घटे विन धीरज लाए
 प्रीति घटे कोइ गुंगे के आगे औ मान घटै नित ही नित जाए
 सोच घटे कोइ साधु की संगति रोग घटै कछु आँखद खाए
 गंग कहै सुन साह अकबर पाप घटै हरि के गुन गाए ॥१०४॥

तारा की जोति में चंद छुपै नहिं सूर छुपै नहिं बादर छाये
 रत्न चढ़्यो रजपूत छुपै नहिं दाता छुपै नहिं मांगन आये
 चंचल नारि के नैन छुपै नहिं प्रीति छुपै नहिं पीठ दिखाये
 गंग कहै सुन साह अकबर कर्म छुपै नहिं भभूत रमाये ॥१०५॥

नीति चले तो महीपति जानिये भीर में जानिये सील धिया के
 काम परे तब चाकर जानिये ठाकुर जानिये चूक किया के
 पात्र तो बातन माहिं पिछानिये नेन में जानिये नेह तिया के
 गंग कहै सुन साह अकबर हाथ में जानिये हेत दिया के ॥१०६॥

फूटि गए हीरा की विकानी कनी हाट हाट काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल के लया
 टूट गई लंका फूट मिल्यो जो विभीषन है रावन समेत वंस आसमान के गया
 कहै कवि गंग दुरजोधन से छत्रधारी तनक में फूटे ते गुमान वाकौ नै गया
 फूटे ते नरद उटि जात बाजी चौसर की आपसु के फूटे कहु कौन के भलो भयो ॥१०७॥

बाल से खयाल बड़े से विरोध विरानिहू नाहि से ना हंसिये
 अन्न से लाज अंगन से जोर अजानेहू नीर में ना धसिये
 वैल को नाथ घोड़े को लगाम सहस्ति कूं अंकुस से कसिये
 गंग कहै सुन साह अकबर कूर से दूर सदा बसिये ॥१०८॥

बुरो प्रीति को पंथ बुरो जंगल को वासे
 बुरो नारि को नेह बुरो मूरख सो हांसे
 बुरो सूम की सेव बुरो भगनी घर भाई
 बुरी नारि कुलच्छ सास घर बुरो जमाई
 बुरो पेट पंचाल हैं बुरो सूर को भागनो
 गंग कहै अकबर सुनो सब से बुरो है मांगनो ॥१०९॥

राजा राउ उमराउ कोऊ जो रिषाय आप ताहू सों बसाय गहि पाय बगसाइए
 और अंग वेदन को वेद बोलि लीजै गंगु देव भूत लाग्यो होइ दीया दिखराइए
 रूप की ठगोरी मेली डोरी यों जरत तनु ठोरी लागी मोह ने मोहनि जीभ नाइए
 ते तो ले परायो मनु सरग पतार मेल्यो तरुनीन तेरो नेकु तारा मंत्र पाइए ॥११०॥

पावक कूं जल बिंदु निवारक सूरज ताप कूं छत्र लियो है
 व्याधि कूं वैद तुरंग कूं चाबुक चौपग कूं ब्रख दंड दियो है
 हस्ति महा मद कूं किय अंकुस भूत पिसाच कूं मंत्र कियो है
 ओखद है सब को सुखकारि स्वभाव को ओखद नाहि कियो है ॥१११॥

लहस्सन गाँठ कपूर के नीर में बार पचासक धोइ मंगाई
 केसर के पुट देदे के फेरि सु चन्दन त्रिच्छ की छांह सुखाई
 गंग जू मोगरे माहिं लपेट धरी पर वास सुवास जु आपन आई
 ऐसे हि नीच कूं ऊँच की संगत कोटि उपाय कुटेव न जाई ॥११२॥

रजो गुन कहत हैं दीनन कूं जाने नहीं ताते बोलें बोल ताते तेल में नहायेंगे
 लाव लाव कहै कछु न्याव की न बूझे बात विगरसु न्याव सो बड़ीयें मार खायेंगे
 कहै कवि गंग सोते जीव दुखदायी सब मीड़ मीड़ हाथ के वे फेरि पछतायेंगे
 कहा भयो दिन चार गद्दी के मुसद्दी भये बद्दी के करैया सब रद्दी होय जायेंगे ॥११३॥

यश-गान

करन के खलकढा दधीचि के हडबैचा बलि के छलैया वीर मागने कहाए हैं
 कहि कवि गंग जाके द्वार जैए मागन के सुधौ कहै रामु मेरे द्वार कहा आए हैं
 जगत विदित जगदेव ही की बातें सुनि कुयस किवार कुल्लि कयिरनि लाए हैं
 कुरम कुलीन कुल उदाओत रामदास केन गुन गुनी धों तिहारे मन भाए हैं ॥११४॥
 अकबर साहजू के महाबली दान साह काहू पर तेग बांधी तेज भौहैं तक्कवै
 सिंघल के दीप कहू दीपन लगतु गंग दहै रिपु घर ही प्रताप ही के अक्कवै
 सोने सो सदन छाड़ि लौने से बदन गोरी रावन की मंदोदरी वन वन बक्कवै
 दक्खिन की ओर तेरी चादर की चाह सुनी चाहि माजी चांदबीबी चौकि भाजै
 चक्कवै ॥११५॥

अकबर साहजू के महाबली दानसाहि पूरब के पच्छिम पयाने कीजियतु है
 कहै कवि गंग दमामे की दीह धाकि सुनि अरिन के उर मानो आरा दीजियतु है
 घोरा हाथी आरावौहूँ भार भूप ताल पढै पन्नग कुवल छितधर छीजियतु है
 एते मान गरद में समद समयो गयो फलगू के तोप ज्यों खरोह लीजियतु है ॥११६॥
 अलकापुरी के पति लच्छ लच्छ जच्छ जाके हजार हुकुम नव निधि जाके घर हैं
 अजर अमर सुर तैतीसहूँ कोटि जाके हाथ जोरि ढाढ़े ऐसो इन्द्र लोक पर हैं
 कोटि कोटि जमदूत विकराल रूप जाके हवकारे हेरे जासो बचै कौन नर है
 कहै कवि गंग तू चक्कता के तखत तेरो साह पे हुमक लोकपाल बराबर है ॥११७॥
 आवत हुतौ सिव सैल ते गिरीस जांचे मिल्यो हुतौ मोहि जहाँ सागर सगर के
 कविन की रसना की पालकी में बैठी देख्यो साथ सोहै रावरो प्रताप तेज वर के
 गंग हम पूछी तुम के हो कित जैहो तब हम सों संदेसो उते कछौ बड़े थर के
 जस मेरो नाम मोहि दसो दिस काम मेरो कहियो प्रनाम हों गुलाम वीरवर के ॥११८॥
 कहै कवि गंग दानसाहि फौजें फरहरै थरहरै दिग्ग भूप थरहर थारी सी
 धुंधरी धरनि निधि संधि ओक मरनि उठी हैं धुंधरति दिसिदई है विचारी सी
 कलमरुथौ कमठ औ दलमली दंत पंति चलै दिगपाल पेलि पीयूष पनारी सी
 सटपट सेप के कटक में फटत फन मनिन की चट उचटति चिनगारी सी ॥११९॥

कीरत सिंह कुमार के त्रास मवास भजै तजि के रजधानी
 इंदुमुखी अरविंद से पाइनी कटक पाहरू माह परानी

वैरी कि नारि बिलक्कति गंग यों सूखि गये मुख, जीभ लुठानी
 काढ़ियै म्यान तै ओक करों पिय तै जु कह्यौ तरवारि में पानी ॥१२०॥
 कुलि आलम दिल्ली के बालम दानि चलै दर कूच दुनी दररी सी
 गंग छिपी रवि की छवि छार पहार भये चक्कूर चरी सी
 सोचति सोवत सेज सची अमरावति ते जनि जाति जरी सी
 टूटि गये छतना सै फना सब सेस रहयो छटि सेस छरी सी ॥१२१॥
 छाड़्यो गिरा को गुमान गजानन जानि पर्यो जग जानन होऊ
 कै जु रहै गुरु गूंगे को गंग सुरगुर औ असुरगुर दोऊ
 कहे जात न वीर बली त्रिप के गुन सौ मुख यों किन-से मुख होऊ
 ज्यों चतुरानन औ षडानन ज्यों सहसानन त्यों सब कोऊ ॥१२२॥

तान हृद मियां तानसेन बुद्धि हृद बलवीर

साह को साह अकबरा टोडरमल वजीर ॥१२३॥

दूरीभ्रित दरि गए दरिया उतरि गए दौरे दानिसाहजू के दरे दरखत हैं
 कहै कवि गंग हय हीसत प्रचंड रुद्र उद्धत संदेसे देखे रोम रोम हरखत है
 पौढ़े हुते कौरी कोरा छोड़े पिय जोरी चोरी गोरनि के नैना घोर धार बरसत हैं
 गरभ के गिरि गए गोदी के गिराय दए पलना के परे ते पहार परसत हैं ॥१२४॥

दान कृपान मुजानपनो तू जगत को जीतब जीतन आयौ
 गंग कहै सब साहिबी के अंग ते ही मनो पुरहूत पठायौ
 वीरबली त्रिप तेरी बराबरि और विरंचि न दूजो बनायौ
 साहू के सोच सिवाहू के सूल सचीहू के साध सपूत न जायो ॥१२५॥

दान दिलीपति के फुरमावत आवत भूप बंधे सुतरी हैं
 जे मिहरी दिहरी नहि नांघति ते गहरी नदियां उतरी हैं
 गंग किसोरनि कोरनि छांडि सुनी जिनकी बतियां तुतरी हैं
 नैननि नीर पयोधर छीन चली मनु पाहन की पुतरी है ॥१२६॥

दुसह विरह पीर तीर सी लगे समीर ऐसो न भरोसे कीजे काम कहा करेगी
 जोवन की जोति जाकी जीति की जगति कला औ कहा आह परा बांधि कौन लरेगी
 मानिनी के पाइ परो फेरि मनुहारि परो याके हंसि हेरे हियो आनन्द सो भरेगी
 दूँलह दराबखान मन दे मनैए मान मान कहां अंबर हू देखि तुम्हे डरेगी ॥१२७॥

देख देख खान सुलतान कहैं वाह वाह नेक ही की नजीर रोहाल फेरियत है
कहै कवि गंग दुज दीननि के दरबार ऐडी बैडी गतिनि गयंद घेरियत है
एकनि को मुहरे जराऊ जरवाव देत एकनि की विदा कर जोरि टेरियत है
देवे को बड़ाई कुल ऊदावत रामदास तेरे दिये माल को हमाल हेरियत है ॥१२८॥

दौरै तेरे दानयार दलहिं न वार पार पखरे पगंग वर बन्धक जै चारि के
हिमगिरि हेम गिरि गिरत गिरीस गिरि और गिरि गिरत गिराए गज भारि के
करवाकी कहां गंग तरवान तीते होहिं सरवान बूड़े रवाह नदी चारि के
टूटी बीची बीच बीच बलल बलल करे बेला छुटें वारिध बलूजा उठे वारि के ॥१२९॥

नाउ लिये घर ते निकस्यो कवि गंग कहै सहजान तिहारो
आइ के देख्यो है कल्पतरु अरु कामदुधा मनि चितति भारो
आज हमारी भई परिपूरन आस सबै कबहूँ नहिं वारो
लोभ गयो सिगरो चित ते अब ये भयो दारिद छेदन वारो ॥१३०॥

प्राची प्रतीची अवाची बिज्ञोकि दसो दिस होत ही कूंच कुचैनी
गंग कहै उमड़े घन ज्यों हय हृथिय पैदल सारथ सेनी
दूलह दान चढ़े रन को रिपु भूमि इकत्र गई रंग रैनी
सत्रुन के गढ़ टूटि भए फन फटि गये हैं फनिद के फैनी ॥१३१॥

वाने फहराने घहराने घंटा गजन के नाहीं ठहराने रावराने देस देस के
नग भहराने अरु नगर पटाने सुनि बाजत निसाने दान साह जू नरेस के
कुंकुम के कुंजर कसमसाने गंग भने भौन के भगाने अलि छूटे लट केस के
दल के दरारहू ते कमठ करारै फूटे केरा कैसे पात बिहराने सिर सेष के ॥१३२॥

बैठे दरीखाने बीच साह के समूह दल दोनों दीन बीच आन दई एक राखी है
रोस कर वचन कहे हैं मुअपालन ते सावन को बन्धन बधै न सत्य भाखी है
भनै कवि गंग भट्ट सोर महिमंडल में हाड़ा वंस वीर ने क्रिपान खोल राखी है
ठोकि भुजदंड पै प्रचंड सो जुम्मार सिंह बूंदी पति राखी सो तुम्हारें हाथ राखी है ॥१३३॥

मदनु विहद नद विंध्य से उलहत है कहैं कवि गंग ऐसे रोके रथ भान के
जोरावर जैतवार जग मन रंजन हैं अंजन से कारे भारे गंजन गुमान के
तुंडनि पसारि के पियुष कुंड पान करैं सुन्डनि सो पेलत महल मधवान के
देउत अमंद अति मन्दर से मंद गति ऐसे गजराज रामचंद्र जू के दान के ॥१३४॥

मार मची रनभूमि रची उमड़े दल साहि अकबर के
अदले बदले भई वारहिवार परे तरवारिन के भरके
कवि गंग तहाँ जुग टूटि परै फिरै रुंड भुसुंड बिना सिर के
सुमनौ रंगरेज के रावर मांह महावर के मथना ढरके ॥१३५॥

एक बचो सुर राज हथीय सुतावल बाडव और न होनो
और सवै बकसे बलवीर बचे रवि के रथ के हय दोनो
गंग कहै कर उन्नत देखि सुमंगन मौज गुनी तजि मोनो
लंक सुमेरु लुटाइ दई है रहयो मुख सालिगराम के सोनो ॥१३६॥

साहि अकबर के प्रबली बली दानि कियो धर पुष्प पयानो
गंग चले बनिवारन त्रिन्द दरी उदरे दरीया दहलानो
आगि को सेकु दे पानी को पोत बजी बर बम्ब जग्यो अकुलानो
खाइ प्रताप अचै अरि पानिप घौंस धुकार डकारत मानो ॥१३७॥

सिद्धि सिरी मानसिंह जी को कल कीरति विसद भई राज रहो जो लो तिरवेनी है
रावरी कुसल हम सिमुन समेत चाहें घरी घरो पल पल यहाँहू सुचेनी है
हुंडोएक तुम पै करी है हजार की सो कविन को राखो मान साह जोग देनी है
पुहुमी प्रमान भान वंस में सपूत मान रोक गिनि देने जस लेखे लिख देनी है ॥१३८॥

मालती सकुन्तला सी कोहै कामकंदला सी हाजिर हजार चार नटी नोल नागरे
ऐल फैल फिरत खवास खास आस पास चोवन की चहल गुलाबन की गागरे
ऐसी मजलिस तेरी देखी राजा वीरवर गंग कहै गूंगी हूँ कै रही गिरा भागरे
महि रह्यो मागधनि गीत रह्यो ग्वालियर गोरा रह्यो गोरना अगर रह्यो आगरे ॥१३९॥

बांधिबै कौ अंजलि बिलोकिये को काल दिग राखिबै को पास जिय मारिबै कौ रोस है
जारिबै को तन मन मारिबै कौ हियो आखें धारिबै को पग पग गनिबै को कोस है
खाइबै को सोहै भौहै चढ़िबै उतारिबै को सुनिबै को प्रानघात किए अपसोस है
वैरम के खानखाना तेरे डर वैरी बधू लीबै को उसास मुख दीबै ही को दोस है ॥१४०॥

नवल नवाब खानखाना जूतिहारी त्रास भागे देसपति धुनि सुनत निसान की
गंग कहै तिनहुँ की रानी रजधानी छाड़ि फिरै बिललानी सुधि भूली खानपान की

तेज मिली करिन हरिन भ्रिग बानरनि तितहुं की भली गई रच्छा तहाँ प्रान की
 सची जानी करिन भवानी जानी केहरनि भ्रिगन कलानिधि कपिन जानी जानकी ॥१४१॥
 हहर हवेली सुनि सरबु समरकन्दी धीर ना धरत धुनि सुनत निसाना की
 पच्छिम को ठाठ ठळ्यो प्रलय सों पलळ्यो गंग खुरासान अस्पहान लगे एक आना की
 जीवन उयीठे बीठे मीठे मीठे महबूब हिए भर न हेरियत अबट बहाना की,
 तौसखाने पीलखाने खजाने हरमखाने खाने खाने खबर नवाव खानखाना की ॥१४२॥
 नवल नवाव खानखाना जु रिसाने रस कीने अरि जेर समसेर सर सरजे
 मांस के पहाड़ सम सानु कर राखे सत्रु कीने घमसान भूमि आसमान लरजे
 सोनित की धार सों छुअत चन्द्रमा सों धार भारी भयों भेद रुद्रन गन के हाहा बरजे
 न्यारो बोल बोलत कपाल मुण्डमाल न्यारी न्यारो गजराज न्यारो भ्रिगराज गरजे ॥१४३॥
 प्रबल प्रचण्ड बली वैरम के खानखाना तेरी धाक दीपक दिसान दह दहकी
 कहै कवि गंग तहाँ भारी सुर वीरिन के उमड़ि अखंड दल प्रलै पोत लहकी
 मच्च्यौ घमसान तहाँ तोप तीर बान जले भंडि बलवान किरिवान कोपि गहकी
 तुन्ड काटि मुन्ड काटि जोसन जिरह काटि नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी ॥१४४॥

चकित भंवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल बन
 अहिफनि मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन
 हंस मानसर तळ्यो चक्क चक्की न मिलै अति
 बहु सुन्दर पद्मिनी पुरुष न चहें न करें रति
 खलमलित सेस कवि गंग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो
 खाननखान वैरम सुवन जिदिन कांप करि तग कस्यो ॥१४५॥

कस्या के तरनि तरनि के करन जैसे उदधि के इंदु जैसे भए यों जिजाना के
 दसरथ के राम औ स्याम के समर जैसे ईस के गनेस औ कमलपत्र आना के
 सिंधु के ज्यों सुरतर पौन के ज्यों हनुमान चंद के ज्यों बुध अनिरुद्ध सिंह वाना के
 तैसहि सपूत खान वैरम के खानखाना वैसेई दाराबखां सपूत खानखाना के ॥१४६॥
 नवल नवाव खानखाना जू तिहारे डर परी है खलक खेल मैल जहूँ तहूँ जू
 राजन की रजधानी डोलीं फिरे बान बान नेठन की बैठे बैठे भरे बेटी बहू जू
 यहूँ गिरि राहें परी समुद्र अथाहें अब कहै कवि गंग चक्रवली और चहूँ जू
 भूमि चली सेप धरि सेप चलयो कच्छ धरि कच्छ चलयो कौल धरि कौल चलयो कहूँ जू ॥१४७॥

४४१

राजे भाजे राज छोड़ि रन छोड़ि राजूत राउति छोड़ि राउत रलाई छोड़ि राना जू
कहै कवि गंग इत समुद्र के चहुँ कूल कियो न करै कबूल तिय खसमाना जू
पच्छिम पुरत ॥ ल कासमीर अवताल खखल को देस बाढ़्या भखल भगाना जू
रूम साम लोभ सोभ बजक बदाऊँ सान खैज पैत खुरासान खीमे खानखाना जू ॥१४८॥

ककुभ कुंभि संकुलहि गहरि हिम गिरि हिय फट्यव
दर दरै कुबेर वेर जिमि मेर पलट्यव
सरस कमल संपुट्य सूर आयवति पड्यव
गिरि गगनि निय गम्भ कंठ कामिनिय उचिट्यव
भनि गंग अरविय दब्य दिय दब्य कर दब्य गयौ
खानानखान वैरम सुवन जिदिन दखल दखिन दयौ ॥१४९॥

गंग गौछ मोछैं जमुन अधरन सरसुती राग
प्रकट खानखाना भयौ कामद बदन प्रयाग ॥१५०॥
जक्य व जीव जंग लिय चैन लद्धे न अद्ध छन
न गनि जात नागि नय नाग नायक उरिद गन
हक सरनि सरवर्दन तीर तरवारनि पत पर
हाइ हाइ हाहू धिहूलि लगगहि तिलंग नर
खानानखान वैरम सुव जदिन कुपि कर खग लिय
कलमलित सकल दखिन मुलक पट्टन पट्टन पट्ट किय ॥१५१॥

धमक निसान सुनि धमक तुरान चित चमक किरान मुलतान थहराना जू
मार मरदान कामर के करवान आदि मेवार के रान हिंदवान आनमाना जू
पूरव भगान पछमाध पलटान उतराध गुजरात देस अरु दखन दवाना जू
ओरवान हवसान हेहलान रुमसाम खैलमेल खुरासान चढ़े खानखाना जू ॥१५२॥

सप्त सिंधु सप्त दीप थहर थहर करै जाके डर दूटत अनूठे गढ़ राना के
मेर मरजाद छाँड़ि काँपत कुबेरहू से सुनि के निसान डका संका लंका थाना के
धरनी धमक कसमसक कसक गई सूके बसुवा के खंड खंड खुरासाना के
सेस फनि फूटे दूटि चकचूर भये चले पेस खाना जू नवाब खानखाना के ॥१५३॥

हमरे तो प्राननाथ साथ है नवाब जू के दखिन के ओर छोर जीति छिति लीनः है
बकसत सुनियत मोती माल माते गज हयनि की हेले दोनी निदाये नू दोनी है

ये सोषो पाइ सुख सुख के गंवायो दिन रेनिन कवति रतिपति रंग भीनी है
चकई के बेन सुनि व्याकुल है बूभे वाम तेरे हू पिया को खानिखाने मया कीनी है ॥१५४॥

कमठ पीठ पर कैल व्योल पर फन फन द फन
फनपति फन पर पोहम पोहम पर सत दीप गन
सत दीप मधि दीप इक्क जंबू जुग लखिखय
.....

खानखान बरहम्मं सुत तिहि पर तुव भुज कल्पतर

जगमगइ जगत पर खगग नर खगग अगग स्वामी तंवर ॥१५५॥

आमेर अवनिपाल भानुसुव जगन्नाथ कूरम रूहेलनि को धोंस तेरे पनि की
कीनो कोप करा करि होत तहाँ सरासरि भरा भरि बीतीं जहाँ पहिले गयानि की
जीरनि पराइ जेर गिरिन गिराइ गंग करिन चढ़ाई तन कारिख तपनि की
वरछी के वर अकबर के हुकुम वर तर तोरी जर सब ईसफ जपनि की ॥१५६॥

मुकत क्रिपान मयदान ज्यो उदोत भान एकन ते एक मनो सुखमां जरद की
कई कवि गंग तेरे बल की बयार लगे फूटौ गजघटा घन घटा ज्यों सरद की
एते मान सेनित की नदियाँ उमड़ि चलीं रही ना निसानी कहुं महि में गरद की
गौरी गह्यो गनपति गनपति गह्यो गौरि गौरीपति गह्यो पूंछि लपकि वरद की ॥१५७॥

गुंजर वै गम्भीर नीर निभ्भर निभ्भरियो

अति अथाह दाउहसाह बुन्दन उब्बरियो

धाम घुटि हिंद राम जाम जोहत हरि लीन्हो

हिन्दू तुरक तड़ाग सबै कंदव बिन कीन्हो

भनि गंग अकबर अक्क सम त्रिप त्रिपानि इमि कर करै

राना प्रताप रअना अरहि छिन डुब्बै छिन उच्छरै ॥१५८॥

हाथी चाहै सालबन सांप चाहै माथे भनि पानी को प्रवाह जैसे चाहै बेली पान की
संजोगिनी रैन चाहै जोगी जैसे जोग चाहै आतुर नायक जैसे चाहै मित मान की
चंदहि चकोर चाहै पिक घनघोर चाहै चकइहू चकवा ज्यो चाहै भेट भान की
हंस चाहै मानसर मोर चाहै मेघम्बर गंग चाहै नजर सलेम सुलतान की ॥१५९॥

आत्मचारित्रिक

कई बार इहि छिति छोटनि में छोट भयो कई बार छिति में छतीसा पायो नाऊं में
कई बार दैव लोक देवन में देव भयो देखि देखि देह दुख दुंदनि डराऊं में

कहै कवि गंग काहू ओर के सरन गए सरयो न कछू तो तुअ सरन समाज में
नाथ की सपथ तोहि त्रिपथ पावनी गंगा सुपथ लगाऊँ जैसे कुपथ न जाऊँ में ॥१६०॥

बांभन को जनमु जनेऊ मेलि जानि बूझि जीभ ही विगारिवे को याच्यो जन जन में
कहि कवि गंग काहा कीजै जोन जाने जातु वाउ ग्यान देखो जु बुढ़ाई ध्यान धन में
काम क्रोध लोभ मोह तिनही के बस पर्यो तिहुं पुर नायक विसार्यो तिहुं पन में
कालिमा के चलत कलापती ज्यों चेत होति केस आए सेतु हूँ न केसो आए मन में ॥१६१॥

एक दिन ऐसो जामें शिविका गज बाजि रहै एक दिन ऐसो जामें सोयवे को सहसो है
एक दिन ऐसो जामें गिलम गलीचा लागै एक दिन ऐसो जामें तामें को न पयसो है
एक दिन ऐसो जामें राजन सों प्रीति होत एक दिन ऐसी जामें दुस्मन को घहसो है
कहै कवि गंग नर मन में विचार देख आज दिन ऐसो जात काल दिन कयसो है ॥१६२॥

बास के संग तो नाक दई आंख दई जग देखन कूँ
हाथ दिये कछु करन कूँ कछु दान करन पांव दए प्रिथी फेरन कूँ
कान दिये सुनने कूँ पुरान ओ मुख जीभ दियो भज मोहन कूँ
है प्रभु जो सब आछो दियो पर पेट दियो पत खोवन कूँ ॥१६३॥

हंस तो चाहत मान सरोवर मानसरोवर है रंग राता
नीर की बुंद पपीहरा चाहत चंद चकेर के नेह का नाता
प्रीतम प्रीत लगाय चलै कवि गंग कहै जग जीवन दाता
मेरे तो चित्त में मित्त बसै अरु मित्त के चित्त की जान विधाता ॥१६४॥

कन्यादान लेत सब छत्रपती छत्रधारी हयदान गज दान भूमि दान भारी है
राजा मागै रावन पै राव मागे खानन पै खान सुलतानन पै भिछु छाक डारी है
भिच्छा ही के काजै कवि गंग कहै ठाढ़े द्वार बलि से त्रिपति तहां बावन बिहारी है
संपदा के काजै कहौ कौने नहीं औढ़्यो हाथ जहां जैसो दान तहां तैसोई भिखारी है ॥१६५॥

नटवां लों नटै न टरै पुनि मोदी सुडाड़िन में बहु भाव भरै
सजि गाजै बजाज अवाज म्रिदंग लों बांक्रिये तान गिनौरी लरै
पट धोबी धरै अरु नाई नरै सुतमोलिन बोलिन बोल धरै
कवि गंग के अंगन मंगन हार दिना दस तें नित त्रित्य करै ॥१६६॥

रफूट

विजया जो बिलार खाय स्वानहू के कान गहे स्वानहू जो खाय सो तो धावे गजराज को
गजराजहू जो खाय कोटि सिंह हाथ डारे बनिया जो खाय तो लुटाय देत नाज को
नामरद खाय तो मरद के से काम करे महरी जो खाय सो तो धावे काम काज को
कहे कवि गंग गुन देखो विजया के ऐसे चिड़िया जो खाय तो रफूट करे बाज को

॥१६७॥

देखत के त्रिच्छन में दीरघ सुभायमान कीर चल्थो चाखिवे को प्रेम जिय जग्यो है
लाल फज देखि के जटान मड़रान लागे देखत बटोही बहुतेरे डगमग्यो है
गंग कवि फल फूटे भुग्रा उभिरान लखि सबन निरास है कै निज ग्रिह भग्यो है
ऐसो पलहीन त्रिच्छ वसुधा में भयो पारो सेमर बिसासी बहुतेरन को टग्यो है ॥१६८॥

प्रथम दरे दरि फटक छटाकि दल मल तन धोए
उज्जल पानि पखारि किये दूरन पुनि चोए
कुच उतंग भुजदंड तरुन तधनिन सिल सारे
अद्रक लौन मिरीच तैल दधि तेज सुधारे
जिमनार सकल संसार कवि गंग अंत बगनत बरे
ते मानहु सुदधि समुद्र में चारु चंद्र चहलै परे ॥१६९॥

भये सुरामा किस्न हैं गंग वीरवल फेर
ता दिन में त दुल हते यही दिनन में बेर ॥१७०॥

भूख में राज को तेज सब घट गयो भूख में सिद्ध की बुद्धि हारी
भूख में कामिनी काम को तज गई भूख में तज गयो पुरुष नारी
भूख में कोउ व्यवहार नाहीं रहत भूख में रहत कन्या कुमारी
भूख में गंग नहीं भजनहू बन पड़त चारहू वेद ते भूख है न्यारी ॥१७१॥

बाकरवां विरचि विदर्भ देप मारयो गंग दलखान मारे मीर कंङ्गहू गोर के
दाही मीर मारि के हड़िव देस पेस कगी खान देस खोदि चित्र मंदिर मगेर के
पूय पछाह मरदाने मानसिह मारि कामिमवां खोदे है मवाय टोर टोर के
केसोदास मार मारि हरम मठ करी जैनखां जुनारदार मारे इकनौर के ॥१७२॥
कोप कास्मीर ते चल्थो है दल साजि वीर धीर ना धरत गल गाजिवे को भीम है
खुन्न होत सांफ ते बजत दंत आधी रात तीसरे पहर में दहल दै असीम है

कहे कवि गंग चौथे पहर सतावै आनि निपट निगोरो मोहि जान के यतीम है
बाढ़ी सीत संका कांपे कर है अत का लघुसंका के लागें ते होत लंका की मुहीम है ॥१७३॥

एक समै घर ते निकसी सखियान के संग सु सांवल सूरत
वामज नाज नमूद सनम वेताव शुदम अफजूद कदूरत
सुसकाय कै मोतन ताकि दियो तिरछी अखियाँ चितवन को मरूरत
होशम रफ्त न मुन्दबदस्त शुदी दिल मस्त जिदीदने सूरत ॥१७४॥

जा दिन ते जदुनाथ चले तजि गोकुल को मथुरा गिरधारी
ता दिन ते ब्रज नायिका सुन्दर रंपति भंपति कंपति प्यारी
नैनन तैं उनके सरिता भइ अंजन आसुं चल्थो बहिबारी
गंग कहे सुन साह अकबर ता दिन ते जमुना भइ कारी ॥१७५॥

दाख बड़े फल है सुखदायक काग भलै तो महा दुख पावै
मिछी अमोल बहेत मिठास में जो खर खावै तो प्रान नसावै
सीत बिना फल खाय छुहारे तो ताते तुरंग को तेज नसावै
गंग कहे सुनि साह अकबर सीख कुमानुष को नहिं भावै ॥१७६॥

लीलैहि लेत निसाचर से मुख प्राची दिसा कि पिशाच कि दारा
पीय पयान कि प्रान पयान पिकी पिक रोर क्रिपान कि धारा
गंग बसंतकि अन्तक सीत समीर कि तीर तरन्य कि तारा
जोन्ह कि ज्वाल म्रिनाल की व्याल सखी घनसार कि सार कि आरा ॥१७७॥

गुंजत कुंज मधुव्रत पुंज सरोज के सौरभ की सरसाई
गंग सु प्रानपती को पयान भरों केहि भाँति वियोग दसाई
कोकिल बोलत बागही बाग बसंत के वासर सों न बसाई
चैत की चांदनी के चितये तन कैसे के छाड़िगो काम कसाई ॥१७८॥

में तब उत्तर दीनों हुतो जब दूती दु तीन बुलावन आई
गंग सु तो मनमोहन आन अचानक बैठि रह्यो टिग बाँई
मैं कहूँ सोनि निहार्यो उतै उनमें छवि काम की कोटिक पाई
मान को स्वांग न नैक रह्यो सब आग गयो ढरि रांग की नाई ॥१७९॥

प्यारे लाल जिनमें है मोलू को न थाह पै अथाह कुलकांनि के समुद्र परिहारी है
 भौहनि भँवर मध्य तरि निकसत याते महाबली धूँघट ते टरति न टारी हैं
 पूतरी मलाह जुग जाने कवि गंग जिय आने नहीं यहै नेम देखे मतवारी हैं
 खेइवो कटाछ बादवानन को होत कैसे लाज भरी अंखियां जहाजहू ते भारी हैं ॥१८०॥

एक समै त्रिषभानु सुता हरि ठाढ़े हुते बन कुंज कुटी तर
 गंग कहै धनकी घहरान सु बात सघातन जात बनै घर
 लीने दुकूल दबाय तिही ललना ललना कहि आज भले घर
 मानों विलथल के दल को उड़्यो भौर वधू बिधु के पर ॥१८१॥

केस पर सेष द्रिग चलन पर खंजनी भौह पर धनुष धरि सुरति सारों
 दसन पर दामिनी कंठ पर कोकिला अधर पर विम्ब रहि रहि सम्हारों
 जंघ पर कदलि कटि छीन पर केहरी कुचन पर मेघ महामंड टारों
 जोति पर जोति छवि अंग पर गंग स्त्री राधिका नखन पर चंद्र वारों ॥१८२॥

छार भरे छरहरे छग जे छरक वारे छाये हैं छविनु छय्यनु छाइयतु हैं
 ताव गीर तर जोर तरुन तरहवार तराइल सहित में गाइ धाइयतु हैं
 गंग कहै ऐसे गज बकसत घरी घरी जैसे गज मोदधि मघेई पाइयतु हैं
 भीष की निकाई भीष देत अैसे रामदास किधौ उमराहनि उमाहैं लाइयतु हैं ॥१८३॥

उदित प्रताप उदै साहि के प्रताप साहि रोस सुनि काहिर ही कुवति कुबंड में
 गंग कहै धनपति त्रिपति विकल मति लंकहू को अधिपति विपति वितंड में
 कुंडली कमठ कोल भूमि गोल हाल डोल परत पतौवा जैसे पवन प्रचंड में
 देखिए खुमान राग गंग तेरे पास मान भासमान भाजि पैछो आसमान खंड में ॥१८४॥

साहिबी की हद तू ही साहिब सुमति तू ही साह को सुहेलो तू ही संपति को धाम है
 तूही दान तूही जान बलवीर खान तूही ललनान उर लागत ललाम है
 कहै कवि गंग तैं अकेलो जान्यो खानखाना ऐसे खाये खरचे खजाने खोले काम है
 नवों निधि नौ रसन निरखि निवाजे तातैं नवल नवाब तेरी नौऊं खंड नाम है ॥१८५॥

दलहि चलत हलहलत भूमि जल थल जिमि चल दल
 पल फल खलखल भलत विकल बालाकर कुल कल
 जिव पट्टहि ध्वनि युद्ध धुंधु धुद्धुव धुद्धव हुव

भनि गंग प्रवल भिर चलत दल जहांगीर तुव भार तल

कुं कुं फरिदं कुं न-कुं करत सहस गाल उगिलत गरल ॥१८६॥

साह सो सलाम करि मार्यो है सलावत खान नैक न सम्हार्यो बोल राख्यो ठोर ठाकरो
केते केते मीर मारे केते केते कंपू ठाड़े खेलत सिकार जैसे म्रिगन में बाघरो
कहै कवि गंग गजसिंह के अमरसिंह राखी रजपूती ते नवल नर नागरो
पाव सेर लोह ते हिलाई सारी बादसाही हो तो समसेर तो छिनाय लेतो आगरो ॥१८७॥

एक समय प्रभु भावन बावन संत उपावन देह धरी
बलि को छल के प्रभु राज लियो तिहुँ लोक कि तीनहि पैडकरी
तिनके कर दंड हुतो सो बढ़यो भुवदान दियो लियो मांग हरी
कवि गंग कहै ये अचंभ लखो बिन पल्लव पेड़ बढ़ी लकरी ॥१८८॥

सूरदास मदनमोहन के पद^१

जसोदा मैया लाल को मुलावे

आछे बारे कान्ह को हुलरावे

कनियां कनियां अइयां अइयां यों कहि लाल लड़ावे

हुलुलुलु हुलुलुलु हां हां हां हां कहि के गोद लीये खेलावे

दोउ कर पकर जसोदारानी उमकी पाय धरावे

घननन घननन घुघरू बाजे मांमरीयां ममकावे

सूरजदास मदनमोहन को येही भांत रीमावे

मं मं मं मं पप् पप् पप् चच् तत् ता येई यह बिधि लाड़

लड़ावे ॥१॥

छबीली नागरी अहो रूप की आगरी मेरो मन मोहि लीयो

दधि को दान लेहों प्यारी तब तुमही जान देहों

ओर सखिन कों जान दे तु सुनि न्यारी है बात

रहरह डोटा नंद के कित एतो इतरात

उक्त छंद-संख्या १७६-१८८ तक पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा संपादित महोक्वि श्री गंग
के कवित्त नामक पुस्तक से उद्धृत किये गये हैं ।

१ कीर्तन-संग्रह, वर्षात्सव के कीर्तन से उद्धृत ।

वरजि सखा आपने ये करत अति अति अनीत
 दधि भाजन पटकत हे भटकतहैं नई रीत
 घेरो किन ठाड़ी करी उतरतहीं घाट
 दान के मिस लूटत हो नित अवलन की बाट
 दान काल्हि ले आवही हमदान निवेरें काल्ह
 बूमो जाय नंद बाबा सों कवते हे यह चाल
 दधि माखन सबहीन के सबे डार तुम देहो
 एको बूंद न देहों तब जब नाम दान को लैहो
 मिसहीं मिस भगरत हो दिन गयो दन मांभ
 अदल बदल मन लियो ही उलटि चली घर सांभ
 परी प्रीति गांठि हिदै छोड़ी नहीं अब जाय
 मुख रिस मन आनंद इत उत परत न पाय
 दधि लीयो सब नन्दलाल दई सुत की रास
 मन हरि को सब हर लियो परी प्रेम की पास
 ब्रजवधू मानो ध्वजा वसन रही तन फहेरात
 सूरदास मदनमोहन पिय पाछें चले जात ॥२॥

सखियन संग राधिका कुंवरी बिनति कुसुम कलियाँ
 एक ही वानिक एक वेस क्रम स्यामवाल के हाथन रंगीली डलियाँ
 एक अनूपम माल बनावत एक परस्पर बेनी गूथत सोभित कुन्द कलियाँ
 सूरदास मदनमोहन आय अचानक ठाड़े भये मानी है रंगरलियाँ ॥३॥

आइ हुं अकेली आज सांझी के कुसुम लेन भलो मिल गयो तू मोपें जात घर गायले
 बरखत धनघोर मेह तामें कछु नहिं सुकृत चुन्दरी चटक रंग नीरते वचाय ले
 चपला चमक अचक चौंधी ते करत हो अरे वीर मोह अंग संग क्यों न लगाय ले
 सूरदास मदनमोहन तुम कहावत सुजान छोड़ मान तज सयान कामरी उढ़ाय ले ॥४॥

अरुझी कुंडल लट बेसरिसों पीत पट वनमाला बीच आन अरुझेहैं दोउ जन
 नयन सों नयना प्राननसों प्रान अरुझि रहे चटकीली छवि देख लटपटात स्याम धन
 होड़ा होड़ी त्रितय करे रीझ रीझ आंकोभरे ततयेई ततयेई रटत मगन मन
 सूरदास मदनमोहन रास मण्डल में प्यारी को अंचल लेले पोंछत हैं स्रम कन ॥५॥

चलिये जू नेकु कौतुक देखन० रच्यो हे रासमण्डल राधे हों आई तुहों लेन
 म्रिग मद धसि अंग लगाये मुकुट काछनी बनाये मुरली पीतांबर विराजत यह छवि मोपे
 कही न परे बेन
 सब सखी मिल नाचे गावे ताल म्रिदंग मिल बजावें त्रितय करे मध्य मूरति मेन
 सूरदास मदनमोहन हसत कहाहो जु पांऊ धारिये जोपे सुख दीयो चाहो नेन ॥६॥
 मोहन लाल के संग ललना सोहे जैसे तरु तमाल की ढिग फुलसो न जरद को
 वदनक्रांति अनुप भांति नहि समात निलांबर गगन में जैसे प्रगट्यो ससि पूरन सरद को
 मुक्ता आभूषन दुति धिबित अंग अंग चूने मिले रंग दूनो होत जैसे हरद को
 सूरदास मदनमोहन गोहन की छवि बाढ़ी मेटत दुख निरखी नेन मेन दरद को ॥७॥

प्यारी तु मोहनलाल रिक्कावत मधुरि मधुरि तानन गावत सुख समुह बढ़ावत
 तेरे गुन रूप की सम नाहि कोउ आवे री उपमा को तुहि अंत न पावत
 प्यारी जब तू भ्रिकुटि भंग कोटिक काम लजावत
 कोक कला संगीत निपुन उधटत त्रवट गति ततथै ततथै थै थै म्रिदंग बजावत
 सूरदास मदनमोहन रिक्कि दीयो है अपने यों बन त्रिन्दा की रानी कहावत ॥८॥
 नंदनंदन सुधर राय मोहन बंसी बजाइ सारीगम पधनी सप्त सुरन मिलि गावे
 अति अनाधाति संगीत सरस सुर नीके अवधर तान मिलावे
 सुराध्याय तालाध्याय त्रित्याध्याय निपुन लघु गुरु तजि जति पुलक भेद म्रिदंग बजावे
 सूरदास मदनमोहन सकल कलागुन प्रवीन आपुन रिक्कि रिक्कावे ॥९॥

आज अति आनंद ब्रजराय

धन्य दिवस वन चलत प्रथम दीन कान्ह चरावन गाय
 नव पीतांबर लकुट मुरलिका ओर अखंड बनायो प्रीत सहित
 अवलोक ग्रहत हरि मात पिता के पाय
 गोरोचन दूध दही रोरी माथे अञ्छत लाये
 निरखत सुख पावत गोपीजन जननी लेत बलाये
 ग्वाल विमल भये मिलत परस्पर घर घर ते सब धाये
 सूरदास मदनमोहन सुन मुदित जसोदा माथे ॥१०॥

जोवन मोर रोमावली सुफल फली कंचुकी बसंत ढांपि ले चली बसंत पूजन
 वरन वरन कुसुम प्रफुलित अंब मोर ठौर ठौर लागे री कोकिला कूजन

विविध सुगन्ध संभारि अरगजा गावत रितुराज राग सहित ब्रजबधू बन
सूरदास मदनमोहन प्यारी ओ पिय सहित चाहत कुसल सदा दोऊ जन ॥११॥

भूलत जुग कमनीय किसोर सखी चहुँ ओर भुलावत डोल
उँची ध्वनि सुन चक्रित होत मन सब मिल गावत राग हिंडोल
एक वेष एक वयस एकसम नव तरुनी हरनी द्विग लोल
भांत भांत कंचुकी कसें तन वरन वरन पहरे बलि चोल
वन उपवन द्रुमवेली प्रफुल्लित अंब मोर पिकनि कर कलोल
तैसे ही स्वर गावत ब्रजवनिता भूमक देख लेत मनमोल
सकल सुगंध संवार अरगजा आई अपने अपने टोल
एकतक पिचकारिन छिरकत एकभरे भर कनक कचोल
कबहुँ स्याम पीय उतर डोलते कौतुक हेत देत झकझोल
तब प्रिया डर भरि स्वास कंप तन विरमु म्रिदु बोल
गिरत तरौना गहो स्याम कर खवन देन मित छुअत कपोल
तब प्रिय ईषद मुखक मंद हस वक्रचिते कर मुँह सलोल
भेरि झाँझ दुंदभी पखावज औ डफ आवज वाजत डोल
आए सकल सखा समूह गुर हो हो होरी बोलत बोल
रत्न जटित आभूषन दीने मुक्ताहार अमोल
सूरदास मदन मोहन प्यारे फगुवा दे राख्यो मन ओल ॥१२॥

राजा आसकरण के पद^१

कीजै पान लला रे ओठ्यो दूध लाई जसोदा मैया
कनक कटोरा भर पीजे ब्रजवाल लाड़ले तेरी बेनी बढेगो मैया
ओठ्यो नीके मधुरी अछूतो रुचिसा करी लीजै कन्हैया
आसकरन प्रभु मोहन नागर पय पीजै सुख दीजै प्रात करोगी वैया ॥६॥

वियारु करत है घनस्याम

खुरमा खाजा गुंजा मठरी पिस्ता दाख बदाम
दूध भात घित खानि थारभरि ले आई ब्रजवाम
आसकरन प्रभुमोहन नागर अंग अंग अभिराम ॥३॥

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, राजा आसकरन की वार्ता से उद्धृत ।

मोहन लाल वियारू कीजै

व्यंजन मीठे खाटे खारे रुचि यों भाग जननी पे लीजै
मधु मेवा पकवान मिठाई ता उर तातो पय पीजै
सखा सहित मिली जे भो रुचि सों जूठन आसकरन को दीजै ॥३॥

पोढ़ीये पिय कुंवर कन्हाई

युक्ति नवल विविध कुसुमावलि में अपने कर सेज बनाई
नाहिन सखी समय काहू को ग्वालमंडली सब बौराई
आसकरन प्रभु मोहन नागर राधा कों ललिता ले आई ॥४॥

तुम पोढ़ो हौं सेज बनाउँ

चापूँ चरनरहुं पांयन तर मधुरें स्वर केदारो गाउँ
सहचरि चतुर सवे जुरि आई दंपति सुख नयनन दरसाउँ
आसकरन प्रभु मोहन नागर यह सुख स्याम सदा हौं पाउँ ॥५॥

पौढ़ रहो घनस्याम बलैया लेहूँ

खमित भये हो आज गा चारत घोष परत है धाम
सीरी वियार म्मरोखन के मग आवत अति सीतल सुख धाम
आसकरन प्रभुमोहन नागर अंग अंग अभिराम ॥६॥

मोहन देखि सिराने नैना

रजनी मुख आवत गायन संग मधुर बजावत ब्रैना
ग्वाल मंडली मध्य विराजत सुंदरता को ऐना
आसकरन प्रभु मोहन नागर वारों कोटिक मैना ॥७॥

प्रात समय पर घर घर ते देखन को आई गोकुल की नारी
अपनो किसन जगाय जसोदा आनन्द मंगल कारी
सब गोकुल के प्रान जीवनधन या सुत की बलिहारी
आसकरन प्रभु मोहन नागर गिरि गोवर्धन धारी ॥८॥

उठो मेरे लाड़ लाड़िले रजनी बीती तिमिर गयो भयो भोर
घर घर दधि मथनिया घूमे अरु द्विज करत वेद की घोर
करि कलेउ दधि ओदन मिस्त्री बांछि परोसों ओर
आसकरन प्रभु मोहन नागर वारों तुम पर प्रान अंकोर ॥९॥

मोहै दधि मथन दे बलि गई

जाउ बल बल वदन ऊपर छाँड मथनी रई

लाल देउंगी नवनीत लौंदा आर तुम कित ठई

सुत हित जान बिलोक जसोमति प्रेम पुलकित मई

लै उछंग लगाय उरसो प्रान जीवन जई

बाल केलि गुयाल जू की आसकरन नित नई ॥१०॥

यह नित्य नेम जसोदाजू मेरे तिहारोई लाल लड़ावन कुं

प्रात समय उठ पलना फुलाउ सकट भंजन जस गावन कुं

नाचत क्रिस्न नचावत गोपी करकटताल बजावन कुं

आसकरन प्रभुमोहन नागर निरख वदन सचु पावन कुं ॥११॥

नंद किसोर यह बोहनी करन न पाई

गोरस के मिष रसहि ढंढोरत मोहन मीठी तानन गाई

गोरस मेरे घरहि बिकेहै क्यों ब्रिन्दावन जाय

आसकरन प्रभुमोहन नागर जसोमति जाय सुनाय ॥१२॥

राजा टोडरमल के छंद^१

हुंडी

ऊपर लिखे निवास सब रक्खे मुद्दत होय

चलन निशां अन्दाज धन हुंडी कहिये सोय

हुंडी खोये पैठ लिख पैठ गये पर पैठ

सनद एक के दाम दे रोकड़ खाता डेट

जो हुंडी सिकरे नहीं जिकरी लिखै बनाय

हुंडी कोरी पीठ ले तब धन देय चुकाय ॥

सराफ और व्यापारी के लक्षण

हुंडी लिखै न हाथ से जमा न रक्खे भूल

लेय व्याज देने नहीं सोई सराफी भूल

जग सराफ ताको कहे जमा समय पर देय

व्यापारी सो जानिये समय पै मुद्द लेय ॥

^१ कवि-विनोद नामक प्रकाशित ग्रंथ से उद्धृत ।

चौधरी के लक्षण

धारा बाँच्छे बांट हाकिम रैयत मानही
सो चौधरि का ठार ताके सकल अधीन हों ॥

अढ़तिया के लक्षण

साफ हिसाब किताब हो रोव सिताबी काम
कर्म धर्म अरु मर्म हो संचित धन औ धाम ॥

साहूकार के लक्षण

आधा ऊपर आधा तरे आधा देय साह के गरे
आधे में आधा निस्तर जुग टर जाय साह नहि टरै ॥

सराफा

प्रथम बनारस आगरा दिल्ली औ गुजरात
अगर औ अजमेर से सिलै सराफी बात ॥

बहीखाता

बाम जमा दन्छिन खरच सिर पेटा पर पेट
ऊपर नाम धनी लिखे हस्ते पुन रौ डेट ॥

बहीखाता शोघ्रता से लिखा जा सके इसलिये कहा जाता है कि देवनागरी लिपि के सांकेतिक रूप मुड़िया का प्रचार संभवतः इन्होंने ही किया था :—

देवनागरी अति कठिन स्वर व्यंजन व्याहार
ताते जग के हित सुगम मुंडा कियो प्रचार ॥

सहायक-ग्रंथ-सूची

प्रकाशित

हिन्दी:—

१. अकवरी-दरवार, भाग १, २, ३, आज्ञाद, अनु० रामचन्द्र वर्मा, संवत् १९८१, १९८२, १९९३ क्रमशः
२. अश्वनी-चरित्र, लालजी, सन् १९२६
३. अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, डॉ० दीनदयालु गुप्त, संवत् २००४
४. कविप्रिया, केशवदास, सन् १९२४
५. कवि-विनोद, विश्वंभरनाथ खत्री, संवत् १९८३
६. कविता-कौमुदी, भाग १, रामनरेश त्रिपाठी, सन् १९४६
७. काव्य-कल्पद्रुम, भाग १, २, कन्हैयालाल पोद्दार, संवत् १९९३, १९९८ क्रमशः
८. काव्य-निर्णय, भिखारीदास, टीका० महावीरप्रसाद मालवीय, सन् १९३७
९. खानखानानामा, भाग १, २, मुंशी देवीप्रसाद, संवत् १९६६
१०. खेटकौतुक जातकम्, नवाब खानखाना, टीका० पं० नारायणप्रसाद सीताराम शर्मा, संवत् १९९६
११. खोज-रिपोर्ट, सन् १९०१, १९०३, १९०६-१९०८, १९३२-१९३४ वार्षिक
१२. चौरासी वैष्णवन की वार्ता, गोकुलनाथ, संवत् १९८५
१३. डिगल में वीर रस, पं० मोतीलाल मेनारिया, संवत् १९९७
१४. तुलसीदास, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, सन् १९४८
१५. दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता
१६. वरवै-नायिका-भेद, श्री प्रभुदयाल मीतल
१७. बिहारी बोधिनी, बिहारी, टीका० लाला भगवानदीन, सन् १९४६
१८. भक्तमाल, नाभादास, टीका० प्रियादास, सन् १९३७
१९. मआसिरुल उमरा, अनु० श्री ब्रजरत्नदास, भाग १, २ संवत् १९८८, १९९५ क्रमशः
२०. मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, श्री अल्लामा अब्दुल्लाह यूसुफ अली, सन् १९२९
२१. मशकवि गंग के कवित्त, संपादक पुरोहित हरिनारायण शर्मा
२२. मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, २, मिश्रबंधु, संवत् १९१४
२३. मुगल-बादशाहों की हिन्दी, पं० चन्द्रवली पांडे, संवत् १९९७
२४. मूल-गुसाई-चरित्र, बाबा वेणीमाधवदास, संवत् १९९३

२५. रस-कलश, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध',
२६. रहीम-रत्नावली, पं० मयाशंकर याज्ञिक, संवत् १९८५
२७. रहिमनविलास, ब्रजरत्नदास
२८. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पं० मोतीलाल मेनारिया
२९. राजा बीरबल, वल्लभ भट्ट, संवत् १९८४
३०. राजा बीरबल, मुंशी देवीप्रसाद, संवत् १९५८
३१. वागविलास, कवि सेवकराम, सं० पं० श्रीकृष्ण शर्मा
३२. वैराग्यशतक-पञ्चीसी, देव, सन् १९१६
३३. शिवराज भूषण, भूषण, सन् १९२१
३४. शिवसिंह-सरोज, श्री शिवसिंह सेंगर, सन् १९२३
३५. संगीत-राग-कल्पद्रुम, भाग १, २, कृष्णानंद व्यास, संवत् १९७३
३६. हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों की संक्षिप्त विवरण, संवत् १९८०
३७. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, सन् १९३८
३८. हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, संवत् १९९७

अंग्रेजी:—

१. अकबर दि ग्रेट मुगल, श्री विलेन्ट स्मिथ, सन् १९१९
२. अकबरनामा, भाग १, २, ३, अबुलफजल, अनु० बेवरिज, सन् १९०७, १९१२
३. आइने-अकबरी, भाग १, २, अबुलफजल, अनु० ब्रलाकमैन, सन् १८७३ ग्लैडविन १८००
४. इंडियन पेंटिंग्स अंडर दि मुगल्स, भाग १, परसी ब्राऊन, सन् १९२४
५. ए शार्ट हिस्ट्री आव् इंडिया, डॉ० ईश्वरीप्रसाद, सन् १९३६
६. जेस्विट्स एन्ड दि ग्रेट मुगल, सन् १९३२
७. तबकाते-अकबरी, निजामुद्दीन, अनु० दे, सन् १९३६
८. तुजुक-जहाँगीरी, जहाँगीर, भाग १, २, अनु० अलेक्जेंडर रोजर्स, सन् १९०९, १९१४ क्रमशः
९. दि इम्परर अकबर, अगस्टस फ्रेडरिक, सन् १९४१
१०. दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, सन् १९३८
११. दि लाइफ एंड वर्क्स आव् अमीर खुसरो, डॉ० मोहम्मद वहीद मिर्जा, सन् १९३५
वैष्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता
१२. दीनेइलाही, श्री माखनलाल रायचौधरी, सन् १९४१
१३. नेशनल फ्लैग एंड अदर एसेज, डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, न् १९४४
१४. प्रोमोशन आव् लर्निंग इन इंडिया ड्यूंग मुहम्मडेन पीरियड, श्री एन० एन० लॉ,
सन् १९१६
१५. मेडिवियल इंडिया, डॉ० ईश्वरीप्रसाद, सन् १९४२

१६. मेडिवियल इंडिया, श्री लनपूल, सन् १९२५
१७. मुंतखबुतवारीख, अनु० लो, सन् १९२४
१८. राजस्थान, टॉड, सन् १८७९
१९. रेलीजस पालिसी आव् मुगल इम्परर्स, पं० श्रीराम शर्मा
२०. हिन्दी लिटरेचर, श्री एफ० इ० के
२१. हुमायूंनामा, गुलबदन बेगम, सन् १९०८

संस्कृतः—

१. अभिज्ञान शाकुन्तलम्—कालिदास
२. काव्यादर्श-आचार्य दंडी
३. रघुवंश, कालिदास
४. साहित्य-दर्पण, टीका० शालिग्राम शास्त्री, संवत् १९९१

गुजरातीः—

१. ब्रह्म-भट्ट-दर्पण, नरसिगदास, संवत् १९८०

फ़ारसीः—

१. मआसिरे-रहीमी, अब्दुल-बाक़ी, भाग १, २, ३, सन् १९२५, १९८७ क्रमशः

उर्दूः—

१. दरबारे-अकबरी, मौलाना शम्शुलउल्मा आज़ाद, सन् १९२७

पत्र-पत्रिकाएँः—

१. विश्ववाणी, अकबर अंक, नवम्बर १९४२, इलाहाबाद
२. विशाल-भारत, कलकत्ता
३. संगीत-कला, विलावल अंक, संगीत कला भवन, लखनऊ, ग्वालियर
४. संगीत मासिक, ध्रुपदांक, हाथरस, सन् १९३९
५. सरस्वती, बनारस
६. हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका, प्रयाग
७. हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

हस्तलिखित—

१. अभिनय-नृत्यार्णव, पं० राजाराम द्विवेदी 'सुरंग'
२. नरहरि के छप्पय और कवित्त, पं० शिवादीन भट्ट (बाराबंकी)
३. रुक्मिणी-मंगल, नरहरि, राज-दरबार पुस्तकालय, काशी
४. संगीत-सार, तानसेन, राज-दरबार पुस्तकालय, रीवां
५. हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ, कांकरौली
६. हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ, नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी,
७. हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ, याज्ञिक-संग्रहालय

शुद्धि-अशुद्धि

पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध
३ १ गलकुंडा	गोलकुंडा	५२ फु० २ ४०३	४५२-५३
३ २३ व्यावहारिक	व्यावहारिक	५३ ७ विन	विन
१० १९ दोन	दोनों	५५ फु० ४ सत्र	सूत्र
११ १७ निर्देश	निर्देश	६४ „ सन् १५८	सन् १५६
१३ फु० अकवरी दरवार		६७ १७ इमिहिंडोल	इमि हिंडोल
१ पहला भाग पृ० ×		६७ २१ दत्र	हम
२१४-२१५		६८ ४ मुअपति	भुअपति
१६ ४ वश्वास	विश्वास	६८ २३ सोरन	सेरन
१६ ८ अकवर	अकवर	७० २ ही	×
१६ फु०		६८ ५ लोम	लोभ
१-२ विधापक	विधायक	६८ ८ की	का
१७ २६ सम्बध	सम्बंध	७२ ८ को	की
२१ २५ कवियो	कवियों	७४ १६ अकरन	असरन
२५ २ अबुदुलफज्जल	अबुलफज्जल	७४ २३ कोइ	केहि
२५ ११ व्यापकता	की व्यापकता	७५ १ संकेत	उल्लेख
२५ २५ का	की	७५ २-३ प्रमाणिकता	प्रामाणिकता
२६ ५ है	हैं	७५ २७ जहांगिरवां	जहांगिरवा
२६ ९ हो	हों	७६ ८ काता	जाता
३१ फु० १,		७६ २२ यधार्थ	यथार्थ
पंक्ति ७ पर	पट	७७ ६ जाति,	जाति
३२ २५ क्रोध	क्रोध	७७ ६ जन्म-अस्थान	जन्म-स्थान
३३ ६ नेवि	कवि	७८ ८ निरख	निरखे
३३ १४ हैं	है	७८ ९ फटके	फरके
३५ १५ की	×	७९ १३ प्रेमाणिक	प्रामाणिक
३५ १५ जिसका	जिसकी	८१ १० अप्रमाणिक	अप्रमाणिक
४७ १६ उ... ध	उपलब्ध	८७ १६ दिया	दिया है
४८ ३ शब्दावल...	शब्दावली में	८७ १६ दिय	दिया
४८ ७ द्वारा	द्वार	८७ फु० २	
		पंक्ति १ और	ओर

पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध
८९ फु०		११६ १५ वत्	संवत्
२ म	में	११७ २३ भीर	मीर
९० १ उफ	डफ	१२८ १ वरदाने	मरदाने
९१ ७ कों	को	१३१ २ को	के साथ
९१ १८ गुसाइ	गुसाई	१३१ १० प्रमाणिकता	प्रामाणिकता
९२ ५ यथेष्ट	यथेष्ट	१३२ ७ वाशाही होती	बादशाही होती
९३ १२ यथेष्ट	यथेष्ट	१३२ २५ प्रमाणिकता	प्रामाणिकता
९५ १० मुख	मुख	१३३ १ अप्रमाणिक	अप्रामाणिक
९६ १ का	को	१३३ २ अप्रमाणिक	अप्रामाणिक
९६ २३ वाजि	वाजि	१३३ २२ उससे	उस
९७ २ भी	भी अधिक	१३४ ५ यथेष्ट	यथेष्ट
९९ १३ ववेचन	विवेचन	१३४ ८ मी	भी
९९ फु०		१३४ १५ प्रमाणिकता	प्रामाणिकता
२ वगपूर्वक	वेगपूर्वक	१३५ ४ जीवनीकार	×
१०१ १४ ,	कि	१३६ १ इन्हीं	उन्हीं
१०१ २२ वाक्वाणी	वाक्वानी	१३६ २ इन्हीं	"
१०१ २३ ओरवानी	औ वानी	१३६ ३ इन्हीं	उन्हीं
१०२ ६ इन्हें	उन्हें	१३६ ४ इनको	उनको
१०२ ९ भी को	को	१३७ १५ मिला	मिले
१०४ ११ हरिद्वार चराऊं	हरिद्वार चाऊं	१३७ १६ ने	से
१०४ १३ यथेष्ट	यथेष्ट	१३८ १८ में	ने
१०६ २ ,	×	१३८ २० खानखानी	खानखानानी
११० १० खलकज	खलकेज	१३८ २३ इनकी	उनकी
११२ १८ प्रमाणिक	प्रामाणिक	१४० १३ कहाँ	कहा
११५ १० हैं	है	१४० १९ मिलता	मिलती
११६ ११ वरदाने	मरदाने	१४१ ७ इन्होंने	उन्होंने
११७ १४ को	का	१४१ ११ इनकी	उनकी
११८ २ इतना	इतना अधिक	१४१ १५ यथेष्ट	यथेष्ट
११८ ५ रीतिकालीन	रीतिकालीन गंग	१४१ २२ इन	उन
११९ १२ यथेष्ट	यथेष्ट	१४२ १४ दह	देह
१२२ ७ अपने	गंग के	१४२ १५ याक	धाक
१२४ २ न्यों	ज्यों	१४२ १८ अखूट	अटूट
११५ १७ प्रणदंड	प्राणदंड	१४४ १ का	द्वारा
११६ २ वेली	वेली	१४४ ३ है	हैं
		१४४ ५ वेनी	वेनी

पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध
१४४ ५ है	हैं	१७१ १७ यथेष्ट	यथेष्ट
१४४ १७ साहबे	साहेब	१७२ ७ को	के
१४९ १० प्रमाणिकता	प्रामाणिकता	१७४ १९ चमत्कार	चमत्कार
१२० ८ प्रमाणिकता	प्रामाणिकता	१७५ २४ इन्होंने	उन्होंने
१२० ११ प्रमाणिकता	प्रामाणिकता	१७६ १८ बोध	बोध
१२० १५ भूख का वादु,	भूख का वादु	१७७ १० जह्याई	जह्याई
१५१ ३ प्रमाणिक	प्रामाणिक	१७९ ६ राख	राखे
१५१ १८ वर्णित	वर्णित	१८४ ६ वीरभाव	वीर-भाव
१५२ ४ साथ	साथ	१८४ ६ भी	भी
१५२ ११ कवि	कवि	१८६ २३ उदित	उदय
१५२ १७ कृष्ण	कृष्ण	१८७ १६ दानक	दमानक
१५३ ८ थी	थीं	१८९ ४ श्रृंगार	श्रृंगार
१५४ २३ इनको	उनको	१९४ ३ और	"
१५४ २६ इन्होंने	उन्होंने	१९४ १९ समटि	समेरि
१५४ २८ यथेष्ट	यथेष्ट	१९४ २० मान 'दृगी'	मानदृगी
१५५ १५ हेठासिंह है	हेठासिंह हैं	१९५ ११ वहुँ	कवहुँ
१५५ फु०		२०२ ७ और न	औरन
१५५ १ प्रमाणिक	प्रामाणिक	२०५ २३ डि	छाडि
१५६ २६ ओर	और	२०५ २४ तखवकल	तरु वक्कल
१५७ ४ इनकी	उनकी	२०९ १४ और	और
१५७ ७ इनकी	उनकी	२११ १ तामें	तामैं
१५८ १४ श्रुत-मधुर	श्रुतिमधुर	२११ ३ कविगंग	कवि
१६० ७ प्रमाणिक	प्रामाणिक	२११ २० सामान्या	सामान्या
१६३ ५ म	में	२१५ १ कि	कि वह
१६३ १६ महान्म्य	माहात्म्य	२१५ १२ यथेष्ट	यथेष्ट
१६३ २० पूर्ववर्ती	पूर्ववर्ती	२१५ २१ होते हैं	होती हैं
१६५ २० प्रमाणिक	प्रामाणिक	२१९ ७ भाग	×
१६६ २४ सम्बन्धी	तत्संबन्धी	२१९ २० यथेष्ट	यथेष्ट
१६६ २७ जीवन में	जीवन के	२२१ ५ गभस्तीभान	गभस्तीमान
१६७ १ क	की	२२१ १२ तंही	तुंही
१६७ ८ प्रमाणिकता	प्रामाणिकता	२२३ १ ही	हों
१६८ १० दिये गये	दिये गये दोहे	२२५ ५ उनकी रचनाओं में	✗
१६९ १ प्रमाणिक	प्रामाणिक	२२६ १४ भारि	मारि
१७० २ मिश्रबन्धु	मिश्रबन्धु विनोद	२२८ ११ खानखाना	खानखाना
१७० २० भवतमाल	भवतमाल-प्रसंग	२२८ २३ जोऊ	नोऊँ

पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध
२२८ २३ तेरी	तेरो	परिशिष्ट	
२२९ ११ का	को		
२३२ १२ कैकी	केकी	३११ १४ तै दैहि	तै देहि
२३२ २१ अमुज्जवल	समुज्जवल	३११ २० बहु	बहु
२३३ ६ के	की	३१४ २२ अघात	अघातु
२३६ २१ अवसर-अवसर	अवसर-अनवसर	३१६ ५ लाइसव	लासव
२३८ फु० छंद-संख्या	ये छंद परिशिष्ट में	३१९ १ स उद्रुन	हंस उद्रुन
१,२ १२९-१३०	भूल से नहीं दिये जा सके ।	३२५ २८ धरपुत्त	धर पुत्त
२३९ ११ पसेहि	वसेहि	३२५ २८ सुपुप्न	सुपुप्न
२३९ ११ तेरी	तेरिहु	३२६ २ अप्परि	अटपटि
२३९ १७ वरसतो	वरसेतो	३२६ २ लप्पटि	लटपटि
२४१ ९ भाव	उक्त भाव	३२६ २ निप्पटि अवसि	नितपटि अवास
२४४ ३ उदारण	उदाहरण	३२६ १० लति	लेति
२४४ ९ को	के	३२६ १० तगु	जगु
२५५ १४ आंखियानि	अँखियानि	३२६ २८ बोलावहि	बोलावहि
२६१ १३ सप्तध्याय	सप्ताध्याय	३२६ २८ दिखावउ	दिखावउं
२६८ ८ वर	वरसै	३२७ छंद संख्या	
२६८ ५ हो	हे	८३ इस छप्पय की दूसरी पंक्ति मूल	
२६८ १७ हैगी	चाहैगी	हस्तलिखित प्रति में नहीं है ।	
२६८ १८ न कहौ	हाँ न कहौ	३२८ १० ने	न
२६९ ९ ता	तीव्रता	३२९ १० वेह कृपति	दे कृपनि
२६९ १४ तेरी	तेरो	३२९ १० तवि	तजि
२७३ २० हुआ	हुआ है	३३० ९ पितावु	पितावु
२८३ १५ उनके	उनकी	३३२ १७ सचरिय	संचरिय
२८३ २१ सुघर	सुघर	३३३ २ तौ	सो
२८५ ७ वृसिंह	नृसिंह	१६ हरि है	हरिहै
२८५ २३ पैह	पैहो	३३४ ४ शरद	शारद
२९४ २४ वह	वह	३३४ ८ जाग	जोग
२९६ १८ पूर्ण से	पूर्ण रूप से	३३९ २६ वाह	बाहं
२९६ १६ सामजिक	सामाजिक	३४० १ हौ	हौं
३०४ ९ मरुन	भरन	३४० १९ शजेउ	शाजेउ
३०७ फु० संख्या ३	परिशिष्ट में यह	३४० २६ गहेउ	गाहेउ
	छंद भूल से नहीं	३४२ १० धुधन सुभई	धुधन सूभई
	नहीं दिया जा सका	१० बुभई	बूभई
		३४३ १४ मोध	मधि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४३	१४	बीर	बीर	३८९	२१	मदन	मदनमोहन
३५०	१६	यहौ	यहै	३९९	३	नरजि	गरजि
३५०	१६	करी	करी	३९८	१२	ओढव	ओढव
३५१	१२	देह	देह	४००	९	एरो	एरी
३५१	२५	हरन	हारन	४००	१०	ककुल	कमल
३५२	५	पठइ	पठई	४०१	२१	मरोरी	भरोरी
३५५	१	जान तु है	जानतु है	४०५	१७	कुढंग	कुढंग
३६१	२१	हृदय	हृदय	४०४	२५	दावरी	दांवरी
३६२	११	जोरि	जोरि	४०४	२८	१०७	१००
३६२	३	अमुल	अंगुल	४०५	२८	अपनी	अपनी
३६२	१५	ग्रथिक	ग्रथिक	४०७	१६	रान	रात
३६४	४	लोइ	लोय	४०८	१	मरे	मेरे
३६६	२	भूम्य	भूण्य	४०८	६	रैयन	रयन
३६६	२७	का	की	४११	१	वाजन	वाजन
३७१	२	मया	भयो	४१२	१४	अत	अस
३७१	८	राम	राग	४१३	२	वेली	वेली
३७४	१८	मरत	भरत	४१३	१५	है	है
३७६	२०	कह्यो	कह्यो	४१४	१०	पर	पार
३७९	५	द्व	द्वै	४१६	२५	विकायो	विकायो
३८१	२६	विज्जय	विजय	४१८	९	पति	पीत
३८३	१९	छि	छै	४१९	२०	कारण	कारन
३८७	७	राजनारायण	राजनारायण	४२०	१	चुनाई	चुनाई
३९०	२	पांडित	पंडित	४२०	२	आइ	आई
३९०	११	कठ	कंठ	४२१	५	कचन	कंचन
३९१	३	लीलकठ	नीलकंठ	४२१	२	अग	अंग
३९१	५	वाधाम्बर	वाधाम्बर	४२२	१	अधिक	अधिक
३९३	२७	जातत	जानत	४२२	५	विकाहुगे	विकाहुगे
३९४	११	नक्वी	नबी	४२२	१८	धीच	बीच
३९४	१४	वाकर	वाकर	४२२	१८	मनोभव	मनोभन
३९४	२६	केरो	केरों	४२२	१८	मेरी	मेरो
३९५	९	नन	मन	४२२	१७	मनीज	मनोज
३९७	५	सब	सब	४२२	२४	हीन	हीन
३९७	५	दिदार	दीदार	४२३	२	खजन	खजन
३९८	१	निरवारी	निरवारो	४२३	५	कीई	कोई
३९८	२०	धरम	धरन	४२४	१०	छवै	छवै

पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ पंक्ति अशुद्ध	शुद्ध
४२४ १५ भित्तयो	भित्तयो	४४० २० खाननखान	खानानखान
४२७ १३ ध्यो	ध्यो	४४० २० कांप	कंपि
४२७ २४ उहारी	डहारी	४४० २० तग	तंग
४२७ २७ दास	दरस	४४१ २२ खेलमेल	खेल भैल
४२८ १ कैसोराय	केसोराय	४४२ १४ फूटौ	फूटी
४२८ ३ रुरी	रुरो	४४२ २३ भनि	मनि
४२८ १७ कह्यो	कह्यो	४४३ १ सरयो	सरचो
४२९ २ घठी	घरी	४४३ ३ विगारिबे	विगारिबे
४२९ १७ दिये	दिये	४४४ १४ वरे	वरे
४२९ १५ अच्छती	अछूती	४४४ २१ मारयो	मारचो
४३० १५ क्यो हूँ	क्यों हूँ	४४४ २१ कंहरहु	कंहरहू
४३० १६ पड़ति	पढ़ति	४४५ २ कर	डर
४३० १८ मारी	भारी	४४५ १४५ पिशाच किदारा	पिशाच की दारा
४३० २१ बलभद्रजू	बलभद्रजू	४४५ १६ क्रिपान कि धारा	क्रिपान की धारा
४३१ ७ ब्रह्मन	ब्रह्म	४४५ १६७ तरन्य की तारा	तरन्य कि तारा
४३१ पावै	पावै	४४५ १८ सार की आरा	सार कि आरा
४३१ १६ अजामेलहूँ	अजामेलहूँ	४४६ ४ खेइवो	खेइवो
४३१ १६ चरनोदक न	चरनोदकन	५४६ ७ घर	धर
४३१ १७ कहाँ	कहाँ	४४६ २४ तेरी	तेरो
४३२ ९ मोहन	मोहन	४४६ २६ फल	पल
४३३ २८ वने	वने	४४७ २ गभ	गाल
४३४ १५ ओखाद	ओखद	४४७ ६ हो तो	होतो
४३५ २४ विगरसु	विगर सु	४५१ १४ घोष	घोर
४३६ ९ भाजी	भाजी	४५१ १४ गा	गो
४३६ २० बैठी	बैठ्यो	४५५ १६ विसेन्ट	विन्सेन्ट
४३७ १५ कोरा	कोराँ	४५५ १७ ब्रलाकमैन	ब्लाकमैन
४३८ १५ गई	भई	४५९ २ घसि	घसि
४३८ २४ तुम्हारै	तुम्हारे	४५९ ६ फुलसो	फुल
४३९ ८ रहयो	रह्यो	न	सोन

